मु. विनोद मु. सन्मति

३८

४

वक्तृत्व-कला के बीज

श्री धनमुनि "प्रथम"

आत्म निवेदन

'मनुष्य की प्रकृति का बदलना अत्यन्त कठिन है'—यह सूक्ति मेरे लिए सवा सोलह आना ठीक साबित हुई। बचपन में जब मैं कलकत्ता—श्री जैनश्वेताम्बर-तेरापंथी-विद्यालय में पढ़ता था, जहाँ तक याद है, मुझे जलपान के लिए प्राय: प्रतिदिन एक आना मिलता था। प्रकृति में संग्रह करने की भावना अधिक थी, अत: मैं खर्च करके भी उसमें से कुछ न कुछ बचा ही लेता था। इस प्रकार मेरे पास कई रुपये इकट्ठे हो गये थे और मैं उनको एक डिब्बी में रखा करता था।

विक्रम संवत् १९७८ में अचानक माताजी की मृत्यु होने से विरक्त होकर हम (पिता श्री केवलचन्द जी, मैं, छोटी बहन दीपांजी और छोटे भाई चन्दनमल जी) परमकृपालु श्री कालुगणीजी के पास दीक्षित हो गए। यद्यपि दीक्षित होकर रुपयों-पैसों का संग्रह छोड़ दिया, फिर भी संग्रहवृत्ति नहीं छूट सकी। वह धनसंग्रह से हटकर ज्ञानसंग्रह की ओर झुक गई। श्री कालुगणी के चरणों में हम अनेक बालक मुनि आगम-व्याकरण-काव्य-कोष आदि पढ़ रहे थे। लेकिन मेरी प्रकृति इस प्रकार की बन गई थी कि जो भी दोहा-छन्द-श्लोक-ढाल-व्याख्यान-कथा आदि सुनने या पढ़ने में अच्छे लगते, मैं तत्काल उन्हें लिख लेता या संसार-पक्षीय पिताजी से लिखवा लेता। फलस्वरूप उपरोक्त सामग्री का काफी अच्छा संग्रह हो गया। इसे देखकर अनेक मुनि विनोद की भाषा में कह दिया करते थे कि "धन्नू तो न्यारा में जाने की (अलग विहार करने की) तैयारी कर रहा है।" उत्तर में मैं कहा करता—"क्या आप गारंटी दे सकते हैं कि इतने (१० या १५) साल तक आचार्य श्री हमें अपने साथ ही रखेंगे ? क्या पता, कल ही अलग विहार करने

प्राक्कथन

मानव जीवन में वाणी की उपलब्धि एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। हमारे प्राचीन आचार्यों की दृष्टि में वाचा ही सरस्वती का अधिष्ठान है, **वाचा सरस्वती भिषग्**[1]—वाचा ज्ञान की अधिष्ठात्री होने से स्वयं सरस्वती रूप है, और समाज के विकृत आचार-विचार-रूप रोगों को दूर करने के कारण यह कुशल वैद्य भी है।

अन्तर के भावों को एक दूसरे तक पहुँचाने का एक बहुत बड़ा माध्यम वाचा ही है। यदि मानव के पास वाचा न होती तो, उसकी क्या दशा होती? क्या वह भी मूकपशुओं की तरह भीतर ही भीतर घुटकर समाप्त नहीं हो जाता? मनुष्य, जो गूंगा होता है, वह अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए कितने हाथ-पैर मारता है, कितना छटपटाता है फिर भी अपना सही आशय कहां समझा पाता है दूसरों को?

बोलना वाचा का एक गुण है, किंतु बोलना एक अलग चीज है, और वक्ता होना वस्तुतः एक अलग चीज है। बोलने को हर कोई बोलता है, पर वह कोई कला नहीं है, किंतु वक्तृत्व एक कला है। वक्ता साधारण से विषय को भी कितने सुन्दर और मनोहारी रूप से प्रस्तुत करता है कि श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। वक्ता के बोल श्रोता के हृदय में ऐसे उतर जाते हैं कि वह उन्हें जीवन भर नहीं भूलता।

कर्मयोगी श्रीकृष्ण, भगवान्‌महावीर, तथागतबुद्ध, व्यास और भद्रबाहु आदि भारतीय प्रवचन-परम्परा के ऐसे महान् प्रवक्ता थे,

---

1 यजुर्वेद १९।१२

जिनकी वाणी का नाद आज भी हजारों-लाखों लोगों के हृदयों को आप्यायित कर रहा है। महाकाल की तूफानी हवाओं में भी उनकी वाणी की दिव्य ज्योति न बुझी है और न बुझेगी।

हर कोई वाचा का धारक, वाचा का स्वामी नहीं बन सकता। वाचा का स्वामी ही वाग्मी या वक्ता कहलाता है। वक्ता होने के लिए ज्ञान एवं अनुभव का आयाम बहुत ही विस्तृत होना चाहिए। विशाल अध्ययन, मनन-चिंतन एवं अनुभव का परिपाक वाणी को तेजस्वी एवं चिरस्थायी बनाता है। बिना अध्ययन एवं विषय की व्यापक जानकारी के भाषण केवल भषण (भौंकना) मात्र रह जाता है, वक्ता कितना ही चीखे-चिल्लाये, उछले-कूदे यदि प्रस्तावित विषय पर उसका सक्षम अधिकार नहीं है, तो वह सभा में हास्यास्पद हो जाता है, उसके व्यक्तित्व की गरिमा लुप्त हो जाती है। इसीलिए बहुत प्राचीनयुग में एक ऋषि ने कहा था—**वक्ता शतसहस्रेषु**, अर्थात् लाखों में कोई एक वक्ता होता है।

शतावधानी मुनि श्री धनराज जी जैनजगत के यशस्वी प्रवक्ता हैं। उनका प्रवचन, वस्तुतः प्रवचन होता है। श्रोताओं को अपने प्रस्तावित विषय पर केन्द्रित एवं मंत्र-मुग्ध कर देना उनका सहज कर्म है। और यह उनका वक्तृत्व—एक बहुत बड़े व्यापक एवं गंभीर अध्ययन पर आधारित है। उनका संस्कृत-प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओं का ज्ञान विस्तृत है, साथ ही तलस्पर्शी भी ! मालूम होता है, उन्होंने पांडित्य को केवल छुआ भर नहीं है, किंतु समग्रशक्ति के साथ उसे गहराई से अधिग्रहण किया है। उनकी प्रस्तुत पुस्तक **'वक्तृत्वकला के बीज'** में यह स्पष्ट परिलक्षित होता है।

प्रस्तुत कृति में जैन आगम, बौद्धवाङ्मय, वेदों से लेकर उपनिषद ब्राह्मण, पुराण, स्मृति आदि वैदिक साहित्य तथा लोककथानक, कहावतें, रूपक, ऐतिहासिक घटनाएँ, ज्ञान-विज्ञान की उपयोगी चर्चाएँ—

इसप्रकार शृंखलाबद्ध रूप में संकलित है कि किसी भी विषय पर हम बहुत कुछ विचार-सामग्री प्राप्त कर सकते हैं। सचमुच वक्तृत्व-कला के अगणित बीज इसमें सन्निहित हैं। सूक्तियों का तो एक प्रकार से यह रत्नाकर ही है। अंग्रेजी साहित्य व अन्य धर्मग्रंथों के उद्धरण भी काफी महत्वपूर्ण हैं। कुछ प्रसंग और स्थल तो ऐसे हैं, जो केवल सूक्ति और सुभाषित ही नहीं है, उनमें विषय की तलस्पर्शी गहराई भी है और उसपर से कोई भी अध्येता अपने ज्ञान के आयाम को और अधिक व्यापक बना सकता है। लगता है, जैसे मुनि श्री जी वाङ्मय के रूप में विराट् पुरुष हो गए हैं। जहां पर भी दृष्टि पड़ती है, कोई-न-कोई वचन ऐसा मिल ही जाता है जो हृदय को छू जाता है और यदि प्रवक्ता प्रसंगतः अपने भाषण में उपयोग करे, तो अवश्य ही श्रोताओं के मस्तक झूम उठेंगे।

प्रश्न हो सकता है—'वक्तृत्वकला के बीज' में मुनि श्री का अपना क्या है? यह एक संग्रह है और संग्रह केवल पुरानी निधि होती है; परन्तु मैं कहूँगा कि फूलों की माला का निर्माता माली जब विभिन्न जाति एवं विभिन्न रंगों के मोहक पुष्पों की माला बनाता है तो उसमें उसका अपना क्या है? बिखरे फूल, फूल हैं, माली नहीं। माला का अपना एक अलग ही विलक्षण सौन्दर्य है। रंग-बिरंगे फूलों का उपयुक्त चुनाव करना और उनका कलात्मक रूप में संयोजन करना—यही तो मालाकार का कर्म है, जो स्वयं में एक विलक्षण एवं विशिष्ट कलाकर्म है। मुनि श्री जी वक्तृत्वकला के बीज में ऐसे ही विलक्षण मालाकार हैं। विषयों का उपयुक्त चयन एवं तत्सम्बन्धित सूक्तियों आदि का संकलन इतना शानदार हुआ है कि इस प्रकार का संकलन अन्यत्र इस रूप में नहीं देखा गया।

एक बात और—श्री चन्दनमुनि जी की संस्कृत-प्राकृत रचनाओं ने मुझे यथावसर काफी प्रभावित किया है। मैं उनकी विद्वत्ता का प्रशंसक रहा हूँ। श्री धनमुनि जी उनके बड़े भाई हैं—जब यह मुझे

ज्ञात हुआ तो मेरे हर्ष की सीमाओं का और भी अधिक विस्तार हो गया। अब मैं कैसे कहूँ कि इन दोनों में कौन बड़ा है और कौन छोटा ? अच्छा यही होगा कि एक को दूसरे से उपमित कर दूँ। उनकी बहुश्रुतता एवं इनकी संग्रह-कुशलता से मेरा मन मुग्ध हो गया है।

मैं मुनि श्री जी, और उनकी इस महत्वपूर्णकृति का हृदय से अभिनन्दन करता हूँ। विभिन्न भागों में प्रकाशित होने वाली इस विराट् कृति के प्रवचनकार, लेखक एवं स्वाध्यायप्रेमीजन मुनि श्री के प्रति ऋणी रहेंगे। वे जब भी चाहेंगे, वक्तृत्व के बीज में से उन्हें कुछ मिलेगा ही, वे रिक्तहस्त नहीं रहेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

प्रवक्तृ-समाज—मुनि श्री जी का एतदर्थ आभारी है और आभारी रहेगा।

जैन भवन
आश्विन शुक्ला-३
आगरा।

—उपाध्याय अमरमुनि

सम्पादकीय

वक्तृत्व गुण एक कला है, और वह बहुत बड़ी साधना की अपेक्षा करता है। आगम का ज्ञान, लोकव्यवहार का ज्ञान, लोकमानस का ज्ञान और समय एवं परिस्थितियों का ज्ञान तथा इन सबके साथ निस्पृहता, निर्भयता, स्वर की मधुरता, ओजस्विता आदि गुणों की साधना एवं विकास से ही वक्तृत्वकला का विकास हो सकता है, और ऐसे वक्ता वस्तुतः हजारों लाखों में कोई एकाध ही मिलते है।

तेरापंथ के अधिशास्ता युगप्रधान आचार्य श्रीतुलसी में वक्तृत्वकला के ये विशिष्ट गुण चमत्कारी ढंग से विकसित हुए हैं। उनकी वाणी का जादू श्रोताओं के मन-मस्तिष्क को आन्दोलित कर देता है। भारतवर्ष की सुदीर्घ पदयात्राओं के मध्य लाखों नर-नारियों ने उनकी ओजस्विनी वाणी सुनी है और उसके मधुर प्रभाव को जीवन में अनुभव किया है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक मुनि श्री धनराजजी भी वास्तव में वक्तृत्वकला के महान गुणों के धनी एक कुशल प्रवक्ता संत हैं। वे कवि भी हैं, गायक भी हैं, और तेरापथ शासन में सर्वप्रथम अवधानकार भी हैं; इन सबके साथ-साथ बहुत बड़े विद्वान तो हैं ही। उनके प्रवचन जहां भी होते हैं, श्रोताओं की अपार भीड़ उमड़ आती है। आपके विहार करने के बाद भी श्रोता आपको याद करते रहते हैं।

आपकी भावना है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी वक्तृत्वकला का विकास करें और उसका सदुपयोग करें, अतः जन-समाज के लाभार्थ आपने वक्तृत्व के योग्य विभिन्न सामग्रियों का यह विशाल संग्रह प्रस्तुत किया है।

बहुत समय से जनता की, विद्वानों की और वक्तृत्वकला के अभ्यासियों की माँग थी कि इस दुर्लभ सामग्री का जन-हिताय प्रकाशन किया जाय तो बहुत लोगों को लाभ मिलेगा। जनता की भावना के अनुसार हमने मुनिश्री की इस सामग्री को धारणा प्रारंभ किया। इस कार्य को सम्पन्न करने में श्री डूंगरगढ़, मोमासर, भादरा, हिसार, टोहाना, नरवाना, कैथल, हांसी, भिवानी, तोसाम, ऊमरा, सिसाय, जमालपुर, सिरसा और भटिंडा आदि के विद्यार्थियों एवं युवकों ने अथक परिश्रम किया है। फलस्वरूप लगभग सौ कापियों व १५०० विषयों में यह सामग्री संकलित हुई है। हम इस विशाल संग्रह को विभिन्न भागों में प्रकाशित करने का संकल्प लेकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हुए हैं।

वक्तृत्वकला के बीज का यह चौथा भाग पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। इसके प्रकाशन का समस्त अर्थभार श्री एस० बी० एंड कंपनी, अहमदाबाद ने वहन किया है। इस अनुकरणीय उदारता के लिए हम उनके हृदय से आभारी हैं।

इसके प्रकाशन एवं प्रूफ संशोधन आदि में श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' तथा श्री ब्रह्मदेवसिंह जी आदि का जो हार्दिक सहयोग प्राप्त हुआ है—उसके लिए भी हम हृदय से कृतज्ञता-ज्ञापित करते हैं। आशा है यह पुस्तक जन-जन के लिए, वक्ताओं और लेखकों के लिए एक इनसाईक्लोपीडिया (विश्वकोश) का काम देगी और युग-युग तक इसका लाभ मिलता रहेगा....

●●

का फरमान करदें। व्याख्यानादि का संग्रह होगा तो धर्मोपदेश या धर्म-प्रचार करने में सहायता मिलेगी।"

समय-समय पर उपरोक्त साथी मुनियों का हास्य-विनोद चल ही रहा था कि वि० सं० १९८६ में श्री कालुगणी ने अचानक ही श्रीकेवलमुनि को अग्रगण्य बनाकर रतननगर (थेलासर) चातुर्मास करने का हुक्म दे दिया। हम दोनों भाई (मैं और चन्दन मुनि) उनके साथ थे। व्याख्यान आदि का किया हुआ संग्रह उस चातुर्मास में बहुत काम आया एवं भविष्य के लिए उत्तमोत्तम ज्ञानसंग्रह करने की भावना बलवती बनी। हम कुछ वर्ष तक पिताजी के साथ विचरते रहे। उनके दिवगत होने के पश्चात् दोनों भाई अग्रगण्य के रूप में पृथक्-पृथक् विहार करने लगे।

विशेष प्रेरणा—एक बार मैंने 'वक्ता बनो' नाम की पुस्तक पढ़ी। उसमें वक्ता बनने के विषय में खासी अच्छी बातें बताई हुई थीं। पहले-पहले यह पंक्ति दृष्टिगोचर हुई कि "कोई भी ग्रन्थ या शास्त्र पढ़ो, उसमें जो भी बात अपने काम की लगे, उसे तत्काल लिख लो।" इस पंक्ति ने मेरी संग्रह करने की प्रवृत्ति को पूर्वापेक्षया अत्यधिक तेज बना दिया। मुझे कोई भी नई युक्ति, सूक्ति या कहानी मिलती, उसे तुरंत लिख लेता। फिर जो उनमें विशेष उपयोगी लगती, उसे औपदेशिक भजन, स्तवन या व्याख्यान के रूप में गूंथ लेता। इस प्रवृत्ति के कारण मेरे पास अनेक भाषाओं में निबद्ध स्वरचित सैकड़ों भजन और सैकड़ों व्याख्यान इकट्ठे हो गए। फिर जैन-कथा साहित्य एवं तात्त्विकसाहित्य की ओर रुचि बढ़ी। फलस्वरूप दोनों ही विषयों पर अनेक पुस्तकों की रचना हुई। उनमें छोटी-बड़ी लगभग २६ पुस्तकें तो प्रकाश में आ चुकी, शेष ३०-३२ अप्रकाशित ही हैं।

एक बार संगृहीत-सामग्री के विषय में यह सुझाव आया कि यदि प्राचीन संग्रह को व्यवस्थित करके एक ग्रन्थ का रूप दे दिया जाए, तो यह उत्कृष्ट उपयोगी चीज बन जाए। मैंने इस सुझाव को स्वीकार किया और अपने प्राचीन संग्रह को व्यवस्थित करने में जुट गया। लेकिन पुराने संग्रह में कौन-सी सूक्ति, श्लोक या हेतु किस ग्रन्थ या शास्त्र के है अथवा किस कवि, वक्ता या लेखक के हैं—यह प्रायः लिखा हुआ नहीं था। अतः ग्रन्थों या शास्त्रों आदि की साक्षियां प्राप्त करने के लिए—इन आठ-नौ वर्षों में वेद, उपनिषद्, इतिहास, स्मृति, पुराण, कुरान, बाइबिल, जैनशास्त्र, बौद्धशास्त्र, नीतिशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, स्वप्नशास्त्र, शकुनशास्त्र, दर्शन-शास्त्र, संगीत-शास्त्र तथा अनेक हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, राजस्थानी, गुजराती मराठी एवं पंजाबी सूक्तिसंग्रहों का ध्यानपूर्वक यथासम्भव अध्ययन किया। उससे काफी नया संग्रह बना और प्राचीन संग्रह को साक्षी सम्पन्न बनाने में सहायता मिली। फिर भी खेद है कि अनेक सूक्तियां एवं श्लोक आदि बिना साक्षी के ही रह गए। प्रयत्न करने पर भी उनकी साक्षियां नहीं मिल सकीं। जिन-जिन की साक्षियां मिली हैं, उन-उनके आगे वे लगा दी गई हैं। जिनकी साक्षियां उपलब्ध नहीं हो सकीं, उनके आगे स्थान रिक्त छोड़ दिया गया है। कई जगह प्राचीन संग्रह के आधार पर केवल महाभारत, वाल्मीकि रामायण, योग-शास्त्र आदि महान् ग्रन्थों के नाममात्र लगाए हैं; अस्तु!

इस ग्रंथ के संकलन में किसी भी मत या सम्प्रदाय विशेष का खण्डन-मण्डन करने की दृष्टि नहीं है, केवल यही दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि कौन क्या कहता है या क्या मानता है। यद्यपि विश्व के विभिन्न देशनिवासी मनीषियों के मतों का संकलन होने से ग्रन्थ में भाषा की एकरूपता नहीं रह

सकी है। कहीं प्राकृत-संस्कृत, पारसी, उर्दू एवं अंग्रेजी भाषा है तो कहीं हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, पंजाबी और बंगाली भाषा के प्रयोग हैं, फिर भी कठिन भाषाओं के श्लोक, वाक्य आदि का अर्थ हिन्दी भाषा में कर दिया गया है। दूसरे प्रकार से भी इस ग्रन्थ में भाषा की विविधता है। कई ग्रन्थों, कवियों, लेखकों एवं विचारकों ने अपने सिद्धान्त निरवद्यभाषा में व्यक्त किए हैं तो कई साफ-साफ सावद्यभाषा में ही बोले हैं। मुझे जिस रूप में जिसके जो विचार मिले हैं, उन्हें मैंने उसी रूप में अंकित किया है, लेकिन मेरा अनुमोदन केवल निर्वद्य-सिद्धान्तों के साथ है।

ग्रन्थ की सर्वोपयोगिता—इस ग्रन्थ में उच्चस्तरीय विद्वानों के लिए जहाँ जैन-बौद्ध आगमों के गम्भीर पद्य हैं, वेदों, उपनिषदों के अद्भुत मंत्र हैं, स्मृति एवं नीति के हृदयग्राही श्लोक हैं वहाँ सर्वसाधारण के लिए सीधी-सादी भाषा के दोहे, छन्द, सूक्तियाँ, लोकोक्तियाँ, हेतु, दृष्टान्त एवं छोटी-छोटी कहानियाँ भी हैं। अतः यह ग्रन्थ निःसंदेह हर एक व्यक्ति के लिए उपयोगी सिद्ध होगा—ऐसी मेरी मान्यता है। वक्ता, कवि और लेखक इस ग्रन्थ से विशेष लाभ उठा सकेंगे, क्योंकि इसके सहारे वे अपने भाषण, काव्य और लेख को ठोस, सजीव, एवं हृदयग्राही बना सकेंगे एवं अद्भुत विचारों का विचित्र चित्रण करके उनमें निखार ला सकेंगे, अस्तु!

ग्रन्थ का नामकरण—इस ग्रन्थ का नाम 'वक्तृत्वकला के बीज' रखा गया है। वक्तृत्वकला की उपज के निमित्त यहाँ केवल बीज इकट्ठे किए गए हैं। बीजों का वपन किसलिए, कैसे, कब और कहाँ करना—यह वप्ता (बीज बोनेवाले) की भावना एवं बुद्धिमत्ता पर निर्भर करेगा। फिर भी मेरी मनोकामना तो यही है कि वप्ता परमात्मपदप्राप्ति रूप फल

के लिए शास्त्रोक्तविधि से अच्छे अवसर पर उत्तम क्षेत्रों में इन बीजों का वपन करेंगे। अस्तु !

यहाँ मैं इस बात को भी कहे बिना नहीं रह सकता कि जिन ग्रन्थों, लेखों, समाचार पत्रों एवं व्यक्तियों से इस ग्रन्थ के संकलन में सहयोग मिला है—वे सभी सहायक रूप से मेरे लिए चिरस्मरणीय रहेंगे।

यह ग्रंथ कई भागों में विभक्त है एवं उनमें सैकड़ों विषयों का संकलन है। उक्त संग्रह बालोतरा मर्यादा-महोत्सव के समय मैंने आचार्य श्रीतुलसी को भेंट किया। उन्होंने देखकर बहुत प्रसन्नता व्यक्त की एवं फरमाया कि इसमें छोटी-छोटी कहानियाँ एवं घटनाएँ भी लगा देनी चाहिये ताकि विशेष उपयोगी बन जाए। आचार्य श्री का आदेश स्वीकार करके इसे संक्षिप्त कहानियाँ तथा घटनाओं से सम्पन्न किया गया।

मुनिश्री चन्दनमलजी, डूंगरमलजी, नथमलजी, नगराज जी, मधुकरजी, राकेशजी, रूपचन्दजी आदि अनेक साधु एवं साध्वियों ने भी इस ग्रन्थ को विशेष उपयोगी माना। बीदासर-महोत्सव पर कई संतों का यह अनुरोध रहा कि इस संग्रह को अवश्य धरा दिया जाए।

सर्व प्रथम वि० सं० २०२३ में श्री डूँगरगढ़ के श्रावकों ने इसे धारणा शुरू किया। फिर थली, हरियाणा एवं पंजाब के अनेक ग्रामों-नगरों के उत्साही युवकों ने तीन वर्षों के अथक-परिश्रम से धारकर इसे प्रकाशन के योग्य बनाया।

मुझे दृढ़विश्वास है कि पाठकगण इसके अध्ययन, चिन्तन एवं मनन से अपने बुद्धि-वैभव को क्रमशः बढ़ाते जायेंगे—

वि० सं० २०२७ मृगसर बदी ४
मंगलवार, रामामंडी, (पंजाब)

—धनमुनि 'प्रथम'

अनुक्रमणिका

पहला कोष्ठक पृष्ठ १ से ७७

१ विवेक, २ विवेक-महिमा, ३ विवेकी, ४ अविवेकी, ५ विवेक-हीन, ६ चिन्तन-मनन, ७ विचार, ८ सम्मति-सलाह, ९ आवश्यक-सलाह, १० सलाह के विषय में विविध, ११ उपदेश, १२ कला, १३ विविध कलाएँ, १४ कविता, १५ कविता का महत्व, १६ अच्छी कविता, १७ कविता-विरोध, १८ कवि, १९ कवि-प्रशंसा, २० कवियों की प्रकृति, २१ कवियों की शक्ति, २२ कवियों के लिये विचारणीय बातें, २३ निन्दनीय कवि, २४ विभिन्न भाषाओं के महान् कवि, २५ रसिक श्रोताओं के अभाव में कवि, २६ निर्भीक कवि गंग, २७ प्राचीन एवं आधुनिक कवि, २८ महान् कवि, २९ कल्पना, ३० कल्पना के उदाहरण, ३१ कहावतें, ३२ साहित्य, ३३ इतिहास, ३४ संयोजक, ३५ लेखक, ३६ बुरे लेखक, ३७ लेखनी, ३८ अध्ययन, ३९ स्वाध्याय, ४० अनाध्याय, ४१ अधिक अध्ययन।

दूसरा कोष्ठक

पृष्ठ ७८ से १४७

१ पुस्तक शास्त्र, २ पुस्तकों का चयन, ३ विभिन्न दर्शनों के धर्मग्रन्थ, ४ प्रामाणिक ग्रन्थ, ५ युक्ति एवं न्याय से ग्रन्थों की प्रामाणिकता, ६ पुस्तक प्रकाशन, ७ विश्व के प्रख्यात पुस्तकालय, ८ अनुभव, ६ अनुभवहीन, १० परीक्षा, ११ परीक्षा आवश्यक, १२ परीक्षा-विधि, १३ परीक्षा का समय, १४ दर्शन, १५ आस्तिक, १६ नास्तिक, १७ नास्तिकों का कथन, १८ सम्यग्दर्शन-सम्यक्त्व, १६ सम्यक्त्व की दुर्लभता, २० सम्यक्त्व से लाभ, २१ सम्यक्त्व का महत्व, २२ सम्यग् दृष्टि, २३ श्रद्धा, २४ श्रद्धावान, २५ अश्रद्धावान् (शंकाशील) २६ संशय (शंका), २७ विश्वास, २८ विश्वास के अयोग्य, २६ विश्वासघात, ३० मिथ्यादर्शन (मिथ्यात्व), ३१ मिथ्यात्व के भेद ३२ मिथ्यादृष्टि।

तीसरा कोष्ठक

पृष्ठ १४८ से २२१

१ तत्व, २ द्रव्य, ३ नय-प्रमाण, ४ निश्चय व्यवहार नय, ५ स्याद्वाद, ६ उत्सर्ग-अपवाद, ७ सिद्धान्त, ८ चारित्र, ६ चारित्र का महत्व, १० ज्ञान के साथ चारित्र आवश्यक, ११ चारित्र की रक्षा, १२ चरित्र से लाभ, १३ त्याग, १४ त्याग के भेद, १५ त्यागी, १६ प्रत्याख्यान, १७ आचार (आचरण), १८ आचरण बिना ज्ञान, १६ आचारवान, २० आचारहीन, २१ कथन के समान आचरण आवश्यक, २२ शील, २३ व्रत, २४ महाव्रत, २५ सभ्यता, २६ योग, २७ योग महिमा, २८ योगी, २६ योगियों के चमत्कार।

चौथा कोष्ठक

पृष्ठ २२२ से ३३६

१ संयम, २ संयम से लाभ, ३ संयम की दुष्करता, ४ संयम में सुख-दुःख, ५ संयम दीक्षा का समय आदि, ६ संयम से भ्रष्ट होने के अठारह स्थान, ७ संयम के भेद, ८ साधना, ६ साधु, १० मुनि,

११ अनगार, १२ भिक्षु, १३ श्रमण, १४ निर्ग्रन्थ, १५ स्थविर, १६ तापस, १७ फकीर, १८ संत, १९ कतिपय जगत्प्रसिद्ध संत महात्मा, २० साधुओं के गुण, २१ साधु संगति, २२ संतों का संताप, २३ साधुओं की गोचरी, २४ गोचरी के भेद, २५ गोचरी के नियम, २६ साधु का आहार, २७ आहार किसलिए, २८ साधुओं का निवास स्थान, २९ साधुओं के वस्त्र ३० साधुओं के पात्र ३१ साधुओं का विहार, ३२ साधु की भाषा, ३३ साधुओं के लिए कल्प-अकल्प, ३४ साधुओं के सुख, ३५ साधुओं के बारह संभोग और आठ विसंभोग ३६ साधुओं को शिक्षा, ३७ नामधारी साधु, ३८ पापी साधु, ३९ कंदर्पादि में लीन साधुओं की गति ।

चार कोष्ठकों में कुल १४१ विषय तथा दस भागों में लगभग १५०० विषय हैं ।

पहला कोष्ठक

१

विवेक

१. हेयोपादेयज्ञानं विवेकः।
त्यागने योग्य एवं ग्रहण करने योग्य वस्तु के ज्ञान को विवेक कहते हैं।

२. विवेक केवल सत्य में पाया जाता है। —गेटे

३. उड़ने की अपेक्षा जब हम झुकते हैं, तब विवेक के अधिक निकट होते हैं। —वर्ड्सवर्थ

४. अपने विवेक को अपना शिक्षक बनाओ! शब्दों का कर्म से और कर्मों का शब्दों से मेल कराओ। —शेक्सपीयर

५. विवेक के नियमों को सीखकर, जो उन्हें जीवन में नहीं उतारता, उसने खेत में मेहनत करके भी बीज नहीं डाला। —शेखसादी

६. समझा-समझा एक है, अनसमझा सब एक।
समझा सो ही जानिए, जाके हृदय विवेक॥ —कबीर

७. ईर्ष्या हि विवेकपरिपन्थिनी। —कथासरित्सागर
ईर्ष्या ही विवेक की शत्रु है।

८. मदमूढ-बुद्धिषु विवेकिता कुतः! —शिशुपालवध
मद से मोहित बुद्धिवालों में विवेक कहां!

९. यौवन और सौन्दर्य में विवेक कदाचित् ही होता है। —होमर

विवेक-महिमा

१. विवेगे धम्ममाहिए।

विवेक में धर्म कहा गया है।

२. विवेको मुक्तिसाधनम्।

विवेक मुक्ति का साधन है।

३. विवेको गुरुवत् सर्वं, कृत्याकृत्यं प्रकाशयेत्।

विवेक गुरु की तरह कृत्य अकृत्य का सभी दिखाता है।

४. निर्वातहृद्-गेहगतः प्रकाशयेत्,

सर्वेप्सितं वस्तुविचारदीपकः। —ब्रह्मानन्द

चञ्चलतारूप वायु से रहित हृदयमंदिर में विवेकरूप दीपक समस्त इच्छित वस्तुओं को प्रकाशित करता है।

५. एको हि चक्षुरमलः सहजो विवेकः।

विवेक एक स्वाभाविक निर्मल नेत्र है।

६. कोर्टसी कोस्टस् नथिंग एण्डबाइज एवरीथिंग।

—अंग्रेजी कहावत

विवेक के लिए एक पाई भी नहीं लगती, किन्तु इससे हरएक चीज खरीदी जा सकती है।

७. न विवेकं विना ज्ञानम्।

विवेक के बिना ज्ञान नहीं होता।

८. अग्नि के अंश बिना फूंक नहीं लगती, श्वास के बिना दवा नहीं लगती और कान आदि के बिना सुनना-देखना आदि कार्य नहीं होता—ऐसे ही विवेक के बिना व्यवहारिक या धार्मिक उन्नति नहीं होती। खाना, पीना, पहनना, ओढ़ना, सोना, उठना, बैठना, बोलना, चलना, पढ़ना, लिखना, हंसना, रोना आदि व्यवहारिक कार्य तथा ज्ञानचर्चा, व्याख्यान, सामायिक, पौषध, गुरुवन्दन, सेवा-भक्ति, तपस्या एवं दान, आदि धार्मिककार्य करना, इन सभी कार्यों में विवेक की जरूरत है। किसी ने कहा भी है—

आलस्य में पताला, क्रिया में जीवन और विवेक में मनुष्यता है। अविवेकी को उपदेश नहीं लगता।

३

विवेकी

१. कायं परोपकाराय, धारयन्ति विवेकिनः ।

—धर्मकल्पद्रुम

विवेकी पुरुष परोपकार के लिए ही शरीर धारण करता है ।

२. विवेक दृष्ट्या चरतां जनानां,

श्रियो न किंचिद् विपदो न किंचिद् ।

विवेकपूर्वक आचरण करनेवालों के लिए संपत्ति हर्षदायक नहीं होती और विपत्ति दुःखदायक नहीं होती ।

३. विवेकिनमनुप्राप्ता, गुणा यान्ति मनोज्ञताम् ।

सुतरां रत्नमाभाति, चामीकरनियोजितम् ॥

—चाणक्यनीति १६।६

सोने में जड़े हुए रत्नों की तरह गुण विवेकी को पाकर अत्यधिक चमकने लगते हैं ।

४. विवेकिनां विवेकस्य, फलं ह्यौचित्यवर्तनम् ।

—त्रिषष्टिशलाका० ३।१

उचित व्यवहार करना ही विवेकियों के विवेक का फल है ।

★

४

अविवेक

१. अविवेकः परमापदां पदम् । —महाकवि भारवि

अविवेक आपत्तियों का मुख्य स्थान है ।

२. नास्त्यविवेकात् परः प्राणिनां शत्रुः ।

—नीतिवाक्यामृत १०।४५

अविवेक से बढ़कर प्राणियों का कोई शत्रु नहीं है ।

३. जड़ जड़ता के वश पड़े, करते क्रिया अनेक ।

क्रिया विक्रिया हो रही, चन्दन बिना विवेक ।।

—तात्त्विकत्रिशती

४. धन जोबन अरु ठाकरी, तिण ऊपर अविवेक ।

ऐ च्यारुं मेला हुवें, (तो) अनरथ करै अनेक ।।

५ विवेकहीन

१. विवेकान्धो हि जात्यन्धः । —योगवाशिष्ठ १४।४१

जो पुरुष विवेकान्ध (विवेकरूपी नेत्रों से हीन) है, वह जन्मान्ध है।

२. शिरः शार्वं स्वर्गात् पतति शिरसस्तत्क्षितिध्रं।
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम् ॥
अधो गङ्गा सेयं पदमुपगता स्तोकमथवा।
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक १०

स्वर्ग से च्युत होकर शिवजी के सिर पर, शिवजी के सिर से हिमालय पर, हिमालय से पृथ्वी पर और फिर पृथ्वीतल से समुद्र में गिरती हुई यही गंगा लघुपद को प्राप्त हुई। वास्तव में विवेकभ्रष्ट पुरुषों का पतन सैकड़ों प्रकार से होता है।

३. पुंसा विवेकहीनानां, सेवया न धनार्जनम्।

विवेकहीन पुरुषों की सेवा करने से धन नहीं हुआ करता।

४. फूटी आंख विवेक की, लखे न सन्त-असन्त।
जाके संग दस-बीस हैं, ताको नाम महन्त ॥

६

चिन्तन–मनन

१. आत्मा का अपने साथ बात-चीत करना ही मनन है।

—प्लेटो

२. *मनन विचार की परिचारिका है और विचार मनन का भोजन।*

—सी० सिमन्स

३. धर्मशास्त्रों का मात्र पाठ करना दूसरों की गायें गिनने के समान है।

—बुद्ध

४. कालेण य अहिज्जित्ता, तओ झाइज्ज एगगो।

—उत्तराध्ययन १।१०

यथासमय अध्ययन करके फिर उसके तत्त्व का ध्यान-चिन्तन-मनन करना चाहिए।

५. चिन्तन की तीन भूमिकाएँ—

१. जो सोच नहीं सकता, वह मूर्ख है।

२. जो सोचना नहीं चाहता, वह अन्धविश्वासी है।

३. जिसमें सोचने का साहस नहीं, वह गुलाम है।

७ विचार

१. कोऽहं कथमयं दोषः, संसाराख्य उपागतः ।
न्यायेनेति परामर्शो, विचार इति कथ्यते ।।

— योगवाशिष्ठ २।५०

मैं कौन हूं ? मेरे में यह संसाररूपी दोष कैसे आया ? शास्त्रिक-न्याय से—ऐसे सोचने को **विचार** कहा जाता है ।

२. श्रोतव्ये च कृतौ कर्णौ, वाग्बुद्धिश्च विचारणे ।
यः श्रुतं न विचारेत, स कार्यं विन्दते कथम् ।।

कान सुनने के लिए किए गये हैं और वाणी एवं बुद्धि विचारने के लिए । जो मनुष्य सुनी हुई बात पर विचार नहीं करता, उसे कार्यरूप फल कैसे मिल सकता है !

३. विचाराद् ज्ञायते तत्त्वं, तत्त्वाद्विश्रान्तिरात्मनि ।

– योगवाशिष्ठ २।१४।५३

विचार से तत्त्वज्ञान होता है और उससे आत्मा को विश्राम मिलता है ।

४. बलं बुद्धिश्च तेजश्च, प्रतिपत्तिः क्रियाफलम् ।
फलन्त्येतानि सर्वाणि, विचारेणैव धीमताम् ।।

—योगवाशिष्ठ २

विद्वानों के बल, बुद्धि, तेज, समय के योग्य स्फूर्ति, क्रिया एवं उसके फल—ये सभी कार्य विचार से ही सफल होते हैं ।

५. महान् विचार जब कार्य के रूप में परिणत होते हैं तो वे महान् कार्य बन जाते हैं।

—हैजलिट

६. संसार न कुछ भला है, न कुछ बुरा है। हमारे विचार ही उसे भला-बुरा बनाते हैं।

—शेक्सपियर

७. आत्मा के विचार पानी हैं। उसमें गन्दगी मिलना पाप एवं सुगन्धि मिलना पुण्य है।

८. मनुष्य वैसा ही बन जाता है, जैसे उसके विचार होते हैं।

—बाइबिल

९. विचार जब आचार की देहली में प्रविष्ट होते हैं, तब सुरक्षित बन जाते हैं।

—जीवनसौरभ

१०. विचार मर्यादापूर्ण, सहानुभूतिमूलक और परिमित होने से ही समादृत होता है।

—हरिऔध

११. हमारे सर्वोत्तम विचार दूसरों की देन हैं। —एमर्सन

१२. वह मुझे सुन्दर उपहार देता है, जो मुझे अपूर्व विचार सुनाता है।

—सूफी

१३. जैसे आप महान् विचारवान हैं, वैसे ही करके दिखाने वा। बनें।

—शेक्सपियर

१४. सोचना शान्ति से और करना तेजी से।

—जवाहरलाल नेहरू

सद्विचार

१. सद्विचार **नमक** है और आचार **भोजन** है, सद्विचार **सिकोरा** है और दानादि क्रियाएं **उसमें तेल-बत्ती** हैं।

२. **सद्विचारों की दृढ़ता से** शारीरिक विकारों का नाश, सत्कर्म में प्रेम और दृढ़ विश्वास होता है।

- **सद्विश्वास** की दृढ़ता से मलिनवासनाओं का नाश, क्षमा, दया, धीरज, अनुराग की उत्पत्ति और सन्निदध्यास-प्रभुनाम की स्मृति में दृढ़ प्रयत्न होता है।
- **सन्निदध्यास** की दृढ़ता से अशुभकामनाओं का नाश, निष्कामभाव में वृद्धि, नश्वर-भोगों से पूर्ण वैराग्य और सत्तत्त्वों का अनुभव होता है।
- **सत्तत्त्वानुभव** की दृढ़ता से समर्पणबुद्धि, अहंभाव का सर्वनाश होता है और सत्स्थिति की प्राप्ति होती है व स्थूलसंसार का मोह नष्ट होता है।
- **सत्स्थिति** से तमाम दुर्मति नष्ट होकर आत्मा केवल ज्ञानस्वरूप में लीन हो जाती है। यह अवस्था निर्द्वन्द्व, गुणातीत, अतर्क व अद्वैत कहलाती है।

—एक वैदिक विद्वान

असद्विचार—

३. हमें अपने फोड़ों-गिल्टियों से छुटकारा पाने की चिन्ता न करके अपने गलत विचारों से पिंड छुड़ाने की परवाह करनी चाहिए। —**दार्शनिक-एपिक्टेट्स**

४. खुराक की बदहजमी के लिए तो दवा है, पर विचारों की बदहजमी आत्मा को बिगाड़ देती है। —**गांधी**

५. विचारों की शुद्धि तब ही सकती है, जब वे हवा की तरह उड़कर, सबके हृदय लगें, चांदनी की तरह सबकी आँखें ठंडी करदें। —**एकविचारक**

विचारों का परिवर्तन—

६. अनुभव, ज्ञान, उन्मेष और वयस् मनुष्य के विचारों को बदलते हैं। —**हरिऔध**

७. केवल मूर्ख और मृतक दो ही अपने विचारों को नहीं बदल सकते। —**लावेल**

६

सम्मति (सलाह)

१. नेवरगिव एडवाइस अनलेस आस्कड।

—जर्मन-लोकोक्ति

जब तक पूछा न जाय, कभी सलाह मत दो !

२. शुभं वा यदि वा पापं, द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम्।
अपृष्टस्तस्य तद् ब्रूयाद्, यस्य नेच्छेत् पराभवम्॥

—विदुरनीति २।४

मनुष्य को चाहिए कि वह जिसकी पराजय नहीं चाहता, उसको बिना पूछे भी कल्याण करनेवाली या अनिष्ट-करने-वाली प्रिय अथवा अप्रिय जो भी बात हो, बता दे !

३. भीड़ के स्थल पर सलाह मत दो !

—अरबी-लोकोक्ति

४. कोई सलाह ले तो युधिष्ठिर की तरह उसके हित की दो, न कि अपने हित की, क्योंकि वह अपने हित के लिए पूछता है, न कि तुम्हारे हित के लिए।

५. जैसे किसी के हाथ, पैर, कान, नाक, जीभ आदि काटना एवं आंखें फोड़ना महापाप है, उसी प्रकार बुरी सलाह देकर किसी का हिया फोड़ना भी महापाप है।

६. सीख देकर व्यक्ति को सन्मार्ग पर चढ़ाना जितना बड़ा पुण्य है, उन्मार्ग पर चढ़ाना उससे भी बढ़कर पाप है।

७. न तो किसी को युद्ध में जाने की सलाह दो, न विवाह करने की।

—स्पेनी-लोकोक्ति

८. जिसे हर कोई देने को तैयार रहता है, पर लेता कोई नहीं—ऐसी चीज है—उपदेश और सलाह।

—रामतीर्थ

१० सलाह लेना जरूरी !

१. एकश्चार्थान्न चिन्तयेत् । —विदुरनीति १।५१

मनुष्य को चाहिए कि अकेला किसी विषय का निश्चय न करे ! अर्थात् दूसरे की सलाह ले ।

२. वन स्वालो इज नॉट मेक ए समर । —अंग्रेजी कहावत

अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता !

३. एक ही एक सो एकला, बे मिल बावन वीर !
सहु कहे अम ऊपर मुदो, पिण न सरै विण नीर !

४. एक पर एक-ग्यारह । —हिन्दी कहावत

५. पुराने जमाने में पगड़ी सूंघने का रिवाज था । तत्त्व यह था—कोई सलाह देनेवाला न हो तो पगड़ी से ही सलाह ले लो अर्थात् काम करने से पहले कुछ समय सोचलो !

६. सलाह तो अनेक लेते हैं, पर उससे लाभ उठाना तो बुद्धिमान ही जानता है । —साइरस

★

११ सलाह के विषय में विविध

१. अनायुक्तो मन्त्रकाले न तिष्ठेत् ॥

—नीतिवाक्यामृत १०।३२

कोई भी व्यक्ति मन्त्रणा के समय बिना बुलाया हुआ उस स्थान पर न ठहरे !

२. न तैः सह मन्त्रं कुर्यात्, येषां पक्षीयेष्वपकुर्यात् ।

नीतिवाक्यामृत १०।३१

जिसने जिनके बन्धु आदि कुटुम्बियों का अपकार-अनिष्ट (वध-बंधनादि) किया है, उसे उन विरोधियों के साथ गुप्तसलाह नहीं करनी चाहिए ।

३. आकाशे प्रतिशब्दवति चाश्रये मन्त्रं न कुर्यात् ।

—नीतिवाक्यामृत १०।२८

जो स्थान चारों तरफ से खुला हो, ऐसे स्थान पर तथा पर्वत व गुफा आदि में जहाँ प्रतिध्वनि निकलती हो, वहाँ मन्त्रणा नहीं करनी चाहिए ।

४. दिवा नक्तं वाऽपरीक्ष्य मन्त्रयमाणस्याभिमतः प्रच्छन्नो वा भिनत्ति मन्त्रम् । —नीतिवाक्यामृत १०।२९

जो व्यक्ति दिन या रात्रि में योग्य स्थान की परीक्षा किए बिना ही मन्त्रणा करता है, उसका गुप्तमन्त्र प्रकाशित हो जाता है ।

५. इंगितमाकारो मदः प्रमादो निद्रा च मन्त्रभेदकारणानि ।

—नीतिवाक्यामृत १०।३५

गुप्तमन्त्र का भेद निम्नप्रकार पांच बातों से होता है, अतएव उनसे सदा सावधान रहना चाहिए यथा—(१) इंगित (गुप्त-मन्त्रणा करनेवाले की मुखचेष्टा), (२) शरीर की सौम्य या रौद्र आकृति (३) शराब पीना, (४) प्रमाद (असावधानियां करना) (५) निद्रा ।

६. षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतुष्कर्णः स्थिरो भवेत ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन षट्कर्णं वर्जयेत् सुधीः ॥

—पञ्चतन्त्र १।१०८

'छः कन्नी' (तीन व्यक्तियों के सन्मुख की हुई) बात फूट जाती है किंतु 'चौकन्नी' गुप्त रह सकती है । अतः बुद्धिमान लोगों को चाहिए कि वे तीन व्यक्तियों के सामने कोई गुप्तमन्त्रणा न करें !

७. दो व्यक्ति सलाह करते हों तो तीसरे को वहां बिना बुलाये नहीं जाना चाहिए ।

• **राजा भोज** एक दिन अचानक महल में चला गया । रानी उस समय दासी से बात कर रही थी । राजा को आता देखकर वह बोली—आओ मूर्ख ! राजा क्रुद्ध एवं विस्मित होकर लौट पड़ा । दरबार में पण्डित आते गए और राजा उन्हें कहता गया—"आओ मूर्ख ! आओ मूर्ख !" अन्त में कालिदास ने निम्नलिखित श्लोक कह कर राजा का समाधान किया ।

खादन्न गच्छामि हसन्न जल्पे,
गतं न शोचामि कृतं न मन्ये।
द्वाभ्यां तृतीयो न भवामि राजन्!
किं कारणं भोज! भवामि मूर्खः॥

—भोजप्रबन्ध

(१) मैं खाता हुआ चलता नहीं, (२) बोलते समय हंसता नहीं, (३) गई बात को सोचता नहीं, (४) किए उपकार को स्मरता नहीं, (५) दो व्यक्तियों की बात के बीच में जाता नहीं, फिर हे राजा भोज! मैं मूर्ख कैसे हुआ? मूर्ख बनने के तो ये ही पांच कारण हैं। वास्तविकता को समझकर राजा प्रसन्न हुआ।

१२ **उपदेश**

१. जो उपदेश आत्मा से निकलता है, वही आत्मा पर सबसे ज्यादा कारगर होता है। —**फुलर**

२. वह उपदेश उत्तम नहीं, जिसे सुनकर श्रोता लोग बातें एवं वक्ता की तारीफ करते जाएं, बल्कि उत्तम तो वह है, जिसे सुनकर विचारपूर्ण एवं गंभीर होकर जाएँ, तथा एकान्तवास की तलाश करें। —**बिशप बर्नेट**

३. मेरे उपदेशों में खास बात यह है कि मैं सख्त दिल को तोड़ता हूं, और टूटे हुए को जोड़ता हूं। —**जॉनन्यूटन**

४. मुझे वह उपदेश पसन्द है, जो मेरे लिए बोलता है, न कि अपने लिए। जिसे मेरी मुक्ति वांछनीय है, न कि अपनी थोथी शान। —**मेसीलन**

५. किसी उपदेशक के दोषों पर प्रायः जल्दी ही ध्यान आकर्षित होता है। —**लूथर**

६. कोई अच्छा उपदेश दे, उसका मानो! लेकिन वह क्या करता है, उसे मत देखो! जैसे हलवाई की मिठाई लेते हैं, किन्तु यह नहीं देखते की हलवाई खाता है या नहीं।

उपदेशदान—

७. उपदेश पापियों और धर्मियों-दोनों को देना चाहिए।

पापियों को इसलिए कि वे पाप से निवृत्त हों, और धर्मियों को इसलिए कि वे धर्म में सदा सुदृढ़ रहें।

—आचार्य श्रीतुलसी

८. नीति का उपदेश दो तो संक्षेप में दो। —हारेस

९. आधा घंटा से ज्यादा उपदेश देने के लिए आदमी या तो खुद फरिश्ता हो या सुनने के लिए फरिश्ता रखे।

—व्हाइट फील्ड

१०. हजार टन उपदेश देने की अपेक्षा एक औंस पालन करना श्रेष्ठ है। — विवेकानन्द

११. हम उपदेश देते हैं टन भर, सुनते हैं मन भर, और ग्रहण करते हैं कण भर। —अलबर

१२. जैसा हम कहते हैं, वैसा करना चाहिए; जैसा करते हैं, वैसा नहीं। — बोक्केशियो

१३. परोपदेशे पाण्डित्यं से ही दरिद्रता आती है। — रामतीर्थ

१४. एक पढ़े-लिखे बाबू नाव द्वारा नदी पार कर रहे थे। उन्होंने नाविक से पूछा—

क्या तुम व्याकरण जानते हो ?

नाविक—नहीं।

बाबू—तुम्हारी चार आने जिन्दगी निकम्मी है।

थोड़ी देर बाद—क्या तुम्हें काव्य करना आता है ?

नाविक—नहीं।

बाबू—फिर तो तुम्हारी जिन्दगी आठ आने बेकार हो गई।

अच्छा तो—तुम्हें गणित आता है ?

नाविक—नहीं।

बाबू—तब तो तुम्हारी बारह आने जिन्दगी व्यर्थ ही है।

संयोग से नदी में तूफान उठा और नाव डगमगाने लगी।

नाविक ने पूछा—बाबू जी ! आप तैरना जानते हैं ?

बाबू—नहीं।

नाविक ने कहा—फिर तो आपकी जिन्दगी इस समय सोलह आने पानी में है !

अन्ततः तूफान की चपेट में बाबूजी को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा।

कला

कला वही है जो सौन्दर्य का सबक सिखाती है।

कला विचार को मूर्तिमान् करती है। —एमर्सन

सच्ची 'कला' ईश्वर का भक्तिमय अनुसरण है।

—ट्राईन एडवर्ड्स्

जो कला आत्मा के दर्शन की शिक्षा नहीं देती, वह कला कला ही नहीं है। —गान्धी

सर्वोच्च कला हमेशा धर्ममय होती है और महत्तम कलाकार भक्त होता है।

कला तो सत्य का केवल शृंगार है। —हरिभाऊ उपाध्याय

कला—कला के लिए नहीं; बल्कि समाज को उन्नत बनाने के लिये है।

कला की परिपूर्णता कला को छिपाने में है।

उपयोगी कलाओं की जननी है 'आवश्यकता' और ललित कलाओं की जननी है 'विलासिता'। पहली बुद्धि से उत्पन्न हुई है और दूसरी प्रतिभा से पैदा हुई है।

— शोपेनहोर

सत्य की भूमि पर मायासृजन — यही है ललितकलाओं का रहस्य। निरा सत्य उनका ध्येय नहीं हो सकता।

लोगों को खुश करने की कला दुनिया में आगे बढ़ने की कुंजी है।

१४ विविध-कलाएं

(क) लेखनकला—

१. ऋषभ प्रभु ने ब्राह्मी के बाएं हाथ पर अपने दाहिने हाथ से अ-आ-इ-ई आदि वर्णमाला के ४४ अक्षर लिखे एवं लेखनकला का प्रारंभ किया। ब्राह्मी के हाथ पर लिखने से ब्राह्मीलिपि कहलाई। सुन्दरी के दाहिने हाथ पर अपने बाँयें हाथ से १, २, ३, आदि अंक लिखे अतः अंकों की वामगति हुई, कहा भी है—**अङ्कानां वामतो गतिः।**

२. बम्बई-निवासी **अनन्त भट्ट** ने एक पोस्टकार्ड में जवाहर-जीवनचरित्र लिखा। उसमें लगभग २ लाख अक्षर हैं।[१]

३. **जेम्स जाहारी** ने १६२६ में दो सेंट (अमेरीका का एक सिक्का) की टिकिट पर २० हजार अक्षर लिखे। १६३५ में एक चावल पर ६००७ अक्षर लिखे। फिर बालों पर उससे भी बारीक अक्षर लिखे। वे चावलों वाले अक्षरों से १/३ सूक्ष्म थे।

---

१ १४ नवम्बर १६५४ (नेहरु जन्म-दिवस) पर प्रधानमंत्री श्रीजवाहरलालजी को यह कार्ड भेंट किया गया।

४. भूतपूर्व नेममुनि ने सं० २००२ में ऐनक की सहायता के बिना एवं लकड़ी की कलम से चार इंच चौड़ा और नौ-इंच लम्बा एक पत्र लिखा। उसके दोनों ओर ८० हजार अक्षर थे। उससे भी सूक्ष्मअक्षरों वाले दो पत्र पुनः लिखे। उनके एक वर्ग-इंच में करीब १४०० अक्षर हैं।

—धनमुनि

५. आशुलिपिकर्त्ता हिन्दी में प्रति मिनिट २३० शब्द तक लिख सकते हैं। नई दिल्ली ३० जून केन्द्रीय सचिवालय-हिन्दीपरिषद द्वारा आयोजित हिन्दी-आशुलिपिकर्ताओं की सातवीं प्रतियोगिता में यह प्रमाणित हुआ।

—हिन्दुस्तान २१ जनवरी १९७०

(ख) वस्त्र बुनने की अद्भुत कला—

१. ढाके-चन्देरी आदि की, कारीगरी अब है कहां ?
हा ! आज हिन्दुनारियों की, कुशलता सब है कहां ?
थी वह कला या क्या कि,ऐसी सूक्ष्म थी अनमोल थी।
सौ हाथ लम्बे सूत की, बस आध रत्ती तोल थी[1]।
रक्खा नली में बांस की, जो थान कपड़े का नया।

---

१. ढाका जिले के सुनारी गांव में हाथ के कते हुए १७५ हाथ सूत का वजन एक रत्ती था, तथा आधसेर रुई से २५० मील लम्बा सूत बनाया गया था—

—ढाका रेजिडेन्ट, सन् १८४६ से उद्धृत

आश्चर्य ! अंबारीसहित हाथी उसीसे ढंक गया ।[1]
वे वस्त्र कितने सूक्ष्म थे, करलो कई उनकी तहें ।
शहजादियों के अंग, फिर भी झलकते उनमें रहे ।[2]
— मैथिलीशरण गुप्त (भारत-भारती)

२. **वस्त्र बुनने की कला से राजा अपने घर पहुंचा—**

प्रसंग—राजकन्या से मोहित एक राजा ने उसकी मांग की, कन्या ने कुछ कला सीखने की शर्त रखी। राजा ने वस्त्र बुनने की कला सीखी एवं विवाह हुआ। वक्र-शिक्षित अश्व के कारण एक बार राजा भीषण वन में पहुंचा। भीलों ने वहां उसे कैद कर लिया। इधर मन्त्री खोज कर रहे थे, किन्तु पता न चल सका। बुद्धिमान राजा ने कई रुमाल बुने एवं उनमें गुप्तरूप से अपना नाम लिखा। भील बेचने शहर में गये। पता पाकर सेनासहित मन्त्री आया और राजा को छुड़ाकर ले गया।

(ग) गायन कला—

१. **नास्ति नादसमो रसः।**

संगीत के समान कोई रस नहीं है।

---

१. ढाके की मलमल १० गज लम्बी एवं १ हाथ चौड़ी होती थी, जिसका वजन ८ तोले ४।। माशे होता था। अकबर को एक कारीगर ने बांस की नली में डालकर एक मलमल का थान भेंट किया था, जिससे हौदासहित हाथी ढका जा सकता था।

२. औरंगजेब की लड़की ने मलमल की कई तहें करके उस वस्त्र को ओढ़ा फिर भी उसका बदन दीखता ही रहा।

२. कहा जाता है कि फारस में **मिरजा मुहम्मद** वीन बजाकर बुलबुलों को सचेत तथा अचेत कर देते थे।

- **बैजूबावरा** मालकोश राग गाकर हिरणों को आकृष्ट कर लेते थे।
- **तानसेन** मेघमल्हार गाकर पानी बरसा देते थे एवं दीपकराग से दीपक जला देते थे।

३. तानसेन के गुरु **स्वामी हरिदासजी** ने प्रभुभक्ति में लीन होकर एक बार ऐसा गीत गाया, जिसे सुनकर शहनशाह अकबर आनन्दमग्न होकर मूच्छित हो गया।

४. **मदनमोहन चटर्जी** ने तीन वर्ष दो महीने की आयु में ताल-स्वर संयुक्त सर्वप्रथम गाना गाया एवं श्रोता-विस्मित हुए। सात वर्ष की आयु में वे अच्छे गवैये बन गये।

५. गोगो गायो र गीतां रो छेह आयो।

—**राजस्थानी कहावत**

६. **गीत के १८५ अङ्ग—**

सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा, मूर्च्छनाश्चैकविंशतिः।
तालास्त्वेकोनपञ्चाशत्, तिस्रो मात्रा लयास्त्रयः॥
स्थानत्रयं यतीनां च, षडास्यानि रसा नव।
रागाः षट्त्रिंशतिर्भावा-श्चत्वारिंशत्ततः स्मृताः॥
पञ्चाशीत्यधिकं ह्येतद्, गीताङ्गानां शतं स्मृतम्।
स्वयमेव पुरा प्रोक्तं भरतेन श्रुतेः परम्॥

—**पञ्चतन्त्र ५।५३-५४-५५**

गीत के स्वर सात होते हैं—(१) षड्ज (२) ऋषभ (३) गान्धार (४) मध्यम (५) पंचम (६) धैवत (७) निषाद।

ग्राम (स्वर समूह) तीन होते हैं—(१) षड्जग्राम (२) मध्यम-ग्राम (३) निषादग्राम।

स्वर का आरोह—अवरोह-द्वारा सम्यक् प्रकार से मूर्छित हो जाना **मूर्छना** कहलाती है। उसके २१ भेद हैं। **ताल** उनचास हैं। **मात्राएँ** तीन हैं—(१) ह्रस्व (२) दीर्घ (३) प्लुत। **लय** तीन होते हैं। (गीत-नृत्य-वाद्य की एकतानता रूप साम्य-भाव का नाम लय है) **यति** (विराम-स्थान) तीन हैं। **आस्य** छः हैं। **रस** शृंगार आदि नौ हैं। **राग**: भैरव, कौशिकी, हिण्डोल, दीपक, श्री, और मेघ आदि ३६ हैं। **भाव** ४४ हैं। इस प्रकार **नाट्याचार्य भरत** ने गीत के १८५ अंग कहे हैं।

७. बाह्यार्थालम्बनो यस्तु, विकारो मानसो भवेत्।
स भावः कथ्यते सद्भि-स्तस्योत्कर्षो रसः स्मृतः॥

बाह्यवस्तुओं के सहारे से जो मन में विकार उत्पन्न होते हैं, उन्हें भाव कहते हैं। भाव जब उत्कर्ष को प्राप्त कर लेते हैं तो वे रस कहे जाते हैं।

८. रस नौ हैं—(१) वीर, (२) शृङ्गार, (३) अद्‌भुत (४) रौद्र, (५) व्रीडा, (६) बीभत्स, (७) हास्य, (८) करुण, (९) प्रशान्त।

—**अनुयोगद्वार गाथा ६३ से ८१, सूत्र १२६**

(घ) **नृत्य-कला**—

- अफ्रीका में आइवरी-कोस्ट की आदिम जाति, **लोबो,** में नर्तक एक हाथ में एक कटार और दूसरे हाथ में एक खंजर लेकर इन तीक्ष्ण हथियारों की नोक पर एक

लड़के को संतुलित कर घंटों तक विद्युतगति से नाचता रहता है।

गोलकुंडा (भारत) के शासक, अबुलहसन तानाशाह के दरबार में एक अनोखी नर्तकी थी, तारामती वह प्रति दिन शाह को अपना नृत्य दिखाती थी। लेकिन यह नृत्य बड़ा अद्भुत होता था। पहाड़ पर बने शाह के महल से नर्तकी का निवास करीब आधा मील दूर नीचे पड़ता था। एक मजबूत रस्सा महल से नर्तकी के निवास तक तान दिया जाता था। इस रस्से पर नाचती हुई तारामती अपने निवास की छत से महल की छत पर पहुंच जाती थी। यह क्रम सन् १६७२ से १६७७, पांच वर्षों तक चलता रहा।

—विचित्रा, वर्ष ३, अंक ४, १९७१

(घ) तैरने की कला—

गत रविवार की सायं को सबसे छोटा तैराक साढ़ेचार साल का था, जो एक ऊँचे पत्थर से तेज यमुनाप्रवाह में छलांग लगाता था। नव वर्ष की एक लड़की नदी के पाट को पार कर गई। चार लड़कियां तैरती हुई फूलों के आकार बना रही थीं एवं नृत्य कर रही थीं। एक लड़की के हाथ-पैर रस्सी से बांधकर उसे पानी में फेंका गया फिर भी वह तैरकर बाहर आ गई। एक लड़की ने खड़ी तारी दिखाई, वह ऐसी लग रही थी, मानो ! पानी पर चल रही है। एक उस्ताद ने आधे

दर्जन बच्चों को कंधों पर बिठाकर खड़ी तारी का प्रदर्शन किया। तैराकों के उस्ताद ८० वर्षीय **पंडित लल्लु भाई** का कहना है कि तैरना सब रोगों की अचूक दवा है। —**नवभारत टाइम्स १२ अक्टूबर १९६१ से।**

छः मास का एक बच्चा नौ मिनट तक बिना किसी और के सहारे पानी में तैरता रहा। पांच महीने की एक लड़की साढ़े तीन मिनट तक पानी में तैरती रही।

—**मिलाप १६ नवम्बर ७१**

(छ) बाणकला—

१. बड़ौदा आर्यकन्या–महाविद्यालय की कन्याओं ने राज्यपाल **मंगलदास पकवासा** के स्वागत में, सोकर पैरों से तीर चलाए। उन तीरों ने सामने रखी हुई पुष्पमाला लेकर राज्यपाल के गले में पहना दी।

२. अमरापुर का लक्ष्यवेधी **चम्पा वणिक** ऊंट पर चढ़ा हुआ परदेश से धन कमाकर आ रहा था। तीन डाकू मिले, धन मांगा। उसने कहा—दानरूप में दे सकता हूं।

डाकू—हो जा लड़ने को तैयार।

वणिक नीचे उतरा एवं दो तीर तोड़ डाले। (उसके पास कुल पांच तीर थे) पूछने पर बोला—तुम पैदल हो और तीन हो, एक बाण से अधिक न मारने की प्रतिज्ञा है।

विस्मित डाकू बोले—पक्षी मारकर परीक्षा दे।

वणिक—व्यर्थ हिंसा कौन करे!

यों कहकर अपनी मोतियों की माला एक डाकू के सिर पर रखो, बाण चलाया, वह माला को ले गया, लेकिन सिर के बाल हिले तक नहीं।

३. मुहम्मद गोरी ने कारगरनदी के किनारे भीषण युद्ध में हराकर पृथ्वीराज चौहान को पकड़ लिया और हथकड़ी बेड़ी एवं गले में तोक पहनाकर गजनी में कैद कर लिया। इतना ही नहीं उसकी दोनों आँखे भी निकलवा दीं। पृथ्वीराज के परमसखा चन्द्रकवि भी योगी के रूप में वहां जा पहुंचे। अपने अद्भुत व्यक्तित्व और बुद्धिमत्ता से बादशाह के प्रीतिपात्र बने। मौका लगाकर अपने स्वामी से मिले और दुःख-सुख की बातें कीं।

वैर का बदला लेने की ठानकर एक दिन बादशाह से कहने लगे—कि पृथ्वीराज जैसे बहादुर नरेश को इस प्रकार दुःख देना आप जैसे बादशाह को शोभा नहीं देता। उनसे अनेक अद्वितीय - शस्त्रविद्याएँ सीखनी चाहिए। वे इतने अद्भुत शब्दवेधी हैं कि गौ-सी मन के सात तवे तलाऊ पर रखकर कंकर मारने के साथ ही उन्हें फोड़ सकते हैं। दुर्भाग्यवश गोरी के जँच गई एवं एक तरफ तलाऊ पर सात तवे रखे गये। तथा एक तरफ ऊंचे मचान पर बादशाह बैठा। पृथ्वीराज आये, हथकड़ी-बेड़ी हटा दी गई। प्रत्यंचा चढ़ाते समय कई धनुष टूट गए। आखिर उन्हें उनका मूल धनुष लाकर

दिया गया। तुरन्त प्रत्यंचा चढ़ाई एवं धनुष-बाण लेकर तैयार हुए। उस समय चन्द्रकवि ने अपनी भाषा में यह दोहा सुनाया—

चार बांस चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमाण।
मार-मार मोटे तवे, मत चूके चौहान !

चौहान सारा मर्म समझ गया। ज्योंही तवों पर कंकर मारे गये और बादशाह ने उत्साह-वर्धक शाबाश शब्द कहा, शब्दवेधी वीर पृथ्वीराज ने उसी शाबाश शब्द के आधार पर इतना जोरदार बाण मारा कि बादशाह मरकर औंधे मुंह गिर पड़ा। रंग में भंग हो गया और हाहाकार मच गया। मुसलमान ज्योंही पृथ्वीराज को मारने दौड़े। चन्द्र-पृथ्वीराज परस्पर एक-दूसरे की तलवार से मर गये।

—राजपूती कथाओं से

(ज) धर्मकला—

१. सव्वा कला धम्मकला जिणाइ।

धर्मकला सब कलाओं को जीतनेवाली है।

२. बावत्तरिकलाकुसला, पंडियपुरिसा अपंडिया चेव।
सव्वकलाणं पवरं, धम्मकला जे न जाणंति ॥1

बहत्तर कलाओं में निपुण पण्डित पुरुष भी यदि सर्व कलाओं में श्रेष्ठ धर्मकला को नहीं जानते तो वे वास्तव में अपण्डित ही हैं।

कलाकार—

जीवन सब कलाओं में श्रेष्ठ है। जो अच्छी तरह जीना जानता है, वही सच्चा कलाकार है। —**महात्मा-गांधी**

कलाकार बनने के लिए शर्त है—मानव मात्र के प्रति प्रेम, न कि कला-प्रेम।

—**टालस्टाय**

कलाकार जैसी वस्तुएँ हैं, वैसी नहीं देखता, अपितु वैसी देखता है, जैसा वह स्वयं है। - **मल्फेकटानेस**

इस भरतक्षेत्र के आदि कलाकार श्री आदिनाथ भगवान् थे। उन्होंने ही पुरुषों की ७२ तथा स्त्रियों की ६४ कलाएँ बतलाई हैं।

(**समवायांग** ७२ **तथा कल्पसूत्र में कलाओं का वर्णन है**)

१५ कविता

१. वाक्यं रसात्मकं काव्यम् ।

—साहित्यदर्पण

रसयुक्त वाक्य को काव्य-कविता कहते हैं ।

२. कविता भावनाओं में मंजी हुई बुद्धि है ।

—प्रो० विल्सन

३. कविता सर्वोत्तम मनस्वियों के सर्वाधिक आनन्द के क्षणों का रिकार्ड है ।

—शैली

५. कविता केवल कहने का सुन्दर और प्रभावशाली तरीका है ।

— मैथ्यु आर. नोल्ड

४. कविता थोड़े शब्दों में महान् शक्ति बताती है ।

—एमर्सन

६. चउव्विहे कव्वे पण्णत्ते, तं जहा—गद्दे, पद्दे, कत्थे, गेए ।

—स्थानांग ४।४।३७९

काव्य चार प्रकार का कहा है—(१) गद्य, (२) पद्य, (३) कथामय, (३) गेय—(गाने योग्य) ।

★

१६ कविता का महत्त्व

१. नरत्वं दुर्लभं लोके, विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं लोके, शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा॥

जैसे—मनुष्यजन्म दुर्लभ है, और उसमें विद्याप्राप्ति सुदुर्लभ है—उसी प्रकार कवित्व दुर्लभ है, लेकिन कवित्वशक्ति का मिलना तो बहुत ही दुर्लभ है।

२. कविता सूं संसार में, अमर वर्णे है नाम,
कवि मरै, पण नहीं मरै, कविवाणी अभिराम।

—सावधानी री समुद्र १८।८

३. का विद्या कविता विना!

कविता के बिना विद्या में क्या है!

४. कविता का जामा पहनकर सत्य और भी चमक उठता है। —पोप

५. केषां नैषा कथय कविता-कामिनी कौतुकाय?

बताओ! वह कवितारूपी कामिनी किसके लिए कौतुक का कारण नहीं बनती?

★

३

१७ अच्छी कविता

१. सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् ।

—भर्तृहरि-नीतिशतक २१

यदि श्रेष्ठ कविता है तो फिर राज्य में क्या है ।

२. सरसा सालङ्कारा, सुपदन्यासा सुवर्णमयमूर्तिः ।
आर्या तथैव भार्या, न लभ्यते पुण्यहीनेन ॥

—प्रसंगरत्नावली

सरस, अलङ्कारसहित अर्थात् अच्छे वाक्य को सजानेवाली गुणसहित, अच्छे पदों की रचनावाली एवं अच्छे वर्णों—अक्षरोंवाली ऐसी आर्या (एक प्रकार की पद्यमय कविता) और भार्या पुण्यहीन को नहीं मिलती। भार्या के पक्ष में अलंकार का अर्थ आभूषण है, सुपद का अर्थ अच्छे पग हैं और सुवर्णमयमूर्ति का अर्थ सोने की-सी पुतली है। (यह द्व्यर्थ काव्य है)।

३. सा कविता सा वनिता, यस्याः श्रवणेन दर्शनेनापि ।
कविहृदयं विटहृदयं, सरलं तरलं च सत्वरं भवति ॥

वही कविता, कविता है, जिसे सुनने से कवियों का हृदय सरल हो जाये। वही वनिता, वनिता है, जिसको देखते ही मनुष्य का हृदय चंचल हो जाय।

४. सहज और सीधी हुवै, ऊंचा भाव यथेष्ट ।
रस बरसै मुख बोलतां, वाही कविता श्रेष्ठ ।

स्वर पूरा बैठे नहीं, तुक्का मिलण न पाय ॥
मटकै भाव जग्यां बिना, तो फिर कविता नांय ॥
—सावधानी री समुद्र १८।२१-२२

५. कूर्पासकेनार्धतिरोहितौ कुचौ,
रम्यौ रमण्याः कविताक्षराणि च ।
अर्धं निगूढानि सुशोभितान्यलं,
नात्यन्तगूढानि न वा स्फुटानि ॥

कंचुकी से आधे ढके हुए स्त्री के स्तनवत् कविता के अक्षर भी अर्ध-आच्छादित ही शोभा देते हैं। अत्यन्त-गूढ़ अथवा अत्यन्त-स्पष्ट अच्छे नहीं लगते ।

६. कविता ऐसी चाहिए, ज्यों कांसे का थाल ।
तनिक ठेस से अति सरस, ध्वनि गूंजे चिरकाल ॥

७. वास्तविक हार्दिकता से पैदा हुई कविता हमेशा शरीफ और ऊंची बनती है । —ऐ. ए. हापकिन्स

८. किसी उत्कृष्ट कवि की कविता भी यदि रामनाम से रहित हो तो नग्न स्त्री की तरह वह शोभा नहीं देती ।
—रामचरितमानस

९. पुराणमित्येव न साधु सर्वं,
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते,
मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥
—मालविकाग्निमित्र नाटक १।२

पुराना होने से सभी काव्य अच्छा नहीं होता और नया होने मात्र से खराब नहीं होता । अतः सत्पुरुष दोनों की परीक्षा

करके अच्छे को स्वीकार करते हैं, किन्तु मूर्ख व्यक्ति दूसरों के विश्वास पर चलता है।

१०. किं कवेस्तस्य काव्येन, किंकाण्डेन धनुष्मता।
परस्य हृदये लग्नं, न घूर्णयति यच्छिरः॥

—शार्ङ्गधर

क्या है उस कवि के काव्य से और क्या है उस धनुष्य-बाण से, जो हृदय में लगकर दूसरे का सिर न हिला सके।

११. कविता समझनेवालों की अपेक्षा करनेवाले ज्यादा हैं। एक अच्छा पद्य समझने की अपेक्षा एक रद्दी-सा पद्य लिखना आसान है। —माल्टेन

★

१८ कविता-विरोध

१. काव्यं करोषि किमु ते सुहृदो न सन्ति,
ये त्वामुदीर्णपवनं न निवारयन्ति।
गव्यं घृतं पिब ! निवातगृहं प्रविश्य,
वाताधिका हि पुरुषाः कवयो भवन्ति॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार ३६

क्या बढ़ती हुई वायु को रोकनेवाले तेरे कोई मित्र नहीं हैं, जो तू कविता करने लगा है। जहां हवा न लगती हो, ऐसे मकान में घुसकर गाय का घी पीले ! अधिक वायुवाले पुरुष ही कवि होते हैं।

काव्य में दोष देखनेवाले व्यक्ति—

२. अतिरमणीये काव्ये, पिशुनो दूषणमन्वेषयति।
अतिरमणीये वपुषि, व्रणमिव मक्षिकानिकरः॥

—इन्दुशेखर गुप्त

जैसे अति सुन्दर शरीर में भी मक्खियां व्रण-घाव को खोजती हैं, उसी प्रकार चाहे काव्य कितना ही मनोहर क्यों न हो, दुष्टव्यक्ति उसमें दोष देखा करता है।

३. अतिरमणीये काव्ये, पिशुनो दूषणमन्वेषयति।
सुन्दरमणिमयभुवने, पश्यति रन्ध्रं पिपीलिका सततम्॥

जैसे रत्नों के सुन्दर महल में भी चींटियां बिलों को देखती

रहती हैं, उसी प्रकार सुन्दर काव्य में दुष्टव्यक्ति दोष ही देखता है।

४. कर्णामृतं काव्यरसं विहाय, दोषेषु यत्नो सुमहान् खलस्य।
अवेक्षते केलिवनं प्रविष्टः, क्रमेलकः कण्टकजालमेव।।

कानों में अमृततुल्य काव्यरस को न लेकर दुष्टपुरुष दोष देखने का ही महान् प्रयत्न करते हैं। जैसे—केलिवन में घुसकर भी ऊंट कांटोंवाले वृक्ष की ही खोज करता है।

५. जानाति हि पुनः सम्यक्, कविरेव कवेः श्रमम्।

कविता करने में कवियों को कितना परिश्रम करना पड़ता है, वह कवि ही जानता है।

१६ कवि

१. हमारी अन्तस्थ भावनाओं को जागृत करने की जिनमें शक्ति हो, वे कवि हैं। —गांधी

२. कवि वे हैं—जो फूलों से महकते विचारों को उतने ही रंगीन शब्दों में लिखते हैं। —श्रीमती कूपर

३. वे कवि हैं—जो प्रेम करते हैं, जो महान् सत्यों की अनुभूति करते हैं और उन्हें कहते हैं। —बेली

४. कवि का सबसे बड़ा गुण नई-नई बातों का सूझना है। —महावीरप्रसाद द्विवेदी

५. कवि बणाया नहि बणे, सहज-स्वभावी होय।
स्वाभाविकता कवि तणीं, अजब चीज जग जोय॥
—सावधानी रो समुद्र १८।१

६. कोई भी अच्छा आदमी हुए बिना अच्छा कवि नहीं हो सकता। —बेनजॉन्सन

७. ऐसा कोई भी व्यक्ति आज तक महान् कवि नहीं हुआ, जो कवि होने के साथ-साथ दार्शनिक न हुआ हो।
—कोलरिज

८. कविः करोति पद्यानि, लालयत्युत्तमो जनः।
तरुः प्रसूते पुष्पाणि, मरुद्वहति सौरभम्॥
—प्रसंगरत्नावली

कवि पद्यों को बनाता है और उत्तम व्यक्ति उन्हें लगाता है।
जैसे—वृक्ष पुष्पों को उत्पन्न करता है और हवा उनकी
सुरभि को फैलाती है।

६. संग्रामेषु भटेन्द्राणां, कवीनां कविमण्डले।
दीप्तिर्वा दीप्तिहानिर्वा, मुहूर्तेनैव जायते ॥

—भोजप्रबन्ध १५०

सुभटों का संग्राम में और कवियों की कवि-समूह में शोभा या
कुशोभा मुहूर्तमात्र में ही हो जाती है।

२० कवि-प्रशंसा

१. जयन्ति ते सुकृतिनो, रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः - काये, जरा-मरणजं भयम्॥
—शार्ङ्गधर १६६ तथा भर्तृहरि-नीतिशतक २४

वे पुण्यशाली एवं रससिद्ध कविराज विश्व में विजयी होते हैं, जिनके यशःरूप शरीर को कभी जरा-मरण का भय नहीं है।

२. अपारे काव्यसंसारे, कविरेकः प्रजापतिः।
यथाऽस्मै रोचते विश्वं, तथेदं परिवर्तते॥
—उत्तर-रामचरित उदाहृत; पृ० ६

इस अपार-काव्य-संसार में कवि एक प्रजापति है। इसे जैसा रुचता है, संसार वैसा ही बन जाता है।

३. कवयो ह्यर्थ विनापीश्वराः।

कवि लोग धन के बिना भी ईश्वर हैं।

४. सच्चा कवि बहुत कुछ पैगम्बर के समान है।

५. कवि आत्मा का चित्रकार है।
—आइजक डिजराइली

६. रामायण-महाभारत के रचयिता शब्द के चित्रकार नहीं थे, मानव-स्वभाव के चित्रकार थे। —गांधी

७. कवि की अंगुलियों से शब्द चमक उठते हैं। —जोबर्ट

★

२१ कवियों की प्रकृति

१. वर्तमान का आनन्द लेना, भविष्य के प्रति लापरवाही,
समझदार की-सी बातें और बेवकूफ की-सी हरकतें,
हर देश में कवि का यह एक ही स्वरूप है।

—गोल्डस्मिथ

२. चरन धरत चिन्ता करत, चित्त न भावत और।
सुबरण को शोधत फिरें, कवि व्यभिचारी चोर॥

३. कवयः किं न पश्यन्ति, किं न कुर्वन्ति योषितः।
मद्यपाः किं न भाषन्ते, किं न भक्षन्ति वायसाः॥

—चाणक्यनीति १०।४

कवि क्या नहीं देखते, स्त्रियाँ क्या नहीं करतीं, शराबी क्या नहीं कहते तथा काक (कौवा) क्या नहीं खाते?

★

२१

कवियों की शक्ति

१. कवि की आँख स्वर्ग से भूतल और भूतल से स्वर्ग तक को देख लेती है।

—शेक्सपियर

२. जहाँ न पहुंचे रवि, वहाँ पहुंचे कवि। —हिन्दी कहावत

३. स्तनौ मांसग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ।
मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशाङ्केन तुलितम्॥
स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्धि जघन-
महो! निंद्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरु कृतम्॥

—भर्तृहरि-वैराग्यशतक २०

स्त्रियों के स्तन मांस की गाठें हैं, उन्हें स्वर्ण-कलश के समान कह दिया। मुख थूक-खंखार का घर है, उसे चन्द्रमा तुल्य कह दिया तथा जांघें, जो मूत्र से भीगी रहती हैं, उन्हें हाथी की सूंड से भी बढ़कर बतला दिया। अहो! कविजनों ने ऐसे निंदनीय रूप को भी कितना बढ़ा-चढ़ाकर बताया है?

४. लङ्कापतेः संकुचितं यशो यद्,
यत्कीर्ति पात्रं रघुराजपुत्रः।
स सर्वमेवादिकवेः प्रभावो,
न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः॥

—बिल्हणकवि

रावण का यश संकुचित रहा और राम सुयश के पात्र बने। यह सारा आदिकवि श्री वाल्मीकि का ही प्रभाव है। अतः राजाओं को चाहिए कि वे कवियों को कभी नाराज न करें।

५. भीमा तूं भाठोह, मोटा भाखर मांयलो।
कर राखूं कठोह, शंकर ज्यूं सेवा करूं॥

६. राणा तू तो राख, मोटा चूल्हा मांयली।
कुल उजवालण काख, कासी ज्यूं करणो शरा॥

७. घर सूं भूखा नीकल्या, चूक गया सल्ला।
खाटू भाटा नीपजै, अन्न कठै अल्ला॥

—राजस्थानी सोरठे

८. यह काम है केवल कवियों का, पानी में आग लगा देना।
पत्थर को मोम बना देना और आग में बाग लगा देना॥

—पृथ्वीराज नाटक

२३ कवियों के लिए विचारणीय बातें

१. कविता करणी खेल नहिं, खरो खिलाणो साँप ।
भूल कर्‌यां मुख पर लगै, आ चनपट चुपचाप ॥
दग्धाक्षर रो राखणो, पूरो-पूरो ख्याल ।
रतनचन्दजी नी परै हुवै अन्यथा हाल[१] ॥
नहीं करणी ले झ-ह-र-भ-ख, ग्रन्थां री शुरुआत ।
पण स्तुतियां में खासकर, नहिं राखीजै स्यांत ॥

—सावधानी रो सम्रुद्र, १८-४-५-६

---

१. "रतनचन्द नागोर में रे चेतनियां !"—इस पद्य की रचना के बाद मुनि रतनचन्द जी ने विहार किया एवं जङ्गल में चोरों ने उनके कपड़े छीन लिए। यहाँ **नागोर में** अर्थात् नागोर शहर में—यह अर्थ है, लेकिन 'नागो-रमें' अर्थात् नङ्गा खेल रहा है—यह अर्थ भी निकलता है। इस प्रकार अनिष्ट अर्थ निकल सके—ऐसी पद्यरचना से कवि को बचना चाहिए।

★

२४ निन्दनीय कवि

१. विद्वत्कवयः कवयः, केवलकवयस्तु केवलं कपयः।
कुलजा या सा जाया, केवलजाया तु केवलं माया॥
—प्रसंग-रत्नावली

विद्वान् कवि ही वास्तव में कवि हैं। नाम के कवि तो कपि अर्थात् बन्दर के तुल्य हैं। कुलीन-पत्नी ही पत्नी है, दूसरी तो केवल मायारूप हैं।

२. गणयन्ति नापशब्दं, न वृत्तभङ्गं क्षयं न चार्थस्य।
रसिकत्वेनाकुलिता, वेश्यापतयः कुकवयश्च॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३६

जो रसिकता से आकुल होकर अपशब्द, वृत्तभङ्ग एवं अर्थक्षय को नहीं गिनते, वे या तो वेश्यापति हैं या कुकवि हैं।

३. कविरनुहरति च्छायां, पदमेकं पादमेकमर्धं वा।
सकलप्रबन्धहर्त्रे, कविताकर्त्रे नमस्तस्मै॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३६

कवि छाया का हरण करता है, समस्यापूर्ति आदि में एक पद अथवा आधा पद भी ग्रहण कर लेता है, किन्तु वह कवि तो नमस्कार करने के ही योग्य है, जो दूसरों के काव्य से समूचा प्रबन्ध ही उठा लेता है।

४. इनें-बिनें रा हर्फ ले, अपणो नाम लगाय ।
जे जग में बाजै कवि, ते तो चोर कहाय ॥
दूजारां काव्यां तणों, नकल करो मत कोय ।
नकल करणवाला कवि, जग में नकली होय ॥

—सावधानी रो समुद्र १८।३-२२

★

२५ रसिकश्रोताओं के अभाव में कवि

१. इतरपापशतानि यदृच्छया,
   वितर तानि सहे चतुरानन !
अरसिकेषु कवित्व - निवेदनं,
   शिरसि मा लिख ! मा लिख ! मा लिख !!

हे ब्रह्म भगवन् ! दूसरे सैकड़ों पापों की बक्शीस भले ही कर दे, मैं सहन कर लूंगा, लेकिन अरसिकों के आगे कविता सुनाना मेरे भाग्य में कभी मत लिख ! कभी मत लिख ! कभी मत लिख !!

२. कविराजा ! खेती करो, हल स्युं राखो हेत ।
गीत जमीं में गाड दयो, ऊपर रालो रेत ।।

—राजस्थानी दोहा

★

निर्भीक कवि 'गंग'

संसार से विरक्त होने के पश्चात् 'कवि गंग' को एक बार बादशाह अकबर ने एक समस्या "करो मिलि आश अकब्बर की" की पूर्ति के लिए कहा—कवि गंग ने तत्काल उक्त छन्द द्वारा समस्या की पूर्ति कर दी।

एक कुं छोड़ दूजे कुं भजे,
रसना जु कटो उस लब्बर की।
अब के गुनियां दुनियां कुं भजे,
सिर बांधत पोट अटब्बर की।।
कवि गंग तो एक गोविन्द भजे,
कछु शंक न मानत जब्बर की।
जिनको हरि की परतीत नहीं,
सो 'करो मिलि आस अकब्बर की' ।।१।।

अकब्बर बे अकब्बर! नरांहंदा नर।
के होजा मेरी स्त्री, के होजा मेरा वर।
एक हाथ में घोड़ा, और एक हाथ में खर।
कहना है सो कह दिया, अब करना है सो कर ।।२।।

उक्त छंद को सुनते ही बादशाह क्रोधित हो उठा और उसने कवि 'गंग' को हाथी के पैरों तले कुचलवाकर

मरवा दिया। कवि के पुत्र को जब यह समाचार सुनाया गया तो उसने निम्नलिखित छन्द रचकर लोगों को चकित कर दिया।

देवन को दरबार भयो जब,
पिंगल छन्द बनाय सुनायो।
काहू सों अर्थ दियो न गयो,
तब नारद ने परसंग बतायो॥
मृत्युलोक में गंग गुनी इक,
ताहि को नाम सभा में सुनायो।
चाह भई परमेश्वर के तब,
गंग कुं लेन गणेश पठायो॥३॥

२७ प्राचीन एवं आधुनिक कवि

१. सर्वज्ञकल्पैः कविभिः पुरातनै-
रवीक्षितं वस्तु किमस्ति साम्प्रतम् ।
ऐदंयुगीनस्तु कुशाग्रधीरपि,
प्रवक्ति यत्तत्सदृशं स विस्मयः ॥

सर्वज्ञतुल्य पुराने कवियों ने न देखी हो, ऐसी वस्तु आज है ही क्या ? आज के तुच्छ-बुद्धिवाले व्यक्ति यदि उनके समान भी कुछ कह दें, तो वह आश्चर्य है ।

२. सूर सूर तुलसी शशी, उडुगण केशवदास ।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ-तहँ करत प्रकाश ॥

३. आधुनिक कवि स्याही में पानी ज्यादा मिलाते हैं ।

★

२८ महान् कवि

१. अनुसिद्धसेनं कवयः । — हेमचन्द्राचार्य

कवियों में सर्वश्रेष्ठ सिद्धसेन दिवाकर हैं ।

२. कविरमरः कविरचलः, कविरभिनन्दनश्च कालिदासश्च ।
अन्ये कवयः कपयः, चापलमात्रं परं दधति ॥
——सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३६

कवि तो वास्तव में अमर, अचल, अभिनन्दन और कालिदास हैं । दूसरे कवि तो मात्र चपलता धारण करते हैं, अतः बन्दर के समान हैं ।

३. कवयति पण्डितराजे, कवयन्त्यन्येऽपि भूरिविद्वांसः ।
नृत्यति पिनाकपाणौ, नृत्यन्त्यन्येऽपि भूत बेतालाः ॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३६

जब 'पण्डितराज-जगन्नाथ' कविता करते हैं, तब अन्य अनेक विद्वान् भी कविता करते हैं, किन्तु वे ऐसे लगते हैं मानो ! शंकर के नाचते समय अन्य भूत-बेताल नाच रहे हैं ।

२६ विभिन्न भाषाओं के महान् कवि

१. संस्कृत—**कालिदास**, हिन्दी—**तुलसीदास**,
उर्दू—**गालिब**, बंगाली—**रवीन्द्रनाथ टैगोर**,
अंग्रेजी—**शेक्सपियर**, फारसी—**शेखसादी**,
जर्मन—**गायथे**, ग्रीक—**होमर**,
इटालियन—**दांते**, फ्रांसीसी—**सुलीप्राद होमें**।

२. **प्राचीनकाल के प्रमुख हिन्दी कवि—**
चन्द्रबरदाई, कबीर, सूरदास, तुलसीदास, जायसी, केशवदास, बिहारी, भूषण आदि।

३. **आधुनिक हिन्दी के प्रमुख कवि—**
भारतेन्दु-हरिश्चन्द्र, जयशंकरप्रसाद, निराला, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह 'दिनकर', बच्चन', नरेन्द्र शर्मा, नीरज आदि।

४. **उर्दू के प्रसिद्ध कवि—**
ग़ालिब, जौक, इक़बाल, हाली, जोश, जिगर आदि।

५. **इंग्लिश के प्रसिद्ध कवि—**
बैन जॉनसन, जोह्न ड्राइडन, रोबर्ट ब्रिजिज, विलियमवर्डजवर्थ, लार्ड अलफर्ड, टेनिसन, शेक्सपियर जोह्न मेन्सफील्ड आदि।

—विश्वदर्पण, पृष्ठ ६२

३० कल्पना

१. 'इतिहास' की अपेक्षा 'कल्पना' का स्थान ऊँचा है। तुलसीदासजी ने कहा है—'राम' की अपेक्षा 'नाम' बड़ा है। —गांधी

२. कल्पना ज्ञान से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।
—आईंस्टीन

३. मानवता अपनी कल्पना से ही शासित होती आ रही है।
—नेपोलियन

४. कल्पना आत्मा का नेत्र है। —जुबेर

५. कवित्व जैसी सुन्दरता न तो अप्सरा में है, न नन्दनवन के पारिजात में है, न पूर्णिमा के चन्द्र में है, न प्रातःकाल के रविमण्डल में है और न संध्या के अरुणित आकाश में है। कवित्व अंधकार में दीपक है, दरिद्र का धन है, भूख में अन्न है, प्यास में घन है, अंधे की लाठी है, थके की सवारी है, दुःख में धैर्य है और विरह में मिलन है। बुरे को भला और भले को बुरा करना इसके लिए मामूली बात है। भाषा-अभाव इसका मुख्य शत्रु था। बाद में भाषा प्रकट हुई। उसने अभाव को मारा। पुण्डरीक गणधर ने भाषा से विवाह किया। द्वादश-अङ्ग बनाए। इतने में मिथ्या नाम की कन्या प्रकट

हुई। कवित्व ने उससे विवाह किया, उसका नाम कल्पना रखा। कवि लोग इसका आदर करने लगे। जिस समय यह पति (कवित्व) के साथ बन-ठनकर निकलती है, बड़ों-बड़ों का सिर चक्कर खाने लगता है।

६. जो बिना अध्ययन के केवल कल्पना का आश्रय लेता है, उसके पांखें तो हैं, किन्तु पग नहीं है। —जुबर्ट

७. अपवित्र कल्पना उतनी ही बुरी है, जितना बुरा अपवित्र कर्म। —विवेकानन्द

३१ कल्पना के उदाहरण

१. पान और कूंपल—

पान पड़ंतां देख नें, हंसी जु कूंपलियांह।
मो बीती तो बीतसी, धीरी बप्पड़ियांह।

—अनुयोगद्वार प्रमाणाधिकार के आधार पर

२. कली और फूल—

हंसती हुई कली से फूल ने कहा—कैसे हंस रही हो ? कली—फूल जो बनने जारही हूं। फूल—फूल बनने पर माली तोड़ लेगा। कली—खैर ! मिट्टी में तो मिलना ही है, किन्तु मरने से पहले किसी को सुवासित तो कर दूंगी।

३. द्वार और झरोखा—

मैं बड़ा हूं, मेरा सम्मान है, मेरे द्वारा ही प्रवेश-निर्गम होता है—ऐसे द्वार ने कहा। झरोखा बोला—क्या अभिमान करते हो ! बड़े होने पर भी स्वामी को तुम्हारा विश्वास नहीं है। रात पड़ते ही अथवा बाहर जाते ही तुम्हें बन्द कर दिया जाता है, क्योंकि तुम चोर-डाकुओं को भी आने से नहीं रोकते, मैं स्वामिभक्त और विश्वासी

होने के कारण हरवक्त खुला रहता हूं, और स्वामी को धूप-हवा आदि देता हूं।

४. **सुई से चलनी ने कहा—**

तेरे में तो छिद्र है। सुई बोली—मेरे में सिर्फ एक छिद्र है, तेरे में तो सारे छिद्र ही छिद्र हैं, पहले उनको तो देख!

५. **टैगोर की कल्पनाएँ—**

(क) ऊपर से गिरता हुआ पानी गाता है कि जब मैं स्वतन्त्र हुआ तभी तो मधुर गान कर रहा हूं। (ऐसे ही विकार-मुक्त आत्मा आत्मिक संगीत कर सकती है।)

(ख) फूल ने फल से पूछा—तू मेरे से कितना दूर है? फल ने कहा—मैं तेरे दिल में ही छिपा हूं।
(इससे कर्म के पीछे फल निश्चित है - यह समझो!)

(ग) सत्ता ने विश्व से कहा—तू मेरा है। विश्व ने मान लिया; किन्तु प्रेम ने सत्ता को कैद करके फिर विश्व से कहा कि मैं तेरा हूं। नम्रवाणी सुनकर विश्व ने प्रेम को अपना संपूर्ण साम्राज्य सौंप दिया।
(सत्ता प्रजा के शरीर को और प्रेम प्रजा के दिल को—अधीन करता है। नौकर भी सत्ता के बजाय प्रेम से काम ज्यादा देते हैं।)

६. **गलगचिया के गद्य चित्र—**

(क) सिझ्या हुंता ही मिनख उठ्यो' र दीयै रै मूंडै ऊपर तूली मेल दी। दीयो चट्ट-चट्ट कर' र बोल्यो—बड़ा

आदमी इयाँ के करै है ? मिनख हँस'र बोल्यो—अरे तूं हो के ? मनैं अंधेरै में सूझ्यो ही कोनी !

(ख) वायरै कयो- पीपल रा पानड़ां, मैं आऊँ जणां ही थांकै हताई हुवै के ? पानड़ा बोल्या-पूठ पाछै बात करणरी म्हांरी आदत कोनी !

(ग) तिरियां-मिरियां भरी तलाई रै दूबड़ी आ'र गलबाथ घालली । लेरां चिड़'र बोली—तनै कुण नूंती ही ? बीच में ही मींडको टर-टर कर'र बोल्यो—गैली, अपणायत हुवै जका नूंतै नै कां अडीकै नीं !

(घ) मैणबत्ती कयो—डोरा मैं थारैस्यूं कत्तो मोह राखूं हूं ? सीधी ही कालजै में ठौड़ दीन्ही है । डोरो बोल्यो—म्हांरी मरवण, जणां ही तिल-तिल बलूं हूं ।

(च) मिनख कयो—उलझ्योड़ी जेवड़ी, मैं तनैं सुलझा'र थारो कत्तो उपगार करूं हूं ! जेवड़ी बोली तूं किस्यो'क उपगारी है जको म्हारै स्यूं छानुं कोनी । कोई और नै उलझाणै खातर मन्नै सुलझातो हुसी !

(छ) पानड़ा कयो—डालां म्हे नहीं हूंता तो थे कत्ती अपरोगी लागती ? फूल कयो—पानडां, म्हे नहीं हूंता तो थे कत्ता अड़ोला लागता ? फल कयो—फूलां म्हे नहीं हूंता तो थांरो जलम ही अकारथ जातो ? फूल में छिप'र बैठ्यो बीज सगलां री बात सुण'र बोल्यो—भोलां, मैं नहीं हूंतो तो थे कोई कोनी हूंता ।

(ज) जगत रो दोष देखतां-देखतां आंख अघाईजी ही कोनी। एक दिन एक छोटो सो' क रावलियो आंख ने देखण नै आंख में बड़ग्यो। आंख रीस स्यूं लाल हुगी पण रावलियो क्यां रो डरै हो ? आखर में आंख रोवण लागगी जद लार छोड़ी।

(झ) दही पूछ्यो—झेरणा, रोजीनां मथ-मथ' र म्हारो माजनों बिगाड़ो, कीं थारै ही पल्ले पड़ै है' क नां ? झेरणो बोल्यो—कीड़्यां तो कालजो राख्यूं चूंटै ही है और' स कीं देख्यो नीं !

(ञ) हँसतो-हँसतो ही फूल अचाणचूको झड़ग्यो, पानड़ा बेली-ताप कर' र पूछ्यो—आचानड़ी मौत कुंनै स्यूं आई ? रूँख रो' र बोल्यो—कठीनै स्यूं बताऊँ ? को आंती रा खोज मंडै न को जांती रा !

(ट) तूंतड़ा बोल्या—देख्यो रै छाजला थारो न्याय ! म्हांनै तो फटक' र परै बगा दिया' र आं सगो छोड़णियां दगाबाज दाणां नै कालजियै री कोर कर' र राख्या है ? छाज लो कयो—डोफां, थां नै तो हूं बे कसूर मान' र ही छोड़्या है, आं (बिसवासघात्यां) ताईं तो चाकी' र ऊँखली त्यार है।

(ठ) कांटो बोल्यो—मनै काढ़णै ताईं तो तूं नागी सुई नै ही ले भाग्यो, कीं मिनखाचारो तो राख्यां कर ? मिनख कयो—म्हारो कांईं दोष ? नागै री रग नागै सूं ही दबै। सूरड़ा देव' र मनसूरड़ा पुजारा।

(ड) बाँस कयो—मिनख ! म्हारै फूल लागै न फल फरै, मनै किस्यै लालच जड़ा-मूल स्यूँ काटै है ? मिनख बोल्यो—गुणहीण री थोथी ऊँचाई म्हारै स्यूँ कोनी देखीजै ।

(ढ) कुम्हार काचै घड़े ने चाक स्यूं उतार' र न्यावड़े री उकलती भोभर में ल्या नाख्यो । घड़ो रो' र बोल्यो—विधाता आ काई करी ? कुम्हार हंस' र कयो—पणिहारी रै सिर पर इयां सीधो ही चढ़णो चावै हो के ?

(ण) नीमड़े रो रूंख मतीरै री बेल नें हँस' र कयो—म्हारी टोखी तो आभै नें नावड़ै है' र तू धूल पर ही पसर्योड़ी पड़ी है ? मतीरै री बेल बोली, पैली थारै फल कानी देख, पछै म्हारै स्यूँ बात करीजे !

—'गलगचिया' पुस्तक से

●

३२ कहावतें

१. 'कहावतों' को 'लोकोक्ति एवं किंवदन्ती' भी कहते हैं।

२. हरएक देश में अपनी-अपनी भाषा की कहावतें होती हैं।

३. कहावतों के अन्दर सीधे-सादे शब्दों में गंभीर ज्ञान निहित होता है।

४. कई पुरानी कहावतों के निर्देशों में आज कुछ परिवर्तन भी हुआ है जैसे—(१) दीकरी ने गाय, दोरे त्यां जाय। (२) दरजीनों दीकरो जीवे, त्यांसुधी सीवे। (३) सोटी वाजे घम-घम, विद्या आवे छम-छम, (४) स्पष्टवक्ता सुखी भवेत्।

३३ साहित्य

१. सहितस्य भावः साहित्यम्। —बाबू गुलाबराय

जो हित के साथ हो अथवा जिससे हित का संपादन हो, उसे **साहित्य** कहते हैं।

२. विचारों का प्रकाशितरूप ही साहित्य है। प्रकाशन हृदय से, स्पर्श से, मुस्कान से, वाणी से एवं मौन से होता है। —जमनालाल जैन

३. साहित्य दो प्रकार का होता है—सामयिक और शाश्वत।

४. वही काव्य और वही साहित्य चिरंजीवी रहेगा, जिसे लोग सुगमता से पाकर पचा सकेंगे। —महात्मा गांधी

५. तात्त्विक-साहित्य को सरस एवं सरल-भाषा में लिखना बहुत कठिन है। —धनमुनि

६. साहित्यसंगीतकलाविहीनः

साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः,

तृणं न खादन्नपि जीवमानस,

तद्भागधेयं परमं पशूनाम्।

—भर्तृहरि-नीतिशतक १२

जो मनुष्य साहित्य एवं संगीत की कला से शून्य है, वह बिना सींग-पूंछ का साक्षात् पशु है। जो तृण-घास खाये बिना ही

जीता है, वह पशुओं का सौभाग्य है अन्यथा उन बेचारों को खाने के लिए तृण कहां से मिलते !

७. अंधकार है वहां, जहां आदित्य नहीं है,
मुर्दा है वह देश, जहां साहित्य नहीं है।

—मैथिलीशरण गुप्त

८. साहित्यपाथोनिधिरत्नलब्ध्यै:,
केषां कवीनां न करप्रसार: ।
लभ्येत वा नेति निजस्य भाग्यं,
उद्योगिनो नो जहति प्रयत्नम् ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३९

साहित्य-रत्नाकर के रत्नों की प्राप्ति के लिए कौन कवि हाथ नहीं पसारते ? मिलना न मिलना तो भाग्य की बात है, लेकिन उद्यमी प्रयत्न करना नहीं छोड़ते ।

९ **इंग्लिश के कुछ प्रसिद्ध साहित्यकार—**

शेक्सपियर, मिल्टन, शैले, कीट्स्, वर्ड्सवर्थ, ब्राउनिंग, बर्नार्डशा, कोलरिज, थामसहार्डी, चार्ल्स डिक्कज, स्काट, आदि ।

—विश्वदर्पण

३४ इतिहास

१. इतिहासः पुरावृत्तम् । —हैमकोष० २।१७३

पुराने वृत्तान्त का नाम इतिहास है ।

२. वास्तव में इतिहास क्या है? परिवर्तन का एक लेखामात्र । —जवाहरलाल नेहरू

३. इतिहास केवल श्रुतकथाओं का लेखामात्र है ।

—कार्लाइल

४. मानव-इतिहास प्रधानरूप से विचारों का इतिहास है ।

—एच० जी० वेल्स

५. इतिहास-पुराणानि वेदानां पञ्चमो वेदः ।

इतिहास-पुराण पाँचवें वेद के तुल्य हैं ।

६. ऐतिहासिक घटनाएँ राष्ट्र की अमूल्यनिधि बनकर भावी-पीढ़ियों को युग-युग तक प्रेरणा और चेतना देती रहती हैं ।

७. जीवनकथाओं के अतिरिक्त और कोई सत्य—इतिहास नहीं है । —एमर्सन

८. संपूर्ण इतिहास असत्य है । —राबर्ट वालपोल

९. इतिहासज्ञ एक ऐसा भविष्यवक्ता है, जो भूत को देखता रहता है । —श्लीग्लैल

३५ संयोजक

१. अमन्त्रमक्षरं नास्ति, नास्ति मूलमनौषधम् ।
अयोग्य: पुरुषो नास्ति, योजकस्तत्र दुर्लभ: ॥

—शुक्रनीति

मन्त्र के बिना कोई अक्षर नहीं, औषधि के बिना कोई जड़ी नहीं और आदमी कोई अयोग्य नहीं, लेकिन उन्हें यथास्थान जोड़नेवाला व्यक्ति दुर्लभ है ।

२. काचं मणिं काञ्चनमेकसूत्रे,
ग्रथ्नासि बाले ! तव को विवेक: ।
महामति: पाणिनिरेकसूत्रे,
श्वानं युवानं मघवानमेति ॥

हे बाले ! कांच, मणि और कांचन को एक सूत्र में क्यों पिरो रही हो ! ऐसे एक विद्वान के पूछने पर उस स्त्री ने कहा—मुझे क्या टोक रहे हो ? महाबुद्धिमान पाणिनि ऋषि ने श्वान, युवान एवं मघवान को भी एक सूत्र में पिरो दिया ।

२. कनकभूषण संग्रहणोचितो,
यदि मणिस्त्रपुणि विनियुज्यते ।
न च विरौति न चापि न भासते,
भवति योजयितुर्वचनीयता ॥
—हितोपदेश २।७२

सोने के आभूषण में जोड़ने योग्य मणि यदि शीशा आदि धातु के आभूषण में लगाया जाय, तो न वह मधुर ध्वनि करता है और न हि सुशोभित होता है, प्रत्युत संयोजक की निन्दा होती है।

३६ लेखक

१. यदि तुम लेखक बनना चाहते हो तो लिखो !

—इपिक्टेटस

२. विचारो अधिक, बोलो अत्यल्प और लिखो उससे भी थोड़ा ।

—इटालियन लोकोक्ति

३. फालतू चीज मत लिखो ! जिसमें पूरा मन लगे, पूरा रस मिले और पूरी सूझ आये, वही लिखो ! लिखकर सम्पादक की दृष्टि से पढ़ो और कमियां सुधार दो ! कुछ दिन बाद फिर पढ़ो और नई बातें सूझें, उन्हें उसमें बढ़ादो ! पढ़ते समय सूझे कि यह कुछ नहीं है, तो उसे तुरत फाड़कर फेंक दो !

४. पंचमजार्ज ने २० पृष्ठ का एक भाषण लिखा । सेक्रेटरी उसे पढ़ता गया और जार्ज कम करता गया । शेष पांच पृष्ठ रखे ! जार्ज का वह भाषण सर्वोत्कृष्ट माना गया ।

५. जो लेखक व वक्ता अपने भावों को छोटा करना नहीं जानता वह कभी सफल नहीं होता ।

—एमर्सन

६. लिखते वे लोग हैं, जिनके अंदर कुछ दर्द है, अनुराग है, विचार है । जिन्होंने धन, भोग और विलास को लक्ष्य बना लिया, वे क्या लिखेंगे !

—प्रेमचन्द

७. महान् लेखक अपने पाठक का मित्र व शुभचिन्तक होता है। —मैकाले

८. लेखकों की मसी शहीदों के रक्तबिन्दुओं से अधिक पवित्र है। —हजरत मुहम्मद

६. लेखक वे चीजें प्रायः कम ही लिखते हैं, जो वे सोचते हैं। वे केवल वे ही चीजें लिखते हैं, जो दूसरे सोचते हैं या सोचते होंगे। —एल्बर्ट हु गार्ड

१०. विश्वविख्यात लेखक होमर और सुकरात बिल्कुल अनपढ़ थे। उनकी सभी रचनाएँ सुनकर अन्य लोगों ने लिखी थीं। —पंबन्ध पृष्ठ १६

११. ग्रन्थ को संक्षिप्त करनेवाले अनूठे लेखक—

सुप्रतिष्ठित नगर के राजा जितशत्रु की सभा में चार ऋषि आये (१) अत्रि—आयुर्वेद के ज्ञाता (२) बृहस्पति—नीतिशास्त्र के वेत्ता (३) कपिल—धर्मशास्त्र के विशेषज्ञ (४) पञ्चाल—अध्यात्मज्ञानी।

ये सब अपने अपने विषय के ग्रंथ बनाकर लाये थे। प्रत्येक ग्रंथ में एक-एक लाख श्लोक थे। समयाभाव के कारण राजा ने उन ग्रंथों को छोटे-रूप में बनाने को कहा। ऋषि उन्हें ज्यों-ज्यों संक्षिप्त करते गये, राजा अधिक संक्षिप्त करने की प्रार्थना करता गया। अन्त में वे ग्रंथ चार पद्यों के रूप में प्रस्तुत किये गये। पद्य निम्नलिखित थे—

(१) **जीर्णे भोजनमात्रेयः,**

हजम हो जाने के बाद भोजन करना—अत्रि ऋषि ने यह आयुर्वेद का सार कहा।

(२) **न्याय्या वृत्तिर्बृहस्पतिः,**

मनुष्य की प्रत्येक प्रवृत्ति न्याययुक्त हो—बृहस्पति ऋषि ने यह नीतिशास्त्र का तत्त्व बतलाया।

(३) **कपिलः प्राणिनां रक्षा,**

प्राणिमात्र की रक्षा करनी चाहिए—कपिल मुनि ने यह धर्मशास्त्र का निचोड़ सुनाया।

(४) **पाञ्चालः साम्यभावना।**

प्राणिमात्र पर समभाव रखना चाहिये—पञ्चालऋषि ने यह अध्यात्मवाद का मूल मन्त्र दिखलाया।

(राजा एवं राज्यसभा चकित)

१२. **इंग्लिश के प्रसिद्ध भारतीय लेखक—**

स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, सरोजिनी नायडू, चारुदत्त, जवाहरलाल नेहरू, हरीन्द्रनाथ चटर्जी, अरविन्द घोष, मुल्कराज आनन्द, डाक्टर राधाकृष्णन्।

—विश्वदर्पण

१३. **बुरे लेखक—**

(क) बुरे लेखक वे हैं, जो अपने असक्त विचारों की अभिव्यक्ति दूसरों की सुन्दरभाषा के माध्यम से करते हैं।

—जी० सी० लिचटेनबर्ग

(ख) अपनी पुस्तकों की प्रशंसा करनेवाले लेखक अपने बच्चों की प्रशंसा करनेवाली माता के समान है। **—विचारावली**

२७ लेखनी

१. लेखनी मस्तिष्क की जिह्वा है। — सर्वेन्टिस

२. दुनियां में दो तरह की ताकतें हैं—तलवार और कलम। आखिर तलवार हमेशा कलम से शिकस्त खाती है।
—नेपोलियन

३. रीडिंग मेक्स ए फुल मैन,
स्पीकिंग ए परफेक्ट मैन,
राइटिंग एन एग्जेक्ट मैन॥ —बेकन

अध्ययन मनुष्य को पूर्ण बनाता है, भाषण परिपूर्ण बनाता है और लेखन प्रामाणिक बनाता है।

४. लिखावट को देखकर व्यक्ति का स्वभाव जाना जाता है।
—आत्मविकास पृष्ठ ३०६

५. विज्ञान के अनुसार लिखते समय शरीर की पांच सौ नसें संयुक्त होती हैं। - नेपोलियन

६. लेखनी पुस्तिका रामा, परहस्ते गता गता।
कदाचित् पुनरायाति, नष्टा भ्रष्टा च चुम्बिता॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १६४

कलम-पुस्तक-स्त्री—ये तीनों चीजें, दूसरे के हाथों में जाने के बाद प्रायः चली ही जाती हैं। कदाचित् वापस आती हैं तो क्रमशः नष्ट, भ्रष्ट एवं चुंबित होकर आती हैं।

३८ अध्ययन

१. मस्तिष्क के लिए अध्ययन की उतनी ही आवश्यकता है। शरीर को जितनी व्यायाम की। —जे. एफ. एडीसन

२. प्रकृति की अपेक्षा अध्ययन द्वारा अधिक व्यक्ति महान् बने हैं। —सिसरो

३. इब्राहीमलिंकन, नर्मदाशंकर व टैगोर ने स्कूल में विशेष शिक्षा नहीं पाई। चार्ल्सडारविन सर विलियम स्काट, व न्यूटन स्कूलों में नंबरी भोंदू थे। नेपोलियन अपनी कक्षा के छात्रों में ४२ वें नंबर का था। इन सभी ने पुस्तकों के अध्ययन से ही योग्यता प्राप्त की थी।

४. नेपोलियन व सिकंदर लड़ाई में भी पुस्तकें पढ़ते रहते थे।

५. अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति रूजवेल्ट व्हाइटहाउस के आवासकाल में मध्याह्न तक आगंतुकों से पाँच-पाँच मिनट मिला करते थे। लेकिन पढ़ने के इतने प्रेमी थे कि एक व्यक्ति मिलकर जाता एवं जब तक दूसरा व्यक्ति मिलने के लिए नहीं आता, उस अत्यल्प-अन्तरकाल में वे पुस्तक पढ़ने लग जाते। इस प्रकार उन्होंने अनेकानेक पुस्तकें पढ़ डालीं।

६. चीन के अध्येता संचिंग नींद न आ जाय—अतः अपनी चोटी को एक लम्बी रस्सी द्वारा छत से बाँधकर पढ़ा करते थे। —हिन्दुस्तान, जनवरी ७, १९६८

७. पढ़ने से सस्ता कोई मनोरञ्जन नहीं और न कोई खुशी उतनी स्थायी। —लेडी मोंटेग्यू

८. अध्ययन हमें आनन्द और योग्यता देता है एवं अलंकृत करता है। —फ्रांसिस बेकन

९. मनुष्य को प्रतिदिन पढ़ना चाहिए, चाहे पन्द्रह मिनिट ही। प्रतिदिन १५ मिनट पढ़ा जाय एवं प्रतिमिनिट ३०० शब्द की रफ्तार से पढ़ा जाय तो प्रतिमास १ लाख ३५ हजार शब्दों की एक पुस्तक (लगभग २२५ पृष्ठ की पढ़ी जा सकती है। —धनमुनि

१०. तेज पढ़िये! इसका अभ्यास करानेवाली अमेरिका में ४०० प्रयोगशालायें हैं। विशेषज्ञों का कथन है कि साधारण व्यक्ति प्रतिमिनिट २५० शब्द पढ़ले तो अच्छा ही है, किन्तु ४०० शब्द प्रतिमिनिट पढ़ने से आनन्द आता है। बुद्धिमान को हजार से १८०० तक का अभ्यास करना चाहिए। —आपका व्यक्तित्व, पृष्ठ १६४

११. अध्ययनकाले व्यासङ्ग-पारिप्लवमन्यमनस्कतां च न भजेत्। —नीतिवाक्यामृत ११।१८

विद्याध्ययन के समय शारीरिक व मानसिक चपलता तथा चित्तवृत्ति को अन्यत्र ले जाना—ऐसे कार्य नहीं करने चाहिए।

३६ स्वाध्याय

१. सुष्ठु आ-मर्यादया अधीयते इति स्वाध्यायः ।

—स्थानांग ५।३।४६५ टीका

सत्शास्त्र को मर्यादासहित पढ़ने का नाम स्वाध्याय है ।

२. तपोहि स्वाध्यायः । —तैत्तिरीय आरण्यक २।१४

स्वाध्याय स्वयं एक तप है ।

३. सज्झायं कुव्वंतो, पंचेंदियसंवुडो तिगुत्तो य,
हवदि य एगग्गमणो, विणएण समाहिओ भिक्खू ।

—मूलाचार ५।२१३

पञ्चेन्द्रियसंवृत, त्रिगुप्तिगुप्त एवं विनयसमाधियुक्त मुनि स्वाध्याय करता हुआ एकाग्रमन हो जाता है ।

४. सज्झायसज्झाणरयस्स ताइणो,
अपावभावस्स तवे रयस्स ।
विसुज्झइ जंसि मलं पुरे कडं,
समीरियं रुप्पमलं व जोइणा ॥

—दशवैकालिक ८।६३

जैसे अग्नि द्वारा तपाये हुए सोने-चांदी का मैल दूर हो जाता है, वैसे ही स्वाध्याय-सद्ध्यान में लीन, षट्कायरक्षक, शुद्ध-अन्तःकरण एवं तपस्या में रक्त साधु का पूर्वसंचित कर्म-मैल नष्ट हो जाता है ।

५. नवि अत्थि नवि य होई, सज्झाएण समं तवोकम्मं ।

—चन्द्रप्रज्ञप्ति ८९

स्वाध्याय के समान न तो कोई तपस्या है और न हो भविष्य में हो सकती ।

६. बहुभवे संचियं खलु, सज्झाएण खणे खवेई ।

—चन्द्रप्रज्ञप्ति ९१

अनेक भावों में संचित दुष्कर्म को स्वाध्याय द्वारा व्यक्ति क्षण भर में खपा देता है ।

७. सज्झाए वा····सव्वदुक्खविमोक्खणे ।

—उत्तराध्ययन २६।१०

स्वाध्याय सब दुःखों से मुक्त करनेवाला है ।

८. सज्झाएणं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ ।

—उत्तराध्ययन २९।१८

स्वाध्याय से व्यक्ति ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करता है ।

९. स्वाध्यायादिष्टदेवता- संप्रयोगः ।

—पातंजलयोग दर्शन २।४४

स्वाध्याय से इष्टदेव का साक्षात्कार होता है ।

१०. स्वाध्याय के अभाव में अनेक आगम विच्छिन्न हो गये । और जो विद्यमान हैं, वह स्वाध्याय की ही देन है ।

११. स्वाध्याय के लिए तीन बातें आवश्यक हैं—
एकाग्रता, नियमितता और विषयोपरति—निर्विकारिता ।

१२. सज्झाए पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—वायणा, पडिपुच्छणा, परियट्टणा, अणुप्पेहा, धम्मकहा ।

—भगवती २५।७।८०२

स्वाध्याय पाँच प्रकार का है—(१) वाचना, (२) पृच्छना, (३) परिवर्तना (४) अनुप्रेक्षा (५) धर्मकथा।

१३. सज्झायरए य जे स भिक्खू। —दशवैकालिक १०।९

जो स्वाध्याय में अनुरक्त है, वह साधु है।

१४. स्वाध्यायान्मा प्रमदः! —तैत्तिरीयोपनिषद् १।११।१

स्वाध्याय करने में प्रमाद मत करो!

४० अनाध्याय

१. शिष्टागमनेऽनाध्यायः ।

शिष्ट पुरुषों के आने पर कुछ समय अध्ययन-अध्यापन बन्द कर देना चाहिए ।

२. पडवा पाटी भांजणी र बीज पाटी सांमणी ।

—राजस्थानी कहावत

३. अस्वाध्याय के समय शास्त्र न पढ़ना चाहिए । जैन-शास्त्रों में ३४ अस्वाध्याय कहे हैं ।

(देखो, ज्ञानप्रकाश पुञ्ज २, प्रश्न ३०)

★

४१ अधिक अध्ययन

१. अत्यधिक अध्ययन भी शरीर की क्लान्ति है।

—बाइबिल

२. किताबें बुद्धि का कैदखाना है। अधिक किताबें पढ़ लेने पर स्वतन्त्र विचार करने की शक्ति गायब हो जाती है।

३. अनन्तशास्त्रं बहुला च विद्या,
अल्पश्चकालो बहुविघ्नता च।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं,
हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥

—पञ्चतंत्र कथामुख ९

शास्त्र अनन्त हैं, विद्याएं अनेक हैं, समय थोड़ा है और विघ्न बहुत हैं। अतः हंस की तरह पानी से दूधवत् शास्त्रों का सार तत्त्व ग्रहण करके उसकी उपासना में लग जाना चाहिए।

४. ग्रन्थमभ्यस्य मेधावी, ज्ञान-विज्ञानतत्त्वतः।
पलालमिव धान्यार्थी, त्यजेद् ग्रंथमशेषतः ॥

—ब्रह्मबिन्दूपनिषद्

ग्रन्थ को पढ़कर बुद्धिमानों को उसके तत्त्व रूप धान्य को ले लेना चाहिए एवं शेष पलालरूप ग्रंथ को छोड़ देना चाहिए।

५. स्थाणुरयं भारहारः किलाभूद्,
अधीत्य वेदं न जानाति योऽर्थम्। —निरुक्त १।१८

जो वेद को पढ़कर उसके अर्थ को नहीं जानता, वह बोझ से लदे हुए स्थाणु-स्तंभ के समान है।

दूसरा कोष्ठक

१ पुस्तक-शास्त्र

१. यस्माद् रागद्वेषोद्धतचित्तान् समनुशास्ति सद्धर्मे ।
संत्रायते च दुःखा-च्छास्त्रमिति निरुच्यते सद्भिः ॥

—प्रशमरति १८७

राग-द्वेष से उद्धत चित्तवालों को धर्म में अनुशासित करता है एवं उन्हें दुःख से बचाता है, अतएव वह सत्पुरुषों द्वारा 'शास्त्र' कहलाता है (शास्त्र शब्द में दो धातुएं मिली हैं—शासु और त्रेङ्—इनका अर्थ क्रमशः अनुशासन करना और रक्षा करना है।)

२. श्रोत्रस्य भूषणं शास्त्रम् । —सुभाषितरत्नमंजूषा

शास्त्र सुनना ही कान का आभूषण है।

३. आलोचनागोचरे ह्यर्थे शास्त्रं तृतीयं लोचनं पुरुषाणाम् ।

—नीतिवाक्यामृत ५।३५

आलोचना योग्य पदार्थों को जानने के लिए शास्त्र मनुष्य का तीसरा नेत्र है।

४. अनेकसंशयोच्छेदि, परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं, यस्य नास्त्यन्ध एव सः ॥

—हितोपदेश-प्रास्ताविका १०

शास्त्र अनेक संशयों का नाश करनेवाला है, छिपे हुए अर्थ को

दिखानेवाला है एवं सारे जगत का नेत्र है, जिसके पास शास्त्र-रूप नेत्र नहीं है, वह अंधा है।

५. बुक्स आर अवर बेस्ट फ्रेन्ड्स। —टपर
किताबें हमारे सर्वश्रेष्ठ मित्र हैं।

६. पुस्तकें ज्ञानियों की समाधि हैं—किसी में ऋषभ, अरिष्टनेमि एवं महावीर हैं तो किसी में राम, कृष्ण और युधिष्ठिर। किसी में वाल्मीकि, सूरदास, तुलसीदास एवं कबीर हैं तो किसी में ईसा, मूसा, और हजरतमुहम्मद। उन्हें खोलते ही वे महापुरुष उठकर हमारे से बोलने लग जाते हैं। एक विचारक

७. मनुष्य ने जो कुछ किया, सोचा और पाया, वह सब पुस्तकों के जादूभरे पृष्ठों में सुरक्षित है। —कार्लाइल

८. विचारों के युद्ध में पुस्तकें ही अस्त्र हैं। —बर्नार्डशा

९. पुस्तक ही एकमात्र अमरत्व है। —रूपसकोयेट

१०. पुस्तकों का संकलन ही आज के युग का वास्तविक विद्यालय है। —कार्लाइल

११. बिना किताबों का कमरा बिना आत्मा का शरीर है।

१२. पुराना कोट पहनो और नई किताब खरीदो! —थोरो

१३. तुम्हारे पास दो रुपये हों तो एक की रोटी खरीदो और दूसरे से अच्छी पुस्तक। रोटी 'जीवन' देती है और अच्छी पुस्तक 'जीवनकला'। —जीवनसौरभ

१४. मैं नरक में उन पुस्तकों का स्वागत करूंगा, क्योंकि उनमें वह शक्ति है कि वे जहाँ होंगी, वहाँ अपने आप स्वर्ग बन जायगा। —महात्मा तिलक

२ पुस्तकों का चयन

१. आज पढ़ना सब जानते हैं, लेकिन क्या पढ़ना है? यह कोई नहीं जानता। —बर्नार्डशा

२. कुछ किताबें चखने के लिए हैं, कुछ निगल जाने के लिए हैं और कुछ थोड़ी सी-चबाये जाने एवं हजम किए जाने के लिए हैं। —बेकन

३. बुरी पुस्तकों का पढ़ना जहर के समान है। —टाल्सटाय

४. बुरी किताबों से बढ़कर कोई डाकू नहीं है। —इटली कहावत

५. अच्छी किताब वह है, जो आशा से खोली जाय और लाभ से बन्द की जाय। —एमो० ब्रॉसन अल्काट

६. जो पुस्तकें हमें अधिक विचारने को बाध्य करती हैं, वे ही हमारी सच्ची सहायक हैं। —ओडोर पार्कर

३

विभिन्न दर्शनों के धर्मग्रन्थ

जैनों के—मुख्य धर्म-ग्रन्थ आचाराङ्ग-सूत्रकृताङ्ग-समवायाङ्ग-भगवती आदि बारह अङ्ग हैं।

बौद्धों के—विनयपिटक-सुत्तपिटक-अभिधम्मपिटक, ऐसे तीन पिटक-ग्रन्थ हैं। प्रथम में साधुओं के नियम हैं, दूसरे में बौद्धसिद्धान्त हैं—इसके पांच निकाय (दीर्घ-निकाय आदि) हैं। तीसरे में धार्मिक क्रिया-कलापों का वर्णन है।

वैदिकों के—वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, श्रुति स्मृति महाभारत, रामायण एवं पुराण आदि हैं।

यहूदियों के—पुरानी बाइबल, (OLD TESTAMENT) के तोरा, नबी, नबिश्ते—ये तीनों भाग एवं तालमुद हैं।

ईसाइयों का—बाइबल, मरकूस, मत्ती, लूका तथा यूहन्ना के सुसमाचार—इन चार भागों में विभक्त है।

ताओ तथा कन्फ्यूसियस धर्मवाले चीनियों का—ताओ-तेहकिंग (ताओ उपनिषद्) है।

मुसलमानों के—कुरानशरीफ एवं हदीसशरीफ-बुखारी-मुस्लिम आदि हैं।

सिखों के—गुरुग्रंथसाहेब, जपुजीसाहेब, एवं सुखमणि-साहेब हैं।

पारसियों के—अवेस्ता हैं। इसके यस्न, वीस्परत्, यस्त, वेंदीदाद आदि अनेक भाग हैं।

आर्यसमाजियों का—मुख्यग्रंथ सत्यार्थप्रकाश है।

—विभिन्न धर्मों की धार्मिक पुस्तकों से

४ प्रामाणिक ग्रन्थ

१ प्रमाणं परमं श्रुतिः। —मनुस्मृति २।१३

धर्म को जानने की इच्छा करनेवालों के लिए श्रुति-वेद ही प्रमाण है।

२. तमेव सच्चं निस्संकं, जं जिणेहिं पवेइयं।

—आचारांग ५।५

वही बात सत्य एवं निःसंदेह है, जो 'जिन' भगवान् ने कही है।

३. देश-कालानुरूपं धर्मं कथयन्ति तीर्थंकराः।

—उत्तराध्ययन चूर्णि २३

तीर्थंकर देश और काल के अनुरूप धर्म का उपदेश करते हैं।

४. अत्थं भासंति अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं।
सासणस्स हियट्ठाए, तओ सुत्तं पवत्तइ॥

—आवश्यक-निर्युक्ति ९२

अरिहन्तदेव अर्थरूप वाणी बोलते हैं और निपुण गणधर उस वाणी को सूत्ररूप से गूंथते हैं। तत्पश्चात् शासन के हितार्थ सूत्र का प्रवर्तन होता है।

५. सुत्तं गणहररइयं, तहेव पत्तेयबुद्धरइयं च।
सुयकेवलिणा रइयं अभिन्नदसपुव्विणा रइयं॥

—दशाश्रुतस्कन्धवृत्ति

गणधर, प्रत्येकबुद्धि, श्रुतकेवली एवं अभिन्नदशपूर्वधारी का रचा हुआ ग्रन्थ 'सूत्र' कहलाता है।[1]

६. अत्थधरो तु पमाणं, तित्थगरमुहुग्गतो तु सो जम्हा।

—निशीथभाष्य २४

सूत्रधर (शब्दपाठी) की अपेक्षा अर्थधर (सूत्ररहस्य का ज्ञाता) को प्रमाण मानना चाहिए, क्योंकि अर्थ साक्षात् तीर्थंकरों की वाणी से निःसृत है।

७. अत्थेण य वंजिज्जइ, सुत्तं तम्हा उ सो बलवं।

—व्यवहारभाष्य ४।१०१

सूत्र (मूल शब्दपाठ) अर्थ (व्याख्या) से ही व्यक्त होता है अतः अर्थ सूत्र से बलवान (महत्त्वपूर्ण) है।

●

---

१ सूत्र के तीन अर्थ—सुत्त-जिससे अर्थ की सूचना की जाए। सूत्र अर्थात् सुप्त-सोए हुए की तरह, इसे टीका-भाष्यादि द्वारा जगाया जाता है। सूत्र अर्थात् धागा जिसमें अर्थरत्न पिरोये जाएँ।

◆ सूत्र के तीन भेद—संज्ञासूत्र, कारकसूत्र तथा प्रकरणसूत्र। संज्ञासूत्र में अर्थ का सामान्य निर्देश होता है। जैसे "जे छेए से सागारियं (मेहुणं) न सेवेइ"। कारकसूत्र में क्रियाकलाप का वर्णन होता है। जैसे—"अहाकम्मं भुंजमाणे आउवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ बंधति"। प्रकरणसूत्र में नमिप्रव्रज्या एवं केशी-गौतम आदिवत् प्रसंग वर्णित होते हैं।

५ युक्ति एवं न्याय से ग्रंथों की प्रामाणिकता

१. अपि पौरुषमादेयं, शास्त्रं चेद् युक्तिबोधकम् ।
अन्यस्त्वार्षमपि त्याज्यं, भाव्यं न्याय्यैकसेविना ॥

—योगवासिष्ठ २।१८।३

सामान्यपुरुष द्वारा कहा हुआ शास्त्र भी यदि युक्ति-युक्त सत्य का बोध देनेवाला हो तो वह ग्रहण कर लेना चाहिये। अन्य इसके विरुद्ध चाहे ऋषिप्रोक्त भी क्यों न हो, त्याज्य है।

२. पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु ।
युक्तिमद् वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः ॥

—हरिभद्र-अन्ययोग० ३८

न तो मुझे महावीर का पक्षपात है और न कपिल आदि मतों से द्वेष है। जिसका वचन युक्तिसंगत है, उसी के वचन को ग्रहण करना चाहिए।

३. केवलं शास्त्रमाश्रित्य, न कर्तव्यो विनिर्णयः,
युक्तिहीने विचारे तु, धर्महानिः प्रजायते ।

—बृहस्पति

केवल शास्त्र का आश्रय लेकर निर्णय नहीं कर लेना चाहिये,

साथ-साथ युक्ति भी आवश्यक है, क्योंकि युक्तिहीन विचारों से हानि होती है।

४. जुत्तं अजुत्तं जोगं न पमाणमिति बाहुकेण अरहता इसिणा बुइयं। —ऋषिभाषित १४

युक्त बात भी यदि अयुक्त विचार के साथ है तो वह प्रमाण-स्वरूप नहीं है—ऐसे बाहुक-आर्हतर्षि ने कहा है।

६ पुस्तक-प्रकाशन

१. युनेस्को के अनुसार दुनिया में प्रतिवर्ष लगभग चार लाख पुस्तकें छपती हैं, उसमें तीन-चौथाई पुस्तकें तो १२ देशों में छपती हैं और १७ प्रतिशत जापान को छोड़कर शेष एशियाई देशों में छपती हैं। भारत में १९६४-६५ में सिर्फ २१ हजार २६५ नई पुस्तकें छपीं।

—नवभारत टाइम्स, २९ नवम्बर, १९६५

२. विश्व में प्रथम पुस्तक १४४५ में छपी।

३. आकार की दृष्टि से सबसे बड़ी पुस्तक ब्रिटेन की 'एटलस' जो हॉलैण्ड में बनी, ५ फुट साढ़े ९ इंच ऊँची और ३ फुट ढाई इंच चौड़ी है।

४. विश्व में सबसे मोटी पुस्तक चीनी शब्दकोष है, इसके ५०२० भाग हैं। प्रत्येक भाग में १७० पृष्ठ हैं। यह सन् १६०० में छपा था।

—विश्वदर्पण, पृष्ठ २२-२३

५. सबसे छोटी पुस्तक एगरगेस्ट का 'कविता संग्रह ¼ वर्ग इंच के आकार की। —पैंबन्ध, पृष्ठ १९

६. सबसे मंहगी पुस्तक अमीर अफगानीस्तान को फारस के शाह की दी हुई 'कुरान' की प्रति है, वह सोने के पत्र में

३६६८ रत्नों से जड़ी हुई है। उसका मूल्य तीन हजार पौंड है, उसमें १६८ मोती, १३२ लालें, व १०६ हीरे हैं।

—नवभारत टाइम्स १ मई, १९५५

७. **संसार की सबसे बड़ी पुस्तक का प्रकाशन—**

कैम्ब्रिज, १२ मई (१९६८) दुनियां की आज तक की सबसे बड़ी किताब कैम्ब्रिजशायर के विस्बेच स्थित वाल्डिंग तथा मैनसैल लिमिटेड छापेखाने में छप रही है।

यह पुस्तक जब छप कर तैयार होगी तब इसका वजन होगा—डेढ़ टन! यह पुस्तक ६१० जिल्दों में होगी। प्रत्येक जिल्द होगी—७०४ पृष्ठों की। इस पुस्तक की दो हजार प्रतियां छप रही हैं। इन प्रतियों के छपने में दो साल लगेंगे।

यह पुस्तक है अमरीकी कांग्रेस के पुस्तकालयों की सूची। अमरीका के दो हजार पुस्तकालयों की तमाम पुस्तकों की सूची इसमें दी जाएगी।

ब्रिटिश-छापाखाना इस पुस्तक को छापने के लिए ५० लाख पौण्ड ले रहा है।

—नवभारतटाइम्स, १३ मई, १९६८

८. **समाचारपत्र—**

१९६६ के अन्त में भारत में कुल १०९३७ समाचारपत्र और नियतकालिक पत्र-पत्रिकाएँ थीं, जबकि १९६५ के अन्त में इनकी संख्या १००८५ थी। हिन्दी में सबसे अधिक १९३१ पत्र-पत्रिकाएँ थीं। इसके बाद अंग्रेजी में

१८४२, उर्दू में ७८५, बंगला में ५५० और गुजराती में ५१४ थीं।

दैनिक समाचार पत्र २० भाषाओं में और अन्य नियत-कालिक पत्र-पत्रिकाएँ ४६ भाषाओं में प्रकाशित हो रही थीं। दैनिक समाचारपत्र १५ प्रमुख भाषाओं के अलावा चीनी, पुर्तगाली, कोंकणी, लुशाई (मिजो) और मणिपुरी में छप रहे थे। नियतकालिक पत्र-पत्रिकाएँ भारतीय भाषाओं के अलावा आठ विदेशी भाषाओं, (नेपाली, अरबी, फ्रांसीसी, तिब्बती, बर्मी, इन्डोनेशियाई, पश्तो और फारसी) में भी छप रही थीं।

प्रारम्भिक अनुमानों के अनुसार १९६६ में समाचार पत्रों और पत्रिकाओं की कुल प्रचार-संख्या २ करोड़ १६ लाख ६० हजार थीं। दैनिक समाचारपत्रों में सबसे पुराना गुजराती का 'बम्बईसमाचार' है, जो १८२२ में स्थापित हुआ एवं हिन्दी का सबसे पुराना समाचार-पत्र कलकत्ते का 'विश्वमित्र' है जो १९१७ में स्थापित हुआ था। ---नवभारत टाइम्स, ९ अगस्त १९६७

प्रेसरजिस्ट्रार की रिपोर्ट के आधार पर

९. भारत में सर्वप्रथम समाचारपत्र २९ जनवरी सन् १७३१ को कलकत्ता में छपा था।

--विश्वदर्पण, पृष्ठ-३८

७ विश्व के प्रख्यात पुस्तकालय

१. क्षेत्र नाम एवं संख्या—

क्षेत्र	नाम	संख्या
१ मास्को (रूस)	—लेनिन लायब्रेरी	—१,१०,००,०००
२ लेनिनग्राड (रूस)	—साल्टिकोवश्चेड्रिन-पब्लिक लाइब्रेरी	—६०,००,०००
३ लन्दन (इंगलैंड)	—ब्रिटिश म्युजियम	—५०,००,०००
४ पेरिस (फ्रांस)	—निबिलियो थेक नेशनल	—५०,००,०००
५ न्यूयार्क-(संयुक्तराज्य अमरीका)	—न्यूयार्क पब्लिक लाइब्रेरी	—५०,००,०००
६ फ्लोरेस (संयुक्तराज्य अमरीका)	—बिबलियोटे का नेजिओनेल सेन्ट्रल	—३४,००,०००
७ नेपुल्स (इटली),	—बिब्रालियोटेक नेजिओनेल सेन्ट्रल	—१३,३०,०००
८ लिपजिग (जर्मनी)	—बुचेरी ड्यूसे	—२०,००,०००
९ वियेना (आस्ट्रिया)	—नेशनल बिबलियोथेक	—१६,००,०००

१० मैड्रिड (स्पेन)	—बिबिलयोरैका-नेशनल	—१५,००,०००
११ एम्सटरडम (नीदरलैण्ड)	—युनिवर्सिटी लाइब्रेरी	—१५,००,०००
१२ टोकियो (जापान)	—इम्पीरियल युनिवर्सिटी-लाइब्रेरी	—१०,००,०००

—हिन्दुस्तान, २१ जुलाई, १९६३ (रामरतनशर्मा)

८ अनुभव

१. पढ़ाई की अपेक्षा अनुभव का विशेष महत्त्व है। डॉक्टर-वैद्य, न्यायाधीश, वकील, ज्योतिषी, अध्यापक आदि वे ही अच्छा काम कर सकते हैं, जो अधिक अनुभवी होते हैं।

२. अनुभव की पाठशाला का अभ्यास किताब पढ़ने की अपेक्षा ज्यादा उपयोगी होता है। —महात्मा गांधी

३. ज्ञान अनुभव से अलग है, अनुभव के लिए चारित्र चाहिए। —समर्थगुरु-रामदास

४. जो मनुष्य न तो अपने अनुभव का लाभ उठाता और न दूसरों के अनुभव का, वह मूर्ख है।

—जवाहरलाल नेहरू

५. यदि दो घटनाओं की अनुभूति एक ही साथ हो तो जब भी एक प्रकार के संस्कार उत्तेजित होते हैं। दूसरे भी होने लगते हैं।—बचपन में एक कुमारी के कन्धों पर चोट लगी। दाई ने उससे सांत्वना के साथ कामजागृति की बातें भी कीं। फिर जब भी काम जागृत होता, कंधों में दर्द होने लग जाता।

- एक मनुष्य के पेट में रात को तीन बजे मरणान्त दर्द

हुआ। भय के संस्कारों से रात को तीन बजे नींद उड़ने लगी।

—सरलमनोविज्ञान

अनुभवी वैद्य-डॉक्टर-वकील आदि—

१. एक स्त्री के प्रसव-समय बच्चे का हाथ बाहर निकल आया। सारे चिन्तित हो गये। एक अनुभवी वैद्य ने उसके हाथ से बत्ती का स्पर्श किया, बस, बच्चे ने अपना हाथ वापस खींच लिया।

२. यूरोप में एक लड़की नींद के समय भयभीत हुआ करती थी। अनुभवीडाक्टर ने पूछा—क्या दीखता है ? लड़की ने कहा—सिंह। हंसकर डाक्टर ने समझाया कि वह तो मुझसे भी मिलने रोज आया करता है। तुम डरा मत करो, उसके साथ प्रेम किया करो ! लड़की रात को ज्योंही सोई, उसे सिंह दीखने लगा। वह उससे बाहें पसारकर प्रेम की चेष्टा करने लगी। फिर सदा के लिए उसका डरना बन्द हो गया।

३. सेठ का पेशाब बन्द हो गया। वैद्य ने तरबूज के छिलके घोटकर पिलाए, ठीक हो गया। पुनः बन्द हुआ। वही प्रयोग किया, लेकिन लाभ नहीं हुआ। अनुभवी ने गर्म करके पिलाने को कहा कारण सर्दी का मौसम था।

४. मावली (उदयपुर) में प्रभुलालजी वैद्य की पुत्री के पेट में असह्य दर्द था अतः खिला-पिलाकर उसे दवा से बेहोश करके सुलाना पड़ता था। वैद्यजी ने अन्त में वमन द्वारा उसके पेट से लाल सर्प-सर्पिणी निकाले।

५. दिल्ली में डॉक्टर जोशी ने तीन लाख रुपये लेकर अजमेर निवासी एक धनिक के मस्तक से जीवित मेंढक निकाला। रोगी विलायतों तक भटक आया था।

६. कोटले के नबाब ने पर्दे के अन्दर बिल्ली के पैर के डोरी बांधकर उसका एक किनारा यति जी को पकड़ाकर पूछा—देखिये बेगम साहिबा की नाड़ी क्या कहती है? यतिजी ने कहा—चूहा खाऊँ! चूहा खाऊँ!

७. सरपुरा गांव में हरजीमलजी गोलछा के यहां देशनोक-निवासी रमजान तेली ने चांदी की बाती से घी का दीप जलाकर उसके काजल से संग्रहणी तथा लाल मकोड़ों के रावलियों को उबालकर उस पानी से पेट का दर्द मिटा दिया। (रमजान छः मास पूर्व का खाया हुआ बता देता था।)

८. अबाढ़ा गांव में एक स्वामी आनन्दपुरी हैं। वह रोगी के हाथ में तिनका पकड़ा कर नाड़ी देखते हैं तथा उससे रोग का निदान करते हैं।

९. सिरसा निवासी श्रावक श्री भगवानदासजी पारख नाड़ी के आधार पर कितना दिन जीएगा—यह बता देते थे। श्री केवल मुनि की नाड़ी देखकर उन्होंने यह कहा था कि इनकी उत्कृष्ट स्थिति सोलह प्रहर है—बात बिल्कुल ठीक निकली।

१०. एक मुसाफिर के हाथ पर रेल की खिड़की गिर पड़ी।

साधारण चोट आयी। उसने रेल्वे कंपनी पर मुकदमा किया, कंपनी के वकील "फिरोजशाह मेहता" थे। मुसाफिर ने हाथ को पट्टा लगा रखा था एवं कहता था कि मेरा हाथ ऊँचा नहीं उठ रहा है। वकील ने मजिस्ट्रेट के सामने बहस करते हुए उसको धीरे से पूछा—भाई! चोट लगने से पहले तुम्हारा हाथ कैसे रहता था? मुसाफिर ने बातों में भूलकर कह दिया कि ऐसे रहता था! कहते-कहते हाथ भी उठा कर दिखा दिया। बस, केस हार गया।

११. एक व्यापारी कपड़े की भारी गठड़ी टाँड पर रख रहा था। भावीवश उसके हाथ ऊपर के ऊपर ही रह गये। अनेक उपचार किये गये, सब निष्फल हुये। विवाह के प्रसंग में स्त्रियों के बीच एक अनुभवी ने उसकी धोती की लांग खींची। बस, खींचते ही हाथ ठिकाने आ गये।

१२. एक बहन उठ नहीं सकती थी। एक अनुभवी ने उसके पास अचानक एक सांप छोड़ा, भयभीत बहन तत्काल उठ खड़ी हुई।

१३. एक धनिकपुत्र ने कहीं रुई का बहुत बड़ा ढेर देखा। पागल होकर कहने लगा—कौन धुनेगा? कौन कातेगा? कौन बुनेगा? अनुभवी योगी ने कहा—वह तो जल गई। दिमाग ठीक हो गया।

●

६ अनुभवहीन

१. सावण रै जायोड़े (गधे) नें हर्यो ही हर्यो दीसै तथा
सावण रै आंधे नें हर्यो ही हर्यो दीसै।

२. पढ़यांहां पण कढ़्या कोनी, भण्याहां पण गुण्या कोनी !

—राजस्थानी कहावतें

३. सन् १८८६ में जब बम्बई के अन्दर मरी का रोग चला था, तब बहुत से लोग भागकर गाँवों में चले गए थे। उस वक्त बड़ी-बड़ी सेठानियां भी पंखा हिलाती हुई सिगड़ियों के पास बैठती थीं और उनके जेंटिलमैन पति पाकशास्त्र का सहारा लेकर उनकी मदद करते थे। मूंग की दाल के बड़े बनाने की विधि में लिखा था कि आधा सेर मूंग की दाल को चार घंटा पानी में भिगो कर शिला पर पीसना। फिर उसमें नमक दो तोला, हींग दो बाल, धनिया-जीरा आदि का संभार चार तोला, इमली दो तोला, हल्दी आधा तोला, गुड़ दो तोला, कोथमीर-अदरख-हरी मिर्च आदि चार तोला, नारियल

का खमन एक तोला, गर्म मसाला एक तोला, मोण तीन तोला—इन सबमें एक पाव पानी मिलाकर फिर तेल उबलने पर दाल का बड़ा उसमें डालना।

सेठानी को विधि का पूरा ज्ञान न होने से सेठजी किताब देखकर बोल रहे थे एवं सेठानी डिब्बों में से सामान निकाल रही थीं। लेकिन तराजू न होने के कारण अनुमान से काम लिया गया।

नमक दो तोले के बदले चार तोला, हींग दो वाल की जगह सवा पाँच तोला एवं पानी पाव के बदले डेढ़ छटांक ही लिया गया। कोथमीर-मिर्च आदि मिले नहीं और मोण डालना भूल से रह गया। इधर तेल पूरा गर्म हो ही नहीं पाया था, सेठानी ने उतावल करके ज्योंही उसमें बड़े डाले, तेल की कड़ाही फेन से भर गई। अब बड़े तले गये या नहीं—यह जानना कठिन हो गया। नौकर ने कहा—इसमें नींबू का रस डालिये। सेठजी ने जल्दी से उठकर नींबू निचोए तो तेल के छींटे उछलकर सेठानी के मुंह पर लगे और "हाय रे जल गई-जल गई" पुकारती हुई वह दूर भाग गई। अब सेठ ने खुद बैठकर बड़े उतारे लेकिन किसकी ताकत कि वह उन्हें खा सके।

(यह सब अनुभवहीनता का ही परिणाम है।)

४. जाके पाँव न फटी बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई।

—हिन्दी कहावत

५. मैं पियां कूं ऐसी प्यारी,
पिया मैंनु देखे दिन च सौ-सौ बारी,
मैं हंसा पिया मुख मोड़े,
गया सियाला आया हाड़, पिया मैंनु भुल्या बारंबार।

—पंजाबी कहावत

६. **अद्भुत अनुभवी**—

एक आदमी इलाज करवाता-करवाता हार गया लेकिन सिर दर्द नहीं मिटा। एक भील ने जड़ी घिसकर दो-दो तीन-तीन बूंदें उसके कानों में डाली। थोड़ी देर बाद जोर से छींकें आईं और कई गोल-गोल कीड़े उसके नाक में से निकले। उसी दिन से सिर-दर्द मिट गया।

— मेवाड़ की घटना

- एक गर्भवती स्त्री को छींक आई और गर्भस्थित बच्चे की मुट्ठी खुली। वापस बन्द होते समय माता की एक खास नाड़ी मुट्ठी के बीच में आगई। माता को भयंकर पीड़ा होने लगी। एवं थोड़ी देर में वह बेहोश होगई। मृत समझकर घरवाले रोने-पीटने लगे। एक अनुभवी पड़ौसी ने सारा हाल सुना और उस स्त्री के कान के पास जाकर बंदूक का धड़ाका किया। बस डर से बच्चे की मुट्ठी पुनः खुली एवं नाड़ी मूलरूप में आ गई और स्त्री बच गई। —हाड़ौतीप्रदेश की घटना

★

परीक्षा

१. विरुद्धनानायुक्तिप्राबल्यदौर्बल्यावधारणाय प्रवर्तमानो- विचार: परीक्षा। —न्यायदीपिका, पृष्ठ ८

स्वविरुद्ध विविधयुक्तियों की प्रबलता की दुर्बलता का निर्णय करने के लिये जो विचार की प्रवृत्ति होती है उसका नाम परीक्षा है।

२. परीक्षा मनुष्य को मापने का एक थर्मामीटर है।

—धनमुनि

३. परीक्षा गुणों को अवगुण और सुन्दर को असुन्दर बनानेवाली वस्तु है। प्रेम इससे उल्टा है। —प्रेमचन्द

४. व्यक्ति के अन्दर भी उतना ही झांकना चाहिए, जितना उसके ऊपर। —चेस्टर फील्ड

५. रत्न बिना रगड़ा खाये नहीं चमकता, मनुष्य बिना परीक्षा के पूर्ण नहीं होता। —चीनी कहावत

११ परीक्षा आवश्यक

१. न लोगस्सेसणं चरे। —आचारांग ४।१

गड्डरी-प्रवाह दुनिया के अनुसार आचरण मत करो!

२ कोई कितना भी महान् क्यों न हो, अंधों की तरह उसके पीछे मत चलो। —विवेकानन्द

३. दमड़ीरी हांडी भी बजा'र लेणी।

—राजस्थानी कहावत

४. जौहरशनास देखलें, जौहर कमाल के।

कागज पर रख दिया, कलेजा निकाल के। —उर्दू शेर

५. हरदरख शिन्द तिला नेस्त। —पारसी कहावत

६. ऑल दैट गिल्टर्स इज नॉट गोल्ड। —अंग्रेजी कहावत

चमकनेवाला सब सोना नहीं होता। (अर्थ--५-६)

७. पीलु एटलु सोनु नहिं, ऊजलु एटलु दूध नहिं,

काला एटला भूत नहिं, जनोई एटला ब्राह्मण नहिं।

—गुजराती कहावत

८. काला-काला सब जामुन नहीं,

धोला-धोला सब दूध नहीं।

—हिन्दी कहावत

१२ परीक्षाविधि

१. यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते,
निर्घर्षण - च्छेदन - ताप-ताड़नैः ।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते,
त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ॥

—चाणक्यनीति ५।२

घसना, काटना, तपाना, पीटना—इन चारों प्रकार से जैसे सोने की परीक्षा की जाती है, वैसे ही दान, शील, गुण और कर्म (आचरण)—इन चारों से पुरुष की परीक्षा की जाती है ।

२. बालः पश्यति लिङ्गं, मध्यमबुद्धिर्विचारयति वृत्तम् ।
आगमतत्त्वं तु बुधः, परीक्षते सर्वयत्नेन ॥

—हरिभद्रसूरि

अज्ञानी मात्र बाह्यचिन्ह देखता है । मध्यमबुद्धिवाला आचरण पर विचार करता है और ज्ञानी व्यक्ति प्रयत्नों द्वारा सैद्धान्तिक तत्त्वों की परीक्षा करता है ।

३. राह् पया जानीए जां बाह् पया ।

४. लाल गोदड़ियां विच ही पछानें जांदे हन् ।

—पंजाबी कहावतें

• पूतां रा पग पालणें पिछाणी जे ।

—राजस्थानी कहावत

५. ज्ञानीपुरुष महात्माओं की पहचान आँख से ही कर लेते हैं, क्योंकि रुपयों की तरह हीरों-पन्नों को बजाने की जरूरत नहीं पड़ती, उनकी परीक्षा नजर से ही होती है।

६. सित्थेण दोणपागं, कविं च एक्काए गाहाए !

—अनुयोगद्वार ११६

एक कण से द्रोणभर पाक की और एक गाथा से कवि की परीक्षा हो जाती है।

७ संत शबद्दां परखिए, बिपत पड़े घर-नार।
सूरा तबही जाणिये, रण बाजे तलवार ॥

—राजस्थानी दोहा

८. जानीयात् प्रेषणे भृत्यान्, बान्धवान् व्यसनागमे।
मित्रं चापत्तिकाले तु, भार्यां च विभव - क्षये ॥

—चाणक्यनीति १।११

काम के लिए भेजते समय सेवकों की, दुःख आने पर स्वजनों की, आपत्ति के समय मित्रों की और धन-क्षय होने पर स्त्री की परीक्षा करनी चाहिये।

९. शस्त्र की पहचान धार से होती है, वस्त्र की पहचान तार से होती है। इन्सान का धैर्य कैसा है? इसकी पहचान जीत से नहीं, हार से होती है।

—स्वरसाधना से

१०. प्राचीनकाल में सत्य-शील की जांच के लिये कई प्रकार की परीक्षाएँ की जाती थीं। जैसे—(१) शीशी उबालकर

मिलाना, (२) अग्नि में तपाकर लोह का फाला या गोला हाथ या जीभ पर रखना, (३) खाली तुला पर चढ़ाना, (४) प्रज्वलित अग्निकुंड में डालना आदि-आदि। (इसको धीज भी कहा जाता था।)

* राज्य किसे दिया जाय—इस निर्णय के लिये पांच दिव्य (हथनी-घोड़ा-छत्र-चामर-कृष्णा गौ) प्रकट किये जाते थे। आजकल विधानसभा-लोकसभा आदि में शक्ति-परीक्षार्थ सदस्यों के मत लिये जाते हैं।

१३ परीक्षा का समय

१. हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ, विशुद्धिः श्यामिकापि वा ।

—रघुवंश १।१०

सोने की विशुद्धि एवं मिलावट का पता अग्नि में लगता है, ऐसे ही सत्पुरुषों की परीक्षा भी विपत्ति में ही होती है ।

२. अत्यधिक विरोधी परिस्थितियों में ही मनुष्य की परीक्षा होती है ।

—गांधी

३. मन्त्रिणां भिन्नसंधाने, भिषजां सन्निपातके ।
कर्मणि व्यज्यते प्रज्ञा, सुस्थे को वा न पण्डितः ॥

—हितोपदेश ३।१२१

संधि-भंग होने के समय मन्त्रियों की एवं सन्निपात के समय वैद्यों की बुद्धि का पता लगता है । स्वास्थ्य दशा में तो हरएक बुद्धिमान बन बैठता है ।

४. काकः कृष्णः पिकः कृष्णः, को भेदः पिक-काकयोः ।
वसन्तसमये प्राप्ते, काकः, काकः पिकः पिकः ॥

काग और कोकिल दोनों काले हैं । उनके भेद की परीक्षा वसन्त ऋतु आने पर हो जाती है ।

५. मणिर्लुंठति पादाग्रे, काचः शिरसि धार्यते ।
क्रय-विक्रयवेलायां, काचः काचो, मणिः मणिः ॥

— चाणक्यनीति १५।६

चाहे मणि पैरों की ठोकरों में और कांच मुकुट में लगा लिया जाय, किन्तु क्रय-विक्रय के समय परीक्षक की नजरों में कांच-कांच और मणि-मणि के रूप में प्रकट हो जाता है।

६. फूटी हांडी आवाज स्यूं पिछाणीजै ।

— राजस्थानी कहावत

१४ दर्शन

१. दर्शन का अर्थ ज्ञान, मनन, चिन्तन, विचार, कल्पना या गंभीरविषय हो सकता है, किन्तु वास्तविक अर्थ तत्त्व-ज्ञान है। —वैदिक विचार-विमर्शन-प्रकरण-५

२. दर्शन का सीधा अर्थ है देखना या दृष्टि। उसका तात्त्विक अर्थ है—सत्य का साक्षात्कार या सत्य का सामीप्य।
—आचार्य तुलसी

३. दर्शन दृष्टि है, धर्म उसको देखने का प्रयास। दर्शन साध्य का निश्चय है, धर्म उसको पाने का प्रयास। पर आज दर्शन का अर्थ आग्रह और धर्म का अर्थ रूढ़ि हो रहा है। —आचार्य तुलसी

४. सारा दर्शन दो शब्दों में है—जीवित रहने के लिए खाओ और अनावश्यक वस्तु से बचो।
—इपिक्टेट्स

५. कहां से ? किधर ? कैसे ? और क्यों ?—ये प्रश्न संपूर्ण दर्शन को आत्मसात् कर लेते हैं। —जूबर्ट

६. जो कुछ सत्य है, उसका अन्वेषण और जो उचित है, उसकी कार्य में परिणति—दर्शन के ये दो महान् ध्येय है। —वाल्टेयर

७. एक शताब्दी का दर्शन ही दूसरी शताब्दी का सामान्य-ज्ञान होता है। —हेनरीवार्ड बीचर

८. दर्शन के अभाव में धर्म केवल अंधविश्वास मात्र रह जाता है और धर्म का बहिष्कार करने पर दर्शन केवल शुष्क नास्तिकवाद बना रहता है। —विवेकानन्द

दर्शन से लाभ—

१. दंसणेण य सद्दहे। —उत्तराध्ययन २८-३५

जीव दर्शन से तत्त्वों की श्रद्धा करता है।

२. दर्शन जीवन के सभी भागों में उपयोगी है—कहीं वह उत्तेजक है, कहीं अवरोधक है और कहीं व्यापक है। वह सत्प्रवृत्ति का उत्तेजक है, असत्प्रवृत्ति का अवरोधक है। और सदाचार की दिशा में व्यापक है।

—आचार्य तुलसी

३. थोड़ी दार्शनिकता मनुष्य को नास्तिकता की ओर झुकाती है, किन्तु उसकी गहनता मुक्ति की ओर ले जाती है। —बेकन

दर्शन के भेद—

१. दुविहे दंसणे पण्णत्ते, तं जहा—सम्मदंसणे चेव, मिच्छा-दंसणे चेव। —स्थानांग-२।१

दर्शन दो प्रकार का कहा है—सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन।

२. बौद्धं नैयायिकं सांख्यं, जैनं वैशेषिकं तथा।
जैमनीयं च नामानि, दर्शनानामिमान्यहो!

—षड्दर्शनसमुच्चय ३

भारतीय आस्तिकदर्शन मुख्यतया छः हैं—(१) बौद्ध, (२)नैयायिक, (३)सांख्य, (४)जैन, (५)वैशेषिक, (६)जैमनीय (नास्तिकदर्शन इनमें नहीं गिना गया है)

दर्शनों का उद्भव--

१. बौद्धानामृजुसूत्रतो मतमभूद् वेदान्तिनां संग्रहात्,
सांख्यानां तत एव नैगमनयाद् योगश्च वैशेषिकः।
शब्दं ब्रह्मविदोऽपि शब्दनयतः सर्वैर्नयैर्गुम्फिता,
जैनी दृष्टिरितीह सारतरता प्रत्यक्षमुद्वीक्ष्यते।

ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा से बौद्ध, संग्रहनय से वेदान्त-सांख्य, नैगमनय से नैयायिक—वैशेषिक और शब्दनय की अपेक्षा से ब्रह्मविदों का शब्द-दर्शन उत्पन्न हुआ, किन्तु जैन-दर्शन सभी नयों से गुम्फित है अतः इसकी श्रेष्ठता प्रत्यक्ष देखी जा रही है।

दर्शनों के प्रमाण -

१. चार्वाकोऽध्यक्षमेकं सुगतकणभुजौ सानुमानं सशाब्दं,
तद्वैतं पारमर्षः सहितमुपमया तत्त्रयं चाक्षपादः।
अर्थापत्त्या प्रभाकृद् वदति तदखिलं मन्यते भट्ट एतत्,
साभावं द्वे प्रमाणे जिनपतिसमये स्पष्टतोऽस्पष्टतश्च॥

चार्वाक एक प्रत्यक्ष प्रमाण को मानते हैं। बौद्ध और सांख्य तीन प्रमाणों को स्वीकार करते हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द (आगम)। पारमर्षः—वैशेषिक दो प्रमाणों को ग्रहण करते हैं- प्रत्यक्ष और अनुमान। नैयायिकों ने पांच प्रमाण मान्य किये हैं—प्रत्यक्ष- अनुमान, शब्द, उपमा और अर्थापत्ति। भट्टानुयायि-जैमनीयों के पांच तो पूर्ववत् एवं एक अभाव प्रमाण—ऐसे छः प्रमाण हैं तथा जैनों के दो प्रमाण हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष।

दर्शनकार—

१. भारतीय दर्शनकारों में मुख्य जैसे—महावीर, बुद्ध, कपिल, गौतम, कणाद एवं जैमनीय आदि हुए हैं। वैसे ही चीन में लाओत्से और कन्फ्यूसियस, मिश्र में प्रोफिरी, रेमिसस, इंगलैंड में बेकन-जान, स्टुअर्ट, स्पेन्सर, बर्कले, ग्रीस में साक्रेटीस-प्लेटो-पीथागोरस; जर्मनी में कान्ट और फ्रांस में कामट् आदि माने गये हैं।

—वैदिकविचार-विमर्श, प्रकरण ५

२. दाढ़ी रखने मात्र से कोई दार्शनिक नहीं हो सकता।

—एक विचारक

●

१५ आस्तिक

१. अस्ति पुण्यं पापमिति मतिर्यस्य स आस्तिकः ।

—सिद्धान्तकौमुदी

पुन्य है, पाप है—ऐसी जिसकी मान्यता हो, वह आस्तिक है ।

२. अत्थि मे आया उववाइए……

से आयावादी, लोयावादी, कम्मवादी, किरियावादी ।

—आचारांग १।१।१

यह मेरी आत्मा औपपातिक है, कर्मानुसार पुनर्जन्म ग्रहण करती है—आत्मा के पुनर्जन्म-सम्बन्धी सिद्धान्त को स्वीकार करनेवाला ही वस्तुतः आत्मवादी, लोकवादी एवं क्रियावादी है अर्थात् आस्तिक है ।

१६

नास्तिक

१. नास्ति पुण्यं पापमिति मतिर्यस्य स नास्तिकः।

—सिद्धान्तकौमुदी

न पुण्य है, न पाप है—ऐसी जिसकी मान्यता हो, वह नास्तिक है।

२. नास्तिको वेदनिन्दकः। —मनुस्मृति २।११

वेद की निन्दा करनेवाला नास्तिक होता है। (यहाँ वेद का अर्थ ज्ञान समझना चाहिए।)

३. पुराने जमाने में ईश्वर पर विश्वास नहीं करनेवाला नास्तिक होता था और नये धर्म में स्वयं पर विश्वास न करनेवाला नास्तिक कहलाता है।

—विवेकानन्द

४. परमात्मा को न माने वह नास्तिक है, पर जो श्रद्धाहीन है, वह महानास्तिक है। —आचार्य तुलसी

५. वेदना और भय के समय कोई प्रकृति नास्तिक नहीं रहती। — एफ० मोर

६. रात्रि के समय एक नास्तिक ईश्वर में आधा विश्वास करने लग जाता है। —यंग

७. सर्व प्रथम मैं ईश्वर से भय मानता हूं और फिर नास्तिक से। —शेखसादी

८. नास्तिकता का मूल कारण आज की पढ़ाई—

पुरानी पढ़ाई में तीनों दशाओं का विचार होता था, आज केवल जागृतदशा का होता है। पुरानी पढ़ाई में दृश्यद्रष्टा दोनों का विचार था, आज मात्र दृश्य का है। पुरानी पढ़ाई में आत्मा और शरीर दोनों भिन्न समझाये जाते थे, आज आत्मा का लक्ष्य प्रायः नहीं है तथा पुरानी पढ़ाई में विनय की मुख्यता थी आज विनय की कमी होती जा रही है—इन सभी कारणों से नास्तिकता बढ़ रही है।

१७ नास्तिकों का कथन

१. नत्थि पुण्णे व पावे वा, नत्थि लोए इओवरे।
सरीरस्स विणासेणं, विणासो होइ देहिणो॥

—सूत्रकृतांग-१।१२

न पुण्य है, न पाप है और न इस दृश्यमान-लोक के अतिरिक्त कोई संसार है। शरीर का नाश होते ही जीव का नाश हो जाता है।

२. लोकायिता वदन्त्येवं, नास्ति जीवो न निर्वृतिः।
धर्माधर्मौ न विद्येते, न फलं पुण्यपापयोः।

—षड्दर्शन ८०

नास्तिक लोग कहते हैं कि न जीव है, न मोक्ष है, न धर्म है, न अधर्म है और न ही पुण्य-पाप का कुछ फल मिलता है।

४. यावज्जीवेत् सुखं जीवेद्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः।

नास्तिकों का कहना है कि जहाँ तक जीना हो, सुख से जीना चाहिये। ऋण करके भी घी पीते रहना चाहिए, क्योंकि भस्मीभूत यह शरीर दुबारा नहीं मिलता।

८

१. तहियाणं तु भावाणं, सब्भावे उवएसणं ।
भावेण सद्दहंतस्स सम्मत्तं तु वियाहियं ॥

—उत्तराध्ययन २८।१५

स्वयं या उपदेश से जीव-अजीव आदि सद्भावों में आन्तरिक हार्दिक श्रद्धा का होना सम्यक्त्व-सम्यग्दर्शन है ।

२. यथार्थतत्त्वश्रद्धा सम्यक्त्वम् ।

—जैनसिद्धान्तदीपिका ५।३

जीवादि तत्त्वों की यथार्थश्रद्धा करना सम्यग्दर्शन है ।

३. या देवे देवताबुद्धि र्गुरौ च गुरुतामतिः ।
धर्मे च धर्मधीः शुद्धा, सम्यक्श्रद्धानमुच्यते ॥

—योगशास्त्र २।२

वीतरागदेव में देव-बुद्धि का होना, सद्गुरु में गुरु-बुद्धि का होना और सच्चे धर्म में धर्म-बुद्धि का होना सच्ची श्रद्धा कहलाती है ।

४. अरिहंतो महदेवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ।
जिणपन्नत्तं तत्तं, इय सम्मत्तं मए गहियं ॥

—आवश्यक ४

अरिहन्त भगवान मेरे देव हैं, यावज्जीवन शुद्धसाधु मेरे गुरु हैं, जिनेश्वर देव का बताया हुआ तत्त्व मेरा धर्म है—यह सम्यक्त्व मैंने ग्रहण किया है ।

५. मिथ्यात्वत्यागतः शुद्धं, सम्यक्त्वं जायतेऽङ्गिनाम् ।

—अध्यात्मसार

मिथ्यात्व का त्याग करने से प्राणियों को शुद्ध सम्यक्त्व मिलता है।

सम्यक्त्व के भेद—

६. दुविहे सम्मदंसणे पण्णत्ते, तं जहा—निस्सगसम्मदंसणे चेव, अभिगमसम्मदंसणे चेव। —स्थानांग २।१।७०

सम्यग्दर्शन दो प्रकार का कहा है—स्वाभाविक-अपने-आप उत्पन्न होनेवाला और उपदेश से उत्पन्न होनेवाला।

७. तच्च स्यादौपशमिकं, सास्वादनमथापरम् ।
क्षायोपशमिकं वेद्यं, क्षायिकं चेति पञ्चधा ॥

सम्यक्त्व पांच प्रकार का है—(१) औपशमिक, (२) सास्वादन, (३) क्षायोपशमिक, (४) वेदक, (५) क्षायिक।

८. निसग्गुवएसरुई, आणारुई सुत्त—बीयरुईमेव ।
अभिगम-वित्थाररुई, किरिया-संखेव-धम्मरुई ॥

—उत्तराध्ययन २८।१६

सम्यक्त्व के दश भेद भी हैं—(१) निसर्गरुचि, (२) उपदेशरुचि (३) आज्ञारुचि, (४) सूत्ररुचि, (५) बीजरुचि, (६) अभिगम-रुचि, (७) विस्ताररुचि, (८) क्रियारुचि, (९) संक्षेपरुचि, (१०) धर्मरुचि।[१]

---

१ सम्यक्त्व के अन्य भेदों का वर्णन देखिए **'मोक्ष प्रकाश पुंज ८'** में।

९. सम्यक्त्व के लक्षण, भूषण, दूषण और विशुद्धि—

शमसंवेगनिर्वेदानुकम्पास्तिक्यलक्षणैः,
लक्षणैः पञ्चभिः सम्यक्, सम्यक्त्वमुपलक्ष्यते ।

—योगशास्त्र २।१५

(१) शम—क्रोध आदि कषाय की शान्ति, (२) संवेग—मोक्ष कीअभिलाषा, (३)निर्वेद--संसार से विरक्ति, (४)अनुकम्पा—दया, (५) आस्तिकता—आत्मा - कर्म - परलोक आदि पर विश्वास—ये पांच सम्यक्त्व के लक्षण हैं।

१०. परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वावि ।
वावन्नकुदंसणवज्जणा य, सम्मत्तसद्दहणा ॥

—उत्तराध्ययन २८।२८

(१) जीवादि पदार्थों का सही ज्ञान, (२) तत्त्वज्ञानी गुरुओं की सेवा, (३) शिथिलाचारी एवं (४) कुदर्शनियों से बचते रहना—ये ४ सम्यक्त्व के श्रद्धान हैं।

११. स्थैर्यं प्रभावना[1] भक्ति कौशलं जिनशासने ।
तीर्थसेवा च पञ्चापि, भूषणानि प्रचक्षते ॥

—योगशास्त्र २।१६

(१) धर्म में स्थिरता, (२) धर्म की प्रभावना—व्याख्यानादि द्वारा, (३) जिनशासन की भक्ति, (४)कुशलता—अज्ञानियों को धर्म समझाने में निपुणता, (५) चार तीर्थ की निरंतर सेवा—ये पांच सम्यक्त्व के भूषण हैं।

---

१. पावयणी धम्मकही, वाई निमित्तओ तवस्सी य ।
विज्जा सिद्धो य कवी, अट्ठेव पभावगा भणिया ॥

—योगशास्त्र १२।१६ टीका

१२. शङ्का काङ्‌क्षा विचिकित्सा मिथ्यादृष्टिप्रशंसनम्।
तत्संस्तवश्च पञ्चापि, सम्यक्त्वं दूषयन्त्यमी ॥
—योगशास्त्र २।१७

(१) शङ्का-तत्त्वों में संदेह, (२) कांक्षा-अन्यमत की अभिलाषा, (३) विचिकित्सा-धर्मफल में संदेह, (४) मिथ्यादृष्टि एवं व्रतभ्रष्टों की प्रशंसा, (५) उन का संस्तव, प्रेम अथवा संसर्ग—(ये पांच सम्यक्त्व को दूषित करनेवाले हैं—सम्यक्त्व के अतिचार-दोष हैं।)

१३. चउवीसत्थएणं दंसणविसोहिं जणयई।
—उत्तराध्ययन २९।९

चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति करने से आत्मा सम्यक्त्व को विशेषरूप से शुद्ध करता है।

१६ सम्यक्त्व की दुर्लभता

१. संबुज्झह किं न बुज्झह, संबोहि खलु पेच्च दुल्लहा ।
णो हु वणमंति राइओ, णो सुलभं पुणरावि जीवियं ॥

— सूत्रकृतांग २।१।१

समझो ! तुम क्यों नहीं समझते, आगे सद्बोधि सम्यक्त्व का मिलना कठिन है । बीती हुई रातें वापस नहीं आतीं । मनुष्य जन्म बार-बार सुलभ नहीं है ।

२. ईओ विद्धंसमाणस्स, पुणो संबोहि दुल्लहा ।

—सूत्रकृतांग १५।१८

यहां से भ्रष्ट हो जाने के बाद पुनः सम्यग्दर्शन का मिलना कठिन है ।

३. णो सुलभं बोहियं च आहियं । —सूत्रकृतांग २।३।१९

सम्यग् ज्ञान-दर्शनरूप बोधि का मिलना सुलभ नहीं है ।

४. मिच्छादंसणरत्ता, सनियाणा कण्हलेसमोगाढा ।
इय जे मरंति जीवा, तेसिं पुण दुल्लहा बोही ॥

—उत्तराध्ययन ३६।२५२

जो जीव मिथ्यादर्शन में अनुरक्त हैं, निदानसहित कर्म करनेवाले हैं और कृष्णलेश्या से युक्त हैं, उनको मृत्यु के पश्चात् अन्य जन्म में बोधि-सम्यक्त्व की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है ।

२० सम्यक्त्व से लाभ

१. दंसणसंपन्नयाएणं भवमिच्छत्तछेयणं करेई।

—उत्तराध्ययन २९।६०

सम्यग्दर्शन की संपन्नता से आत्मा भवभ्रमण के हेतुभूत मिथ्यात्व का छेदन करता है।

२. सम्यक्त्वेन हि युक्तस्य, ध्रुवं निर्वाणसंगमः।

—तत्त्वामृत

सम्यक्त्वयुक्त आत्मा को अवश्य मुक्ति प्राप्त होती है।

३. अंतोमुहुत्तमित्तं पि, फासियं हुज्ज जेहिं सम्मत्तं
तेसिं अवड्ढपुग्गल-परियट्टो चेव संसारो।

—धर्मसंग्रह अधिकार २।२१ टीका

जो जीव अन्तर्मुहूर्त मात्र भी सम्यक्त्व का स्पर्श कर लेते हैं, उन के केवल अर्द्ध पुद्गल—परावर्तन संसार शेष रह जाता है।

२१ सम्यक्त्व का महत्त्व

१. दंसणमूलो धम्मो । —दर्शनपाहुड, २।२

धर्म का मूल दर्शन (सम्यक् श्रद्धा) है ।

२. मूलं धर्मस्य सम्यक्त्वम् । —हिंगुल प्रकरण

सम्यक्त्व ही धर्म का मूल है ।

३. कनीनिकेव नेत्रस्य, कुसुमस्येव सौरभम् ।
सम्यक्त्वमुच्यते सारं, सर्वेषां धर्मकर्मणाम् ॥

आँख की कीकी एवं फूलों की सुरभिवत् सभी धर्मकर्मों का सार सम्यक्त्व है ।

४. सम्यक्त्व मूलानि महाफलानि । —धर्मपरीक्षा

यथाख्यातचारित्र - केवलज्ञानप्राप्ति आदि महाफलों का मूल सम्यक्त्व ही है ।

५. सम्यक्त्वसहिता एव, शुद्धा दानादिका क्रियाः ।
—अध्यात्मसार

दानादि क्रियाएँ सम्यक्त्व होने से ही पूर्णतया शुद्ध होती है ।

पात्रं चारित्रवित्तस्य, सम्यक्त्वं श्लाघ्यते न कैः ।
---- सूक्तमुक्तावलि

चारित्ररूप धन को रखने के लिये सम्यक्त्व ही एक पात्र है । उसकी प्रशंसा कौन नहीं करता !

६. नत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूणं, दंसणे उ भइयव्वं ।
सम्मत्तचरित्ताइं, जुगवं पुव्वं तु सम्मत्तं ।
नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विना न हुंति चरणगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं ।

—उत्तराध्ययन २८।२९-३०

सम्यक्त्व के बिना चारित्र न तो कभी था, न वर्तमान में है और न कभी होगा। सम्यक्त्व में चारित्र की भजना है। सम्यक्त्व चारित्र कदाचित् साथ उत्पन्न हों तो भी पहले सम्यक्त्व होगा और बाद में चारित्र होगा। ॥२९॥

सम्यक्त्व के बिना ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के बिना पाँच महाव्रत रूप चारित्र के (करण-चरण सप्ततिरूप—पिण्डविशुद्धि आदि) गुण प्राप्त नहीं होते। चारित्रगुणों के बिना कर्मों का मोक्ष नहीं होता और अमुक्त को निर्वाण—शाश्वतमुक्तिसुख नहीं मिलता। ॥३०॥

७. दंसणभट्ठो भट्ठो, दंसण भट्ठस्स नत्थि निव्वाणं ।
सिज्झंति चरणरहिया, दंसणरहिया न सिज्झंति ॥

—भक्तिपरिज्ञा गाथा ६६

सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट व्यक्ति वस्तुतः भ्रष्ट है, उसको मोक्ष नहीं मिलता। द्रव्यचारित्र-रहित सिद्ध हो जाते हैं, किन्तु दर्शनरहित नहीं होते।

८. नाणभट्ठा दंसणलूसिणो । —आचारांग ६।४

सम्यग्दर्शन से पतित सम्यग्ज्ञान से भी भ्रष्ट हो जाता है।

९. जीवविमुक्को सवओ, दंसणमुक्को य होइ चलसवओ ।
सवओ लोयअपुज्जो, लोउत्तरयम्मि चलसवओ ॥

—भावपाहुड १४३

जीव से रहित शरीर शव [मुर्दा-लाश] है, इसी प्रकार सम्यग्-दर्शन से रहित व्यक्ति चलता-फिरता शव है। शव लोक में अनादरणीय (उपेक्षित) होता है और वह चल-शव लोकोत्तर अर्थात् धर्मसाधना के क्षेत्र में अनादरणीय रहता है।

१०. दंसणहीणो ण वंदिव्वो। —दर्शनपाहुड २

जो दर्शन से हीन (सम्यक्श्रद्धा से रहित या पतित) है वह, वन्दनीय नहीं है।

२२ सम्यग्दृष्टि

१. भूयत्थमस्सिदो खलु, सम्माइट्ठी हवइ जीवो ।

—समयसार ११

जो भूतार्थ अर्थात् सत्यार्थ—शुद्धदृष्टि का अवलम्बन करता है, वही सम्यग्दृष्टि है ।

२. हेयाहेयं च तहा, जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी ।

—सुत्तपाहुड, ५

जो हेय और उपादेय को जानता है, वही वास्तव में सम्यग्दृष्टिवाला है ।

३. सम्मत्तदंसी न करेइ पावं । —आचारांग ३।२

सम्यग्दृष्टि परमार्थ को जानकर (आत्मध्यान में रमण करता हुआ) पाप नहीं करता ।

४. सम्यग्दर्शनसंपन्नः, कर्मभिर्न निबद्ध्यते ।
दर्शनेन विहीनस्तु, संसारं प्रतिपद्यते ।।

—मनुस्मृति ६।७४

सम्यग्दर्शन के बिना प्राणी संसार में भटकता है, किन्तु सम्यग्दृष्टि अज्ञान के कर्मों से लिप्त नहीं होता ।

५. सम्मदिट्ठी सया अमूढे । —दशवैकालिक १०।७

सम्यग्दृष्टि सदा अमूढ है, वह बाह्यवस्तु में मूर्छित नहीं होता ।

६. जे अणन्नदंसी से अणन्नारामे,
जे अणन्नारामे से अणन्नदंसी । —आचारांग २।६

जो अनन्यदर्शी-सम्यग्दृष्टि है, वह अनन्यआराम-परमार्थ में रमण करनेवाला है। जो अनन्यआरामवाला है, वह अनन्यदर्शी है। तत्त्व यह है कि सम्यग्दृष्टि जीव अद्वितीय आनन्द में रमण करता है।

७. जं कुणदि सम्मदिट्ठी तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं ।

—समयसार १९३

सम्यग्दृष्टि आत्मा जो कुछ भी करता है, वह उसके कर्मों की निर्जरा के लिए ही होता है।

८. खवेंति अप्पाणममोहदंसिणो । — दशवैकालिक ६।६२

तत्त्वदर्शी पुरुष अपने पूर्व कर्मों का क्षय कर डालते हैं।

९. सम्मदिट्ठी जीवो, गच्छई नियमं विमाणवासिसु ।
जइ न विगयसम्मत्तो, अह नवि बद्धाउयपुव्वं ॥

सम्यग्दृष्टिजीव निश्चित रूप से वैमानिकदेवों में जाता है, लेकिन शर्त यह है कि मरने के वक्त सम्यक्त्व विद्यमान हो और सम्यक्त्व के पूर्व आयुष्य का बंध न पड़ा हो!

१०. सम्यग्दृष्टि जीव तैरते हुए जहाज के समान समुद्र में नहीं डूबता। वह नटों के समान जय-पराजय में सुख-दुःख नहीं मानता। वह संसार को जेल समझता है न कि राजमहल। वह काली कोठरी में न होकर काँच की कोठरी में है, जिसमें स्व-पर को देख सकता है। वह खुद को घर का मालिक न मान कर मैनेजर मानता है। वह वस्तु को यथावस्थितरूप में देखता है, रोगी नेत्रवत् विकृतरूप में नहीं।

११. सम्यग्दृष्टि को इन १२ बोलों का चिन्तन करते रहना चाहिए—

मैं भव्य हूं या अभव्य, सम्यग्दृष्टि हूं या मिथ्यादृष्टि, परित्त हूं या अपरित्त, सुलभबोधि हूं या दुर्लभबोधि, चरम हूं या अचरम, आराधक हूं या विराधक।

—राजप्रश्नीय-सूर्याभाधिकार

१२. सम्यग्दृष्टि जीवों को ऐसा विश्वास कभी न करना चाहिए कि लोक-आलोक, जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव-संवर, वेदना-निर्जरा, बन्ध-मोक्ष, धर्म-अधर्म, क्रिया-अक्रिया, क्रोधादि-कषाय, राग-द्वेष, चतुर्गति-रूपसंसार, मोक्ष-अमोक्ष, एवं सिद्धस्थान नहीं हैं, किन्तु निश्चितरूप से मानना चाहिए कि उक्त वस्तुएँ विद्यमान हैं। —सूत्रकृतांग श्रु त २, अ० ५, गाथा १२ से आगे

१३. निस्संकिय-निक्कंखिय-निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य।
उववूह-थिरीकरणे, वच्छल्ल-पभावणे अट्ठ॥

—उत्तराध्ययन २८।३१

(१) सर्वज्ञ भगवान् की वाणी में संदेह नहीं करना, (२) असत्य मतों का चमत्कार देखकर उनकी अभिलाषा नहीं करना, (३) धर्मफल की प्राप्ति के विषय में शंका नहीं करना, (४) अनेक मत-मतान्तरों के विचार सुनकर दिग्मूढ़ न बनना अर्थात् अपनी सच्ची श्रद्धा से न डोलना, (५) गुणिजनों के गुणों की प्रशंसा करना और गुणी बनने का प्रयत्न करना, (६) धर्म से विचलित होते हुए प्राणी को समझाकर पुनः धर्म में स्थापित करना, (७) वीतरागभाषित धर्म का हित करना,

और स्वधर्मि-बन्धुओं के साथ धार्मिकप्रेम रखना एवं उन्हें धार्मिक सहायता देना, (८) सद्धर्म की प्रभावना करना ये आठ सम्यग्दृष्टि जीवों के आचारने योग्य कार्य हैं अर्थात् सम्यक्त्व के आठ आचार हैं।

१४. मिच्छत्तं परियाणामि, सम्मत्तं उवसंपज्जामि।

—आवश्यकनिर्युक्ति ४

मैं मिथ्यात्व का त्याग करता हूं एवं सम्यक्त्व को अंगीकार करता हूं।

१५. दिट्ठिमं दिट्ठि न लूसएज्जा। —सूत्रकृतांग १४।२५

सम्यग्दृष्टि को चाहिए कि वह अपनी दृष्टि को दूषित न करे।

१६. अवच्छलत्ते य दंसणे हाणी। —बृहत्कल्पभाष्य २७११

धार्मिकजनों में परस्पर वात्सल्यभाव की कमी होने पर सम्यग्दर्शन की हानि होती है।

१७. ते धन्ना सुकयत्था, ते सूरा तेवि पंडिया मणुया।
सम्मत्तं सिद्धियरं, सुविणे वि ण मइलियं जेहिं॥

जिन्होंने समस्त अर्थ को सिद्ध करनेवाले सम्यक्त्व को स्वप्न में भी मैला नहीं किया—वे मनुष्य धन्य हैं, कृतार्थ हैं, शूर हैं एवं वे ही पण्डित हैं।

१८. जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयणं जे करेंति भावेणं।
अमला असंकिलिट्ठा, ते होंति परित्तसंसारी॥

—उत्तराध्ययन ३६।२६१

जो व्यक्ति जिनवाणी में अनुरक्त हैं एवं उसके अनुसार सद्भावों से क्रिया करते हैं तथा जो मिथ्यात्वादि मल और रागादि क्लेश से रहित हैं, वे परित्तसंसारी होते हैं।

३० मिथ्यादर्शन-मिथ्यात्व

१. विपरीततत्त्वश्रद्धा मिथ्यात्वम् ।

—जैनसिद्धान्तदीपिका ४।१६

जीवादि तत्त्वों को विपरीत समझना मिथ्यात्व है ।

२. अदेवे देवबुद्धिर्या, गुरुधीरगुरावपि ।
अधर्मे धर्मबुद्धिश्च, मिथ्यात्वं तद्विपर्ययात् ।।

—योगशास्त्र २।३

राग-द्वेषयुक्त देव में भगवद्बुद्धि का होना, महाव्रतहीन गुरु में सद्गुरुबुद्धि का होना और अधर्म में धर्मबुद्धि का होना मिथ्यात्व है क्योंकि यह विपरीत धारणा है ।

३. मिथ्यात्वं परमो रोगो, मिथ्यात्वं परमं तमः ।
मिथ्यात्वं परमः शत्रु-र्मिथ्यात्वं परमं विषम् ।।

—योगशास्त्र

मिथ्यात्व बड़ा भारी रोग है, घोर अन्धकार है, उत्कृष्ट शत्रु है और हलाहल जहर है ।

४. मिच्छादिट्ठिं न सेवेय्य । —धम्मपद १६७

मनुष्य को मिथ्याधारणा से बचना चाहिए ।

५. नरस्य मिथ्यात्वयुतं न जीवितम् ।

मिथ्यात्वयुक्त जीना मनुष्य के लिए उचित नहीं है ।

★

३१ मिथ्यात्व के भेद

१. मिच्छादंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अभिग्गहिय-मिच्छादंसणे चेव, अणभिग्गहियमिच्छादंसणे चेव।

—**स्थानांग २।१**

मिथ्यादर्शन दो प्रकार का कहा है—आभिग्रहिक और अनाभिग्रहिक।

२. अभिग्गहियमणभिग्गहियं, तह अभिनिवेसियं चेव।
संसइयमणाभोगं, मिच्छत्तं पंचहा होई॥

—**योगशास्त्र २ श्लोक ३ के अन्तर में तथा धर्मसंग्रह अधि० २**

मिथ्यात्व पाँच प्रकार का होता है—

(१) आभिग्रहिक, (२) अनाभिग्रहिक, (३) आभिनिवेसिक, (४) सांशयिक, (५) अनाभोगिक।

(१) हमारे शास्त्रों में जो कुछ कहा है, वही सच्चा है बाकी सब झूठ है—ऐसा मानना **आभिग्रहिकमिथ्यात्व** है।

(२) सब देव, सब गुरु और सभी धर्म सच्चे हैं। विवेकशून्यता से ऐसा मानना **अनाभिग्रहिकमिथ्यात्व** है।

(३) अभिमानवश जान लेने पर भी जमालि की तरह झूठा आग्रह करना **अनाभिनिवेसिकमिथ्यात्व** है।

(४) देव-गुरु-धर्म में 'यह सच्चा है या नहृ सच्चा है' ऐसे शंकाशील रहना **सांशयिकमिथ्यात्व है**।

(५) एकेन्द्रियादि जीवों की तरह विशेषज्ञानरहित जीवों की अज्ञानदशा **अनाभोगिकमिथ्यात्व है**।

३. दसविहे मिच्छत्ते पण्णत्ते, तं जहा—
(१) अधम्मे धम्मसण्णा, (२) धम्मे अधम्मसण्णा,
(३) उमग्गे मग्गसण्णा, (४) मग्गे उम्मग्गसण्णा,
(५) अजीवेसु जीवसण्णा, (६) जीवेसु अजीवसण्णा,
(७) असाहुसु साहुसण्णा, (८) साहुसु असाहुसण्णा,
(९) अमुत्तेसु मुत्तसण्णा, (१०) मुत्तेसु अमुत्तसण्णा।

—**स्थानांग १०।७३४**

दस प्रकार का मिथ्यात्व कहा है—

(१) अधर्म को धर्म समझना, (२) धर्म को अधर्म समझना (३) अमुक्तिमार्ग को मुक्तिमार्ग समझना, (४) मुक्तिमार्ग को अमुक्ति मार्ग समझना, (५) आकाश-परमाणु आदि अजीवों को जीव समझना, (६) पृथ्वी-पानी आदि जीवों को अजीव समझना, (७) असाधुओं को साधु समझना, (८) साधुओं को असाधु समझना, (९) अमुक्तों को मुक्त समझना, (१०) मुक्तों को अमुक्त समझना।

४. दुविहं लोइयमिच्छं, देवगयं गुरुगयं मुणेयव्वं।
लोउत्तरं पि दुविहं, देवगयं गुरुगयं चेव।

—**दर्शनशुद्धि-प्रकरण ३५**

दो प्रकार का मिथ्यात्व है—लौकिक मिथ्यात्व और लोकोत्तर मिथ्यात्व ।

५. **लौकिकमिथ्यात्व दो तरह का है**—देवसम्बन्धी और गुरुसम्बन्धी ।

- **लोकोत्तरमिथ्यात्व भी दो प्रकार का है**—देवसम्बन्धी और गुरुसम्बन्धी ।

३२ मिथ्यादृष्टि-मिथ्यात्वी

१. मिच्छादिट्ठि समादाना, सत्ता गच्छंति दुग्गतिं ।

—धम्मपद ३१६

मिथ्यादृष्टि को धारण करनेवाले जीव दुर्गति में जाते हैं ।

२. मिच्छादिट्ठी अणारिया,....संसारमणुपरियट्टंति ।

—सूत्रकृतांग २।३२

मिथ्यादृष्टि अनार्य संसार में चक्र लगाते रहते हैं ।

३. मिच्छादंसणरत्ता, सनियाणा हु हिंसगा ।
इय जे मरंति जीवा, तेसिं पुण दुल्लहा बोही ॥

— उत्तराध्ययन ३६।२५५

जो जीव मिथ्यादर्शन में रक्त है, निदानसहित है एवं हिंसा में प्रवृत्त है -- ऐसी स्थिति में मरनेवालों को अग्रिम जन्म में सम्यक्त्व का मिलना कठिन है ।

४. कुप्पवयणपासंडी, सव्वे उम्मग्गपट्ठिया ।

—उत्तराध्ययन २३।६३

'कु' अर्थात् असत्य प्ररूपणा करनेवाले सभी पाखण्डी उन्मार्ग-गामी हैं ।

★

तीसरा कोष्ठक

१ तत्त्व

१. तत्त्वं पारमार्थिकं वस्तु । —जैनसिद्धान्तदीपिका २।१

पारमार्थिक वस्तु का नाम तत्त्व है ।

२. जिणपन्नत्तं तत्तं । —आवश्यक ४

जिनेश्वर देव प्ररूपित संवर-निर्जरारूप धर्म ही तत्त्व है ।

३. जीवाऽजीवा य बंधो य, पुण्णं पावासवो तहा ।
संवरो निज्जरा मोक्खो, संतेए तहिया नव ।
—उत्तराध्ययन २८।१४

(१) जीव, (२) अजीव, (३) बंध, (४) पुण्य, (५) पाप, (६) आस्रव (७) संवर, (८) निर्जरा, (९) मोक्ष—ये नव-तत्त्व सत् पदार्थ हैं ।

(स्थानांग ९।६६५ में भी नव सद्भाव पदार्थ कहे हैं)

४. अंतरतच्चं जीवो, बाहिरतच्चं हवंति सेसाणि ।
—कार्तिकेयानुप्रेक्षा २३४

जीव (आत्मा) अन्तस्तत्त्व है, बाकी सब द्रव्य बहिस्तत्त्व हैं ।

५. एकाग्रो हि बहिर्वृत्ति-निवृत्तस्तत्त्वमीप्सते ।

एकाग्र होकर बाह्यवृत्तियों से निवृत्त होनेवाला व्यक्ति ही तत्त्व (वस्तु के रहस्य) को पाता है ।

६. यथा-यथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम् ।
तथा-तथा न रोचन्ते, विषया: सुलभा अपि ।
यथा-तथा न रोचन्ते, विषया: सुलभा अपि ।
तथा-तथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम् ।

—इष्टोपदेश ३७-३८

बुद्धि में ज्यों-ज्यों उत्तमतत्त्व प्रवेश करता है त्यों-त्यों सुलभ होने पर भी इन्द्रियों के शब्दादि विषयों में रुचि नहीं रहती एवं ज्यों-ज्यों वह रुचि हटती है, त्यों-त्यों आत्मतत्त्व बुद्धि में प्रविष्ट होता है ।

७. गहे तत्त्व ज्ञानी पुरुष, बात विचारि-विचारि ।
मथनहारि तजि छाछ को, माखन लेत निकारि ।

८. समियंति मन्नमाणस्स समिया वा असमिया वा समिया होइ ।

—आचारांग ५।५

आत्मार्थिता से जिस तत्त्व को सत्य माना जाए, उसके लिए वह तत्त्व सत्य ही है, फिर चाहे वह सत्य हो या असत्य ।

२ द्रव्य

१. दव्वं सल्लक्खणयं, उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं ।

—पञ्चास्तिकाय १०

द्रव्य का लक्षण सत् है और वह सदा उत्पाद, व्यय एवं ध्रुवत्व-भाव से युक्त होता है ।

२. सव्वं चिय पइसमयं, उपज्जइ नासए य निच्चं च ।

—विशेषावश्यकभाष्य ५४४

विश्व का प्रत्येक पदार्थ प्रतिक्षण उत्पन्न भी होता है, नष्ट भी होता है और साथ ही नित्य भी रहता है ।

३. नो य उप्पज्जए असं । —सूत्रकृतांग १।१।१६

असत् कभी सत् नहीं होता ।

४. अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ,
नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ।

—भगवती १।३

अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है और नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है अर्थात् सत् सदा सत् ही रहता है और असत् सदा असत् ।

५. ण एवं भूतं वा भव्वं वा भविस्सति वा,
जं जीवा अजीवा भविस्संति ।
अजीवा वा जीवा भविस्संति ।। —स्थानाङ्ग १०

न ऐसा कभी हुआ है, न होता है और न कभी होगा ही कि जो चेतन हैं, वे कभी अचेतन (जड़) हो जाएँ, और जो जड़ अचेतन हैं, वे चेतन हो जाएँ !

६. गुणाणमासओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा ।
लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया भवे ॥

—उत्तराध्ययन २८।६

पुद्गल में वर्ण-गंध आदि की तरह जिसमें गुण अवश्य रहें, वह द्रव्य है । जीव में चेतनता की तरह जो सदा द्रव्य के साथ ही रहें, वे गुण हैं तथा जो एकत्व, पृथक्त्व, संख्या, आकार व संयोग-विभाग की तरह द्रव्य-गुण दोनों में रहें, वह पर्याय है ।

७. धर्माधर्माकाश-पुद्गल-जीवास्तिकाया द्रव्याणि,कालश्च ।

—जैनसिद्धान्तदीपिका १।१-२

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय—ये द्रव्य हैं, और काल भी द्रव्य है ।

८. द्रव्यं पर्यायवियुतं, पर्याया द्रव्यवर्जिताः ।
क्व कदा केन किं रूपा, दृष्टा मानेन केन च ॥

पर्याय के बिना द्रव्य और द्रव्यरहित पर्यायें कहां, कब, किसने, किस स्वरूप एवं प्रमाण से देखीं ? अर्थात् किसी भी तरह नहीं मिलतीं ।

९. निर्विशेषं हि सामान्यं, भवेत् खरविषाणवत् ।
सामान्यरहितत्वेन, विशेषास्तद्वदेव हि ॥

विशेष के बिना सामान्य गदहे के सींगवत् है और सामान्य-रहित विशेष भी वैसा ही है ।

८. गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो।
भायणं सव्वदव्वाणं, नहं ओगाहलक्खणं ॥९॥
वत्तणालक्खणो कालो, जीवो उवओगलक्खणो।
नाणेणं दंसणेणं च, सुहेण य दुहेण य ॥१०॥
सद्दन्धयार-उज्जोओ, पभा छायातवो वि य।
वन्न-रस-गन्ध-फासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥१२॥

—उत्तराध्ययन २८

गति में अपेक्षित सहायता करना धर्मद्रव्य का लक्षण है। ठहरने में अपेक्षित सहायता करना अधर्मद्रव्य का लक्षण है। आकाश सभी द्रव्यों का भाजन है। अवगाहन करना एवं दूसरे द्रव्यों को अवकाश देना उसका लक्षण है ॥९॥

पदार्थों के परिवर्तन में सहायक होना कालद्रव्य का लक्षण है। जीवद्रव्य का लक्षण उपयोग है तथा ज्ञान, दर्शन, सुख और दुःख से भी जीव पहचाना जाता है ॥१०॥

शब्द, अन्धकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श—ये पुद्गलद्रव्य के लक्षण हैं ॥१२॥

९. **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य**—

घटमौलिसुवर्णार्थी, नाशोत्पादस्थितिष्वलम्।
शोक-प्रमोद-माध्यस्थ्यं, जनो याति सहेतुकम् ॥५९॥
पयोव्रतो न दध्यत्ति, न पयोत्ति दधिव्रतः।
अगोरसव्रतो नोभे, तस्माद्वस्तु त्रयात्मकम् ॥६०॥

—आप्तमीमांसा

तीन मनुष्य सुनार की दूकान पर गए। एक को स्वर्णघट लेना था, दूसरे को स्वर्णमुकुट की आवश्यकता थी एवं तीसरा केवल

स्वर्ण का इच्छुक था। सुनार स्वर्णघट को तोड़कर स्वर्णमुकुट बना रहा था। उसे देखकर पहला शोकातुर हुआ, दूसरा खुश हुआ और तीसरा मध्यस्थ भाव में रहा। इसका कारण क्रमशः घट का नाश, मुकुट की उत्पत्ति और स्वर्ण की ध्रुवता थी ॥५९॥

दूध मात्र के व्रतवाला दही नहीं खाता, दही के व्रतवाला दूध नहीं पीता और गोरस के व्रतवाला दूध-दही दोनों नहीं खा सकता—इसलिए वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनों गुणों से युक्त है ॥६०॥

●

३ नय-प्रमाण

१. अर्थस्यानेकरूपस्य, धीः प्रमाणं तदंशधीः ।
नयो धर्मान्तरापेक्षी, दुर्णयोस्तन्निराकृतिः ॥

प्रमाण वस्तु के अनेक धर्मों का ग्रहण करता है और नय अन्य धर्मों की अपेक्षा रखता हुआ वस्तु के एक धर्म का ग्रहण करता है तथा दुर्नय एक धर्म का मण्डन करके दूसरे धर्मों का खण्डन करता है ।

२. सप्तभङ्ग्यात्मकं वाक्यं, प्रमाणं पूर्णबोध कृत् ।
स्यात्पदादपरोल्लेखि, वचोयत्त्वैकधर्मगम् ॥
—उपाध्याय यशोविजयजी

सप्तभंगीरूप वाक्य स्यात्पद से युक्त होने के कारण पूर्णबोध अर्थात् वस्तु के सब धर्मों का ज्ञान करता है अतः वह प्रमाण है और जो एक धर्म विशेष का उल्लेख करता है, वह नय है ।

३. सत्त नया पण्णत्ता, तं जहा—नैगमे, संगहे, ववहारे, उजुसुत्ते, सद्दे, समभिरूढे, एवंभूते । —स्थानांग ७।५५२

सात नय कहे हैं—(१) नैगम (२) संग्रह, (३) व्यवहार, (४) ऋजुसूत्र, (५) शब्द, (६) समभिरूढ, (७) एवंभूत ।

★

४ निश्चय-व्यवहार नय

१. जइ जिणमयं पवज्जह, ता मा ववहार-णिच्छए मुयह !
एकेण विणा छिज्जई, तित्थं अण्णेण उ ण तच्चं ।।

— समयसारवृत्ति, आगमसार

यदि तुम जिनमत स्वीकार करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय दोनों में से एक का भी त्याग न करो। व्यवहार के बिना तीर्थ एवं आचार का उच्छेद हो जाता है और निश्चय के बिना तत्त्व का ही नाश हो जाता है।

२. ववहारणयो भासदि, जीवो देहो य हवदि खलु इक्को।
ण दु णिच्छयस्स जीवो, देहो य कदापि एकट्ठो ।।

—समयसारवृत्ति २७

व्यवहार नय से जीव (आत्मा) और देह एक प्रतीत होते हैं, किन्तु निश्चयदृष्टि से दोनों भिन्न हैं, कदापि एक नहीं हैं।

३. तह ववहारेण विणा, परमत्थुवएसणमसक्कं।

— समयसारवृत्ति ८

व्यवहार (नय) के बिना परमार्थ (शुद्ध आत्मतत्त्व) का उपदेश करना अशक्य है।

४. कत्ता भोत्ता आदा, पोग्गलकम्मस्स होदि ववहारो।

—नियमसार १८

आत्मा पुद्गल-कर्मों का कर्ता और भोक्ता है, यह मात्र व्यवहार-दृष्टि है।

★

५. स्याद्वाद

१. जेण विणा लोगस्स वि, ववहारो सव्वहा ण णिघडइ।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो, णमो अणेगंत वायस्स॥

—सन्मतितर्कप्रकरण ३।७०

जिसके बिना विश्व का कोई भी व्यवहार सम्यग्रूप से घटित नहीं होता अतएव जो त्रिभुवन का एक मात्र गुरु (सत्यार्थ का उपदेशक है)—उस अनेकान्तवाद को मेरा नमस्कार है।

२. जैनों का स्याद्वाद, वेदों में दृष्टि-सृष्टिवाद एवं पाश्चात्य विद्वानों के मत में थिओरी ऑफ रिलेटीविटी कहलाता है।

३. न याऽसियावाय वियागरेज्जा। —सूत्रकृतांग १४।१९

साधक स्याद्वाद से रहित (निश्चयकारी) वचन न बोले।

४. विभज्जवायं च वियागरेज्जा,
संकेज्ज याऽसंकितभावभिक्खू। —सूत्रकृतांग १४।२२

यदि साधु किसी विषय में संदेहरहित हो तो भी उस विषय में अनाग्रही रहे तथा अनेकान्तवाद (भज्जवाद-नयवाद) का अवलंबन लेकर कथन करे!

५. भागे सिंहो नरो भागे, योऽर्थो भागद्वयात्मकः।
तमभागं विभागेन, नरसिंहः प्रचक्षते॥

—शास्त्रवार्तासमुच्चय

नृसिंहावतार शरीर के एक भाग में सिंह के समान है और दूसरे भाग में पुरुष के समान है। परस्पर दो विरुद्ध आकृतियों के धारण करने से यद्यपि वह भागरहित है, फिर भी विभाग करके लोग उसे "नरसिंह" कहते हैं।

८. उत्पन्नं दधिभावेन, नष्टं दुग्धतया पयः।
गोरसत्वात् स्थिरं जानन्, स्याद्वादद्विड् जनोऽपि कः ॥
—अध्यात्मोपनिषद्

गोरस में दही के भाव की उत्पत्ति है, दूध के भाव का नाश है और गोरसत्व की स्थिरता है, इस तत्त्व को समझनेवाला कोई भी व्यक्ति स्याद्वाद का विरोधी नहीं हो सकता।

देखिए—

◆ इच्छन् प्रधानं सत्त्वाद्य - विरुद्धैर्गुम्फितं गुणैः।
सांख्यः संख्यावतां मुख्यो, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ॥१॥
— वीतरागस्तोत्र

सांख्यदर्शन प्रधान-प्रकृति को सत्त्व आदि अनेक विरुद्ध गुणों से गुंफित मानता है। वह अनेकान्त (स्याद्वाद)-सिद्धान्त का खण्डन नहीं कर सकता।

◆ चित्रमेकमनेकं च, रूपं, प्रामाणिकं वदन्।
योगो वैशेषिको वापि, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ॥१॥
विज्ञानस्यैकमाकारं, नानाकारकरम्बितम्।
इच्छंस्तथागतः प्राज्ञो, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ॥२॥
जातिवाक्यात्मकं वस्तु, वदन्ननुभवोचितम्।
भट्टो वापि मुरारिर्वा, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ॥३॥

अबद्धं परमार्थेन, बद्धं च व्यवहारतः।
ब्रुवाणो ब्रह्मवेदान्ती, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ॥४॥
ब्रुवाणा भिन्न-भिन्नार्थान्, नयभेदव्यपेक्षया।
प्रतिक्षिपेयुर्नो वेदाः, स्याद्वादं सार्वतन्त्रिकम् ॥५॥

—अध्यात्मोपनिषद्

न्याय-वैशेषिक एक चित्र को अनेक रूपों में परिणत मानते हैं, वे 'अनेकान्त सिद्धान्त' का खण्डन नहीं कर सकते ।१॥
विज्ञानवादि-बौद्ध एक आकार को अनेक आकारों से करंबित (युक्त) मानते हैं, वे 'अनेकान्त सिद्धान्त' का खण्डन नहीं कर सकते ॥२॥
भट्ट और मुरारी के अनुयायी प्रत्येक वस्तु को सामान्य-विशेषात्मक मानते हैं, वे 'अनेकान्त सिद्धान्त का' खण्डन नहीं कर सकते ॥३॥
ब्रह्म वेदान्ती परमार्थ से ईश्वर को बद्ध और व्यवहार से उसको अबद्ध मानते हैं, वे अनेकान्त सिद्धान्त का खण्डन नहीं कर सकते ॥४॥
वेद भी स्याद्वाद का खण्डन नहीं कर सकते क्योंकि वे प्रत्येक अर्थ (विषय) को नय की अपेक्षा से भिन्न और अभिन्न दोनों मानते हैं। इस प्रकार प्रायः सभी मतावलम्बी स्याद्वाद को स्वीकार करते हैं ॥५॥

७. प्रश्नवशादेकस्मिन् वस्तुन्यविरोधेन स्याल्लाञ्छिता विधिनिषेधकल्पना सप्तभङ्गी।

— जैनसिद्धान्तदीपिका ६।१६

प्रश्नकर्ता के अनुरोध के एक वस्तु में अविरोधरूप से 'स्यात्' शब्दयुक्त जो विधि-निषेध की कल्पना की जाती है, उसे सप्तभंगी कहते हैं। सप्तभंगी के सात भांगे इस प्रकार हैं—

१ कथञ्चित् घट है, २ कथञ्चित् घट नहीं है, ३ कथंचित् घट है और कथंचित् घट नहीं है, ४ कथंचित् घट अवक्तव्य है, ५ घट कथंचित् है और कथंचित् अवक्तव्य है, ६ घट कथंचित् नहीं है और कथंचित् अवक्तव्य है, ७ घट कथंचित् है, कथंचित् नहीं है और कथंचित् अवक्तव्य है।

८. तुंगिया नगरी में ५०० शिष्यों युक्त स्थविर पधारे। श्रावक दर्शनार्थ गए एवं प्रश्न किया—

संजमेणं भंते किं फले ? तवे किं फले ? (भगवन् ! संयम का क्या फल है एवं तप का क्या फल है ?)

स्थविर 'संजमेणं अणण्हयफले, तवेणं वोदाणफले।

(संयम का फल अनास्रव होना है और तप का फल कर्मनिर्जरा है।)

श्रावक—यदि ऐसा ही है तो साधु देवलोक में किससे उत्पन्न होते हैं ?

कालियपुत्त ने कहा—पूर्वतप से,

मेहिल ने कहा—पूर्वसंयम से,

आनन्द ने कहा—पूर्वकर्म शेष रह जाने से,

काश्यप ने कहा—द्रव्यादि विषय के संग से।

भिन्न-भिन्न उत्तर सुनकर श्रावक कुछ सोच ही रहे थे कि ज्येष्ठस्थविर ने कहा—पूर्वसंयम, पूर्वतप, पूर्वकर्म और संग, स्वर्ग में उत्पन्न होने के ये चारों ही कारण हैं, अतः चारों मुनियों का उत्तर सत्य है। मात्र अपेक्षा-भेद है। सुनकर श्रावक संतुष्ट हुए।

उपरोक्त चर्चा सुनकर गौतम ने महावीर प्रभु से पूछा, उन्होंने भी यही उत्तर दिया।

(आज यदि भिन्न-भिन्न संप्रदाय एक-दूसरे का खण्डन न करके स्याद्वाददृष्टि से चिन्तन करने लग जायें तो वैर-विरोध नष्ट होकर एकता हो जाय।)

—भगवती सूत्र २।५ के आधार पर

- तीन देवों के नामांकित द्वारों से तीन मनुष्य मंदिर में गए—ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश का पृथक्-पृथक् पक्ष लेकर वाद-विवाद करने लगे। अन्त में पुजारी द्वारा (शिल्पी की कारीगरी से ही तीन रूप दीखते हैं, वस्तुतः एक ही मूर्ति है।) समझाये जाने पर शान्त हुए।
- रेल में भिन्न-भिन्न देशों के यात्री अंगूर खाना चाहते थे, लेकिन भाषा भिन्न होने से अरबी उसे एनब, तुर्की उजम, अंग्रेजी ग्रेप्स और हिन्दुस्तानी अंगूर नाम से पुकार रहा था। स्टेशन आया और सबने एक ही वस्तु (अंगूर) खाई। वास्तव में भाषा की अपेक्षा से भिन्नता थी।

६ उत्सर्ग-अपवाद

१. जावइया उस्सग्गा, तावइया चेव हुंति अववाया।
जावइया अववाया, उस्सग्गा तत्तिया चेव ॥

—बृहत्कल्पभाष्य ३२२

जितने उत्सर्ग (निषेधवचन) हैं, उतने ही उनके अपवाद (विधि-वचन) भी हैं। और जितने अपवाद हैं, उतने उत्सर्ग भी हैं।

२. उस्सग्गेण णिसिद्धाणि, जाणि दव्वाणि संथरे मुणिणो।
कारणजाए जाते, सव्वाणि वि ताणि कप्पंति ॥

—निशीथभाष्य ५२४५ तथा बृहत्कल्पभाष्य ३३२७

उत्सर्गमार्ग में समर्थ मुनि को जिन बातों का निषेध किया गया है, विशेष कारण होने पर अपवादमार्ग में वे सब कर्तव्यरूप में विहित हैं।

३. णवि किंचि अणुण्णायं, पडिसिद्धं वावि जिणवरिंदेहिं।
एसा तेसिं आणा, कज्जे सच्चेण होयव्वं ॥

—निशीथभाष्य ५२४८ तथा बृहत्कल्पभाष्य ३३३०

जिनेश्वरदेव ने न किसी कार्य की एकान्त अनुज्ञा दी है और न एकान्त निषेध ही किया है। उनकी आज्ञा यही है कि साधक जो भी करे, वह सच्चाई, प्रामाणिकता के साथ करे।

११

४. निक्कारणंमि दोसा, पडिबद्धे कारणंमि णिद्दोसा ।

—निशीथभाष्य ५२८४

बिना विशिष्ट प्रयोजन के अपवाद दोषरूप है, किन्तु विशिष्ट प्रयोजन की सिद्धि के लिए वही निर्दोष है ।

५. एगंतेण निसेहो, जोगेसु न देसिओ विही वाऽवि ।
दलिअं पप्प निसेहो, होज्ज विही वा जहा रोगे ॥

—ओघनिर्युक्ति ५५

जिनशासन में एकान्तरूप से किसी भी क्रिया का न तो निषेध है, और न विधान ही है । परिस्थिति को देखकर ही उनका निषेध या विधान किया जाता है, जैसा कि रोग में में चिकित्सा के लिए ।

●

७

सिद्धान्त

१. अनुभव के आधार पर ही सिद्धान्त बनते हैं।

—नाथजी

२. सिद्धान्त सड़क है, व्यक्ति उस पर चलनेवाला है। सिद्धान्त बड़ा क्यों? रास्ता है। व्यक्ति बड़ा क्यों? बतानेवाला है। हीरा बड़ा क्यों? रत्न है! जौहरी बड़ा क्यों? परीक्षक है। ऐसे ही गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र और राजा-प्रजा के विषय में भी समझना चाहिये।

३. जं मयं सव्वसाहूणं, तं मयं सल्लकत्तणं।

—सूत्रकृतांग १५।२४

जो सिद्धान्त सभी साधुओं द्वारा मान्य है—वही माया, निदान एवं मिथ्यादर्शनरूप शल्य को छेदनेवाला है।

४. महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त लचीले होने आवश्यक हैं।

—लिंकन

५. वास्तविकता के द्वारा ही सिद्धांत कार्यरूप में परिणत हो पाते हैं।

—कूपर

६. मनुष्य की सच्चाई का एकमात्र प्रमाण यह है कि वह अपने सिद्धान्त पर अपना सब कुछ स्वाहा करने को तत्पर रहे।

—लावेल

७. कोई भी मनुष्य सत्रहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में एक साथ नहीं रह सकता।

—कर्लाइल

८. भुङ्क्ते न केवली न स्त्री-मोक्षमाहु दिगम्बराः ।

—विवेक-विलास

दिगम्बर जैन कहते हैं कि केवलज्ञानी भोजन नहीं करते और स्त्री को मोक्ष नहीं मिलता ।

९. मैं मानता हूं धर्मशास्त्रों में,

ऊंचे-ऊंचे और अच्छे विचार हैं।

धार्मिक लोग पूजा-पाठ और-

क्रियाकाण्डों में वैसे बरकरार हैं।

लेकिन बात तो सारी-

इसी सवाल पर आकर अटक जाती है,

कि उन सिद्धान्तों पर कुर्बान-

होने के लिए कौन-कौन तैयार हैं ?

—'खुले आकाश' से

१०. वेद पौरुषेय—

ताल्वादिजन्मा ननु वर्णवर्गो,

वर्णात्मको वेद इति स्फुटं च ।

पुंसश्च ताल्वादि ततः कथंस्या-

दपौरुषेयोऽयमिति प्रतीतिः ।।

वर्णों का समूह तालु आदि से उत्पन्न होता है। वेद वर्णात्मक है—यह स्पष्ट है। तालु आदि पुरुष के होते हैं फिर वेद अपौरुषेय (पुरुष के बगैर उत्पन्न होनेवाले) कैसे कहे जा सकते हैं ?

८

चारित्र

१. चयरित्तकरं चारित्तं होइ। —उत्तराध्ययन २८।३३

कर्मों के चय-राशि को रिक्त करने के कारण **चारित्र** कहलाता है।

२. चर्यते-प्राप्यते मोक्षोऽनेनेति चारित्रम्।

—उत्तराध्ययन २८।२ टीका

इसके द्वारा मोक्ष प्राप्त किया जाता है अत: यह **चारित्र** कहलाता है।

३. चरिताऽर्जवं चारित्रम्। —योगसार

ग्रहण की हुई प्रतिज्ञा को शुद्ध पालना ही **चारित्र** है।

४. चारित्तं समभावो। —पञ्चास्तिकाय १०७

समभाव ही **चारित्र** है।

५. सद्धाविरियसाधनं चारित्तं। —विसुद्धिमग्ग-१।२६

श्रद्धा और वीर्य (शक्ति) का साधन (स्रोत) **चारित्र** है।

६. तत्त्वरुचि: सम्यक्त्वं, तत्त्वप्रख्यापकं भवेज् ज्ञानम्।
पापक्रियानिवृत्ति - श्चारित्रमुक्तं जिनेन्द्रेण॥

—ज्ञानार्णव, पृष्ठ ६१

जिनेन्द्र भगवान ने तत्त्वविषयक रुचि को **सम्यग्दर्शन**, तत्त्वविषयक विशेषज्ञान को **सम्यग्ज्ञान** और पापमय क्रिया से निवृत्ति को **सम्यक्चारित्र** कहा है।

७. सर्वसावद्ययोगानां, त्यागश्चारित्रमिष्यते ।

—योगशास्त्र

सब प्रकार के सावद्ययोगों का त्याग करना ही चारित्र है ।

८. चारित्र दो प्रकार से बनता है—आपकी विचारधारा से और आपके अपने समय बिताने के ढंग से ।

—ओ० हावेज

९. चारित्रनिर्माण उससे होता है, जिसके लिए आप दृढ़ता-पूर्वक खड़े होते हैं। सम्मान उससे मिलता है, जिसके लिए आप गिर पड़ते हैं । —बूलकोट

१०. चारित्र सम्बन्धी उन्नति का अर्थ है खुदी से खुदी को मिटाने की तरफ बढ़ना ! —हार्डले

११. चारित्र संग (साथ) में विकसित होता है और बुद्धि एकान्त में । —गेटे

१२. प्रत्येक मनुष्य के चरित्र के तीनरूप होते हैं—एक तो जैसा कि वह स्वयं समझता है, दूसरा जैसा कि उसे दूसरे व्यक्ति समझते हैं और तीसरा जैसा कि वह वास्तव में है । —अल्फान्सीकर

१३. चारित्र के लिए उतनी कोई घातक चीज नहीं, जितने अपूर्ण कार्य । —ड० ला० जार्ज

१४. चारित्र एक श्वेत कागज है जो एक बार कलंकित होने पर पूर्ववत् उज्ज्वल होना कठिन है ।

९

चारित्र का महत्त्व

१. किमुत्तमं ? सच्चरित्रं यदस्ति । —शंकर-प्रश्नोत्तरी

क्या वस्तु उत्तम है ? जो सच्चरित्र है, वही ।

२. बुद्धि से चारित्र बढ़कर है । —इमर्सन

३. चारित्र एक ऐसा हीरा है जो अन्य सभी पाषाणखंडों को काट डालता है । —बार्टल

४. जिनेश्वरैस्तद् गदितं चरित्रं, समस्तकर्मक्षयहेतुभूतम् ।
—सुभाषितरत्नसन्दोह

चारित्र समस्त कर्मों का क्षय करनेवाला है—ऐसा जिनेश्वर देवों ने कहा है ।

५. चारित्र वृक्ष है और प्रतिष्ठा छाया ।

—इब्राहिम लिंकन

६. जीवन का लक्ष्य सुख नहीं, चारित्र है । —बीचर

७. चारित्तं खलु धम्मो, धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो ।
मोहक्खोहविहीणो, परिणामो अप्पणो हु समो ।।
—प्रवचनसार १।७

चारित्र ही वास्तव में धर्म है, और जो धर्म है, वह समत्व है । मोह और क्षोभ से रहित आत्मा का अपना शुद्ध परिणमन ही समत्व है ।

८. मनुष्य की सफलता-असफलता का द्योतक चारित्र ही है यदि वह सफल है तो जीवन सफल है अन्यथा असफल।

—रोमो

६. कुलीनमकुलीनं वा, वीरं पुरुषमानिनम्,
चारित्रमेव व्याख्याति, शुचिं वा यदि वा शुचिम्।

—वाल्मीकिरामायण २।१०६।४

मनुष्य के चारित्र (आचरण) से ही पता चलता है कि यह कुलीन है या कुलहीन, सच्चा वीर है या यों ही डींगें मारने-वाला तथा पवित्र है या अपवित्र।

१०. सम्यक्चारित्र के बिना इन्सान बिना छत का मकान है।

११. चारित्र के बिना जीवन रोगन की हुई खोखली लट्ठी है।

१२. धर्म, उपदेश, कविता, चित्र, नाटक आदि किसी भी चीज का बिना चारित्र के मूल्यांकन नहीं होता।

—जे० जी० हालेंड

१३. शिक्षा नहीं अपितु चारित्र ही मनुष्य की सर्वोच्च आवश्यकता है।

—स्पेन्सर

१४. स पुमान् पटावृतोऽपि नग्न एव,
यस्य नास्तिसच्चारित्रमावरणम्।
स नग्नोऽप्यनग्न एव,
यो भूषितः सच्चारित्रेण॥

—नीतिवाक्यामृत २६।५१-५२

जो सदाचाररूप वस्त्र से अलंकृत नहीं है, वह सुन्दर वस्त्रों से वेष्टित होने पर भी नग्न ही है। सदाचार से विभूषित शिष्ट-पुरुष नग्न होने पर भी नग्न नहीं गिना जाता।

१५ चारित्र शुद्धिस्तु मता दुरापा।

चारित्र की शुद्धि दुष्प्राप्य है।

★

१० ज्ञान के साथ चारित्र आवश्यक

१. बिना चारित्र का ज्ञान शीशे की आँख के समान केवल दिखाने के लिये है।
—स्विनॉक

२. चारित्रहीन-बौद्धिकज्ञान सुगन्धित शव के समान है।
—गांधी

३. No Knowledge In power Unless put in-to Action.
नो नॉलिज इन पावर अनलेस पुट इन-टू ऐक्सन।
—अंग्रेजी कहावत

क्रियाशून्य ज्ञान शक्तिशाली नहीं है।

४. सौ रुपयों की नौली में निन्नानबें रुपये चारित्र हैं और एक रुपया ज्ञान है।
—श्रीकालूगणी

५. सुबहुं पि सुयमहीयं, किं काही चरणविप्पहीणस्स।
अंधस्स जह पलित्ता, दीवसयसहस्स - कोडीवि॥
—विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ११५२

चारित्रहीन पुरुष को बहुत से शास्त्रों का अध्ययन भी क्या लाभ दे सकता है? क्या लाखों दीपकों का जलना भी कहीं अंधे को दीखने में सहायक हो सकता है?

६. क्रियाविहीनाः खरवद्वहन्ति। —सुश्रुत
क्रिया-चारित्रहीन व्यक्ति गदहे के समान मात्र ज्ञान का बोझा ढोनेवाला है।

७. जहा खरो चंदणभारवाही, भारस्स भागी न हु चंदणस्स,
एवं खु नाणी चरणेण हीणो, भारस्स भागी न हु सुग्गईए।

—विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ११५८

जैसे चन्दन का भार ढोनेवाला गदहा केवल भार का ही भागी है। चन्दन की शीतलता उसे नहीं मिल सकती। ऐसे ही चारित्रहीन ज्ञानी का ज्ञान केवल भाररूप है। वह सुगति का अधिकारी नहीं होता।

११ चारित्र की रक्षा

१. जाइमरणं परिन्नाय, चरे संकमणे दढे ।

—आचारांग २।३

जन्म-मरण के स्वरूप को भलीभाँति समझकर चारित्र में दृढ़ होकर विचरना चाहिए ।

२. वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्, वित्तमायाति याति च ।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो, वृत्ततस्तु हतो हतः ।।

—विदुरनीति ४।१३०

यत्नपूर्वक चारित्र की रक्षा करो, धन तो आता है, चला जाता है। धनहीन व्यक्ति वास्तव में क्षीण नहीं है, किन्तु जो चारित्र से क्षीण हो गया, वह तो सचमुच ही मर गया।

३. If wealth is lost nothing is lost.
If health is lost something is lost.
If chractor is lost everything is lost.
इफ वेल्थ इज लोस्ट नथिंग इज लोस्ट ।
इफ हैल्थ इज लोस्ट समथिंग इज लोस्ट ।
इफ करेक्टर इज लोस्ट एवरीथिंग इज लोस्ट ।

—अंग्रेजी कहावत

धन खोया कुछ भी नहीं खोया, तन खोया कुछ खोया ।
अगर खो दिया सच्चरित्र को, तो धन ! सब कुछ खोया ।।

—दोहा-संदोह

४. ऊँचे गिरि से जो गिरे, मरे एक ही बार ।
चरित्र गिरि से जो गिरे, बिगड़े जन्म हजार ।।

—आचार्य उमाशंकर

५. प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत, नरश्चरितमात्मनः ।
किं नु मे पशुभिस्तुल्यं, किं नु सत्पुरुषैरिति ।।

—शार्ङ्गधर

मनुष्य को प्रतिदिन अपना आचरण देखना चाहिए और सोचना चाहिए कि मेरा आचरण पशुओं के समान कितना है और सत्पुरुषों के समान कितना है ?

६. मा जाति पुच्छ, चरणं च पुच्छ ।
कट्ठाहवे जायति जातवेदो ।।

—संयुत्तनिकाय १।७।९

जाति मत पूछो, आचरण (कर्म) पूछो ! लकड़ी से भी आग पैदा हो जाती है ।

७. क्रियैव फलदा पुंसां, न ज्ञानं फलदं मतम् ।
यतः स्त्री-भक्ष्य-भोगज्ञो, न ज्ञानात् सुखभाग् भवेत् ।।

वास्तव में क्रिया ही फल देनेवाली है, ज्ञान नहीं, क्योंकि स्त्री, भोजन और भोग का जानकार भी मात्र ज्ञान से सुखी नहीं होता, उसे क्रिया करनी ही पड़ती है ।

८. शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा,
यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान् ।
सुचिन्तितं चौषधमातुराणां,
न नाममात्रेण करोत्यरोगम् ।।

शास्त्र पढ़कर भी वे मूर्ख हैं, जो तदनुसार क्रिया (चारित्र) का अनुसरण नहीं करते। वास्तव में जो ज्ञानपूर्वक क्रिया करता है, वही विद्वान् है। औषधि के विवरण मात्र से रोगियों का रोग नहीं मिटता, उसका सेवन करना जरूरी है।

९. गति बिना पथज्ञोऽपि, नाप्नोति पुरमीप्सितम्।

गन्तव्य स्थान की ओर गमन किये बिना मार्गज्ञाता भी मन चाहे शहर में नहीं पहुँच सकता, वैसे ही क्रिया-चारित्र के बिना मनुष्य केवल ज्ञान से ही मुक्ति नहीं पा सकता।

१०. नाविरतो दुश्चरितान्, नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमनसो वापि, प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥

— **कठोपनिषद् १।३।१४**

जो बुरे आचरणों से नहीं हटा है, जो अशान्त (उग्र) है, असमाधियुक्त-अशान्तमनवाला है, वह केवल प्रज्ञान-बुद्धिवाद से इस आत्मतत्त्व को नहीं पा सकता।

११. चरणगुणविप्पहीणो, बुड्डइ सुबहुंपि जाणंतो।

—**आवश्यकनिर्युक्ति ९७**

जो साधक चारित्र के गुण से हीन है, वह बहुत से शास्त्र पढ़ लेने पर भी संसार समुद्र में डूब जाता है।

१२. देशोन चौदहपूर्वधारी मुनि भी चारित्र से हीन होकर नरक-निगोद में चले जाते हैं और मात्र अष्ट प्रवचन-माता के आराधक मुनि चारित्र के बल से मुक्त हो जाते हैं।

— **जैनशास्त्र**

१३. जानन्ति तत्त्वं प्रभवन्ति कर्तुं,
ते केऽपि लोके विरला मनुष्याः।

—**हृदयप्रदीप**

तत्त्व को जैसा जानते हैं, उसी प्रकार आचरण कर सकनेवाले व्यक्ति विरले हैं।

१४. सुननेवाले करोड़ों हैं, सुनानेवाले लाखों हैं, समझनेवाले हजारों हैं, किन्तु समझ के मुताबिक आचरण करनेवाले विरले ही हैं।

१५. आज धर्म का मात्र लेबल है। सील मोहर कायम रहते हुए भी माल गायब है।

१२

चारित्र से लाभ

१. चरित्तेण निगिण्हाइ। —उत्तराध्ययन २८।३५

चारित्र से आत्मा आस्रवों का निग्रह करती है।

२. चरित्तसंपन्नयाए सेलेसीभावं जणयइ।

—उत्तराध्ययन २९।६१

चारित्र की संपन्नता से जीव शैलेशीभाव अर्थात् चौदहवें गुण-स्थान की अडोलस्थिति को प्राप्त होता है।

३. अपनी अपूर्णता दूर करनेवाला व्यक्ति एक दिन समाज की अपूर्णता दूर करने में भी समर्थ हो सकता है।

—धूमकेतु

४. उत्तम व्यक्ति शब्दों में सुस्त और चारित्र में चुस्त होता है। —कन्फ्यूसियस

५. यदि मैं अपने चारित्र की परवाह करूंगा तो कीर्ति स्वयं अपनी परवाह करेगी। —डी० एल० मूडी

६. चारित्रवान व्यक्ति अपना दोष सुनना पसन्द करते हैं, चारित्रहीन नहीं।

★

१३ त्याग

१. त्याग एव हि सर्वेषां, मुक्तिसाधनमुत्तमम् ।

—बालबोध श्रुति

सभी के लिये त्याग ही मुक्ति-प्राप्ति का उत्तम साधन है ।

२. त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ।

त्याग से शाश्वत शान्ति मिलती है ।

३. त्याग कियां आवै तुरत, जो कोई वस्तु जरूर ।
आश कियां थी, 'आशिया' ! जाती देखो दूर ।

—राजस्थानी दोहा

४. नास्ति विद्यासमं चक्षुः, नास्ति सत्यसमं तपः ।
नास्ति रागसमं दुःखं, नास्ति त्यागसमं सुखम् ।

—महाभारत शान्तिपर्व १२

विद्या के समान चक्षु नहीं, सत्य के समान तप नहीं, राग के समान दुःख नहीं और त्याग के समान सुख नहीं ।

५. मेवे खाओ त्याग के, जो चाहो आराम ।
इन भोगों में क्या धरा, (है) नकली आम-बदाम ।।

—दोहा-संदोह

६. चिकनी पट्टी पर खड़िया लगाए बिना लिखा नहीं जाता, भोगी आत्मा पर त्याग की खड़ी लगाओ !

७. त्याग नाग नहीं, सिंह-बाघ नहीं, माग नहीं भयवारो रे ।
हृदय-विराग भाग-जागरणा, क्यूं कंपै मन थारो रे ।
श्रावकव्रत धारो !

—आचार्य तुलसी

★

१४ त्याग के भेद

१. नियतस्य तु संन्यासः, कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्याग-स्तामसः परिकीर्तितः ॥७॥
दुःखमित्येव यत्कर्म, कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं, नैव त्यागफलं लभेत् ॥८॥
कार्यमित्येव यत्कर्म, नियतं क्रियतेऽर्जुन !
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव, स त्यागः सात्त्विको मतः ॥९॥

—गीता अध्याय १८

शास्त्रोक्त विधि से निश्चित जिस कर्म का त्याग करना योग्य नहीं है। मोहवश उस कर्म को छोड़ देना **तामसत्याग** कहा गया है। ॥७॥

जो कर्म है वह सब दुःखरूप ही है ऐसे सोचकर शारीरिक-क्लेश के भय से जो व्यक्ति कर्मों का त्याग करता है, वह **राजस त्याग** है। त्याग करने पर भी उसका फल नहीं मिलता ॥८॥

आसक्ति एवं फल का त्याग करते हुए मात्र कर्तव्य समझकर जो शास्त्रोक्तविधि से निश्चित कर्म किया जाता है, वह **सात्त्विकत्याग** है ॥९॥

२. ण हि णिरवेक्खो चागो,
ण हवदि भिक्खुस्स आसयविसुद्धी ।
अविसुद्धस्स हि चित्ते,
कहं णु कम्मक्खओ होदि ॥

—प्रवचनसारोद्धार ३।२०

जब तक निरपेक्ष त्याग नहीं होता, तब तक साधक की चित्त-शुद्धि नहीं होती और जब तक चित्तशुद्धि (उपयोग की निर्मलता) नहीं होती, तब तक कर्मक्षय कैसे हो सकता है ?

३. बाहिरचाओ विहलो, अब्भंतरगंथजुत्तस्स ।

—भावपाहुड १३

जिसके आभ्यन्तर में ग्रन्थि (परिग्रह) है, उसका बाह्यत्याग व्यर्थ है ।

१५ त्यागी

१. वत्थगंधमलंकारं, इत्थिओ सयणाणि य।
अच्छन्दा जे न भुंजंति, न से चाइत्ति वुच्चइ॥
जेय कंते पिए भोए, लद्धे विपिट्ठि कुव्वइ,
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइत्ति वुच्चइ॥

—दशवैकालिक २।२-३

वस्त्र, सुगंधित द्रव्य, अलंकार, स्त्री और शयन, जो इन चीजों को विवशता से नहीं भोगता—वह त्यागी नहीं है, लेकिन सच्चा त्यागी वही है, जो मनोहर एवं प्रिय भोगों को प्राप्त होकर भी पीठ दिखाता है।

२. नहि देहभृता शक्यं, त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
किंतु कर्मफलत्यागी, स त्यागी त्यभिधीयते॥

—गीता० १८।११

समस्त कर्मफलों का त्याग कर देना देहधारियों के लिये शक्य नहीं है, अतः कर्मफलों में आसक्ति-ममता का त्याग करनेवाला ही वास्तव में त्यागी है!

३. त्याग करता हूं फिर भी जी जलता क्यों रहता है?
देख! फल की आशा तो नहीं है?

४. क्रोध-लोभ-भय आदि के वश त्याग करनेवाला वास्तव में त्यागी नहीं है!

५. अप्राप्तेऽर्थे भवति सर्वोऽपि त्यागी।

—नीतिवाक्यामृत

अप्राप्त वस्तु का त्यागी हर एक हो सकता है।

१६

प्रत्याख्यान

१. परिहरणीय वस्तु प्रति-आख्यानं प्रत्याख्यानम् ।

—आवश्यक मलयगिरि, अ० १

त्याज्य वस्तु के प्रति गुरुसाक्षी से निषेधात्मक कथन को प्रत्याख्यान कहते हैं।

२. सेणं पच्चक्खाणे किं फले ?

गोयमा ! संजमे फले ।

—भगवती २।५

भगवन् ! प्रत्याख्यान से क्या फल ?

गौतम ! प्रत्याख्यान से संयम का फल मिलता है।

३. पच्चक्खाणेणं आसवदाराइं निरुंभइ,

पच्चक्खाणेणं इच्छानिरोहं जणयइ ।

—उत्तराध्ययन २६।१३

प्रत्याख्यान से आश्रवद्वारों का तथा इच्छा-अभिलाषा का निरोध होता है।

४. जो जीवादिपदार्थों का ज्ञान किए बिना जीवहिंसा का प्रत्याख्यान करता है, उसका प्रत्याख्यान दुष्प्रत्याख्यान है एवं जो ज्ञानपूर्वक करता है, उसका प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान है।

—भगवती ७।२

५. पंचविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, तं जहा – (१) सद्दहणसुद्धे, (२) विणयसुद्धे, (३) अणुभासणासुद्धे, (४) अणुपालणा सुद्धे, (५) भावसुद्धे। —स्थानांग ५।३

प्रत्याख्यान पांच प्रकार का कहा है—

(१) श्रद्धानशुद्ध—प्रत्याख्यान में पूरी पूरी श्रद्धा रखना।

(२) विनयशुद्ध—प्रत्याख्यान गुरु के सम्मुख विनयपूर्वक करना।

(३) अनुभाषणाशुद्ध—गुरु के पीछे से प्रत्याख्यान का पाठ शुद्धरूप से स्पष्ट बोलना।

(४) अनुपालनाशुद्ध—संकट के समय प्रत्याख्यान का शुद्ध पालन करना तथा विपत्तिकाल में भी उसे नहीं तोड़ना।

(५) भावशुद्ध—प्रत्याख्यान के प्रति शुद्धभाव रखना, दूषित-भाव न होने देना।

६. दसविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, तं जहा—
अणागय-मइक्कंतं, कोडीसहियं नियंटियं चेव।
सागारमणागारं, परिमाणकडं निरवसेसं।
संकेयं चेव अद्धाए, पच्चक्खाणं भवे दसहा॥
—स्थानांग १०।७४८ तथा भगवती ७।२

दस प्रत्याख्यान कहे हैं—

(१) अनागतप्रत्याख्यान, (२) अतिक्रान्तप्रत्याख्यान, (३) कोटिसहितप्रत्याख्यान, (४) नियन्त्रितप्रत्याख्यान, (५) सागार-प्रत्याख्यान, (६) अनागारप्रत्याख्यान, (७) परिमाणकृत-प्रत्याख्यान, (८) निरवशेषप्रत्याख्यान, (९) संकेतप्रत्याख्यान, (१०) अद्धाप्रत्याख्यान।

७. णमुक्कारं पोरसीए, पुरिमड्ढेगासणेगट्ठाणे य ।
आयंबिले भत्तट्ठे, चरमे य अभिग्गहे विगई ॥
—आवश्यकनिर्युक्ति ६।१५९७

काल की अपेक्षा से दस प्रत्याख्यान—

(१) नमुक्कारसी, (२) पौरुषी, (३) पुरिमार्ध, (४) एकासन, (५) एकस्थान, (६) आचामाम्ल, (७) उपवास, (८) चरम-प्रत्याख्यान, (९) अभिग्रह, (१०) निर्विकृति (नीवी) ।

१७ आचार (आचरण)

१. शीलवृत्तफलं श्रुतम् । —महाभारत, सभापर्व ५।१२३

ज्ञान का फल शील एवं आचार है ।

२. सारो परूवणाए चरणं, तस्स वि य होइ निव्वाणं ।

—आचारांगनिर्युक्ति, गाथा १७

प्ररूपणा का सार है—आचरण और आचरण का सार (अन्तिमफल) है—निर्वाण ।

३. अंगाणं किं सारो ? आयारो ।

—आचारांगनिर्युक्ति गाथा १६

जिनवाणी (अंगसाहित्य) का क्या सार है ? 'आचार' !

४. जीवाहारो भण्णइ आयारो ।

—दशवैकालिक निर्युक्ति २१५

तप-संयमरूप आचार का मूल आधार आत्मा (आत्मश्रद्धा) ही है ।

५. आचारः प्रथमो धर्मो, नृणां श्रेयस्करो महान् ।

—यजुर्वेद, मनुस्मृति १।१३८

उत्तम आचार ही सबसे पहला धर्म है और मनुष्यों के लिए महानकल्याणकारी है ।

६. आचारलक्षणो धर्मः सन्तश्चारित्रलक्षणाः ।
साधूनां च यथावृत्त-मेतदाचारलक्षणम् ।।

—महाभारत अनुशासनपर्व, अध्याय १०४

धर्म का स्वरूप आचार है। सदाचार से युक्त पुरुष ही संत है। संतों का जो जीवनक्रम है, वही आचार है।

७. आचाराल्लभते ह्यायु-राचारादीप्सिताः प्रजाः।
आचाराद्धनमक्षय्य-माचारो हन्त्यलक्षणम् ॥

—मनुस्मृति ४।१५६

उत्तम आचार से पूर्णआयु इच्छित सन्तान और अक्षयधन प्राप्त होता है एवं बुराइयों का नाश होता है।

८. सदाचार के तीन फल हैं—

(१) लोक में कीर्ति बढ़ती है, (२) सम्पत्ति की वृद्धि होती है, (३) मरने के बाद सुगति मिलती है।

९. आचारः कुलमाख्याति, वपुराख्याति भोजनम्।
संभ्रमः स्नेहमाख्याति, देशमाख्याति भाषणम् ॥

आचार व्यक्ति का कुल बतलाता है और शरीर भोजन (खुराक) बतलाता है। संभ्रम स्नेह का और भाषण देश का परिचय देता है।

१०. मनुष्यों के कर्म उनके विचारों के सर्वाधिक परिचायक हैं।

सदाचार-कुराचार—

११. पंचविहे आयारे पण्णत्ते, तं जहा—
णाणायारे, दसंणायारे, चरित्तायारे, तवायारे, विरियायारे।

—स्थानांग ५।२।४३२

पाँच प्रकार का आचार कहा है—

(१) ज्ञानाचार—ज्ञान को विधियुक्त पढ़ना।

(२) दर्शनाचार—शंका आदि दोषों को त्यागकर शुद्ध सम्यक्त्व का आराधन करना।

(३) चारित्राचार—समिति-गुप्ति का शुद्ध पालन करना।

(४) तपआचार—आत्मकल्याण के लिए बारह प्रकार की तपस्या करना।

(५) वीर्याचार—धार्मिक कार्यों में शक्ति लगाना।

१२. **सदाचार-दुराचार—**

सदाचार सोना है, दुराचार कथीर (राँगा) है।
सदाचार स्वर्ग की सड़क है, दुराचार नरक का द्वार है।
सदाचार सुख का खजाना है, दुराचार दुःख का पहाड़ है।
सदाचार सच्चा शृंगार है, दुराचार जाज्वल्यमान अंगार है।
सदाचार सच्ची श्रीमत्ता है, दुराचार दरिद्रता है।
सदाचार सच्चा भूषण है, दुराचार भारी दूषण है।
सदाचार सच्ची विद्वत्ता है, दुराचार निरीमूर्खता है।
सदाचार सच्चा मित्र है, दुराचार कट्टर शत्रु है।

—एक विचारक

१३. सदाचार के बिना जीवन विटामिनशून्य भोजन है।

१४. सुना है—बूढ़े सत्य ने अपने जवान और इकलौते बेटे सदाचार की आकस्मिक मौत से दुखी होकर आत्म-हत्या करली है।

और यह भी सुना है कि बड़े सबेरे ही राजभवन में एक शपथग्रहणसमारोह में जवान और लोकप्रिय असत्य के लाड़ले सपूत भ्रष्टाचार ने राष्ट्र के प्रति पूरी ईमानदारी बरतने की शपथ ले ली है।

—श्री रविदिवाकर

●

१८ आचरण बिना ज्ञान

१. अध्यात्मशास्त्र की बड़ी-बड़ी बातें बनानेवाले बीड़ी-सिगरेट गुम होते ही लाल-पीले होने लगते हैं, भगवती के भांगे अंगुलियों पर गिन लेनेवाले श्रावक हराम का पैसा हज़म कर जाते हैं, समयसार का निचोड़ निकालनेवाले भाई भाइयों से लड़ते नहीं शरमाते। वेद, उपनिषद्, गीता, पुराण, कुरान व बाइबिल के ज्ञाता रंडियों में भटकने से बाज नहीं आते। अब बतलाइए कि आचरण के सुधरे बिना ज्ञान का क्या मूल्य ?

२. जो कुछ नहीं करता, वह कुछ नहीं जानता, अपने सिद्धान्तों को परखो कि वे अग्निपरीक्षा में खरे उतरते हैं या नहीं।

— -एथोथासिस

●

१६

आचारवान्

१. अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा, ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः ।
धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा, ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः ।

—मनुस्मृति १२।१०३

अज्ञों से ग्रन्थ पढ़नेवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे ग्रन्थों को धारनेवाले (याद रखनेवाले) श्रेष्ठ हैं, उनसे ग्रन्थों के रहस्य को जानने-वाले ज्ञानी श्रेष्ठ हैं और ज्ञानियों से तदनुकूल आचरण करने-वाले श्रेष्ठ होते हैं।

२. जो नेक अमल करेगा, वह अपनी राह संवारेगा ।

—कुरान० ३०।४४

३. तिष्ठति प्रकृताचारे स वै आर्य इति स्मृतः ।

जो प्राकृतिक आचरण का अनुसरण करता है, वही आर्य माना गया है ।

४. आयारकुसले ।

आचार्यपद के अधिकारी को सबसे पहले आचार-कुशल होना आवश्यक है ।

५. जो सीखो उसे अमल में लाओ ।

—पहेलवीटेक्सट्स

६. जिसने ज्ञान को आचरण में उतार लिया, उसने ईश्वर को मूर्तिमान कर लिया। —विनोबा

७. कौरवों-पाण्डवों को पढ़ाते समय द्रोणाचार्य ने क्षमाकुरु यह पाठ पढ़ाया। सबने याद करके सुना दिया। युधिष्ठिर ने कहा—अभी याद नहीं हुआ। गुरु ने धमकाया। दूसरे दिन फिर पूछा। वही उत्तर मिला! द्रोणाचार्य ने उन्हें खूब पीटा। इस प्रकार कई दिन मार खाते-खाते याद हुआ। गुरु के पूछने पर धर्मपुत्र ने रहस्य खोला कि जब तक क्रोध आता रहा तब तक याद हुआ यह कैसे कहूँ?

८. चार वेदों के ज्ञाता की अपेक्षा उनको आचरण में लाने-वाला बड़ा है। —एक विचारक

९. करनी करै सो पूत हमारा, कथनी करै सो नाती।
रहणी रहै सो गुरु हमारा, हम रहणी के साथी॥
—कबीर

१०. गांधी जी जब लन्दन में रहते थे, एक पादरी ने ईसाई बनाने की नीयत से उन्हें भोजन का निमन्त्रण देता तथा उनके लिए खाना अलग बनवाया करता। पादरी के बच्चों ने पूछा—खाना अलग क्यों बनाया जाता है? पादरी ने कहा—ये अहिंसक हैं, मांस नहीं खाते, इसलिए खाना अलग बनाया जाता है। बच्चों ने फिर प्रश्न किया—वे मांस क्यों नहीं खाते? तब पादरी

ने गांधीजी की जीवनचर्या एवं उनकी अहिंसा का विवेचन किया। बच्चे इससे काफी प्रभावित हुए और कहने लगे, पिताजी आज से हम लोग भी मांस नहीं खाएंगे। पादरी महोदय घबराए और उस दिन से गांधीजी को निमन्त्रण देना ही बन्द कर दिया।

★

२०

आचारहीन

१. आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः ।

—वाशिष्ठस्मृति-६।३

आचारहीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते ।

२. अनाचरतो मनोरथाः स्वप्नराज्यसमाः ।

—नीतिवाक्यामृत

आचरण नहीं करनेवालों के मनोरथ स्वप्नराज्य के समान हैं ।

३. विचार की भूलवाला मूर्ख है तो आचार की भूलवाला दुष्ट (पापी) है !

—एक विचारक

४. चन्दन जन परिचय बढ़ा, त्यों-त्यों बढ़ा विकार ।
हानि पड़ी आचार में, ज्यों-ज्यों बढ़ा प्रचार ॥

५. उसका इरादा अच्छा है, यह व्यर्थ है—यदि वह अच्छा काम न करे !

६. मन राजा सो, करम कमेड़ी सो ।

—राजस्थानी कहावत

२१ कथन के समान आचरण आवश्यक

१. यथा वाचि तथा क्रियायाम् ।
कथनी के समान करनी भी होनी चाहिए।

• कहनी करनी एकसार बना, तुलसी तेरापंथ पाएं हम ।
—आचार्य तुलसी

२. करणी है रहणी नहीं, रहणी का घर दूर ।
कहणी तो कारा करे, चारों वेद मजूर ।।
—राजस्थानी दोहा

३. हमें कहना आता है, करना नहीं आता ।
हमें बोलना आता है, चलना नहीं आता ।

४. यह कितनी गलत बात है कि हम मैले रहें और दूसरों को साफ रहने की सलाह दें। —गांधी

५. यञ्हि कयिरा तं हि वदे, यं न कयिरा न तं वदे ।
अकरोन्तं भासमाणं, परिजानन्ति पण्डिता ।।
—थेरगाथा ३।२२६

जो कर सके, वही कहना चाहिए, जो न कर सके, वह नहीं कहना चाहिए। जो कहता है पर करता नहीं, उसकी विद्वान् निन्दा करते हैं।

६. ऐ ईमानवालो ! क्यों कहते हो ऐसी बात, जो करते नहीं !
—कुरान० ६१।२

७. हैं विरले नर या जग में,
जो कहैं सो करें न, करें सो कहैं ना। —ग्वाल कवि

८. संसार में तीन प्रकार के पुरुष होते हैं—
(१) पाटल (कटहल) सदृश, जो केवल फलते हैं।
(२) रसाल (आम्र) सदृश, जो फूलते और फलते हैं।
(३) पनस (आक) सदृश, जो केवल फूलते हैं।
अर्थात् एक वे मनुष्य जो कहते नहीं, करते है। दूसरे कहते है और करते भी हैं। तीसरे केवल कहते हैं, करते नहीं। —रामचरितमानस

९. कहणी मीठी खांड सी, करनी विष सम होय।
कहणी सी करणी हुए, तो विष ही अमृत होय॥
—राजस्थानी दोहा

१०. शब्द पृथ्वी की पुत्रियाँ हैं और कार्य स्वर्ग के पुत्र।
—सेमुएल जानसन

११. यदि वयस्कलोग उन उपदेशों पर अमल करें जो वे बच्चों को देते हैं, तो दुनिया अगले सोमवार को ही स्वर्गतुल्य बन जाए। —आर० किंग

१२. न नश्यति तमो नाम, कृतया दीपवार्तया।
न गच्छति विना पानं, व्याधिरौषधिशब्दतः॥
—विवेकचूडामणि

दीपक की बात करने से अंधेरा नहीं मिटता और औषधि का पान किए बिना औषधि शब्द के उच्चारण करने से रोग नहीं जाता।

१३. मिसरी-मिसरी कह्यां स्यूं मुंह मीठो को हुवै नी ।

—राजस्थानी कहावत

१४. लड्डू की बातों से मुंह मीठा नहीं होता, कम्बल की बातों से सर्दी नहीं उड़ती, व्यापार की बातों से लखपती नहीं बना जाता, विवाह की बातों से बहू घर नहीं आती, राज्य की बातों से राज्य नहीं मिलता, विद्या की बातों से विद्वान् नहीं बना जाता। व्रतों की बातों से श्रावक नहीं होता अपितु तदनुसार क्रिया करने से इच्छित वस्तु की प्राप्ति होती है।

—एक विचारक

१५. Fine words better no Purs nears.

फाइन वर्ड्स बेटर नो पर्स नियर्स ।

—अंग्रेजी कहावत

खाली बातों से पेट नहीं भरता ।

१६. कहाँ सूखी बातों से हो रेल-पेल,
खली पेलने से न निकलेगा तेल ।
न बातें बनाकर ही बहलाओ जी !
के पानी बिलोने से निकले न घी ।
अमल के मुताबिक मिला हो मुदाम,
के इमली से इमली हो, आमों से आम ।।

—उर्दू शेर

२२

शील

१. सीलं विसयविरागो। —शीलपाहुड ४०

इन्द्रियों के विषय से विरक्त रहना शील है।

२. सिरट्ठो सीलट्ठो, सीतलट्ठो सीलट्ठो।

—विसुद्धिमग्गो १।१९

शिरार्थ (सिर के समान उत्तम होना) शील का अर्थ है। शीतलार्थ (शीतल-शान्त होना) शील का अर्थ है।

३. सीलं सासनस्स आदि। —विसुद्धिमग्गो १।७

शील धर्म का आरम्भ है, आदि है।

४. सीलं मोक्खस्स सोवाणं। —शीलपाहुड २०

शील (सदाचार) मोक्ष का सोपान है।

५. सीलगन्ध समो गंधो, कुतो नाम भविस्सति।
यो समं अनुवाते च, पटिवाते च वायति॥

—विसुद्धिमग्गो १।२४

शील की गन्ध के समान दूसरी गंध कहाँ? जो पवन की अनुकूल और प्रतिकूल दिशाओं में एक समान बहती है।

६. सीलं बलं अप्पटिमं, सीलं आवुधमुत्तमं।
सीलमाभरणं सेट्ठं, सीलं कवचमब्भुतं॥

—थेरगाथा १२।६१४

शील श्रेष्ठ आभूषण है और शील रक्षा करनेवाला अद्भुत कवच है।

७. हिरोत्तप्पे हि सति सीलं उप्पज्जति चेव-तिट्ठति च।
असति नेव उप्पज्जति, न तिट्ठति।

—विसुद्धिमग्गो १।२२

लज्जा और संकोच होने पर ही शील उत्पन्न होता है और ठहरता है। लज्जा और संकोच न होने पर शील न तो उत्पन्न होता है और न ठहरता है।

८. सीलपरिधोता पञ्ञा, पञ्ञा परिधोतं सीलं।
यत्थ सीलं तत्थ पञ्ञा, यत्थ पञ्ञा तत्थ सीलं॥

—दीघनिकाय १।४।४

शील से प्रज्ञा (ज्ञान) प्रक्षालित होती है, प्रज्ञा से शील (आचार) प्रक्षालित होता है। जहाँ शील है, वहाँ प्रज्ञा है जहाँ प्रज्ञा है वहाँ शील है।

९. जीवदया-दम-सच्चं, अचोरियं बंभचेर-संतोसे।
सम्मद्दंसण-णाणे, तओ य सीलस्स परिवारो॥

— शीलपाहुड १९

जीव दया, दम, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, संतोष, सम्यग्दर्शन, ज्ञान और तप—यह सब शील के परिवार हैं अर्थात् शील के अंग हैं।

१०. किकीव अण्डं चमरीव वालधिं,
पियं व पुत्तं नयनं व एककं।
तथेव सीलं अनुरक्खमानका,
सुपेसला होथ सदा सगारवा। —विसुद्धिमग्गो १।९८

जैसे—टिटहरी अपने अण्डे की, चमरी अपनी पूँछ की, माता अपने इकलौते पुत्र की, काना अपनी अकेली आँख की सावधानी

के साथ रक्षा करता है, वैसे ही अपने शील की अविच्छिन्न-रूप से रक्षा करते हुए उसके प्रति सदा गौरव की भावना रखनी चाहिए।

११. न संतसंति मरणंते, सीलवंता बहुस्सुया।

—उत्तराध्ययन ५।२६

ज्ञानी और सदाचारी आत्माएं मरणकाल में भी त्रस्त अर्थात् भयाक्रान्त नहीं होतीं।

१२. सील-गुणवज्जिदाणं, णिरत्थयं माणुसं जम्म।

—शीलपाहुड १५

शीलगुण से रहित व्यक्ति का मनुष्यजन्म पाना निरर्थक ही है।

१३. सम्पन्नसीला, भिक्खवे विहरथ।

—मज्झिमनिकाय १।६।१

भिक्षुओ! शील सम्पन्न होकर विचरो!

व्रत

१. व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥

यजुर्वेद १९।३०

व्रत (आचरण) से मनुष्य को दीक्षा अर्थात् उन्नत जीवन की योग्यता प्राप्त होती है। दीक्षा से दक्षिणा यानी प्रयत्न की सफलता मिलती है। दक्षिणा से अपने जीवन के आदर्शों में श्रद्धा होती है। और श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है।

२. भिक्खाए वा गिहत्थे वा, सुव्वए कम्मई दिवं ।

—उत्तराध्ययन ५।२२

साधु हो, चाहे गृहस्थ हो, अच्छे व्रतोंवाला स्वर्ग में जाता है।

३. **व्रताभिरक्षा हि सतामलंक्रिया ।**
व्रतों को शुद्ध पालना ही सत्पुरुषों का शृंगार है।

४. **व्रतों की विधि दुष्कर होने पर भी उसे पालने का प्रयत्न करें !**

५. **रत्नों के आभूषणों से भी व्रतों की विशेष सम्भाल रखो, अन्यथा वे दूषित होकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाएँगे !**

६. **व्रत टूटने पर मनुष्य की शान नहीं रहती।**

७. **टूटने के भय से व्रत मत छोड़ो !**
जैसे—जूँओं के भय से वस्त्र पहनना नहीं छोड़ते,

भिक्षुओं के भय से भोजन बनाना नहीं छोड़ते, टिड्डियों के भय से खेती करना नहीं छोड़ते, दुर्घटना के भय से मोटर या रेल आदि की सवारी करना नहीं छोड़ते, नुकसान के भय से व्यापार करना नहीं छोड़ते तथा मक्खियों के भय से दूध पीना नहीं छोड़ते, वैसे ही टूटने के भय से व्रत लेना भी नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि टूटे इंजन, फूटे बर्तन एवं फटे वस्त्र की तरह दूषित व्रत भी प्रायश्चित्त द्वारा पुनः निर्मल हो सकते हैं।

८. सर्वप्रयत्नेन चातुर्मासे व्रती भवेत्। ---भविष्योत्तरपुराण

चतुर्मास के समय सभी प्रकार के प्रयत्नों से कुछ न कुछ व्रत-नियम अवश्य करना चाहिए।

९. गिहिवासे वि सुव्वए। ---उत्तराध्ययन ५।२४

धर्मशिक्षासम्पन्न गृहस्थ गृहवास में भी सुव्रती है।

१०. एकादशीव्रत का ढोंग---

(क) भोर उठ स्नान कियो, सेर पक्को दूध पियो,
सैंकड़ों सिंघाड़े खाये, चित्त तो सवादी है।
दोपहरी में भांग छानी, पाव चीनी सेर पानी,
सोलह शक्करकंदी खाई, खोंखोड़ी नवादी है।
पाव पक्की बरफी खाई, पाव पक्का पेड़ा खाया,
बीसों अमरूद खाये, आई नहीं वादी है।
कहे 'ब्रह्मदत्त' ऐसो व्रत नित्य होय यारों।
कहने को एकादशी पै द्वादशी की दादी है॥

(ख) गिरि नें छुहारा खाय, किसमिस बिदाम खाय,
सेव नें सिंघाड़ा खाय, सांठे को सवादी है।
मूंदपाक खंड-खीर, बरफी अकब्बरी रु,
कलाकंद खाय, खूब लोटे पड़्यो गादी है।
आम खरबूजा खाय, काकड़ी मतीरा खाय,
मूली बोर सोगरी में, खूब प्रीति साधी है।
नाम तो आहार अल्प, कीन्हों भरपूर भार,
कहने को एकादशी पै द्वादशी की दादी है॥
—[illegible]

२४ महाव्रत

१. पंच महव्वया पण्णत्ता, तं जहा—सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं। जाव सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं॥

—स्थानांग ५।१।३८४

भगवान ने पाँच महाव्रत कहे हैं—(१) सर्वथा जीव-हिंसा से विरत होना, (२) सर्वथा झूठ से विरत होना, (३) सर्वथा चोरी से विरत होना, (४) सर्वथा अब्रह्मचर्य से विरत होना, (५) सर्वथा परिग्रह से विरत होना।

२. अहिंसा-सत्याऽस्तेय-ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमाः।

पातंजल-योगदर्शन २।३०

(१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अस्तेय, (४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह ये पाँच यम हैं।

३. एते जाति-देश-काल-समयानवच्छिन्नाः।
सार्वभौमा महाव्रतम्॥

—पातंजल-योगदर्शन २।३१

ये यम जाति, देश, काल, समय के अपवाद से रहित हों और सभी अवस्थाओं में पाले जायँ तो महाव्रत कहलाते हैं।

४. इच्चेइयाइं पंच महव्वयाइं राइभोयणवेरमणछट्ठाइं।
अत्तहियट्ठयाए उवसंपज्जित्ताणं विहरामि॥

—दशवैकालिक ४

ये पाँच महाव्रत और छट्ठा रात्रिभोजन-व्रत इनको आत्मा के हित के लिए धारण करके विचरता हूँ। सांसारिक सुखों की इच्छा से नहीं।

५. माहणेण मईमया जामा तिन्नि वियाहिया।

—आचारांग ८।१

सर्वज्ञ भगवान ने तीन याम अर्थात् महाव्रत कहे हैं—अहिंसा, सत्य और अपरिग्रह।

●

२५ सभ्यता

१. सभ्यता चारित्र का वह रूप है, जो मनुष्य को कर्तव्य का मार्ग दिखलाता है।

—गांधी

२. नोच्चैर्हसेत्, न शब्दवन्तं मारुतं मुञ्चेत्, नाऽनावृतमुखो जृम्भां क्षवथुं हास्यं वा प्रवर्तयेत्, न नासिकां कुष्णीयात्, न दन्तान् विघट्टयेत्, न नखान् वादयेत् ॥

—चरकसंहिता सूत्रस्थान ८।१९

सभ्य मनुष्य को चाहिए कि वह अधिक जोर से न हंसे, शब्दयुक्त अपानवायु का त्याग न करे, मुख को बिना ढंके जंभाई, छींक व खांसी को न निकाले, अंगुली से नासिका को न कुरेदे, दांतों को न किटकिटावे एवं नखों को न बजावे।

(आत्रेयऋषि द्वारा अग्निवेश को उपदेश)

३. नाश्नीयादेकवासा, न नग्नः स्नानमाचरेत्।
न मूत्रं पथि कुर्वीत, न भस्मनि न गोव्रजे।

—मनुस्मृति ४।४५

एक वस्त्र से भोजन, नग्न होकर नहाना, मार्ग में, राख के ढेर में तथा गोव्रज में मूत्र करना—ये काम निषिद्ध हैं।

४. यदि तुम मनुष्य को सभ्यता सिखाना चाहते हो तो उसका प्रारम्भ दादी से करो।

—विक्टर ह्यूगो

५. सभ्यता और धर्म की प्राचीनता की दृष्टि से कोई भी राष्ट्र आर्य-सभ्यता की समता नहीं कर सकता।

—ई० एन० थाम

२६ योग

१. मोक्खेण जोयणाओ, जोगो सव्वोवि धम्मववहारो।

—हरिभद्र-योगविंशिका

जो आत्मा को मोक्ष के साथ जोड़ता है, वह सभी धार्मिक व्यवहार योग है।

२. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। —पातंजलयोगदर्शन १।२

चित्तवृत्ति का निरोध योग है।

३. कुशलप्रवृत्तिर्योगः। —बौद्ध

सत्प्रवृत्ति का नाम योग है।

४. समत्वं योग उच्यते। —गीता

समता को योग कहते हैं।

५. यं संन्यासमिति प्राहु-र्योगं तं विद्धि पाण्डव!

—गीता ६।२

पाण्डुनन्दन! जिसको संन्यास कहते हैं, उसी को तू योग समझ!

६. यम-नियमाऽऽसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयोऽष्टावङ्गानि। —पातंजल-योगदर्शन २।१६

योग के आठ अंग हैं—

(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (४) प्राणायाम, (५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान, (८) समाधि।

७. **योग की आठ दृष्टियाँ हैं**—

(१) मित्रा, (२) तारा, (३) बला, (४) दीप्रा, (५) स्थिरा, (६) कान्ता, (७) प्रभा, (८) परा—ये क्रमशः योग के आठों अंगों से युक्त होती हैं।

८. **योगदृष्टियों में क्रमशः नहीं होनेवाले ये आठ दोष हैं**—

(१) खेद, (२) उद्वेग, (३) क्षेप, (४) उत्थान, (५) भ्रान्ति, (६) अभ्युदय, (७) सङ्ग (८) आसङ्ग।

९. **योगदृष्टियों में क्रमशः होनेवाले आठ गुण ये हैं**—

(१) अद्वेष, (२) जिज्ञासा, (३) सुश्रूषा, (४) श्रवण, (५) बोध, (६) मीमांसा, (७) प्रतिपत्ति, (८) प्रवृत्ति।

—**योगदृष्टि-समुच्चय**

✱

२७ योग-महिमा

१. मोक्षोपायो योगो ज्ञान-श्रद्धान-चरणात्मकः ।

—अभिधानचिन्तामणि १।७७

योग ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय है एवं मोक्ष का उपाय है ।

२. योगः कल्पतरुः श्रेष्ठो, योगश्चिन्तामणिः परः ।
योगः प्रधानं धर्माणां, योगः सिद्धेः स्वयं ग्रहः ॥

—योगबिन्दु ३७

योग श्रेष्ठ कल्पतरु है, योग दूसरा चिन्तामणि है । योग सभी धर्मों में उत्कृष्ट है एवं योग्य स्वयं सिद्धि-मुक्ति को ग्रहण करनेवाला है ।

३. आत्मज्ञानेन मुक्तिः स्यात्, तच्चयोगादृते नहि ।

—स्कन्दपुराण

आत्मा का ज्ञान होने से ही मुक्ति होती है, किन्तु वह ज्ञान योग के बिना नहीं होता ।

४. स एवाहं स एवाह—मिति भावयतो मुहुः ।
योगः स्यात्कोऽपि निःशब्दः, शुद्धः स्वात्मनि यो लयः ॥

मैं वही हूं ! मैं वही हूं ! ऐसी भावना करते-करते जो शुद्ध योग-शब्दरहित हो जाता है, उसे अपनी आत्मा में लय होना कहते हैं ।

५. नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति, न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य, जाग्रतो नैव चार्जुन! १६॥
युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगो भवति दुःखहा॥ १७॥

— गीता ६

अर्जुन! न तो अधिक खानेवाले का योग सिद्ध होता है एवं न बिल्कुल न खानेवाले का। न अत्यधिक सोनेवाले का योग सम्पन्न होता है और न अत्यधिक जागनेवाले का॥१६॥

उसी का योग दुःखनाशक होता है, जिसके आहार-विहार नियमित हैं, कर्म करने में चेष्टा नियमित है तथा सोना और जागना नियमित हैं॥ १७॥

६. असंयतात्मना योगो, दुष्प्राप्य इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता, शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥

—गीता ६।३६

मन को वश में न करनेवाले पुरुष को योग की प्राप्ति बहुत कठिन है। उपाय से आत्मा को वश करनेवाला योग को प्राप्त हो सकता है।

७. योगास्त्रयो मया प्रोक्ता, नृणां श्रेयो विधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च, नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्॥

भागवत ११।२०।६

मनुष्यों के कल्याण की इच्छा से मैंने तीन योग कहे हैं— ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग। इनके अलावा आत्म-कल्याण का कहीं कोई उपाय नहीं है।

योगशब्द का दूसरे प्रकार में प्रयोग—

८. कायवाङ्-मनोव्यापारो योगः।

—**जैनसिद्धान्तदीपिका ४।२६**

शरीर, वचन एवं मन के व्यापार को योग कहते हैं।

६. जोगसच्चेणं जोगं विसोहेइ। —**उत्तराध्ययन २६-५२**

योग-सत्य से जीव योगों की विशुद्धि करता है अर्थात् मन-वचन-काय की प्रवृत्ति को शुद्ध बनाता है।

१०. जोगं च समणधम्मंमि जुंजे अनलसो धुवं।

—**दशवैकालिक ८।४३**

आलस्य को छोड़कर योगों को सदा श्रमणधर्म में जोड़ना चाहिए।

योगी

१. योगः समाधिः, सोऽस्यास्ति इति योगवान् ।

—उत्तराध्ययन-बृहद्वृत्ति ११।१४

योग का अर्थ समाधि है। जिसकी आत्मा में समाधि हो, वह योगवान योगी है।

२. दृष्टिः स्थिरा-यस्य विनापि दृश्यं,
वायुः स्थिरो यस्य विना प्रयत्नात् ।
मनः स्थिरं यस्य विनावलम्बं,
स एव योगी स गुरुः स सेव्यः ।

—गोरक्षाशतक २१

दृश्य पदार्थों के बिना जिसकी दृष्टि स्थिर है, प्रयत्न किये बिना जिसका पवन स्थिर है एवं किसी भी अवलंबन के बिना जिसका मन स्थिर है, वही योगी है, वही गुरु है और उसी की सेवा करनी चाहिए।

३. ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा, कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी, समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।।

—गीता० ६।८

जिसकी आत्मा ज्ञान-विज्ञान से तृप्त है, जो कूटस्थ है, विजितेन्द्रिय है एवं मिट्टी, पत्थर तथा सुवर्ण को समान समझता है, वह योगी युक्त (भगवत्प्राप्तिवाला) कहा जाता है।

४. आत्मौपम्येन सर्वत्र, समं पश्यति योऽर्जुन !
सुखं वा यदि वा दुःखं, स योगी परमो मतः ॥

—गीता० ६।३२

दूसरों के सुख-दुःख को जो अपने सुख-दुःख के समान समझता है, हे अर्जुन ! वह परमयोगी माना जाता है ।

५. किमिदं कीदृशं कस्य, कस्मात् क्वेत्यविशेषयन् ।
स्वदेहमपि नावैति, योगी योगपरायणः ॥

—इष्टोपदेश ४२

योग में लीन योगिराज यह क्या है ? किसका है ? किस कारण से है ? एवं कहां है ? अपने शरीर के प्रति भी ऐसा विशेष विचार नहीं करता ।

६. यद् यदाचरितं पूर्वं, तत् तदज्ञानचेष्टितम् ।
उत्तरोत्तरविज्ञानाद् योगिनः प्रतिभासते ॥

— आत्मानुशासन २।१

उत्तरोत्तर विशेष ज्ञान होने से योगिजनों को पूर्वकाल में जो-जो आचरण किए थे, वे अज्ञान की चेष्टाएँ थीं—ऐसे प्रतीत होने लगता है ।

७. निर्भयः शक्रवद् योगी, नन्दत्यानन्दनन्दने ।

—ज्ञानसार

इन्द्र की तरह निर्भय योगिराज आत्मानन्दरूप नन्दनवन में मौज करता है ।

८. चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथ किं तापसः,
किंवा तत्त्वनिवेशपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपि किम् ?

इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः संभाष्यमाणो जनैर्,
न क्रुद्धाः पथि नैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः ॥

— भर्तृहरि-वैराग्यशतक २४

क्या यह चाण्डाल है अथवा ब्राह्मण है ? शूद्र है या तपस्वी है ? अथवा क्या कोई तत्त्व के विवेक में चतुर योगिराज है ? ऐसे विचित्र प्रकार के विकल्पों द्वारा लोगों से संभाष्यमाण योगिराज राग-द्वेष न करते हुए अपने समममार्ग में विहरण करते रहते हैं।

९. तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद् योगी भवार्जुन !

—गीता ६।४६

तपस्वियों से योगी बड़ा है, शास्त्रज्ञानियों से भी योगी बड़ा है और कर्मकाण्डियों से भी योगी बड़ा है अतः हे अर्जुन ! तू योगी बन।

१०. राजा जोगी दोनूं ऊँचा, तांबा तुंबा दोनूं सुच्चा ।
तांबा डूबे तुंबा तिरे, राजा जोगी के पैरों पड़े ॥

११. राजा ने एक योगी को सम्मान एवं सुविधापूर्वक राज-महल में रखा ! फिर सन्देह हुआ कि मेरे में और इसमें क्या फर्क है। योगी समझकर महलों से निकल चला। राजा-रानी खोजते-खोजते योगी के पास आए। वह वृक्ष के नीचे सूखी रोटी खा रहा था। राजा ने कहा—चलिए महल में ! योगी ने कहा—पहले तुम यह ग्रामीण भोजन करो। सूखी रोटियां खाते ही राजा-रानी का गला छिल गया एवं उबकाई होने लगी। योगी ने तत्त्व

समझाते हुए कहा—तुम दो मास में ही घबरा गए और मैं जिस प्रसन्नता से तुम्हारा मोहनभोग खाता था, उसी प्रसन्नता से यहां सूखी रोटियां भी खा रहा हूं बस, तुम्हारे और मेरे में इतना ही अन्तर है।

१२. ईहै प्रभु ताको जो किशन, प्रभुता को त्यागै,
छारी ना त्रिभृति तो विभूति कहा धारी है।
जो लौं भग तजो नाहि तो लौं भगनजी नाहि,
काहे को गुसाईं जो गुसाईं से न यारी है।
काहे को बिराह्मन जोको नबि राह्मन,
कहा पीर जो पै पर-पीर ना विचारी है।
कैसो वह जोगी जन जाको न विजोगी मन,
आसन ही मार जान्यो आस नहि मारी है।

—किसनबावनी

१३. जनेभ्यो वाक् ततः स्पन्दो, मनसश्चित्तविभ्रमः।
भवन्ति तस्मात्संसर्गं, जनैर्योगी ततस्त्यजेत् ॥

—समाधिशतक

जहाँ बहुतजनों से सम्पर्क हो, वहाँ बोलना पड़ता है। बोलने से मन में स्पन्दन पैदा होता है और स्पन्दन से संकल्प-विकल्प बढ़ते हैं; अतः योगी को जनसम्पर्क का त्याग करना चाहिए।

२६ योगियों के चमत्कार

१. गोरखनाथ—गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ असम में "महिलासुन्दरी" में फँसे, दो-तीन पुत्र भी हो गये। 'जाग मछेन्दर गोरख आया' इस प्रकार का आह्वान करके गोरख ने जाकर उन्हें जागृत किया एवं साथ लेकर देश को चले। महिलासुन्दरी ने प्रियतम की झोली में एक सोने की ईंट डालदी। जंगल में मत्स्येन्द्रनाथ फिर-फिरकर पूछते थे—गोरख! यहां डर तो नहीं है? गोरख ने तत्त्व समझकर ईंट को फेंक दिया और उत्तर दिया—डर तो पीछे रह गया। गुरु कुछ उदास हुए। शिष्य ने पेशाब करके शिला सोने की बनाई और गुरु का मोह शांत किया।

२. पादलिप्त और सिद्ध नागार्जुन दो भाई थे। सिद्ध नागार्जुन ने स्वर्ण-सिद्धि-रस की एक तुम्बी भेंटरूप में भाई को दी। पादलिप्त ने उसे फेंककर पेशाब द्वारा पत्थर का सोना बनाकर दिखाया।

३. दिल्ली बिड़लामंदिर में एक योगी ने मन्त्र-शक्ति से पानी का दूध, ईंट की मिश्री एवं चम्मच को सोने का

बना दिया। अनेक विदेशी राजदूत भी दर्शकों में शामिल थे।

— हिन्दुस्तान, सं० २००६, आसोज सुदी

४. हरिदास नामक एक भारतीय योगी अपनी जीभ को ऊपर उठाकर बड़ी आसानी से माथे को छू लेता है।

— हिन्दुस्तान, १३ जून १९७१

५. बद्रीनाथ (भारत) का वैरागी गिरि दिन में पाँच बार प्रार्थना किया करता था और प्रत्येक बार अपने लोहे के डंडे को आग में तपाकर जीभ से चाट लिया करता था। कहते हैं, वह ५२ वर्षों तक इस साधना में संलग्न रहा।

—विचित्रा, वर्ष ३ अंक ४, १९७१

६. लगभग साढ़े छः सौ वर्ष पहले की बात है। दिल्ली के तख्त पर तब सुलतान "मुहम्मद तुगलक" साहब विराजमान थे। उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका के मरक्को नामक देश का एक यात्री "इब्नबतूता" दुनियाँ की सैर करता हुआ दिल्ली आ पहुंचा। मुहम्मद तुगलक ने उसका बहुत आदर-सत्कार किया, यहाँ तक कि उसे दिल्ली का काज़ी बना दिया।

एक दिन दरबार में योगियों के चमत्कार की बात चली और दो योगी (गुरु-शिष्य) उपस्थित हुए। गुरु ने अपने शिष्य को कुछ संकेत दिया। शिष्य ने पद्मासन लगाया, प्रणायाम किया और एक क्रिया ऐसी की कि बिना किसी सहारे के ऊपर उठ गया और उठता ही चला

गया। महल की छत बहुत ऊँची थी। वह उससे भी बहुत ऊँचे चला गया, और आकाश में अधर ठहर गया। फिर बादशाह के इशारे पर अपने शिष्य को नीचे उतारने के लिए गुरु ने कुछ कहा लेकिन शिष्य इतना ध्यानमग्न था कि उसने कुछ नहीं सुना। तब गुरु ने अपनी झोली में से एक खड़ाऊ निकालकर नीचे रखी और ध्यानमग्न होकर उस पर दृष्टि जमाई। खड़ाऊ ने ऊपर जाकर शिष्य के चारों ओर चक्कर लगाया और उसकी गर्दन पर कई बार तड़ातड़ वार किया। तब शिष्य का ध्यान भंग हुआ और वह धीरे धीरे नीचे उतरने लगा। अंत में वह उसी आसन में जमीन पर आ बैठा। खड़ाऊ पहले ही गुरु के पास वापस आ गई थी। इब्नबतूता आदि दर्शकों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

७. सुना है कि स्वामी दयानन्द ने सोलह हॉर्स पावरवाली चार घोड़ों की गाड़ी को एक अंगूठे से रोक दिया था। यह देखकर जोधपुर नरेश उनके पैरों में पड़ गये एवं भक्त बन गये।

८. पंजाब के योगिराज देवमूर्ति ने मेरठ में कई हजार की भीड़ में अपनी छाती पर दो हाथियों को खड़ा किया। लोहे की मोटी थाली को दिखलाकर उन्होंने उसे हाथों से कागज की तरह फाड़ डाला।

एक बैलगाड़ी में वजन भरा गया। लगभग ५० मन वजन अवश्य होगा। योगीजी ने बैलगाड़ी में रस्सी बाँधकर उसके छोर को अपने सिर के बालों से बाँध लिया। उस गाड़ी को वह काफी दूर तक अपने बालों से ही खींचते रहे।

दो कारें इधर-उधर खड़ी की गईं। दोनों के पीछे दो रस्से बाँध दिये गये। दोनों रस्सों को उन्होंने पकड़ लिया। ड्राइवरों के अथक प्रयत्न करने पर भी कारें जरा भी हिल न सकीं।

३०० मन वजन से भरे हुए एक ट्रक को उन्होंने छाती पर चढ़ा लिया और उचक-उचक कर उसे हिलाते रहे।

—विचित्रा वर्ष ३, अंक ४, १९७१

९. कुंभक-प्राणायाम के विशिष्टअभ्यासी प्रो० राममूर्ति— ये इतने बलिष्ठ थे कि ४०-४० मन के पत्थर को छाती पर रखवाकर तुड़वा देते थे, मनुष्यों से भरी हुई गाड़ी छाती पर से निकलवा देते थे, छाती पर हाथी को खड़ा कर लेते थे, बड़ी-बड़ी मजबूत लोहे की जंजीरें हाथों से या गले में लपेट कर तोड़ डालते थे एवं १६ हॉर्स पावरवाली दो-दो मोटरों को रोक लेते थे। इतना कुछ करने पर भी इनके शरीर पर कहीं निशान तक नहीं पड़ता था।

१०. प्रोफेसर राममूर्ति की शिष्या कुमारी ताराबाई—

छाती पर १३॥ मन के भारी पत्थर रखवाकर हथौड़ों से तुड़वाना, बालों की सहायता से ७ मन के पत्थर की चट्टान उठा लेना, मनुष्यों से भरी समूची गाड़ी को अपनी छाती पर से पार करा देना कुमारी ताराबाई के लिए बाएँ हाथ का खेल था। उनका सबसे अधिक आश्चर्यजनक काम अपने माथे की सहायता से गाड़ी को ठेलकर ले जाने का था। इस गाड़ी पर अनेक आदमी भी लदे रहते थे। इतना ही नहीं, गाड़ी के आगे एक तेज छुरा बँधा रहता था और ताराबाई इसी छुरे की नोंक पर अपना माथा भिड़ा देती थी तथा गाड़ी को ठेलकर दूर तक ले जाती थीं।

११. श्री सोमेशचन्द्र बसु—

१८ अप्रैल सन् १९३१ को न्यूयार्क (अमेरिका) के वैनडाइक स्टूडिओ में बंगाल प्रान्तस्थ ढाका जिले के निवासी "श्रीसोमेश चन्द्र बसु" ने योगाभ्यास द्वारा गणितसम्बन्धी एक जटिल प्रश्न का आश्चर्यजनक समाधान किया। प्रश्न-कर्ता उक्त स्टूडिओ के कलाकार श्री जॉनओ नील ने कागज का एक टुकड़ा उनकी ओर बढ़ा दिया। उसपर लिखा था—

८५३१२८४६९३७६८४१३२५७२६१४ ३५६३९७८१२६४७३९
८२५७३१२४८७३६४९७१२५६५३२७ ३४७८१७२८६३५७२३
७४८१२५२५७४९१२८३६९२४३७६१८५३

को

७४६३८१२५७३६४७९२८३७४३५ १७९६२९७६४३६८४१७८
९६७९१२८५७४३५३५९८३८१४२८१२५९५९१८१ ५१२७६३
९७८२९५७८१६३९५३२८९६५७२५५३६९

से गुणा कीजिए ?

इन अंकसमूहों पर एक दृष्टि डालकर वसु महोदय ने अपनी आँखें बंद करलीं और मूर्तिवत् बैठे हुए इस प्रश्न को मन ही मन लगाने लगे। स्टुडिओ की खिड़कियां खुली हुई थीं—बाहर सड़क पर मोटरें, लारियाँ फायर-इंजन आदि शोर-गुल मचाते दौड़ रहे थे। लेकिन वसु महोदय की गणना में इन सबसे तनिक भी बाधा न पड़ी। वे चुपचाप बैठे हुए अपने प्रश्न को हल करते रहे। ५५ मिनट ५० सेकिन्ड में उत्तर तैयार हो गया। उन्होंने इस प्रकार लिखा—

६३६७५८३५३२८५९३०६२५६३४८९७७३६६२०१६१३१७२
८२२०३२५९९७५४४०१७०८१७७३५४६१८६७१६३३६७३८
२९५९५८५७२५०१०४२५७४५६६७९९१६९८३२०७२६४३७
४१९२८२७०२७२८१५६२७८०८५४४३६९९७३५००५७७४२
८५७९७१५८०४५७४१ ५७८२२७७४०७४१६८३४८१४८५२
०६२३३३६३५७४४७५७।

उत्तर मिल जाने के बाद नील महोदय ने श्री वसुजी से पूछा—६५वीं पंक्ति का ३३ वाँ अंक क्या है? पलक

मारते ही वसुजी ने उत्तर दिया—आठ अर्थात् १८ के ८ रखे गये और एक हासिल लगा।

नील महोदय सहित सभी उपस्थित लोग आश्चर्य से स्तम्भित हो गये।

केवल गुणन ही नहीं, लम्बे-चौड़े भाग, भिन्न, दशमलव, पुनरावर्त्त-दशमलव, समीकरण आदि के प्रश्न आप इतने थोड़े समय में मन ही मन लगा लेते थे कि लोग चकित रह जाते थे। लम्बी-चौड़ी सैकड़ों अंकों की पूर्ण संख्याओं के वर्गमूल, घनमूल, चतुर्घातमूल पंचघात-मूल आदि से लेकर १०६ वां घातमूल तक बिना कागज पेंसिल के निकाल लेना आपके लिए एक दम साधारण और अधिक से अधिक एक सैकिंड का काम था।

—विचित्रा वर्ष ३ अंक ४, १६७१

चौथा कोष्ठक

१ संयम

१. उवसमसारं खु सामण्णं । —बृहत्कल्प सूत्र १।३५

श्रमणत्व का सार है उपशम ।

२. संयमः खलु जीवनम् । —आचार्य श्रीतुलसी

संयम ही जीवन है ।

३. संयमो हि महामन्त्र-स्त्राता सर्वत्र देहिनाम् । —तत्त्वामृत

प्राणियों की सर्वत्र रक्षा करनेवाला महामंत्र एक संयम ही है ।

४. श्रमणत्वमिदं रमणीयतरम् । —सुभाषितरत्नसंदोह

यह साधुत्व-संयम अनेक गुणयुक्त होने से बहुत रमणीय है ।

५. जाइ सद्धाइ निक्खंतो, परियायट्ठाणमुत्तमं,
तमेव अणुपालिज्जा । —दशवैकालिक ८।६१

जिस श्रद्धा के साथ संसार से निकलकर उत्तम संयम लिया है, उसी श्रद्धा के साथ पालना चाहिए ।

६. धम्मं चरमाणस्स पंच निस्साठाणा पण्णत्ता, तं जहा—छक्काए, गणो, राया, गिहवई, सरीरं ।

—स्थानांग ५।३।४४७

संयमधर्म, में विचरनेवाले (मुनि) को पांच निश्रास्थान-अवलंबन कहे हैं—(१) छः काया के जीव, (२) गण-गच्छ,

(३) राजा, (४) गाथापति, (५) शरीर (तप-संयम आदि के अनुष्ठान शरीर से होते हैं)।

७. **संयम का स्वरूप :--**

निन्नेहा निल्लोहा, निम्मोहा निव्वियार-निक्कलुसा ।
निब्भय-निरासभावा, पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥४६॥
सत्तु-मित्ते य समा, पसंस-निंदा अलद्धि-लद्धिसमा ।
तण-कणए समभावा, पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥४७॥
उत्तम-मज्झिमगेहे, दरिद्दे ईसरे निरावेक्खा ।
सव्वत्थगहिदपिण्डा, पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥४८॥

— **षट्प्राभृत २**

प्रव्रज्या अर्थात् संयम की भूमिका में, न स्नेह होता, न लोभ होता, न मोह होता, न विकार होता, न कलुषभाव होता, न भय होता और न किसी की आशा होती। उसमें शत्रु-मित्र, प्रशंसा-निंदा, लाभ-हानि और तृण-कंचन समान भाव से देखे जाते हैं। प्रव्रज्या में सभी घरों से भिक्षा ली जाती है। वहाँ बड़े-छोटे का और गरीब-धनवान का भेद नहीं रखा जाता।

★

२ संयम से लाभ

१. संजमेणं अणण्हयत्तं जणयइ । —उत्तराध्ययन २९।२६

संयम से जीव अनास्रव अर्थात् आश्रव-निरोध को उत्पन्न करता है ।

२. सन्यासेनापहृत्यैनः, प्राप्नोति परमां गतिम् ।

—मनुस्मृति ६।८६

आत्मा सन्यास से पापकर्म का नाश करके परमगति को प्राप्त होता है ।

३. अपवित्रः पवित्रः स्याद्, दासो विश्वेशतां भजेत् ।

मूर्खो लभेत ज्ञानानि, मङ्क्षु दीक्षाप्रसादतः ॥

—धन्यचरित्र, पृष्ठ १०६

दीक्षा के प्रभाव से अपवित्रव्यक्ति पवित्र बन जाता है, दास जगन्नाथ बन जाता है और मूर्ख शीघ्र ही ज्ञान प्राप्त कर लेता है ।

४. गीबन को ग्रीस का इतिहास लिखने में २० वर्ष लगे होंगे लेकिन उसका सार इतना ही है कि ग्रीस का उत्थान संयम और सादगी से हुआ एवं पतन विलासिता से ।

५. लोगस्स सारं धम्मो, धम्मं पि य नाणसारियं बिंति ।

नाणं संजमसारं, संजमसारं च निव्वाणं ॥

—आचारांगनिर्युक्ति २४४

विश्व-सृष्टि का सार धर्म है, धर्म का सार ज्ञान (सम्यग्-बोध) है, ज्ञान का सार संयम है, और संयम का सार निर्वाण।

६. संजमहेउ देहो, धारिज्जइ सो कओ उ तदभावे।
संजमफाइनिमित्तं देहपरिपालणा इट्ठा॥

—ओघनिर्युक्ति गाथा ४७

यह देह संयम के लिए ही धारा जाता है, क्योंकि देह बिना संयम नहीं रह सकता। अतः संयम की वृद्धि के लिए ही देह का पालन इष्ट है।

२ संयम की दुष्करता

१. जावज्जीवमविस्सामो, गुणाणं तु महब्भरो।
गुरुओ लोहभारुव्व, जो पुत्ता होइ दुव्वहो ॥३६॥
वालुया कवले चेव, निरस्साए उ संजमे।
असिधारागमणं चेव, दुक्करं चरिउं तवो ॥३८॥
अहीवेगंतदिट्ठीए, चरित्ते पुत्त ! दुक्करे।
जवा लोहमया चेव, चावेयव्वा सुदुक्करं ॥३९॥
जहा अग्गिसिहा दित्ता, पाउं होइ सुदुक्करा।
तहा दुक्करं करेउं जे, तारुण्णे समणत्तणं ॥४०॥
जहा भुयाहिं तरिउं, दुक्करं रयणायरो।
तहा अणुवसंतेणं, दुक्करं दमसागरो ॥४३॥

—उत्तराध्ययन १९

हे पुत्र ! इस संयम में जीवनपर्यन्त विश्राम नहीं है। भारी लोहभार की तरह सदा गुणों का भार उठाना बहुत मुश्किल है ॥ ३६ ॥

बालुरेत के कवल के समान संयम निस्वाद है। तथा खड्ग-धारा पर चलने के समान यह तप करना दुष्कर है ॥३८॥

जैसे—लोहे के जौ का चबाना कठिन है, वैसे ही सर्प की तरह एकान्तदृष्टि से चारित्र का पालना भी कठिन है ॥३९॥

जिस प्रकार प्रज्वलित अग्निशिखा का पीना कठिन है, उसी प्रकार तरुणावस्था में संयम पालना बहुत कठिन है ॥४०॥

जैसे—भुजाओं से समुद्र का तैरना दुष्कर है, वैसे ही अनुपशान्त आत्मा द्वारा संयमरूपी समुद्र तैरना भी बहुत कठिन है ॥४३॥

●

४ संयम में सुख-दुःख

१. देवलोगसमाणो उ, परिआओ महेसिणं।
रयाणं अरयाणं च, महानरयसारिसो॥
—दशवैकालिक-चूर्णि १।१०

संयम में अनुरक्त महर्षियों के लिए तो चारित्र-पर्याय स्वर्ग के समान है एवं अरक्तों के लिए घोर नरक के समान है।

२. साधु - मारग सांकड़ा, जैसा पिंडखजूर।
चढ़े तो चाखे प्रेम रस, पड़े तो चकनाचूर॥
—हिन्दी दोहा

३. नारति सहइ वीरे वीरे न सहइ रतिं।
—आचारांग २।६

वीरपुरुष न तो संयम में अरति (नाराजगी) को सहन करता है और न असंयम में रति (खुशी) को सहन करता है।

५ संयम-दीक्षा का समय आदि

१. कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा खुड्डगस्स खुड्डियाए वा साइरेगट्ठवासजायं उवट्ठावित्तए वा संभुंजित्तए वा।

—व्यवहार १०।३०

साधु-साध्वियाँ साधिक आठ वर्ष (गर्भ सहित नव वर्ष) के बालक-बालिका को दीक्षा दे सकते हैं एवं उनके साथ भोजन कर सकते हैं।

२. वनेषु च विहृत्यैवं, तृतीयं भागमायुषः।
चतुर्थमायुषो भागं, त्यक्त्वा सङ्गान् परिव्रजेत्॥

—मनुस्मृति ६।३३

आयुष्य के तीसरे भाग में वन में विचर कर चौथे भाग में सब विषयों का त्याग करके संन्यास-दीक्षा ले।

३. यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेद, ब्रह्मचर्याद्वा गृहाद्वा।
अथ पुनरव्रती वा, व्रती स्नातको वोत्सन्नाग्निकोवा।

—जाबालश्रुति

जिस दिन वैराग्य हो, उसी दिन प्रव्रजित हो जाना चाहिए। चाहे ब्रह्मचर्याश्रम से हो या गृहस्थाश्रम से हो। वह व्यक्ति चाहे अव्रती हो, व्रती हो, स्नातक हो या उत्सन्नाग्निक।

४. प्रव्रजेद् ब्रह्मचर्याद्वा, प्रव्रजेद् वा गृहादपि।
वनाद्वा प्रव्रजेद् विद्वा-नातुरो वाथ दुःखितः।

—अङ्गिरास्मृति

विद्वान् ब्रह्मचर्यादि किसी भी आश्रम से, रुग्ण या दुःखित किसी भी अवस्था में प्रव्रजित हो सकता है।

५. दो दिसाओ अभिगिज्झ कप्पई निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा पव्वावित्तए तंजहा—पाईणं वा उदीणं वा।

—स्थानांग २।१

दो दिशाओं में साधु-साध्वियों को दीक्षित करना कल्पता है—पूर्व और उत्तर।

६. तओ णो कप्पइ पव्वावेत्तए, तंजहा—पंडए, वाइए, कीवे।

—स्थानांग ३।४।२०२

तीनों को दीक्षा देना नहीं कल्पता-जन्म के नपुंसक को, वायु की व्याधि से जिसका शरीर इतना मोटा बन गया हो कि वह उठ-बैठ भी नहीं सकता हो, उसको तथा क्लीब को। (क्लीब चार प्रकार का होता है—१ दृष्टिक्लीब, २ शब्दक्लीब, ३ आदिग्ध-क्लीब, ४ निमन्त्रणाक्लीब।)

७. ग्रन्थों में १८ प्रकार के पुरुष तथा बीस प्रकार की स्त्रियाँ भी दीक्षा के अयोग्य कहे हैं।

—स्थानांग ३।४।२०२ टीका

८. पच्चयत्थं च लोगस्स, नाणाविहविगप्पणं।

—उत्तराध्ययन २३।३२

धर्मों के वेष आदि के नाना विकल्प जनसाधारण में प्रत्यय (परिचय-पहिचान) के लिए हैं।

९. भावे अ असंजमो सत्थं।

—आचारांगनिर्युक्ति ९६

भावदृष्टि से संसार में असंयम ही सबसे बड़ा शस्त्र है।

७. चत्तारिपुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सीहत्ताए णाममेगे णिक्खंति सीहत्ताए विहरंति। सीहत्ताए णाममेगे णिक्खंति सियालत्ताए विहरंति। सियालत्ताए णाममेगे णिक्खंति, सीहत्ताए विहरंति। सियालत्ताए णाममेगे णिक्खंति। . .सियालत्ताए विहरंति। —स्थानांग ४।३।३२७

दीक्षित व्यक्ति चार प्रकार के कहे हैं —

(१) सिंहवत् (उन्नतभावों से) दीक्षा लेकर उग्रविहारादि द्वारा सिंहवत् पालनेवाले (धन्नाशेठवत्)।

(२) सिंहवत् (उन्नतभावों से) दीक्षा लेकर शृगालवत् (दीन-वृत्ति से) पालनेवाले (कण्डरीकवत्)

(३) शृगालवत् दीक्षा लेकर सिंहवत् पालनेवाले (मेतार्य मुनिवत्)।

(४) शृगालवत् दीक्षा लेकर शृगालवत् पालनेवाले (सोमाचार्यवत्)।

८. चार अन्तक्रियाएँ कही हैं—

(१) अल्पवेदना-दीर्घपर्याय-भरतवत्।

(२) महावेदना-अल्पपर्याय-गजसुकुमालवत्।

(३) महावेदना-दीर्घपर्याय-सनत्कुमारचक्रवर्तिवत्।

(४) अल्पवेदना-अल्पपर्याय-मरुदेवीमातावत्।

—स्थानांग ४।१।२३५

८ साधना

१. साधना के बिना ईश्वर नहीं मिलता। —स्वामी रामकृष्ण

२. नित्य साफ न करने से पीतल के पात्रों की तरह साधना का हृदय भी अपवित्र हो जाता है। —तोतापुरी

३. पानी पर किश्ती हो, तरेगी खूब,
किश्ती में पानी हो, जायेगी डूब। —उर्दू शेर

भावार्थ—पानी पर किश्ती की तरह संसार में रहकर तो साधक तर सकते हैं, किन्तु किश्ती में पानी की तरह यदि साधकों के मन में मोह-मायारूप संसार घुस गया, तो फिर वे कभी नहीं तरेंगे। जैसे-छाछ में मक्खन का रहना अच्छा है, किन्तु मक्खन में छाछ का रहना ठीक नहीं। उसी प्रकार संसारियों में साधुत्व की भावना का रहना अच्छा है, किंतु साधुओं में संसार की भावना का रहना ठीक नहीं।

४. पहली डुबकी में यदि रत्न न मिले तो रत्नाकर को रत्नहीन मत समझो! —स्वामी रामकृष्ण

५. अणुवओगो दव्वं। – अनुयोगद्वार-सूत्र १३

उपयोगशून्य साधना द्रव्य है, भाव नहीं।

●

६ साधु

१. सम्यग्दर्शनादियोगैरपवर्गं साधयतीति साधुः ।

—दशवैकालिक १।५ टीका

सम्यग्दर्शनादि द्वारा जो मोक्ष की साधना करता है, वह साधु है ।

२. साध्नोति स्व-परकार्याणीति साधुः ।

जो अपने और दूसरों के आत्मिक-कार्यों को सिद्ध करता है, वह साधु है ।

३. आगमचक्खू साहू,
इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि । —प्रवचनसार ३।३४

अन्य सब प्राणी इन्द्रियों की आँखवाले हैं, किन्तु साधु आगम की आँखवाला है ।

४. धर्मवित्ता हि साधवः । —श्राद्धविधि

साधु धर्मरूपी धनयुक्त होते हैं ।

५. साधवो दीनवत्सलाः ।

साधु दीनदयालु होते हैं ।

६. विविहकुलुप्पण्णा साहवो कप्परुक्खा ।

—नन्दीसूत्र चूर्णि २।१६

विविध कुल एवं जातियों में उत्पन्न हुए साधुपुरुष पृथ्वी के कल्पवृक्ष हैं ।

७. जीवियास-मरणभयविप्पमुक्का ।

—औपपातिक समवसरण अधिकार तथा भगवती ८।२

साधु जीने की आशा और मरने के भय से विप्रमुक्त होते हैं ।

८. जात्यैवेते परिहितविधौ साधवो बद्धकक्षाः ।

—पार्श्वनाथचरित्र

संत लोग स्वभाव से ही परहित करने के लिए तत्पर रहते हैं ।

९. श्रेयः कुर्वन्ति भूतानां, साधवो दुस्त्यजासुभिः ।

—श्रीमद्भागवत ८।२०।७

साधुजन अपने दुस्त्यज प्राणों को देकर भी प्राणियों का कल्याण करते हैं ।

१०. साधूनां च परोपकार-करणे नोपाध्यपेक्षं मनः ।

परोपकार करने के समय साधुओं का मन कष्टों की परवाह नहीं करता ।

११. यथा चित्तं तथा वाचो, यथा वाचस्तथा क्रिया ।
चित्ते वाचि क्रियायां च, साधूनामेकरूपता ।

—सुभाषितरत्न भाण्डागार

जैसा मन होता है, वैसा ही वचन बोलते हैं और वचन के अनुसार ही क्रिया करते हैं, क्योंकि साधुओं के मन-वचन-क्रिया में एकरूपता होती है ।

१२. युगान्ते प्रचलेद् मेरुः, कल्पान्ते सप्त सागराः ।
साधवः प्रतिपन्नार्थाद्, न चलन्ति कदाचन ।

—चाणक्य १३।१६

युग के अन्त में मेरु और कल्प के अन्त में सातों समुद्र चल जाते हैं, किन्तु सन्त पुरुष स्वीकृत-सिद्धान्त से कभी विचलित नहीं होते ।

13. तप्यते लोकतापेन, साधवः प्रायशो जनाः।
परमाराधनं तद्धि, पुरुषस्याखिलात्मनः।
—श्रीमद्भागवत 8/7/44

साधुजन प्रायः संसार के ताप से संतप्त-खिन्न रहते हैं। उनके लिए यही विश्वपावन भगवान की उत्कृष्ट-आराधना है।

14. या निशा सर्वभूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि, सा निशा पश्यतो मुनेः।
—गीता 2/69

जो आत्मविषयक-बुद्धि संसारी जीवों के के लिए रात है, उसमें संयमी साधु जागता है—आत्म-साक्षात् करता है। जिस शब्दादि विषयों में लगी हुई बुद्धि में संसारी जीव जागते हैं—सावधान रहते हैं, वह आत्मार्थिमुनि के लिए रात है।

15. चक्खुमास्स यथा अन्धो, सोतवा बधिरो यथा।
—थेरगाथा 8/501

साधक चक्षुष्मान् होने पर भी अन्धे की भांति रहे, श्रोत्रवान् होने पर भी बधिर की भांति आचरण करे।

16. साधवो हृदयं मह्यं, साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत्ते न जानन्ति, नाहं तेभ्यो मनागपि।
—श्रीमद्भागवत 9/4/68

भगवान् कहते हैं कि साधु मेरे हृदय हैं और मैं उनका हृदय हूं। वे मेरे सिवाय किसी को नहीं जानते और मैं उनके बिना किसी को नहीं जानता।

—

17. पूजा-मान-बड़ाइयां, आदर मांगे मन।
राम गहे सब परिहरे, सोही साधुजन॥ —दादूजी

राजा और गरीब को, समझे एक समान ।
तिनको साधु कहत है, गुरु नानक निरवान ॥

साधु सत का सूपड़ा, सत ही सत भाखंत ।
पकड़ पछाड़ै तूं तड़ा, कण ही कण राखंत ॥

गांठ दाम बांधे नहीं, नहि नारी से नेह ।
कहै कबीर वा साधु के, हम चरनन की खेह । —कबीर

साधु भूखा भाव का, धन का भूखा नाहि !
जो धन का भूखा बने, वो फिर साधु नाहि ।

साधु हंसी साधे काया, कौड़ी एक न राखे माया ।
ल्यावै सो देवे चुकाय, बासी रहै न कुत्ता खाय ।

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ।

—कबीर

१८. सूफी साधु कौन ?

सूफी वह है, जिसके दिल में सच्चाई और अमल में इखलास हो । —अब्बुलहसन

१९. शैले-शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे-गजे ।
साधवो नहि सर्वत्र, चन्दनं न वने-वने ।

—चाणक्यनीति २।९

जैसे हर एक पर्वत पर माणिक नहीं होते, हर एक हाथी के सिर में मोती नहीं होते और हर एक वन में चन्दन नहीं होते । वैसे सभी जगह सच्चे साधु भी नहीं होते ।

१०

मुनि

१. वीतराग-भय-क्रोधः, स्थितधीर्मुनिरुच्यते।

—गीता २।५६

जिसने राग, भय और क्रोध को जीत लिया एवं जो निश्चल-बुद्धिवाला है, उसे 'मुनि' कहा जाता है।

२. णाणेण य मुणी होई। —उत्तराध्ययन २५।३२

ज्ञान से मुनि होता है।

३. न मुणी रन्नवासेणं। —उत्तराध्ययन २५।३१

जंगल में निवास करने मात्र से मुनि नहीं होता।

४. पुढवीसमो मुणी हविज्जा। —दशवैकालिक १०।१३

मुनि को पृथ्वी के समान धैर्यवान होना चाहिये।

५. महप्पसाया इसिणो भवंति। —उत्तराध्ययन १२।३१

ऋषि महान् प्रसादगुणवाले होते हैं।

६. मौनं मुनीनां प्रशमश्च धर्मः।

मौन और वैराग्य मुनियों के मुख्य धर्म हैं।

७. तैलपात्रधरो यद्वद् राधावेधोद्यतो यथा।
क्रियास्वनन्यचित्तः स्याद् भवभीतस्तथा मुनिः॥

जैसे—तेलभृत पात्र को लेकर चलनेवाला और राधावेध करने में उद्यत व्यक्ति अपनी क्रियाओं में अनन्यचित्त-तल्लीन रहता

है, उसी प्रकार भवभ्रमण से डरा हुआ आत्मार्थी-मुनि अपने संयम की क्रियाओं में अनन्यचित्त रहता है।

८. णिम्ममो णिरहंकारो, णिस्संगो चत्तगारवो।
समो य सव्व भूएसु, तसेसु थावरेसु य ॥९०॥
लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो णिन्दा-पसंसासु, तहा माणावमाणओ ॥९१॥
गारवेसु कसाएसु दंड-सल्ल-भएसु य।
णियत्तो हास-सोगाओ, अणियाणो अबंधणो ॥९२॥
अणिस्सिओ इहं लोए, परलोए अणिस्सिओ।
वासी-चंदणकप्पो य, असणे अणसणे तहा ॥९३॥
अप्पसत्थेहिं दारेहिं, सव्वओ पिहियासवो।
अज्झप्पज्झाणजोगेहिं, पसत्थदमसासणो ॥९४॥

—उत्तराध्ययन १९

मुनि निर्मम, निरहंकार, निःसंग और गर्वरहित होता है तथा त्रस-स्थावररूप समस्त जीवों पर समभाव रखता है ॥९०॥

मुनि लाभ, अलाभ, सुख-दुख, जीवन-मरण, निन्दा-प्रशंसा तथा मान-अपमान में समान वृत्तियुक्त होता है ॥९१॥

मुनि गारव, कषाय, दण्ड, शल्य, भय, हास्य और शोक से निवृत्त होता है तथा निदान एवं बंधन से मुक्त होता है ॥९२॥

मुनि इहलोक-परलोक के सुखों की इच्छा नहीं करता। उसे चाहे बसोले से काटा जाय या चंदन से चर्चा जाय तथा आहार मिले या न मिले, वह समानवृत्ति रखता है ॥९३॥

मुनि सभी अप्रशस्त द्वारों और सभी आश्रवों का निरोध कर

आध्यात्मिक-शुभ ध्यान के योग से प्रशस्तसंयमवाला होता है ॥६४॥[1]

९. नाभिनन्देत मरणं, नाभिनन्देत जीवितम् ॥४५॥
दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं, वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं, मनः पूतं समाचरेत् ॥४६॥
क्रुद्ध्यन्तं न प्रतिक्रुद्ध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत् ।
सप्तद्वारावकीर्णां च, न वाचमनृतां वदेत् ॥४८॥

—मनुस्मृति अ० ६

मुनि न तो जीने की अभिलाषा करे और न मरने की ॥४५॥
मुनि देख-देखकर पैर रक्खे, वस्त्र से छानकर जल पीवे, सत्य से पवित्र वाणी बोले और मन से पवित्र विचार करे ॥४६॥
क्रोध करनेवाले पर क्रोध न करे, आक्रोश करनेवाले के प्रति भी अच्छे वचन बोले तथा पाँच इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि—इन सातों से व्याप्त-वाणी बोले एवं असत्य वाणी न बोले ॥४८॥

१०. मही शय्या रम्या विपुलमुपधानं भुजलता,
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोयमनिलः ।
स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरतिवनिता संगमुदिता,
सुखं शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव ॥

—भर्तृहरि-वैराग्यशतक ७९

भूमि सुन्दरशय्या है, भुजा तकिया है, आकाश चंदवा है, अनुकूल हवा पंखा है और चन्द्रमा प्रकाशमान दीपक है। इन

---

१ गीता के १२वें अध्याय में कहा हुआ भक्त का वर्णन भी इससे काफी कुछ मिलता-जुलता है।

सब सामग्रियों से युक्त शान्त मुनि महान् ऋद्धिशाली राजा की तरह विरक्ततारूप रानी के साथ आनन्दपूर्वक सोता है।

११. धीरज-तात क्षमा-जननी,
परमारथ-मीत महारुचि-मासी।
ज्ञान-सुपुत्र सुता-करुणा,
मति-पुत्रवधू समता प्रतिभासी॥
उद्यम-दास विवेक-सहोदर,
बुद्धि-कलत्र शुभोदय दासी।
भाव-कुटुम्ब सदा जिनके ढिग,
यों मुनि को कहिए गृहवासी॥

—बनारसीदास

१२. वेदान्तविज्ञान - सुनिश्चितार्थाः,
सन्न्यासयोगाद् यतयः शुद्ध सत्त्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले,
परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे॥

—मुण्डकोपनिषद् ३।२।६

वेदान्तरहस्य से जिन यतिजनों ने तत्त्व का निश्चय कर लिया है, सन्न्यास-योग से जो शुद्ध अंतःकरण हो गये हैं, वे अन्तिम देहावसान होने पर ब्रह्मलोकों में अमरत्व को भोगते हुए पूर्णरूप से छूट जाते हैं।

११ अनगार

१. न विद्यते अगारं-गृहं यस्य सः अनगारः ।
जिसने घर का त्याग कर दिया, वह अनगार है ।

२. समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे अणगारा भगवन्तो इरियासमिया .... अममा, अकिंचणा छिण्णगंथा छिण्णसोया निरुवलेवा, १ कंसपाईव मुक्कतोया, २ संख इव निरंगणा, ३ जीवो इव अप्पडिहयगई, ४ जच्चकणगमिव जायरूवा, ५ (आदरिसफलगा इव पायडभावा) कुम्मो इव गुत्तिंदिया, ६ पुक्खरपत्तं व निरुवलेवा, ७ गगणमिव निरालंबणा, ८ अणिलो इव निरालया, ९ चंदो इव सोमलेस्सा, १० सूरो इव दित्ततेया, ११ सागरो इव गंभीरा, १२ विहग इव सव्वओ विप्पमुक्का, १३ मंदर इव अप्पकंपा, १४ सारयसलिलं व सुद्धहियया, १५ खग्गिविसाणं व एगजाया, १६ भारंडपक्खी व अप्पमत्ता, १७ कुंजरो इव सोंडीरा, १८ वसभो इव जायत्थामा, १९ सिंहो इव दुद्धरिसा, २० वसुंधरा इव सव्वफासविसहा, २१ सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलंता, नत्थिणं तेसिणं भगवंताणं कत्थइ पडिबंधे

भवइ ।·······तेणं भगवंतो····वासीचंदणसमाणकप्पा समलेट्ठुकंचणा समसुह-दुक्खा इहलोग परलोगअप्पडिबद्धा संसारपारगामी कम्मणिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिया विहरंति ।

— औपपातिक-समवसरणाधिकार

श्रमण भगवान् महावीर के बहुत से अनगार भगवंत ईर्यासमिति-युक्त हैं, ममत्वरहित हैं, अकिंचन हैं, छिन्नग्रन्थ हैं, छिन्नश्रोत हैं, निरुपलेप हैं एवं इक्कीस उपमाओं से उपमित हैं। १ वे कांस्यपात्रवत् स्नेहमुक्त हैं, २ शंख के समान उज्ज्वल (रागादिरंगरहित) हैं, ३ जीव के समान अप्रतिहत-गतिवाले हैं, ४ अन्य कुधातुओं के मिश्रण से रहित सोने के समान जातरूप लिए हुए चारित्र को निरतिचार रखनेवाले हैं, ५ (दर्पणपट्ट के समान निर्मलभाववाले हैं), कच्छप के समान गुप्तेन्द्रिय हैं, ६ कमलपत्रवत् निर्लेप हैं, ७ आकाश के समान निरालंबन हैं, ८ वायु के समान निरालय (अप्रतिबद्धविहारी) हैं, ९ चन्द्रमावत् सौम्यकान्तिवाले हैं, १० सूर्य के समान दीप्ततेजवाले हैं, ११ सागरवत् गंभीर हैं, १२ पक्षी के समान पूर्णतः विप्रमुक्त हैं, १३ मेरुपर्वत के समान अडोल हैं, १४ शरद्ऋतु के जल के समान शुद्धहृदयवाले हैं, १५ गैंडे के सींग के समान एकजात अर्थात् रागादिभावरहित एकाकी हैं, १६ भारण्डपक्षी के समान अप्रमत्त हैं, १७ हाथी के समान शूर-कामादि भावशत्रुओं को जीतने में समर्थ हैं, १८ वृषभ के समान जातस्थाम-धैर्यवान हैं, १९ सिंह के समान दुर्धर्ष-परीषहादिमृगों से नहीं हारनेवाले हैं, २० पृथ्वी के समान शीत-उष्ण आदि सभी स्पर्श को सहन करनेवाले हैं, २१ घृत आदि से अच्छी तरह हवन की हुई अग्नि के समान (ज्ञान और तपरूप) तेज से जाज्वल्यमान हैं। उनके कहीं प्रतिबन्ध नहीं होता···।

वे अनगार भगवंत चाहे वसोले से काटे जाएँ, चाहे चन्दन से चर्चे जाएँ, समभाव रहते हैं। मिट्टी के ढेले एवं कंचन के प्रति समानवृत्ति रखते हैं। सुख-दुःख में समान रहते हैं।.... इहलोक-परलोक के विषय में प्रतिबन्धरहित हैं। संसार के पारगामी हैं एवं कर्मों को क्षय करने के लिए उद्यत होकर विहार करते हैं।

१२ भिक्षु

१. संसारे भयं इक्खतीति-भिक्खु।

—विसुद्धिमग्गो १।७

जो संसार में भय देखता है—वह भिक्षु है।

क. पंच य फासे महव्वयाइं, पंचासवसंवरे जे स भिक्खू। (५)

जो पांच महाव्रतों का पालन करता है एवं मिथ्यात्व आदि पांच आस्रवों को रोकता है, 'वह भिक्षु' है।

ख. सच्चित्तं नाहारए जे स भिक्खू। (३)

जो कभी बीजादि सचित्त का आहार नहीं करता, वह 'भिक्षु' है।

ग. समसुह-दुक्खसहे य जे स भिक्खू। (११)

जो सुख-दुख को समभाव से सहन करता है, वह 'भिक्षु' है।

घ. तवे रए सामणिए जे स भिक्खू। (१४)

—दशवैकालिक १०

जो तप और संयम में रक्त होता है, वह 'भिक्षु' है।

२. मणवयकायसुसंवुडे स भिक्खू।

—उत्तराध्ययन १५।१२

मन-वचन-काया से जो संवृत है, वह 'भिक्षु' है।

३. से वंता कोहं च माणं च, मायं च, एयं पासगस्स दंसणं।

—आचारांग ३।४

मुमुक्षु—क्रोध-मान-माया-लोभ का वमन-त्याग करनेवाला होता है, यह सर्वज्ञ-भगवान् की मान्यता है।

४. खंतो अ मद्दवऽज्जव-विमुत्तया तह अदीणया-तितिक्खा।
आवस्सगपरिसुद्धि अ, होंति भिक्खुस्स लिंगाइं॥
—दशवैकालिक-निर्युक्ति ३४९

क्षमा, विनम्रता, सरलता, निर्लोभता, अदीनता, तितिक्षा और आवश्यकक्रियाओं की परिशुद्धि—ये सब भिक्षु के वास्तविक चिन्ह हैं।

५. इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं बारस भिक्खुपडिमाओ, पन्नत्ताओ। —भगवती २।१

स्थविर-भगवन्तों ने बारह भिक्षुप्रतिमायें—साधुओं की प्रतिज्ञायें कही हैं—१ मासिकी, २ द्विमासिकी, ३ त्रिमासिकी, ४ चातुर्मासिकी, ५ पंचमासिकी, ६ षणमासिकी, ७ सप्त-मासिकी, ८ प्रथमासप्तरात्रिदिवा, ९ द्वितीया सप्तरात्रिदिवा, १० तृतीयासप्तरात्रिदिवा, ११ अहोरात्रिदिवा, १२ एक रात्रि की।

१३ श्रमण (समण)

१. श्राम्यतीति श्रमणस्तथा सम इति शत्रु-मित्रादिषु प्रवर्तते इति समण : (अण् प्रत्ययः)

—स्थानांग ४।४ टीका

श्रम-तपस्या करता है अतः वह 'श्रमण' है। तथा शत्रु-मित्रादिक पर समभाव रखता है, इसलिए वह 'समण' है. यहां अण् प्रत्यय: हुआ है।

२. तो समणो जइ सुमणो, भावेण य जइ ण होइ पावमणो।
सयणे असयणे अ समो, समो अ माणावमाणेसु ॥

—अनुयोगद्वार १३२

जो मन से सु-मन (निर्मल मनवाला) है, संकल्प से भी कभी पापोन्मुख नहीं होता, स्वजन तथा अस्वजन में, मान एवं अपमान में सदा सम रहता है, वह समण होता है।

३. जह मम ण पियं दुक्खं, जाणिअ एमेव सव्वजीवाणं।
न हणइ न हणावेइ, सममणइ तेन सो समणो ॥

—अनुयोगद्वार १२९

जैसे—मुझे दुःख प्रिय नहीं लगता, वैसे दूसरों को भी नहीं लगता। यों जानकर जो किसी भी जीव को न मारता है, न मरवाता है एवं समभाव से रहता है, वह श्रमण है।

४. उरग-गिरि-जलण-सागर-नहतल-तरुगण-समो य जो होइ।
भमर-मिय-धरणि-जलरुह-रवि-पवणसमो य सो समणो॥
—अनुयोगद्वार ५

श्रमण वह है, जो सर्पवत् परकृत निवास में रहता है, परीषहों में पर्वतवत् निष्प्रकम्प रहता है। अग्निवत् तप के तेज से युक्त होता है एवं सूत्रार्थरूप ईंधन से तृप्त नहीं होता। समुद्रवत् गम्भीर, ज्ञानादि रत्नों का घर एवं अपनी मर्यादा को नहीं तोड़नेवाला है। आकाशवत् निरालम्बी होता है। वृक्षसमूहवत्-सुख-दुःख में समभाव होता है। भ्रमरवत् अनियतवृत्ति से जीवननिर्वाह करता है। मृगवत् संसार से भयभीत रहता है। पृथ्वीवत् सब कुछ सहन करता है। सूर्यवत् सबको समानरूप से प्रकाश देता है। कमलवत् निर्लेप रहता है एवं पवनवत् अप्रतिबद्धविहारी होता है।

-:-

१५ निर्ग्रन्थ

१. ग्रन्थ: कर्माष्टविधं, मिथ्यात्वाविरतिदुष्टयोगाश्च ।
तज्जयहेतोरशठं, संयतते यः स निर्ग्रन्थः ।।
—प्रशमरति १४२

आठ कर्म, मिथ्यात्व, अव्रत और दुष्टयोग—ये ग्रन्थ कहलाते हैं। जो इन्हें जीतने के लिए सरलभाव से प्रयत्न करता है, वह निर्ग्रन्थ है।

२. आगमबलिया समणा निग्गंथा ।
—व्यवहारसूत्र १०

श्रमण-निर्ग्रन्थों का बल 'आगम' (शास्त्र) ही है।

३. पंचासवपरिण्णाया, तिगुत्ता छसु संजया ।
पंचनिग्गहणा धीरा, निग्गंथा उज्जुदंसिणो ।।११।।
आयावयंति गिम्हेसु, हेमन्तेसु अवाउडा ।
वासासु पडिसंलीणा, संजया सुसमाहिया ।।१२।।
परीसहरिऊदंता, धूयमोहा जिइंदिया ।
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो ।।१३।।
—दशवैकालिक अ० ३

निर्ग्रंथ मुनि पांच आस्रवों को त्यागनेवाले, तीन गुप्तियों से गुप्त, छः काय के जीवों के प्रति संयमी, पांच इन्द्रियों का

निग्रह करनेवाले, धीर एवं सरलदृष्टि द्वारा देखनेवाले होते हैं ।।११।।

सुसमाधिस्थ संयमी मुनि ग्रीष्मकाल में सूर्य की आतापना लेते हैं। शीतकाल में अल्पवस्त्रधारी होते हैं। वर्षाऋतु में प्रतिसंलीन-इन्द्रियों को वश करके एक स्थान पर रहते हैं ।।१२।।

महर्षि निर्ग्रन्थ परीषह-शत्रुओं को जीतनेवाले, धूतमोह एवं जितेन्द्रिय होते हैं तथा सर्वदुःखों के विनाशार्थ पराक्रम करते हैं ।।१३।।

४. समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे निग्गंथा भगवंतो अप्पेगइया आभिणिबोहियणाणी जाव केवल-णाणी, अप्पेगइया मणबलिया वयबलिया कायबलिया, अप्पेगइया मणेणं सावाणुग्गहसमत्था २,अप्पेगइया खेलो-सहिपत्ता एवं जल्लोसहि०,विप्पोसहि,आमोसहि०,सव्वो-सहिपत्ता अप्पेगइया कोट्ठबुद्धी एवं बीयबुद्धी पडबुद्धी, अप्पेगइया पयाणुसारी अप्पेगइया संभिन्नसोया,अप्पेगइया खीरासवा,अप्पेगइया महुआसवा,अप्पेगइया सप्पिआसवा, अप्पेगइया अक्खीणमहाणसिया एवं उज्जुमई, अप्पेगइया विउलमई विउव्वणिड्ढिपत्ता चारणा विज्जाहरा आगासाइवाइणो ।। अप्पेगइया कणगावलिं तवोकम्मं पडिवण्णा एवं एगावलिं खुड्डागसीहनिक्कीलियं तवो-कम्मं पडिवण्णा....संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति । —औपपातिक समवसरणाधिकार

श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी अनेक निर्ग्रन्थ भगवन्त, जिनमें कई एक मतिज्ञानी हैं यावत् कई केवलज्ञानी हैं। कई मनोबली, वचनबली एवं कायबली हैं, तो कई मन, वचन एवं काया से शाप और अनुग्रह की क्रिया करने में समर्थ हैं। कई खेल्लोषधिलब्धिवाले हैं तो कई जल्लौषधि, विपुडोषधि, आमर्षौषधि, और सर्वौषधिलब्धिवाले हैं। कई कोष्ठक बुद्धिवाले हैं तो कई बीजबुद्धि और पटबुद्धिवाले हैं। कई पदानुसारिणी लब्धिवाले हैं तो कई सभिन्नश्रोतलब्धि-वाले हैं। कई क्षीरमधुसर्पिराश्रवलब्धिवाले हैं तो कई ऋजुमति, विपुलमति एवं विकुर्वणऋद्धिवाले हैं। कई चारण एवं विद्याधर हैं तो कई आकाश में गमन करनेवाले हैं। कई कनकावली तप कर रहे हैं तो कई एकावली, लघुसिंह-निष्क्रीड़ित आदि तप में लीन हैं।" इस प्रकार संयम-तप से आत्मा को भावित करते हुए विहार कर रहे हैं।

५. पंच णियंठा, पण्णत्ता, तं जहा—
पुलाए, बउसे, कुसीले, नियंठे, सिणाए।

—स्थानांग ५।३।४४५

निर्ग्रन्थ पाँच प्रकार के होते हैं—

(१) **पुलाक**—साररहित धान्य को पुलाक कहते हैं। तप और ज्ञान से प्राप्त लब्धि के प्रयोग द्वारा बल-वाहन सहित चक्रवर्ती आदि का मानमर्दन करने से तथा ज्ञानादि के अतिचारों का सेवन करने से जिनका संयम पुलाकवत् सार-रहित हो, वे पुलाकनिर्ग्रन्थ कहलाते हैं।

(२) **बकुश**—बकुश शब्द का अर्थ चित्र (चीते जैसा) वर्ण है। शरीर एवं उपकरणों की शोभा-विभूषा करके उत्तरगुणों

में दोष लगाने से जिनका चारित्र चित्रवर्ण (दोषों के दाग-वाला) होगया है, वे बकुशनिर्ग्रन्थ कहलाते हैं।

(३) **कुशील**—मूल व उत्तर गुणों में दोष लगाने से तथा संज्वलन कषाय के उदय से जिनका शील-चारित्र कुत्सित व दूषित हो गया है, वे साधु कुशीलनिर्ग्रन्थ कहलाते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं—प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील।

(४) **निर्ग्रन्थ**—ग्रन्थ का अर्थ यहाँ मोह है। जो साधु मोह से रहित हैं, उन्हें निर्ग्रन्थ कहते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं—उपशान्तमोहवाले एवं क्षीणमोहवाले। दोनों क्रमशः ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थान में निवास करते हैं।

(५) **स्नातक**—स्नान किये हुए को स्नात या स्नातक कहते हैं। शुक्लध्यान द्वारा समस्त घातिककर्मों को खपाकर जो शुद्ध हो गये हैं (नहा लिये हैं), वे मुनि स्नातक-निर्ग्रन्थ कहलाते हैं।

●

१५ स्थविर

१. सन्मार्ग से गिरते हुए मनुष्य को स्थिर करनेवाले व्यक्ति **स्थविर** कहलाते हैं।

२. दसविहा थेरा पण्णत्ता, तं जहा—गामथेरा, णगरथेरा, रट्ठथेरा, पसत्थथेरा, कुलथेरा, गणथेरा, संघथेरा, जाइथेरा, सुयथेरा, परियायथेरा।

—स्थानांग १०।७६१ तथा समवायाङ्ग १०

स्थविर दस प्रकार के कहे हैं—(१) ग्रामस्थविर, (२) नगर-स्थविर, (३) राष्ट्रस्थविर, (४) प्रशास्तृस्थविर, (५) कुल-स्थविर, (६) गणस्थविर, (७) संघस्थविर, (८) जातिस्थविर, (९) श्रुतस्थविर, (१०) पर्यायस्थविर।

३. समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे थेरा भग-वंतो जाइसंपण्णा कुलसंपण्णा बलसंपण्णा रूवसंपण्णा विणयसंपण्णा णाणसंपण्णा दंसणसंपण्णा चरित्तसंपण्णा लज्जासंपण्णा लाघवसंपण्णा, ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जसंसी, जियकोहा जियमाणा जियमाया जियलोभा जिय-इंदिया जियणिद्दा जियपरीसहा, जीवियासमरणभय-विप्पमुक्का, वयप्पहाणा ...मंतप्पहाणा वेयप्पहाणा बंभ-

प्पहाणा नयप्पहाणा नियमप्पहाणा सच्चप्पहाणा सोय-प्पहाणा........सुसामण्णरया दंता इणमेव णिग्गंथं पाव-यणं पुरओ काउं विहरंति। तेसि णं भगवंताणं आया-वायावि विदिता भवंति,परवाया विदिता भवंति,आयावायं जमइत्ता नलवणमिव मत्तमायंगा अच्छिद्दपसिणवागरणा रयणकरंडगसमाणा कुत्तियावणभूया परवादियपमद्दणा दुवालसंगिणो समत्तगणिपिडगधरा...... ....अजिणा जिणसंकासा, जिणा इव अवितहं वागरमाणा संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

श्रमण भगवान् महावीर के अंतेवासी बहुत से स्थविर भगवंत जातिसंपन्न हैं तथा कुल, बल, रूप, विनय, ज्ञान, दर्शन, चारित्र लज्जा, एवं लाघवसंपन्न हैं। ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी और यशस्वी हैं एवं क्रोध-मान आदि को जीतनेवाले हैं। वे जीवि-ताशा और मरणभय से विप्रमुक्त हैं। व्रत,गुण,करण,चरण,निग्रह, निश्चय, आर्जव, मार्दव, लाघव, क्षान्ति, मुक्ति, विद्या, मन्त्र, वेद, ब्रह्म नय, नियम, सत्य और शौच में प्रधान-श्रेष्ठ हैं।.... वे श्रमणत्व में रक्त हैं, दान्त हैं और इस निर्ग्रन्थप्रवचन को आगे करके विचर रहे हैं। जिन्हें आत्मवाद (स्वसिद्धान्त) और परवाद (अन्यमत के सिद्धान्त) विदित हैं आत्मवाद को हृदय में रमाकर नलवन में मत्त हाथी की तरह ज्ञानवन में रमण कर रहे हैं, जटिल से जटिल प्रश्नों का सरलता से उत्तर देने में समर्थ हैं। वे रत्नकरण्ड के समान हैं, कुत्रिकापण

जैसे हैं¹, परवादियों का प्रमर्दन करनेवाले हैं। द्वादशाङ्ग के ज्ञाता हैं, समस्त गणिपिटक के धारक हैं।......जिन न होकर भी जिन के समान हैं और जिनके तुल्य अवितथ-सत्यवाणी वागरते हुए संयम-तप से आत्मा को भावित करते हुए विहार कररहे हैं।

---

१ कु-पृथ्वी, त्रिक-तीन, आपण-दुकान अर्थात् स्वर्ग, मर्त्य, पातालरूप तीनों पृथ्वियों में उपलब्ध होनेवाली सब वस्तुएँ जिस दुकान में मिल सकती हों, उस दुकान को **कुत्रिकापण** कहते हैं। पुराने जमाने में ऐसी देवाधिष्ठित दुकानें बड़े शहरों में हुआ करती थीं। वहाँ स्थविरों को कुत्रिकापण की उपमा देने का मतलब यह है कि उनके पास कुत्रिकापण की तरह हर एक प्रकार के ज्ञान का अद्भुत संग्रह होता है।

१६

तापस

१. स तापसो यो परतापकर्षणः।

वास्तव में तापस वही है, जो दूसरों का संताप दूर करे।

२. तवेण होइ तावसो। —उत्तराध्ययन २५।३२

तप करने से तापस होता है।

३. कुसचीरेण न तावसो। —उत्तराध्ययन २५।३१

वल्कलादि वस्त्रमात्र पहनने से तापस नहीं होता।

फकीर

१. **फकीर का अर्थ—**

फे-फाका(तपस्या),काफ-कनायत(फाके पर भरोसा),इये-याद इलाही, (पल-पल में प्रभु का स्मरण), रे-रियायत-संयम में रहना। (फे-काफ-इये-रे=फकीर) अर्थ यह है कि जो तपस्या करता है एवं उसमें भरोसा रखता है तथा प्रभु का स्मरण करता हुआ संयम में रहता है, वह फकीर है।

२. फिक्र छांड़ फराकमल धर चित्त आतम धीर,
दया कफन पहने फिरे, ताको नाम फकीर।

३. फिकर फिकर को खात है, फिकर फिकर का पीर,
फिकर का जो फाका करे, ताको नाम फकीर॥

४. फकीर सोही फरक्क रहे, नहि संग करे विषयी-जन केरा,
आप हवाल में मस्त रहे,वाढ़ी बाग बजार मसीत में डेरा।
आप उपाय न छावत छप्पर, होत खुशी जहां लेत बसेरा,
'रामचरण' खुदा भख भंजन,वार गिने नहि सांझ-सवेरा॥

५. मेड़िय मंदिर छांड़ के क्यूं बन,
बांधत झूंपड़ी फूस-तटिदा,
लूखड़ी-सूकड़ी खाय रहो,
काला मुंह करो तुम खाट मटिदा।

रूप उन्हों कूं हि लोढिए जो कोई,
नारी का आसक्त होय लटिंदा।
फकीरी का राह कठिन है,
उलों पग धरतां निकले दूध छटिंदा।

—भाषाश्लोकसागर

६. गिहं न छाए णापि छायएज्जा। —सूत्रकृतांग १०।१५

साधु स्वयं न छप्पर छाए और न दूसरे से छवाए।

७. आरा शहर में मुहम्मद असतबी कलेक्टर ने एक फकीर से पूछा—अच्छे साधु कहाँ देखे ?

फकीर—कुंभ के मेले में।

कलेक्टर—मुसलमान होकर कुंभ का नाम कैसे ?

फकीर—जैसे ऊपर चढ़े व्यक्ति की दृष्टि में छोटे-बड़े सभी वृक्ष एक समान होते हैं, उसी प्रकार जिसका मन संसार से ऊपर उठ गया है, उसके दिल में हिन्दु-मुसलमान का भेद नहीं रहता।

१. वदनं प्रसादसदनं, सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः ।
करणं परोपकरणं, येषां केषां न ते वन्द्याः !

जिनका वदन आनन्द का सदन है, हृदय दयासहित है, वाणी अमृतवर्षिणी है और इन्द्रियां परोपकारिणी हैं—ऐसे सन्त पुरुष किसके वन्दनीय नहीं होते ।

२. सन्तोऽनपेक्षा मच्चित्ताः, प्रशान्ताः समदर्शिनः ।
निर्ममा निरहंकारा, निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ।।

—भागवत ११।२६।२७

संत जब किसी प्रकार की इच्छा नहीं करते. वे मुझमें ही चित्त लगाए रहते हैं तथा अतिनम्र, समदर्शी, ममत्वरहित, अहंकाररहित, निर्द्वन्द्व एवं निष्परिग्रह होते हैं ।

३. मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं,
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ।।

—भर्तृहरि-नीतिशतक ६९

जिन के मन-वचन-काया धर्म-अमृत से पूर्ण है, जो तीनों ही लोकों को अपने उपकार से तृप्त कर रहे हैं तथा जो दूसरों के परमाणु जितने छोटे गुणों को भी पर्वत जितना बड़ा करके मन में खुश हो रहे हैं, ऐसे-सन्त कितने-क हैं ?

४. स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः । —श्रीमद्भागवत १।१६।८

साधु स्वयं तीर्थों को पवित्र करते हैं।

५. संत हृदय नवनीत समाना,
कहा कविन्ह पै कहै न जाना।
निज परिताप द्रवइ नवनीता,
पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

—रामचरितमानस

६. गङ्गा पापं शशी तापं, दैन्यं कल्पतरुर्यथा।
पापं तापं च दैन्यं च, हन्ति सन्तो महाशयाः॥

—चंदचरित्र, पृ० १०६

गंगा पाप का, चन्द्रमा ताप का और कल्पवृक्ष दीनता का नाश करता है, किन्तु महामना संतपुरुष पाप, ताप एवं दीनता—इन तीनों का ही नाश करते हैं।

७. कोउक निन्दत कोउक वन्दत,
कोउक भावसों देत है भच्छन।
कोउ कहत्त ये मूरख दीसत,
कोउ कहत्त ये चतुर-विचच्छन।
कोउक आय लगावत चन्दन,
कोउक डारत है तन तच्छन।
सुन्दर! काहू पै राग न रोष सो,
ये सब जानिये सन्त के लच्छन।

८. सज्जन ऐसा होइए, जैसा बन का कैर।
ना कहूं सों दोस्ती, ना काहूं सों वैर॥

९. संतां ! हेत जु राखिये, पातलवाली प्रीति ।
जीम्यां पाछे फेंक दे, या सन्तन की रीत ॥

१०. भावे लंबे केश रख, भावे मुंड मुंडाव ।
साहिब से सच्चे रहो, बन्दे से सदभाव ॥

—नानक

११. जैसे—सत्ताधारी पुरुषों की वाणी से सत्ता एवं गृहिणियों को वाणी से प्रेम झलकता है। उसी प्रकार सन्तों की वाणी से त्याग-वैराग्य-पवित्रता एवं आत्मबल प्रकट होता है और श्रोताओं पर अवश्य प्रभाव पड़ता है।

●

१६ कतिपय जगत्प्रसिद्ध संत-महात्मा

१. श्रमण भगवान महावीर—

जैन-सिद्धान्तानुसार आप चौबीस तीर्थङ्करों में से अंतिम तीर्थंकर थे। इस समय आपका ही शासन चल रहा है।

आप का जन्म क्षत्रियकुंड नगर में चैत्र शुक्ला १३ को हुआ था। माता का नाम त्रिशला और पिता का नाम सिद्धार्थ था। जबसे आप गर्भ में आये तभी से उत्तरोत्तर अन्न-धनादि की वृद्धि होने लगी। अतः पिता ने आपका नाम **वर्द्धमान** रखा। युवावस्था प्राप्त होने पर, यशोदा नाम की राजकन्या से आपका विवाह हुआ।

जब आप तपस्यार्थ वन की ओर जाने लगे, तब इन्द्र ने आपको छद्मस्थ-अवस्था में उपसर्गों से सुरक्षित रहने में सहायता देना चाहा; पर आपने कहा—मुझे किसी दूसरे का सहारा नहीं चाहिए। सुनकर इन्द्र चकित हुआ और आपको **'महावीर'** के नाम से संबोधित किया।

आपका तपस्याकाल बहुत लम्बा चला—१२ वर्ष १३ पक्षों में आपने केवल ११ मास २० दिन आहार लिया। आपके तपस्याकाल में बड़े-बड़े उपसर्ग आए, परन्तु आप मेरुवत् अचल रहे। आखिर कर्म-शत्रु हारे और वैशाख शुक्ला १० को आप केवलज्ञानी बने।

आपने धर्म-मार्ग में गुण और कर्म को ही मुख्य माना और 'अहिंसा' को 'परमधर्म' घोषित किया। ३० वर्ष तक धर्म का प्रचार करने के पश्चात् आपका निर्वाण कार्तिक कृष्णा अमावस्या को हुआ।

—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र के आधार पर।

२. महात्मा बुद्ध—

ये माया माता और शुद्धोधन राजा के पुत्र थे। इनका नाम सिद्धार्थ राजकुमार था एवं इनकी स्त्री यशोधरा थी। वृद्ध पुरुष को देखकर वैराग्य हुआ। फिर एक बीमार पुरुष को देखा तथा मार खाते हुए बैल को देखा। फिर चींटियों को खाती हुई छिपकली एवं उसको निगलता हुआ साँप,उस पर झपटती हुई चील और उसे मारते हुए शिकारी को देखा एवं वैरागी बनकर नवजात पुत्र 'राहुल' और उसकी माता 'यशोधरा' को छोड़कर, रात के समय उठकर चल पड़े। ज्ञानी बनकर चार आर्य सत्यों का एवं आर्यअष्टांगमार्ग का उपदेश दिया—

आर्यसत्य:—(१) वस्तु क्षणिक है-दुःखरूप है। (२) तृष्णा दुःख का मूल है। (३) तृष्णा-नाश से दुःख का नाश होता है। (४) रागद्वेष-अहंकार के नाश से निर्वाण होता है।

आर्यअष्टांगमार्ग:—(१) सत्यविश्वास, (२) नम्रवचन, (३) उज्ज्वलक्ष्य,(४) सदाचरण,(५) सद्वृत्ति, (६) सद्गुणों में स्थिर रहना, (७) बुद्धि का सदुपयोग, (८) सद्ध्यान।

महात्मा बुद्ध ने जातिवाद एवं हिंसा का विरोध किया। एक बार राजा बिम्बिसार के यहाँ पशुयज्ञ हो रहा था। बुद्ध आकर बीच में खड़े हो गये। हिंसा

रुकी, राजा समझा। एक बार एक राक्षस इन्हें मारने दौड़ा। बुद्ध शान्त रहे। राक्षस कबूतर के रूप में परिवर्तित हुआ।

—कल्याण संतअंक के आधार से।

३. पारसी-धर्म के संस्थापक महात्मा 'जरथुश्त्र'—

ईसा से लगभग ६०० वर्ष पहले पूर्वी ईरान के राए शहर में माडिया नाम की जाति के मगी नामक गोत्र में इनका जन्म हुआ। इनके वंश का नाम स्पितमा (ज्योतिर्मय), माता का नाम दोग्दा और पिता का नाम पौरुशास्प था।

कहा जाता है कि इनके जन्म से पूर्व ही अत्याचारी बादशाह और सरदारों को अपशकुन होने लगे। उन्होंने इनको मारने के अनेक उपाय किये, इन्हें जलती हुई आग में डाला गया, पर आग बुझ गई, बाघों के झुण्ड में फेंका गया, पर उनके जबड़े ही जकड़ गये और वे जीवित रह गये। ये १५ वर्ष की आयु में तपस्या के लिए जंगल में आ बैठे। १५ वर्ष तक कठोर तपस्या करके इन्होंने कामादि-शत्रुओं पर विजय पाई और "जरथुश्त्र" (सुनहरी रोशनीवाले) के नाम से प्रसिद्ध हो गये। फिर ये सच्चिदानंद-स्वरूप ईश्वर की आराधना और मानव-सेवा का प्रचार करने लगे।

प्रारम्भ में लोगों ने इनकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया, पर जब बल्ख के बादशाह गोश्ताश्प ने इन्हें आमन्त्रित किया और इनका उपदेश स्वीकार किया तब दूसरे लोग भी काफी संख्या में इनको मानने लगे।

सतहत्तर वर्ष की आयु में प्रार्थना करते समय कतिपय विरोधियों द्वारा इन पर आक्रमण हुआ इन्होंने प्रसन्नतापूर्वक

अपने आपको धर्म की वेदी पर चढ़ाते हुए विरोधियों से कहा—'होरमज्द' (ईश्वर) तुम्हें क्षमा करे। पारसीधर्म में वैदिकधर्म की तरह ज्ञान, भक्ति और कर्म-तीनों मार्ग अपनाये गये हैं, पर विशेषबल कर्म-मार्ग पर दिया गया है। यदि एक ही शब्द में कहें तो इस धर्म का सार है **परोपकार**।

—कल्याण संतअंक तथा

'पारसीधर्म क्या कहता है ?' के आधार से।

४. महात्मा ईसामसीह :—

इनका जन्म वि० सं० ५७ में फिलस्तीन की राजधानी **यरूसलम** से ६ मील दूर **बेथलहम** नगर के एक बढ़ई परिवार में हुआ था। माता का नाम **मरियम** और पिता का नाम **यूसुफ** था। बचपन से ही ईसा में अनेक दैविकगुणप्रकट हो गये थे। १२ वर्ष की आयु में तो ये यरूसलम के बड़े-बड़े विद्वानों से ज्ञान-चर्चा करने लग गये थे।

३० साल की आयु में ये जोर्डन नदी के किनारे **यूहन्ना** (जान) नामक एक महात्मा के पास उपदेश सुनने गये। यूहन्ना का उपदेश था—सबके साथ प्रेम से रहो। दूसरों का माल मत छीनो। जो कुछ मिला है, उसी में सन्तुष्ट रहो। गरीबों को मत सताओ। यदि तुम्हारे पास दो कोट हैं तो एक उसे दे दो, जिसके पास न हो। अगर तुम्हारे पास खाने को है तो उसे खिला दो, जिसके पास खाने को कुछ भी नहीं है। अच्छी करनी करो और अपना जीवन बदलो।

ईसा को यूहन्ना का उपदेश बहुत पसंद आया और ये उनके शिष्य बन गये। फिर ये समाज में फैली हुई गलतप्रथाओं का विरोध करते हुए सत्य, दया, दान, क्षमा आदि मानव-

धर्मों का प्रचार करने लगे। यह प्रचार कतिपय रूढ़िवादी यहूदियों को असह्य हो गया। उन्होंने इन पर ऐसे मिथ्या अभियोग लगाये जिसके कारण इन्हें प्राणदण्ड दिया गया। सूली पर चढ़ने से पूर्व इनकी प्रार्थना थी—"प्रभो! इन लोगों को क्षमा कीजिए, ये बेचारे नहीं जानते कि हम क्या कर रहे हैं?"

ईसा के साइमन (पीटर) आदि १२ मुख्य शिष्य थे। ईसाई-धर्म और इस्वी सन् के प्रवर्त्तक ईसा ही थे। ईसाई धर्म का मुख्य तत्त्व है :

Love is God, God is Love.

अर्थात् प्रेम ही ईश्वर है और ईश्वर ही प्रेम है।

—कल्याण संतअंक, तथा
'ईसाईधर्म क्या कहता है?' के आधार से।

५. सुकरात—

ईसा से पूर्व पांचवीं सदी के उत्तरार्ध में यूनान में इनका जन्म हुआ। पिता सिलावट थे एवं माता दाई का काम करती थी। बचपन से ही ये पढ़ने में तेज थे। इन्होंने महात्माओं से ज्ञान एवं जजों-वकीलों से तर्क-शक्ति बढ़ाई। क्रोध को विशेषरूप से जीता और राजधानी एथेंस में धर्म-प्रचार करने लगे।

उस समय सूफीसंतों का वहां बड़ा जोर था। वे लौकिक-प्रेम की गाथाओं के माध्यम से लोगों को ईश्वर-प्रेम की ओर आकृष्ट करने का स्वांग रचते थे। परन्तु वस्तुतः परमार्थसत्ता के वास्तविक ज्ञान का उनमें अभाव ही था। सुकरात के प्रभाव से उन लोगों का प्रभाव शनैः शनैः क्षीण होने लगा।

सुकरात को मनुष्य की अल्पज्ञता का भी पूरा भान हो चुका था। उनका यह प्रसिद्ध वाक्य था—I Know that I Know nothing अर्थात् मेरा ज्ञान तो यही बतलाता है कि मैं कुछ नहीं जानता। इनके आत्मवाद का युवकों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा, किन्तु राज्याधिकारी विरुद्ध हो गये और उन्होंने इन पर निरीश्वरवादिता का अभियोग लगाकर इन्हें मृत्युदंड के रूप में जहर का प्याला दे दिया, जिसे ये हँसते-हँसते पी गए।

—कल्याण संतअंक के आधार से।

६. महात्मा डायोजिनीज—

डायोजिनीज ग्रीस के एक महान् तत्त्ववेत्ता संत थे। जीवन के बाह्यव्यवहारों के प्रति लापरवाह होकर ये बाजार में पड़े हुए एक काठ के पीपे में ही मस्त पड़े रहते थे। शाह सिकन्दर एकबार इनके दर्शनार्थ आया और अपनी महानता दिखलाता हुआ बोला :—

सिकन्दर– मैं महान विजेता सिकन्दर हूँ।

महात्मा—मैं सिनिक (अवधूत) डायोजिनीज हूँ।

सिकन्दर—मैं सारी दुनियाँ को मुट्ठी में रखता हूँ।

महात्मा—मैं सारी दुनियां के लात मारता हूँ!

सिकन्दर– आप, मैं चाहूं उससे ज्यादा नहीं जी सकते।

महात्मा—तू चाहे या न चाहे, मुझे अवश्य मरना है।

सिकन्दर—आप चाहें सो मांग सकते हैं।

महात्मा—मेरे सामने की धूप छोड़कर दूर हो जाओ।

महात्मा की निःस्पृहता से प्रभावित होकर सिकन्दर ने कहा—"अगर सिकन्दर-सिकन्दर न होता तो ग्रीस का तत्त्ववेत्ता डायोजिनीज होता।"

—कल्याण संतअंक एवं श्रुति के आधार से।

७. मार्टिन लूथर—

जर्मनी (यूरोप) में एक किसान के घर सन् १४८३ ई० में इनका जन्म हुआ। वकालत पढ़े। धर्म की तरफ झुकाव अधिक था।

उन दिनों रोम के पोप (धर्मगुरु) सारे यूरोप में ईश्वरवत् पूजे जाते थे। उनका यह कहना था कि बड़े से बड़ा पापी भी हमारा सर्टीफिकेट (मुक्तिपत्र) लेने से स्वर्ग-गामी बन जाता है। श्रद्धालु लोग धन देकर पोपों से 'मुक्ति-पत्र' लेने लगे। पाप-अत्याचार की वृद्धि होने लगी। लूथर ने लोगों को पोपलीला का रहस्य समझाते हुए कहा—सत्य, अहिंसा आदि के बिना इन कागज के टुकड़ों से कल्याण कभी नहीं होगा। लोग समझे एवं 'प्रोटेस्टेंट' मत चला। पोप क्रुद्ध हुए तथा इन्हें जीवित जला देने की आज्ञा दी। लूथर बच निकले और प्रोटेस्टेंट धर्म का प्रचार करते हुए ६० वर्ष की आयु में परलोकगामी हुए।

—अध्ययन के आधार पर।

८. महर्षि वाल्मीकि—

इनका मूल नाम अग्निशर्मा था। डाकुओं के संसर्ग में रहकर ये लूटमार और हत्याएँ करने लगे। एक दिन इन्होंने सप्त-ऋषियों पर भी आक्रमण कर दिया। ऋषियों ने पूछा भाई! यह पाप किसके लिए कर रहे हो? इन्होंने कहा—घरवालों के लिए। ऋषि बोले—क्या वे पाप के फल भोगने में हिस्सा ले लेंगे? इन्होंने माता-पिता, स्त्री आदि से पूछा तो

उन सबने इन्कार कर दिया। तब ये रोते-रोते आकर ऋषियों के चरणों में पड़ गये और उनके उपदेश से इनके ज्ञान-नेत्र खुल गये। सप्तऋषियों ने रामनाम का मंत्र दिया। ये एक ही जगह बैठकर रामराम जपते रहे। इनका शरीर दीमकों का घर बन गया। (दीमकों के घर को वल्मीक कहते हैं) तेरह वर्ष बाद, ऋषि वहाँ वापिस आये और इनको वल्मीक से निकाला। वल्मीक से निकलने के कारण इनका नाम वाल्मीकि हुआ। ये ही वाल्मीकिऋषि आदिकवि के नाम से प्रख्यात हैं।

(स्कंदपुराण पाँचवाँ अवंतिखंड, अवंतिक्षेत्र माहात्म्य अ० २४)

६. जगद्गुरु-आदिशंकराचार्य —

इनका जन्म सम्वत् ८२५, कोचीन (केरल), माता सती, पिता शिवगुरु एवं जन्म का नाम शंकर था। शंकर प्रथमवर्ष में मातृभाषा पढ़े एवं दूसरे वर्ष में १८ पुराण पढ़े। तीन वर्ष की आयु में पंडित बने एवं पाँचवें वर्ष इन्हें जनेऊ दी गई। इनके विषय में यह भी कहा जाता है—

अष्टवर्षे चतुर्वेदी, द्वादशे सर्वशास्त्रवित्।
षोडशे कृतवान् भाष्यं, द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्॥

ये आठ वर्ष की आयु में चारों वेद और बारह वर्ष की आयु में अन्य सभी शास्त्र पढ़ चुके थे। सोलह वर्ष की आयु में इन्होंने ब्रह्मसूत्र एवं उपनिषदों के भाष्य बनाए और बत्तीसवें वर्ष में ये दिवंगत हो गये।

वैदिकधर्म का मंडन करना इनको बचपन से ही अभीष्ट था। वेदपारंगत कुमारिलभट्ट से प्रयाग में मिले।

उन्होंने शंकर से मंडनमिश्र को अपनी ओर खींचने की सलाह दी। नर्मदातट पर माहिष्मतीनगरी गये। मंडन से १६ दिन चर्चा हुई। (उभयभारती उनकी पत्नी मध्यस्थ थी) मंडनमिश्र हारे। फिर उभयभारती अर्द्धांगिनी के नाते चर्चा में आ बैठी। कामशास्त्र-सम्बन्धी प्रश्न चलाए। शंकर ने समय मांगकर परदेह-प्रवेशिनी विद्या से मृत राजा के शरीर में प्रवेश किया और कामशास्त्र पढ़ा। तत्पश्चात् उभय-भारती से १७ दिन चर्चा करके विजय प्राप्त की। दोनों (पति-पत्नी) शंकर के शिष्य-शिष्या बने एवं उनका सहयोग पाकर इन्होंने, वैदिकधर्म का अत्यधिक प्रचार किया। सम्वत् ८९७ में शंकराचार्य दिवंगत हो गये।

—**शंकरदिग्विजय के आधार से।**

०. महात्मा कबीर—

इनका जन्म वि० सं० १४५५ जेठसुदी पूनम को हुआ था। माता का नाम नीमा और पिता का नाम नीरू था। ये जुलाहे का धंधा करते थे। एक बार ये एक पहर-रात रहते गंगाघाट की सीढ़ियों पर जा पड़े। उधर से गंगा-स्नान करके लौटते समय स्वामी **रामानन्दजी** का पैर इनके सिर पर पड़ गया। सहसा रामानन्दजी के मुँह से '**राम-राम**' शब्द निकला। इन्होंने इसी रामराम को गुरुमंत्र मान लिया और रामानन्दजी ने भी इन्हें शिष्यरूप में स्वीकार कर लिया। (वे शूद्र को शिष्य नहीं बनाते थे।)

कबीर पढ़े-लिखे न होने पर भी मार्मिक कवि थे। इनको माननेवाले हिन्दू-मुस्लिम दोनों ही थे। एक बार **झूठा रोजा, झूठी ईद** कह देने पर इन्हें बादशाह सिकंदर लोधी द्वारा गंगा में बहा दिया गया। तब इन्होंने कहा—

गंग लहर मेरी टूटी जंजीर,
मृगछाला पर बैठ कबीर।
कह कबीर कोउ सङ्ग न साथ।
जिसको राखत है रघुनाथ॥

इस चिन्तन के साथ ही इनके बंधन खुल गये और ये कुछ ही क्षणों में तट पर आ खड़े हुए। इनकी रचनाओं में बीजक, आदिग्रन्थ, साखी, शब्दावली, अखरावटी, ज्ञान-गुदड़ी आदि मुख्य हैं। कबीर अहिंसा, सत्य और सदाचार के प्रचारक थे और इन्हें बाह्याडम्बर से बड़ी चिढ़ थी। इस समय इनके पंथ (कबीरपंथ) को माननेवाले ८-९ लाख बताए जाते हैं।

—कल्याण संतअंक एवं श्रुति के आधार से।

११. महात्मा तुलसीदास—

इनका जन्म राजापुर गाँव में आत्माराम ब्राह्मण के घर, माता हुलसी के गर्भ से मूलनक्षत्र में हुआ। मूलनक्षत्र में जन्म के कारण इनको माता-पिता ने छोड़ दिया। ये छटपटा रहे थे। संयोग-वश वहाँ साधु नरहरिदासजी आगये और इन्हें ले गये, पाल-पोषकर वेद-पुराण, रामायण आदि पढ़ाया। बाद में इनका विवाह हुआ। स्त्री पर ये इतने मुग्ध हो गये कि उसे कभी पीहर नहीं भेजते थे। एकबार इनका साला आया और इनको बिना पूछे ही अपनी बहन को ले गया। पता चलते ही ससुराल के लिए जमुना की तेजधार में कूद पड़े। तैरते-तैरते थक गये। तब एक मुर्दे की टाँग पकड़कर पार पहुँचे। अँधेरी रात थी। ससुराल का दरवाजा बन्द था। अतः ये दीवार पर लटकते हुए एक साँप को रस्सी समझ कर उसके

सहारे स्त्री के पास जा खटके। भय, लज्जा और क्रोध से काँपती हुई स्त्री ने कहा :—

हाड़-मांस को देह मम, ता पर जितनी प्रीति।
तिसु आधी जो राम-प्रति, अवसि मिटहि भव-भीति ॥

उन्हें ज्ञान हो गया एवं साधु बनकर तीर्थों में सत्संग करते हुए घूमने लगे। वि० सं० १६३१ में; अयोध्या में रामायण की रचना आरम्भ की फिर उच्चकोटि के २१ ग्रन्थ और बनाये जिसमें से १२ ग्रन्थ वर्तमान में मिलते हैं। इन्हें हिन्दी का शेक्सपियर और कालिदास कहा जाता है।

एक बार अकबर ने इन्हें चमत्कार दिखाने के लिए कहा और न दिखाने पर लालकिले में बन्द करवा दिया। अचानक बन्दरों की सेना ने आकर किले में त्राहि-त्राहि मचादी, (हनुमान का इष्ट था) अकबर ने माफी माँगी।

एक बार एक स्त्री का पति मर गया था। श्मशान जाते समय उसकी स्त्री ने कुटिया में आकर इन्हें प्रणाम किया। इन्होंने सहजभाव में कह दिया। 'सौभाग्यवती हो !' चिल्लाकर स्त्री ने कहा—

पति हमारा चल बसा, हम भी चालनहार।
तुलसी तुम्हरे वचन का, होगा कवन हवाल ॥

तुलसीदास जी ने मुर्दा मँगवाकर उसके सिर पर हाथ रखा और राम का ध्यान किया—

तुलसी मड़ा मंगाय के, दिया शीश पर हाथ।
हमतो कछु जाने नहीं, तुम जानो रघुनाथ ॥

कहा जाता है कि इतना कहते ही मुर्दा जीवित होगया। राम-भक्त में संत महात्मा तुलसीदासजी का देहावसान वि० संवत् १६८०, श्रावण शुक्ल सप्तमी को काशी के (असीघाट) गंगातट पर हुआ, जिसके विषय में यह दोहा प्रसिद्ध है—

सम्वत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो सरीर॥

—कल्याण संतअंक एवं श्रुति के आधार से।

१२. सिखगुरु नानकदेवजी—

सिखों के दस गुरु हुए हैं। उनमें प्रथम गुरु नानकदेवजी थे। इनका जन्म 'राइभोई की तलवंडी' (ननकाणा-साहिब) में बेदी कालूचन्द पटवारी के घर माता तृप्ताजी के उदर से वैशाख सुदी ३ सं० १५२६ को हुआ। गुरु नानक बचपन से ही बड़े शान्त-स्वभाव के थे। एक दिन माता के आग्रह पर ये बच्चों में खेलने गये। वहाँ इन्होंने बच्चों को पद्मासन से बैठा दिया और कहा—"सत्यकर्त्तार" कहते जाओ। पिता ने इन्हें पढ़ने के लिए दो पंडितों और एक मौलवी के पास भेजा, किन्तु इन्होंने अपने आत्मबल से तीनों उस्तादों को शिष्य बना लिया। एक बार पिता ने इन्हें कुछ सौदा लाने को कहा। इन्होंने सारे रुपये भूखे संतों को खिलाने में खर्च कर दिये। घर आकर अपने पिता से इस सौदे को सच्चा सौदा बताया। पिता को बड़ा क्रोध आया और इन्हें काफी मारा-पीटा। इनकी बहिन 'नानकी' से यह नहीं देखा गया और वह इन्हें अपने घर (सुलतानपुर) ले गई। वहाँ ये मोदीखाने में काम करने लगे।

सम्वत् १५४४ में २४ जेठ को इनका विवाह मूलचंदजी की सुपुत्री सुलक्षणा के साथ हुआ, जिससे इनके दो पुत्र (बाबा श्रीचन्द्र और बाबा लक्ष्मीदास) हुए।

मोदीखाने में एक दिन आटा तोलते समय एक-दो-तीन आदि कहते-कहते जब तेरह का नाम आया तो "तेरा-तेरा" ही कहते गये (हे प्रभो ! मैं तेरह हूं) और सारा आटा तोल दिया। मोदीखाने का कार्य छोड़कर धर्मप्रचार में लग गये।

सं० १५५४ में इन्होंने देशाटन प्रारम्भ किया। इनकी चार यात्राएं विशेष प्रसिद्ध है—

(१) पूर्व में हरिद्वार, देहली, नैमिषारण्य, अयोध्या, प्रयाग, काशी यावत् जगन्नाथपुरी। (२) दक्षिण में सेतुबन्ध-रामेश्वर एवं सिंहलद्वीप। (३) उत्तर में सिक्किम, भूटान और तिब्बत। (४) पश्चिम में रूम, बगदाद, ईरान, काबुल तथा बिलोचिस्तान होते हुए मुसलमानों के प्रसिद्ध तीर्थ मक्का पहुंचे। सभी जगह वाहेगुरु (परमात्मा) की अनन्य उपासना का उपदेश दिया। मक्के में एक दिन ये काबे की तरफ पैर करके सो गये। जब काजी क्रुद्ध हुआ तो ये बोले—जिधर, अल्लाह न हो, मेरे पैर उधर कर दीजिए। काजी ने जिधर को इनके पैर फेरे काबा भी उधर ही फिर गया। २५ वर्ष भ्रमण करने के बाद गुरु नानक कर्त्तारपुर में रहकर धर्म-प्रचार करने लगे।

सं० १५९६ आसोज सुदी १० में इनका परलोकगमन हुआ। उस समय इनकी आयु लगभग ७० वर्ष की थी।

अन्तिम-संस्कार के समय हिन्दू और मुसलमानों में विवाद खड़ा हो गया। जब वस्त्र उठाकर देखा तो इनका

शरीर ही नहीं मिला। अस्तु, आधा-आधा वस्त्र लेकर हिन्दुओं और मुसलमानों ने अपनी-अपनी विधि से अंतिम-संस्कार किया।

—कल्याण, संतअंक तथा
'सिखधर्म क्या कहता है ?' के आधार से।

१३. संत श्रीतुकारामजी वैराग्य—

इनका जन्म सं० १६६५ में पूना के पास देहू नामक ग्राम में हुआ। इनकी माता का नाम कनकबाई और पिता का नाम बोलोजी था। इनके दो विवाह हुए। पहली स्त्री का नाम रक्खूबाई और दूसरी का जीजीबाई था। जीजीबाई का स्वभाव बड़ा चिड़चिड़ा था। माता-पिता के वियोग के कारण १७ वर्ष की अवस्था में ही इनको घर का सारा भार संभालना पड़ा। दुकान में घाटे पर घाटा लगता गया और आखिर दीवाला निकल गया। इधर पहली स्त्री और पुत्र मर गये। अब इनका चित्त गृहस्थ-जीवन से बिलकुल उचट गया और ये विरक्त होकर कभी पहाड़ों पर, कभी मंदिरों में भजन-कीर्तन करने लगे। कीर्तन करते समय इनके मुख से अभंगवाणी निकलने लगी। बड़े-बड़े विद्वान् इनके भक्त बन गये, लेकिन वेदान्त के एक प्रकाण्ड पंडित को एक शूद्र के मुख से श्रुत्यर्थबोधक अभंग का निकलना बहुत अखरा।

आखिर पंडित रामेश्वर भट्ट के दबाव से इन्होंने अपने अभंगों की सारी बहियाँ इन्द्रायणी नदी के दह में डाल दीं और खुद अन्न-जल त्यागकर, विट्ठलनाथ के मंदिर के सामने ध्यान-मग्न होकर बैठ गये। कहा जाता है कि १३ दिन बाद भगवान ने दर्शन देकर कहा—"उठो और धर्म प्रचार करो।

तुम्हारे सारे अभंग भक्तों के पास सुरक्षित हैं।" (ये अभंग आज भी संत साहित्य में बहुत प्रसिद्ध हैं। इधर पंडित रामेश्वर भट्ट के सारे शरीर में जलन पैदा हो गई। वह इनकी शरण में आया और भक्त बना। तुकारामजी का धर्म प्रचार बढ़ा। कई बार छत्रपति शिवाजी भी इनके सत्संग में आये थे। सं० १७०६ चैत्र कृष्णा २ को इनका स्वर्गवास हुआ जनश्रुति के अनुसार देहावसान के बाद इनका शरीर नजर नहीं आया।

--- **कल्याण संतअंक के आधार पर।**

१४. संत दादूदयालजी—

वि० सं० १६०१ में अहमदाबाद के लोदीराम नामक एक ब्राह्मण को साबरमती नदी में तैरता हुआ एक संदूक मिला और उसमें से एक हंसता हुआ बालक निकला। यही बालक आगे जाकर संत दादूजी कहलाया। कहा जाता है कि ११ वर्ष की आयु में श्रीकृष्ण ने इन्हें दर्शन और तत्त्वज्ञान दिया था। एक बार ये घर से निकल गये परन्तु घरवालों ने इन्हें वापस लाकर विवाह-बंधन में जकड़ दिया। १९ वर्ष की आयु में ये फिर निकल पड़े। इस बार ये सांभर (जयपुर) में जा छिपे और रुई धुनने का धंधा करते हुए १२ वर्ष तक कठिन तपस्या में लगे रहे। ये मुख्यतया "लय-योग" में लीन रहते थे और 'निरंजन-निराकार' पर जोर देते थे।

दादूजी के रज्जबदासजी-सुन्दरदासजी आदि १५२ शिष्य हुए जिनमें से १०० तो विरक्त रहे और शेष थांभाधारी कहलाने लगे। ५२ स्थानों में उनके दादू द्वारे बने हुए हैं।

दादूजी ने अपने नाम से कोई पंथ या सम्प्रदाय प्रसिद्ध

नहीं किया। लेकिन पीछे से दादूजी के अनुयायी 'दादूपंथी' कहलाने लगे।

दादूजी का प्रयाण सं० १६६० में नारायणा नामक स्थान में हुआ। यह स्थान दादूपंथियों का प्रधान तीर्थ स्थान कहलाता है।

—कल्याण,'संतअंक' के आधार पर।

१७. कृष्ण की परमभक्त मीराबाई—

ये मेड़तिया राजपूत राठोड़ जोधा जी की प्रपौत्री, दूदाजी की पौत्री एवं रतनसी की पुत्री थीं।

इनका जन्म सं० १५७३ के लगभग चौकड़ी (मारवाड़) में हुआ। इनके ताऊ के लड़के भाई वीर जयमल कृष्ण-भक्त थे। बहिन-भाई बचपन से ही कृष्ण-भक्ति में विशेष रुचि लेते थे। एक साधु के पास कृष्ण की सुन्दर मूर्ति देखकर मीरा ने बाल-हठ किया और उससे मूर्ति प्राप्त करली।

मीरा का विवाह महाराणा सांगा के पुत्र भोजराज के साथ हुआ। किन्तु कुछ समय बाद उनका देहान्त हो गया। अब तो कृष्ण ही मीरा के एक मात्र प्राणाधार रह गये। मीरा कृष्ण-प्रेम में लीन होकर मन्दिरों में कीर्तन और नृत्य करने लगीं। इनके देवर राणा रतनसिंह को मीरा का इस प्रकार स्वतंत्ररूप से घूमना बहुत अनुचित लगा। उन्होंने इनको बहुत कहा-सुना और डराया-धमकाया भी, लेकिन जब ये किसी तरह नहीं मानी तब इनको जहर का प्याला दिया गया। जिसे ये भगवान् का चरणामृत मानकर पी गईं। फिर पिटारे में एक सांप भेजा गया जो इनके लिए सालिग्राम की

मूर्ति बन गया। आखिर मीरा एकदिन घर से निकल गई और वृंदावन आदि स्थानों में घूमती हुई द्वारका पहुँच गई। कहा जाता है कि वहीं सं० १६६० में मीरा रणछोड़दासजी की मूर्ति में विलीन हो गई।

'नरसी जी का मायरा' और 'गीतगोविंद—टीका' आदि मीरा की रचनाएँ मानी जाती हैं। मीरा के भजन बहुत ही लोकप्रिय हैं।

—'कल्याण' संतअंक के आधार पर।

१५. आर्यसमाज के संस्थापक स्वामीदयानंद सरस्वती—

स्वामीजी का जन्म सं० १८८२ में, टंकारा (गुजरात) में हुआ। इनका जन्म-नाम मूलशंकर था।

कहा जाता है कि १४ वर्ष की आयु में एक बार ये शिवरात्रि का व्रत रखकर शिवमंदिर में रात्रि-जागरण कर रहे थे। शिवलिङ्ग पर चढ़ाई हुई सामग्री को चूहे खाने लगे एवं उस पर मल-मूत्र करने लगे। यह देखकर इनकी मूर्ति-पूजा से श्रद्धा उठ गई और इनके मन में यह विचार हुआ कि जब यह शिवमूर्ति स्वयं अपनी रक्षा ही नहीं कर पा रही है तो अपने भक्तों की क्या रक्षा करेगी! अस्तु, उसी क्षण इन्होंने सच्चे शिव की खोज करने का निश्चय कर लिया। अब ये विरक्त रहने लगे। फिर भी माता-पिता ने इनका जबर्दस्ती विवाह रचाया। विवाह के समय इनकी १४ वर्ष की बहिन मर गई। इस घटना से इनका विरक्तिभाव एकदम बढ़ गया और विवाह को छोड़कर घर से निकल गए। पूर्णानंदजी के पास जाकर संन्यास ले लिया और दूर-दूर तक भ्रमण करते हुए इन्होंने योगियों और सिद्धों से अनेक विद्याएँ प्राप्त कीं।

मथुरा में प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानंदजी के पास वेदाध्ययन किया फिर उनकी आज्ञानुसार भारत भर में घूमकर वेदों का खूब प्रचार किया एव 'बम्बई में आर्यसमाज' की स्थापना की।

इनकी निर्भीकता अद्भुत थी। उपदेश के समय हर एक सत्य बात बेधड़क होकर कह डालते थे। कहा जाता है कि इसी कारण जोधपुर में इन्हें विष दिया गया था। असह्य-वेदना हुई,फिर भी ये समभाव में रहे और सन् १८८३ दीवाली की रात को समाधि-मरण प्राप्त किया।

—कल्याण संतअंक तथा अध्ययन के आधार से।

२० साधुओं के गुण

१. चरण गुण—

वय-समणधम्म-संजम, वेयावच्चं च बंभगुत्तीओ।
नाणाइतियं तव, कोहनिग्गहाइं चरणमेयं।

—ओघनिर्युक्ति-भाष्य गाथा २

साधुओं द्वारा निरन्तर सेवन करने योग्य चारित्रसम्बन्धी नियमों को चरणगुण कहते हैं। चरणगुण सत्तर माने गये हैं। (ये चरणसत्तरी के नाम से प्रसिद्ध हैं) यथा—५ महाव्रत, १० प्रकार का श्रमणधर्म, १७ प्रकार का संयम, १० प्रकार की वैयावृत्य, ब्रह्मचर्य की ९ गुप्तियाँ, ज्ञानादिरत्नत्रिक, १२ प्रकार का तप और ४ कषाय का निग्रह।

२. करण गुण—

पिंडविसोही समिई, भावण-पडिमा य इन्दियनिरोहो।
पडिलेहण-गुत्तीओ, अभिग्गहा चेव करणं तु॥

—ओघनिर्युक्ति-भाष्यगाथा ३

प्रयोजन उत्पन्न होने पर साधुओं द्वारा जिनका सेवन किया जाय, वे करणगुण कहलाते हैं। करणगुण भी ७० हैं। (ये करण-सत्तरी के नाम से प्रसिद्ध हैं) यथा—४ प्रकार की पिण्डविशुद्धि ५ समितियाँ, १२ भावनाएँ, १२ प्रतिमाएँ ५ इन्द्रियों का निग्रह, २५ प्रकार की पडिलेहणा, ३ गुप्तियाँ और, ४ अभिग्रह।[१]

---

१ इसका विस्तृत विवेचन चारित्र-प्रकाश पुंज ६ में देखिए।

३. साधुदर्शन—

(क) साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूता हि साधवः,
तीर्थं पुनाति कालेन, सद्यः साधुसमागमः ।

—चाणक्यनीति १२।७

साधुओं का दर्शन पवित्र है क्योंकि साधु तीर्थरूप होते हैं। तीर्थ तो कालान्तर में पवित्र करता है, किन्तु साधुओं का समागम तत्काल ही तार देता है।

(ख) न ह्यम्मयानि तीर्थानि, न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन, दर्शनादेव साधवः ॥

—श्रीमद्भागवत १०।४८।३१

वास्तव में न तो नदी आदि के जल से युक्त तीर्थ हैं, न मिट्टी-पत्थर से बनी हुई मूर्तियाँ देवता हैं। वे बहुत काल के पश्चात् पवित्र करते हैं, किन्तु साधुजन दर्शन-मात्र से पावन कर देते हैं।

(ग) तनकर मनकर वचनकर, देत न काहू दुःख ।
तुलसी पातक झड़त हैं, देखत उनका मुख ॥
मुख देखत पातक झड़े, पाप विलय हो जाय ।
तुलसी ऐसे सन्तजन, पूर्व भाग्य मिल जाय ॥

—तुलसी दोहावली

(घ) साधु-दर्शन लाभ है, बड़भागी दरसाय ।
जिनरंग शूली की सजा, कांटे ही टल जाय ।

—हिन्दी दोहा

२१ साधु-संगति

१. चन्दनं शीतलं लोके, चन्दनादपि चन्द्रमाः।
चन्द्र-चन्दनयोर्मध्ये, शीतला साधुसंगतिः।
चन्दन जगत में शीतल है और चन्दन से भी चन्द्रमा शीतल है। चन्द्र और चन्दन-इन दोनों से भी साधुओं की संगति अत्यधिक शीतल है।

२. ना सुख पढ़िया पंडितां, ना सुख भूप भयां।
सुख है बीच विचार दे, साधुसंग पयां॥
ना सुख बीच गृहस्थ दे, ना सुख छाड़ गयां।
सुख है बीच विचार दे, साधु संग पयां॥
—पंजाबी पद

३. सुत दारा अरु लक्ष्मी, पापिहु के घर होय।
संत समागम हरिकथा, तुलसी दुर्लभ दोय॥

४. तात मिले पुनि मात मिले,
सुत भ्रात मिले युवती सुखदाई।
राज मिले गज-बाज मिले,
सब साज मिले मन वंछित आई।
लोक मिले परलोक मिले,
सुरलोक मिले बैकुंठ में जाई।

सुन्दर आय मिले सबहीं,
इक दुर्लभ - संतसमागम भाई !

५. कोटि जन्म की पुण्यकमाई तब सन्तन की संगति पाई।
सतसंगति जन पावे जबही, आवागमन मिटावे तबही ।।

६. सवणे नाणे य विन्नाणे, पच्चक्खाणे य संजमे ।
अणण्हए तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धी ।।

—भगवती २।५

साधुसंग से धर्मश्रवण, धर्मश्रवण से तत्त्वज्ञान, तत्त्वज्ञान से विज्ञान-विशिष्ट तत्त्वबोध, विज्ञान से प्रत्याख्यान-सांसारिक पदार्थों से विरक्ति, प्रत्याख्यान से संयम, संयम से अनाश्रव-नवीन कर्म का अभाव, अनाश्रव से तप, तप से व्यवदान (पूर्व-बद्ध कर्मों का नाश,) व्यवदान से निष्कर्मता-सर्वथा कर्मरहित स्थिति और निष्कर्मता से सिद्धि—अर्थात् मुक्तस्थिति प्राप्त होती है ।

७. गिहिसंथवं न कुज्जा, कुज्जा साहूहिं संथवं ।

—दशवैकालिक ८।५३

गृहस्थों-संसारियों का परिचय नहीं करना चाहिए, किन्तु साधुओं का सत्संग करना चाहिए ।

८. संगति साधुन की करिये, कपटी लोगन से डरिये ।

—निपट निरंजन

●

२२

संतों का संताप

1. संत सताया संतदास, तेण सताया दीन।
गुप्तमार अतीत की, हो आये तेरा-तीन।

—संतदास

२. एक भक्त रामायण पढ़ रहा था। पढ़ने में स्खलना होते ही हनुमान ने (जो रामकथा में सदा उपस्थित रहते हैं) उसके मुंह पर जोर से थप्पड़ मार दिया। फिर राम के दरबार में गये तो मुंह सूजा हुआ देखा। पूछने पर राम ने कहा, तूने ही तो मारा है।

—वैदिक रूपक

३. संत सतायां जात है, नाम ठाम अरु वंश,
पीपा ! परतख देख लो ! जादव-कौरव-कंस।

४. ध्रांगध्रा के एकाउंट जनरल के पास योगी ने भिक्षा मांगी। उत्तर में कहा—विष्ठा खाले ! योगी बोला—जा तुझे विष्ठा ही मिलेगी। बस, उसी दिन से खाते-पीते एवं सोते समय विष्ठा बरसने लगी।

५. ध्रांगध्रा के जयचन्द-कालीदास से किसी योगी ने कम्बल मांगी। उसने कहा आग लेले ! बस आग ही आग

बरसने लगी एवं बारह महीनों तक बहुत हैरान होना पड़ा ।

६. एगं इसिं हणमाणे अणंते जीवे हणइ ।

—भगवती ६।३४

एक अहिंसक ऋषि की हत्या करनेवाला एक प्रकार से अनन्त जीवों की हिंसा करनेवाला होता है ।

●

२३ साधुओं की गोचरी

१. भिक्खावित्ती सुहावहा। —उत्तराध्ययन ३५।१५

भिक्षावृत्ति सुख देनेवाली है।

२. उपवासात् परं भैक्ष्यम्। —वशिष्ठस्मृति

मर्यादानुसार की हुई भिक्षा से जीवन का निर्वाह करना उपवास से भी बढ़कर है।

३. धीरा हु भिक्खायरियं चरंति।

—उत्तराध्ययन १४।३५

धीर पुरुष ही भिक्षाचर्या का अनुसरण करते हैं।

४. सव्वं से जाइयं होई, णत्थि किंचि अजाइयं।

—उत्तराध्ययन २।२८

साधु की हर एक वस्तु मांगी हुई होती है, बिना मांगी कुछ भी नहीं होती।

५. अहो! जिणेहिं असावज्जा, वित्ती साहूण देसिया।

—दशवैकालिक ५।१।९२

आश्चर्य है कि भगवान ने साधुओं की भिक्षावृत्ति पापरहित कही है।

६. अणवज्जेसणिज्जस्स, गिण्हणा अवि दुक्करं।

—उत्तराध्ययन १६।२७

निरवद्य एवं निर्दोष भिक्षा का ग्रहण करना भी दुष्कर है।

७. अकप्पियं न गिण्हिज्जा, पडिगाहिज्ज कप्पियं।

—दशवैकालिक ५।१।२७

साधु अकल्पनीय-सदोष वस्तु नहीं ले एवं कल्पनीय ग्रहण करे।

८. एकान्नं नैव भोक्तव्यं, बृहस्पतिसमादपि।

—अत्रिस्मृति

साधु को सदा एक ही कुल का भोजन नहीं लेना चाहिए, चाहे वह कुल बृहस्पति जैसों का भी क्यों न हो।

९. अनग्निरनिकेतः स्याद्, ग्राममन्नार्थमाश्रयेत्।

—मनुस्मृति ६।४३

मुनि अग्नि का स्पर्श न करे, घर में न रहे, मात्र भिक्षा के लिए ग्राम में आये।

१०. समणेणं भगवया महावीरेणं, समणाणं निग्गंथाणं नवकोडीपरिसुद्धे भिक्खे पण्णत्ते, तं जहा—न हणइ, न हणावेइ, हणंतं नाणुजाणेइ। न पयइ, न पयावेइ पयंतं नाणुजाणइ। न किणइ, न किणावेइ, किणंतं नाणुजाणइ।

—स्थानांग ६।६८१

श्रमण – भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए नवकोटि-विशुद्ध भिक्षा कही है—साधु आहार आदि के लिए न तो हिंसा करता, न करवाता और न करते हुए का अनुमोदन

करता। न स्वयं आहार आदि पकाता, न पकवाता और न पकानेवाले का अनुमोदन करता, न स्वयं भोजन आदि खरीदता, न खरीदवाता और न खरीदनेवाले का अनुमोदन करता।

११. उच्च-नीच-मज्झिमकुले अडमाणे।

—अंतकृद्दशावर्ग ६, अ० १५

इन्द्रभूति मुनि ऊंच-नीच-मध्यम कुल में पर्यटन करते हुए....।

१२. जायाए घासमेसिज्जा, रसगिद्धे न सिया भिक्खाए।

—उत्तराध्ययन ८।११

संयमयात्रा को निभाने के लिए मुनि को आहार की गवेषणा नहीं करनी चाहिए।

१३. अदीणो वित्तिमेसिज्जा।

—दशवैकालिक ५।२।२६

साधु को सिंहवृत्ति से आवश्यक वस्तुओं की गवेषणा करनी चाहिए।

१४. लाभुत्ति न मज्जिज्जा, अलाभुत्ति न सोएज्जा।

—आचारांग २।११४-११५

साधु को इष्टवस्तु के मिलने पर अभिमान नहीं करना चाहिए और न मिलने पर शोक नहीं करना चाहिए।

१५. अलाभे न विषादी स्या-ल्लाभे चैव न हर्षयेत्।

—मनुस्मृति ६।५७

भिक्षा न मिलने पर विषाद न करे एवं मिलने पर हर्ष न मनाये।

१६. लद्धे पिण्डे अलद्धे वा, णाणुतप्पेज्ज पंडिए।

—उत्तराध्ययन २।३०

आहार मिलने या न मिलने पर बुद्धिमान साधु खेद न करे।

१७. अज्जेवाहं ण लब्भामि, अवि लाभो सुए सिया।

—उत्तराध्ययन २।३१

आहार आदि न मिलने पर साधु विचार करे कि मुझे आज आहार नहीं मिला तो संभवतः कल मिल जायेगा।

★

२४ गोचरी के भेद

१. छव्विहा गोयरचरिया पण्णत्ता, तं जहा—पेडा, अद्धपेडा, गोमुत्तिया, पतंगवीहिया, संबुक्कवट्टा, गंतुपच्चागया ।

—स्थानांग ६।५१४

छः प्रकार की गोचरी कही है—(१) पेटा, (२) अर्धपेटा, (३) गोमूत्रिका, (४) पतङ्गवीथिका, (५) शम्बूकावर्ता, (६) गतप्रत्यागता ।

(उत्तराध्ययन ३०।१९ में भी यह वर्णन है)

२. त्रिधा भिक्षापि तत्राद्या, सर्वसंपत्करी मता ।
द्वितीया पौरुषघ्नीस्याद्, वृत्तिभिक्षा तथान्तिमा ॥

—हितोपदेश २।२०

भिक्षा तीन तरह की होती है—

(१) सर्वसंपत्करी—साधु को निर्दोष वस्तु देना ।
(२) पौरुषघ्नी—साधु को सदोषवस्तु देना ।
(३) वृत्ति—अन्धे, बहरे आदि को कुछ देना ।

२५ गोचरी के नियम

१. पुरओ जुगमायाए, पेहमाणो महिं चरे।
वज्जंतो बीयहरियाइं, पाणे य दगमट्टियं ॥

—दशवैकालिक ५।१।३

मुनि युगमात्र भूमि को देखता हुआ सचित्तबीज, हरित, द्वीन्द्रियादि प्राणी, जल और मिट्टी से बचता हुआ चले।

२. दवदवस्स न गच्छेज्जा, भासमाणो य गोयरे।
हसंतो नाभिगच्छेज्जा, कुलं उच्चावयं सया।

—दशवैकालिक ५।१।१४

दबदबाहट करता हुआ, बातें करता हुआ एवं हंसता हुआ न चले।

३. तहेवुच्चावया पाणा, भत्तट्ठाए समागया।
तं उज्जुयं न गच्छिज्जा, जयमेव परक्कमे ॥

—दशवैकालिक ५।२।७

हंस-काक आदि पक्षी दाने चुगरहे हों तो मुनि उनके बीच में से न निकले। उन्हें भय न हो, इस प्रकार यत्नपूर्वक जावे।

४. न चरेज्ज वासे वासंते, महियाए वा पडंतिए।
महावाए व वायन्ते, तिरिच्छि संपाइमेसु वा ॥

—दशवैकालिक ५।१।८

मुनि वृष्टि बरसते समय, ओस पड़ते समय, जोर से हवा—आंधी चलते समय एवं अन आदि सूक्ष्म जीव गिरते समय गोचरी न जाए।

५. समणं माहणं वावि, किविणं वा वणीमगं।
उवसंकमंतं भत्तट्ठा, पाणट्ठाए व संजए।
तमइक्कमित्तु न पविसे, न चिट्ठे चक्खुगोयरे।
एगंतमवक्कमित्ता, तत्थ चिट्ठिज्ज संजए॥

—दशवैकालिक ५।२।१०-११

श्रमण—ब्राह्मण, कृपण एवं भिखारी आदि अन्नार्थी की प्राप्ति के लिए पहले गृहस्थ के घर में खड़े हों तो उन्हें लांघ कर घर में प्रवेश न करे तथा दाता और भिक्षुओं की दृष्टि पड़े, वहां खड़ा न रहकर एकान्त में ठहरे।

६. गोयरग्गपविट्ठो य, न निसीइज्ज कत्थई।
कहं च न पबंधिज्जा, चिट्ठित्ताण व संजए॥

—दशवैकालिक ५।२।८

गोचरी गया हुआ मुनि (विशेष कारण के सिवा) गृहस्थ के घर में न बैठे और न खड़ा रहकर धर्मकथा कहे।

७. सयणासणवत्थं वा, भत्तं पाणं व संजए।
अदितस्स न कुप्पिज्जा, पच्चक्खे विय दीसओ॥

—दशवैकालिक ५।२।२८

शयन, आसन, वस्त्र, अन्न और पानी प्रत्यक्ष सामने पड़े दीख रहे हैं, फिर भी यदि दाता न दे तो साधु उस पर कोप न करे।

८. निट्ठाणं रसनिज्जूढं, भद्दगं पावगं ति वा।
पुट्ठो वा वि अपुट्ठो वा, लाभालाभं न निद्दिसे।।

—दशवैकालिक ८।२२

आहार सरस मिला या नीरस मिला, अच्छा मिला या बुरा मिला तथा मिला या नहीं मिला। साधु को यह आहार सम्बन्धी बात पूछने पर या बिना पूछे गृहस्थ के आगे नहीं कहनी चाहिए।

९. कालेण निक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे।
अकालं च विवज्जित्ता, काले कालं समायरे।।४।।
अकाले चरसी भिक्खू, कालं न पडिलेहसि।
अप्पाणं च किलामेसि, संनिवेसं च गरिहसि।।५।।

—दशवैकालिक ५।२

साधु भोजन बनने के समय गोचरी जाए एवं वख्तसर वापिस आ जाए। अकाल का त्याग करके सारा काम यथा-समय करे। हे मुने! यदि तू असमय भिक्षा के लिए जायेगा एवं समय का ध्यान न रखेगा तो आहार आदि न मिलने से दुःखी होगा एवं द्वेषवश गांव के लोगों की निन्दा करेगा।

१०. अप्पे सिया भोयणजाए, बहुउज्झियधम्मिए।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पई तारिसं।

—दशवैकालिक ५।१।७४

(सीताफल—इक्षुखण्ड आदि) जिन फलों में खाने योग्य वस्तु थोड़ी हो और फेंकने लायक अधिक हो, ऐसे फल दातार देना चाहे तो साधु कहे कि ऐसी वस्तु मुझे नहीं कल्पती।

११. विणएण पविसित्ता, सगासे गुरुणो मुणी।
इरियावहियमायाय, आगओ य पडिक्कमे।

—दशवैकालिक ५।१।८८

गोचरी करके अपने स्थान में प्रवेश करते समय मुनि "मत्थएण वंदामि निसहिया—निसहिया" ऐसे सविनय बोले। फिर गुरु के समीप आकर **इरियावहिय** पड़िक्कमे एवं गोचरी में लगे हुए दोषों की आलोचना करे।

१२. एककालं चरेद्भैक्षं, न प्रसज्जेत विस्तरे।
भैक्षे प्रसक्तो हि यति-र्विषयेष्वपि सज्जति।
विधूमे सन्नमुसले, व्यङ्गारे भुक्तवज्जने।
वृत्ते शरावसंपाते, भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत्।

—मनुस्मृति ६।५५-५६

एक बार भिक्षा करे, अधिक न करे। अधिक खाने में लीन साधु स्त्री आदि के विषयों में आसक्त हो जाता है।

रसोई का धूआँ एवं मुसलों से अन्न कूटने का शब्द बन्द हो जाने पर चूल्हे की आग बुझ जाने पर, गृहस्थों के भोजन कर चुकने पर तथा अवशिष्ट भोजन को पात्र में रख देने पर मुनि भिक्षा ग्रहण करें।

१३. **गोचरी सम्बन्धी ४२ दोष—**

आहाकम्मुद्देसिय, पूइकम्मे य मीसजाए य।
ठवणा पाहुडियाए, पाओयर कीत पामिच्चे ॥६२॥
परियट्टिय अभिहडे, उब्भिन्न मालोहडे इ य।
अच्छिज्जे अणिसिट्ठे, अज्झोयरए य सोलसमे ॥६३॥
धाई दूई निमित्ते,आजीव वणीमगे तिगिच्छा य।
कोहे माणे माया, लोभे य हवंति दस एए ॥४०८॥
पुव्विंपच्छासंथव, विज्जा मंते य चुण्ण-जोगे य।
उप्पायणाइ-दोसा, सोलसमे मूलकम्मे य ॥४०६॥

संकिय मक्खिय निक्खित्त, पिहिय साहरिय दायगुम्मीसे।
अपरिणय लित्त छड्डिय, एसणदोसा दस हवंति ॥

—पिण्डनिर्युक्ति

साधु को आहार-पानी की एषणा करते समय गवेषणा व ग्रहणैषणा के बयालीस दोषों का वर्जन करना चाहिए।

गवेषणा के बत्तीस दोष उद्गम और उत्पादन की अपेक्षा से दो भागों में विभक्त हैं। उद्गम के सोलह दोषों का निमित्त गृहस्थ (देनेवाला) होता है और उत्पादन के सोलह दोषों का निमित साधु (लेनेवाला) होता है।

सोलह उद्गम दोष :—

(१) आधाकर्म, (२) औद्देशिक
(३) पूतिकर्म, (४) मिश्रजात
(५) स्थापना (६) प्राभृतिका
(७) प्रादुष्करण (८) क्रीत
(९) प्रामित्यक (१०) परिवर्तित
(११) अभ्याहृत (१२) उद्भिन्न
(१३) मालापहृत (१४) आच्छेद्य
(१५) अनिसृष्ट (१६) अध्यवपूरक।

सोलह उत्पादनदोष—

(१) धात्रीपिण्ड (२) दूतीपिण्ड
(३) निमित्तपिण्ड (४) आजीविकापिण्ड
(५) वनीपकपिण्ड (६) चिकित्सापिण्ड
(७) क्रोधपिण्ड (८) मानपिण्ड
(९) मायापिण्ड (१०) लोभपिण्ड
(११) पूर्वपश्चात् संस्तवपिण्ड (१२) विद्याप्रयोग
(१३) मन्त्रप्रयोग (१४) चूर्णप्रयोग
(१५) योगप्रयोग (१६) मूलकर्मप्रयोग।

ग्रहणैषणा के दस दोष :—

गवेषणा के अनन्तर आहार आदि ग्रहण करते समय साधु को निम्नोक्त दस दोषों का परिहार करना आवश्यक है—

(१) शंकित, (२) म्रक्षित, (३) निक्षिप्त, (४) पिहित, (५) संहृत, (६) दायक, (७) उन्मिश्र, (८) अपरिणत, (९) लिप्त, (१०) छर्दित।

(बयालीस दोषों का विवेचन "चारित्रप्रकाश पुंज २, प्रश्न १५" में किया गया है।)

★

२६ साधु का आहार

१. पंतं लूहं सेवंति, वीरा सम्मत्तदंसिणो।

—आचारांग ३।६

सम्यग्दर्शी वीरपुरुष नीरस और रूक्ष आहार का सेवन करते हैं।

२. तित्तगं व कडुअं व कसायं, अंबिलं व महुरं लवणं वा।
एयलद्धमण्णत्थपउत्तं, महुघयं व भुंजिज्ज संजए॥

—दशवैकालिक ५।१।९७

तीखा, कड़ुवा, खट्टा, मीठा तथा खारा किसी भी प्रकार का आहार जो शास्त्रोक्त विधि से प्राप्त हुआ है, उसे मधु-घृत के समान मानकर साधु को समभाव से खाना चाहिये।

३. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारेमाणे णो वामाओ हणुयाओ दाहिणं हणुयं संचारेज्जा आसाएमाणे। दाहिणाओ वा हणुयाओ वामं हणुयं णो संचारेज्जा आसायमाणे। से अणासायमाणे लाघवियं आगममाणे तवे से अभिसमन्नागए भवइ।

—आचारांग ८।६

साधु अथवा साध्वी असनादिक का आहार करते समय स्वाद लेने के लिए उस आहार को बायीं दाढ़ से दाहिनी दाढ़ की ओर न ले जाये और दाहिनी दाढ़ से बायीं दाढ़ की ओर न

ले जायें। स्वाद न लेने से कर्मों का झूंकोचन होता है एवं तपस्या होती है।

४. अप्पपिंडासि पाणासि, अप्पं भासेज्ज सुव्वए।

—सूत्रकृतांग ८।२५

सुव्रती मुनि अल्प खाए, अल्प पीवे और अल्प बोले।

५. मियं कालेण भवखए। —उत्तराध्ययन १।३२

समय होने पर भी साधु को परिमित भोजन करना चाहिए।

६. तहा भोत्तव्वं जहा से जायामाता य भवति,
न य भवति विब्भमो, न भंसणा य धम्मस्स।

—प्रश्नव्याकरण २।४

ऐसा हित-मित भोजन करना चाहिए, जो जीवनयात्रा एवं संयमयात्रा के लिए उपयोगी हो सके और जिससे न किसी प्रकार का विभ्रम हो और न धर्म की भ्रंसना हो।

७. जे भिक्खू आयरिय-उवज्झाएहिं अदिन्नं आहारं आहारेइ आहारंतं वा साइज्जइ। —नीशीथ ४।२२

जो साधु, आचार्य-उपाध्याय का बिना दिया अर्थात् उन्हें पूछे बिना आहार करे या करते हुए का समर्थन करे तो उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।

८. असंविभागी न हु तस्स मोक्खो।

—दशवैकालिक ९।२।२३

साथी मुनियों को हिस्सा दिये बिना आहारादि का उपयोग करनेवाले मुनि को मोक्ष नहीं मिलता।

९. हजरत इब्राहिम ने एक फकीर से पूछा—सच्चा संत कौन है?

फकीर—मिला तो खाया, नहीं तो संतोष।

इब्राहिम—ऐसे तो कुत्ते भी होते हैं।

फकीर—तो ?

इब्राहिम—मिला तो बांट खाया, नहीं तो संतोष।

१०. जे भिक्खू अन्नउत्थियं वा गारत्थियं वा असणं पाणं खाइमं देइ, देयंतं वा साइज्जइ।

—निशीथ १५।७८

जो साधु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ को असन आदि दे या देते हुए को अच्छा समझे तो उसे चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

७

आहार किसलिए ?

आयगुत्ते सया वीरे, जायामायाइ जावए ।

—आचारांग ३।३

आत्मगुप्त वीरपुरुष संयमयात्रा के निर्वाहार्थ आवश्यकता-मात्र आहार से जीवन यापन करे ।

भारस्स जाया मुणि भुंजएज्जा ।

—सूत्रकृतांग ७।२९

मुनि को केवल संयमयात्रा को निभाने के लिए आहार करना चाहिए ।

अलोलं न रसे गिद्धे, जिब्भादंते अमुच्छिए ।
न रसट्ठाए भुंजिज्जा, जवणट्ठाए महामुणी ॥

—उत्तराध्ययन ३५।१७

लोलुपतारहित, रसगृद्धिरहित, जिह्वेन्द्रिय को दमन करनेवाला एवं भोजन-संग्रह की मूर्च्छा से रहित महामुनि स्वाद के लिए भोजन न करे, किन्तु संयमयात्रा का निर्वाह करने के लिए करे ।

संयम भार-वहणट्ठयाए बिलमिव पन्नगभूएणं ।
अप्पाणेणं आहारमाहारेइ ।

—भगवती ७।१

साधु-साध्वी संयमभार का निर्वाह करने के लिए बिल में सांप की तरह उदरस्थ कोठे में आहार को प्रवेश कराएं ।

५. अक्खोवंजणाणुलेवणभूयं संजमजायामायणिमित्तं,
संजमभारवहणट्ठयाए भुंज्जेजा पाणधारणट्ठाए।

—प्रश्नव्याकरण २।१

जैसे-गाड़ी चलाने के लिए पहियों के अंजन (स्निग्ध-तेलादि) लगाया जाता है, घाव को ठीक करने के लिए उस पर लेप-मरहम लगाया जाता है, उसी प्रकार साधु को संयमयात्रा निभाने के लिए संयम-भार को वहने के लिए तथा प्राणों को धारण करने के लिए भोजन करना चाहिए।

६. शरीरं व्रणवद् भोजनं च अनुलेपनम्।
व्रणशोधनवत् स्नानं, वस्त्रं च व्रणपट्टवत्॥

——चैतन्य महाप्रभु

शरीर व्रण-घाव के समान है, अन्न उस पर मरहम का लेप है। स्नान व्रण को साफ करनेवाला है और वस्त्र व्रणपट्टी के तुल्य है।

७. छहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे आहारमाहारेमाणे णाइ-क्कमइ, तं जहा—
वेयण-वेयावच्चे, इरियट्ठाए य संजमट्ठाए।
तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुण धम्मचिंताए।

—स्थानांग ६ तथा उत्तराध्ययन २६।३३

छः कारणों से आहार करता हुआ साधु प्रभु-आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता। वे कारण ये हैं—१. क्षुधावेदनीय को शान्त करने के लिये, २. वैयावृत्त्य-सेवा करने के लिये, ३. ईर्यासमिति का पालन करने के लिए, ४. संयम पालने के लिये, ५. प्राण-रक्षा के लिए, ६. धर्म का चिन्तन करने के लिए।

८. छहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे आहारं वोच्छिदे माणे णाइक्कमई, तं जहा—

आयंके उवसग्गे, तितिक्खणे बंभचेरगुत्तीसु।

पाणीदया तवहेउं, सरीरवोच्छेयणट्ठाए।

—स्थानांग ६ तथा उत्तराध्ययन २६।३५

छः कारणों से श्रमण-निर्ग्रन्थ आहार का त्याग करता हुआ। प्रभुआज्ञा का उल्लंघन नहीं करता। जैसे—१. रोग एवं उपसर्ग होने पर, २. ब्रह्मचर्य का पालन न कर सकने पर, ३. जीवदया न पल सकने पर ४. तपस्या करने के लिए ५. अनशनादि द्वारा शरीर छोड़ने के लिए।

९. शरीर का परिवहन करने में ग्लानि होने लगे, तब साधु को चतुर्थ-षष्ठ आदि तप करके आहार को घटाने लग जाना चाहिए, अर्थात् संलेखना करनी चाहिए।

—आचारांग ८।१

२८ साधुओं का निवास स्थान

१. सुसाणे सुन्नगारे वा, रुक्खमूले व एगओ ।
पइरिक्के परकडे वा, वासं तत्थाऽभिरोयए ।।६।।

फासुयम्मि अणाबाहे, इत्थीहिं अणभिद्दुए ।
तत्थ संकप्पए वासं, भिक्खू परमसंजए ।।७।।

न सयं गिहाइं कुव्विज्जा, नेव अन्नेहिं कारए ।
गिहकम्मसमारम्भे, भूयाणं दिस्सए वहो ।।८।।

—उत्तराध्ययन ३५

साधु श्मशान, सूनाघर, वृक्ष के नीचे अथवा परकृत (गृहस्थ ने जो अपने लिए बनाया) एकान्तस्थान में एकाकी रहना पसंद करे ।।६।।

जो स्थान प्रासुक हो, किसी को पीड़ाकारी न हो, एवं जहाँ स्त्रियों का उपद्रव न हो, परम संयमी साधु उस स्थान में निवास करे ।।७।।

साधु स्वयं घर आदि न बनाये और दूसरों से न बनवाये, क्योंकि गृह आदि कार्य के समारम्भ में प्राणियों की हिंसा प्रत्यक्ष दिखाई देती है ।।८।।

२. मणोहरं चित्तहरं, मल्लधूवेण वासियं।
सकवाडं पंडुरुल्लोयं, मणसा वि न पत्थए ॥

—उत्तराध्ययन ३५।४

मुनि ऐसे आश्रय की मनसे इच्छा न करे, जो मनोहर हो, जिसमें चूणित चित्र हों, जो माला और धूप से सुगन्धित हो, कपाट सहित हो, व श्वेतचन्द्रवेवाला हो।

★

२६ साधुओं के वस्त्र

१. तिहिं ठाणेहिं वत्थं धारेज्जा, तं जहा—हिरिवत्तियं दुगुंछावत्तियं परीसहवत्तियं। —स्थानांग ३।३।१७१

साधु को तीन कारणों से वस्त्र पहनने चाहिए—संयम लज्जा की रक्षा के लिए, लोगों की घृणा से बचने के लिए तथा शीत-उष्ण एवं दंश-मशकादि के परीषह से आत्मरक्षा करने के लिए।

२. कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा पंच वत्थाइं धारेत्तए वा परिहरित्तए वा, तं० जंगिए, भंगिए, साणए, पोत्तिए, तिरीडपट्टए।

—स्थानांग ५।३।४४५

साधु-साध्वी पांच प्रकार के वस्त्र धार सकते हैं एवं पहन सकते हैं—(१) ऊन के (कंबलादि) (२) रेशम के (३) सण के (४) कपास के (५) तृण-घास व वृक्ष की छाल के।

३. साधु-साध्वियों को महामूल्य वस्त्र नहीं कल्पता।

—आचारांग श्रु० २ अ० ५ उ० १

४. साधु-साध्वियों को वस्त्र लेने के लिए अर्धयोजन से आगे जाना नहीं कल्पता।

—आचारांग श्रु० २ अ० ५ उ० १

५. कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा पंच रयहरणाइं धारित्तए वा परिहरित्तए, वा।

—स्थानांग ५।३।४४६

साधु-साध्वियां पांच प्रकार के रजोहरण (ओघा) रख सकते हैं—ऊन के, ऊँट के लोम के, सण के, नरम घास के और कूटी हुई मूंज के।

३० साधुओं के पात्र

१. से भिक्खु वा भिक्खुणी वा अभिकंखेज्जा पायं एसित्तए। सेजं पुण पायं जाणेज्जा, तं जहा—अलाबुयपायं वा, दारुपायं वा मट्टियापायं वा.......अयपायाणि वा तउयपायाणि वा.......नो पडिग्गाहेज्जा।

—आचारांग श्रुत २ अ० ६ उ० १

साधु-साध्वियां यदि पात्र की गवेषणा करनी चाहें तो वह तुंबे के, काष्ठ के और मिट्टी के—ऐसे तीन प्रकार के पात्र ग्रहण करें। तथा लोह, तांबा, सीसा, चांदी, सोना, पत्थर, रत्न आदि के पात्र ग्रहण न करें।

२. अलाबु-दारुपात्रं च, मृन्मयं वैं दलं तथा।
एतानि यतिपात्राणि, मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्।

—मनुस्मृति ६।५४

स्वायंभुव-मनु ने साधुओं के लिए निम्नलिखित पात्रों का विधान किया है—तुम्बी का पात्र, लकड़ी का पात्र, मिट्टी का पात्र और वृक्ष की छाल का पात्र।

३. परमद्धजोयण-मेराए पायपडियाए णो अभिधारेज्जा गमणाए। —आचारांग श्रुत २ अ० ६ उ. १

पात्र लेने के लिए साधु आधा योजन से आगे जाने की इच्छा न करे।

४. तेषामद्भिः स्मृतं शौचम् । —मनुस्मृति ८।५३

तुंबा आदि के पात्रों की शुद्धि जल से मानी गई है ।

५. सौवर्ण-मणिपात्रेषु, कांस्य-रौप्यायसेषु च ।
भिक्षां दद्यान्न सर्वज्ञो, ग्रहीता नरकं व्रजेत् ॥
—विष्णुपुराण खंड २ अ० १३२

सोना, रत्न, कांसा, चांदी और लोहे के पात्रों में साधु को भिक्षा नहीं देनी चाहिए—इन पात्रों में भिक्षा लेनेवाला नरक में जाता है ।

●

२१ साधुओं का विहार

१. बहता पाणी निरमला, पड़ा गँधीला होय।
साधु तो रमता भला, दाग न लागे कोय ॥

—राजस्थानी दोहा

२. ए रोलिंग स्टोन गेदर्स नो मोस। —अंग्रेजी कहावत

• बरे संगे गर्दा नरोयद नबात। —पारसी कहावत

रमता राम साधु बदनाम नहीं होता।

३. ग्रीष्म-हेमन्तकान् मासा-नष्टौ प्रायेण पर्यटेत्।
दयार्थं सर्वभूतानां, वर्षास्वेकत्र संवसेत् ॥

—मनुस्मृति

गर्मी-सर्दी के आठ महीनों में साधु प्राय: पर्यटन करे एवं जीवों की दया के लिए वर्षा-ऋतु में एक ही स्थान पर रहे।

४. अष्टौ मासा विहारस्य, यतीनां संयतात्मनाम्।
एकत्र चतुरोमासान्, वार्षिकान्निवसेत् पुनः ॥

—मत्स्यपुराण

संयमी साधुओं के लिए आठ महीने विहार के हैं एवं वर्षाऋतु के चार महीने एक स्थान में निवास करने योग्य हैं अत: उस समय उन्हें एक ही स्थान में रहना चाहिए।

५. जीवमालाकुले लोके, वर्षास्वेकत्र संवसेत् ।

—अत्रिस्मृति

वर्षा-ऋतु में पृथ्वी नाना प्रकार के जीवों से परिपूर्ण हो जाती अतः साधु उस समय एक जगह ही रहें।

६. नोकप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा ।
वासावासासु चरित्तए ।

—आचारांग श्रुत २ अ० ३ उ० १

साधु-साध्वी को वर्षा-ऋतु में विहार करना नहीं कल्पता। विशेष कारणों की स्थिति में कर भी सकते हैं : वे कारण निम्नलिखित हैं—

७. असिवे ओमोयरिए, रायदुट्ठे भए व गेलन्ने ।
आबाहादिएसु व, पंचसु ठाणेसु रीएज्जा ॥

—अभिधान राजेन्द्रकोष भाग ६, पृष्ठ १२६०

(१) शत्रु राजा का उपद्रव होने पर, (२) आहार न मिलने पर (३) राजा का द्वेष होने पर, (४) चोर आदि के भय से, (५) ग्लान साधु-साध्वी की सेवा करने के लिए—इन पाँच कारणों से साधु वर्षा ऋतु में विहार कर सकता है।

८. नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा पढमपाउसंसि गामाणुगामं दुइज्जित्तए। पंचहि ठाणेहि कप्पइ, तं० णाणट्ठयाए, दंसणट्ठयाए, चरित्तट्ठयाए, आयरिय-उवज्झाए वा से विसु भेज्जा, आयरिय-उवज्झायाणं वा बहिया वेयावच्चकरणयाए। —स्थानांग ५।२।४१३

साधु-साध्वी प्रथम वर्षाकाल में एक गाँव से दूसरे गाँव को विहार नहीं कर सकते; किन्तु पाँच कारणों से विहार कर

सकते हैं—ज्ञान के लिए, दर्शन के लिए, चारित्र के लिए, आचार्य-उपाध्याय के मरणासन्न होने पर तथा रोग आदि की परिस्थिति में उनकी सेवा करने के लिए।

६. जहाँ स्वाध्याय-भूमि एवं स्थंडिल-भूमि आदि शुद्ध न हों, वहाँ साधु चातुर्मास न करे।

—आचारांग श्रु त अ० ३ उ-१

★

३२ साधु की भाषा

१. चउण्हं खलु भासाणं, परिसंखाय पण्णवं।
दुण्हं तु विणयं सिक्खे दो न भासिज्ज सव्वसो ॥१॥

बुद्धिमान मुनि सत्य,असत्य,मिश्र, व्यवहार— इन चारों भाषाओं को जानकर दो—सत्य एवं व्यवहार द्वारा तो विनय सीखे किन्तु असत्य और मिश्र—ये दोनों भाषाएँ सर्वथा न बोले।

२. असच्चमोसं सच्चं च, अणवज्जमकक्कसं।
समुप्पेहमसंदिद्धं, गिरं भासिज्ज पण्णवं ॥३॥

प्रज्ञावान् मुनि व्यवहार एवं सत्य भाषा भी निरवद्य, कोमल एवं संदेह रहित हो, वही सोच-विचार कर बोले।

३. तम्हा गच्छामो वक्खामो, अमुगं वा णे भविस्सइ।
अहं वा णं करिस्सामि, एसो वा णं करिस्सइ ॥ ॥

हम जाएँगे, हम बोलेंगे, हमारा अमुक कार्य हो जायेगा, मैं यह करूँगा, यह व्यक्ति यह काम करेगा—इस प्रकार निश्चय-कारिणी भाषाएँ साधु न बोले।

४. जमट्ठं तु न जाणिज्जा, एवमेयं ति नो वए ॥८॥

भूत-भविष्यत् एवं वर्तमान काल-सम्बन्धी जिस अर्थ को न जानता हो, उसे यह 'इस प्रकार ही है,' ऐसा न कहे।

५. जत्थ संका भवे तं तु, एवमेयं ति नो वए ॥६॥

भूत-भविष्यत् एवं वर्तमानकाल-सम्बन्धी जिस विषय में शंका हो जाये, उसे 'ऐसा ही है' ऐसा न कहे।

६. सच्चा वि सा न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो ॥११॥

जिस से पाप लगता हो, ऐसी सत्यभाषा भी नहीं बोलनी चाहिए।

७. तहेव काणं काणत्ति, पंडगं पंडगे त्ति वा।
वाहियं वावि रोगित्ति, तेणं चोरे त्ति नो वए ॥१२॥

इसी प्रकार काने को काना, नपुंसक को नपुंसक, रोगी को रोगी एवं चोर को चोर नहीं कहना चाहिए, क्योंकि इस से सुननेवाले को दुःख होता है।

८. अज्जिए पज्जिए वावि, अम्मो माउस्सियत्ति य।
पिउस्सिए भाइणेज्जत्ति, धूए णत्तुणिअत्ति य॥

हे दादी! हे नानी! हे परदादी! हे परनानी! हे माँ! हे मौसी! हे बुआ! हे भानजी! हे पुत्री! हे पोती! (स्त्रियों को इस प्रकार सांसारिक नामों से आमन्त्रित न करे, किन्तु उनके नाम-गोत्रादिक से बुलावे।) इसी प्रकार पुरुषों को दादा! नाना आदि नाम से न बुलावे।

९. पंचिंदिआण पाणाणं, एस इत्थी अयं पुमं।
जाव णं न वियाणिज्जा, ताव जाइत्ति आलवे ॥२१॥

पञ्चेन्द्रिय जीवों के बारे में—यह स्त्री है—यह पुरुष है—ऐसे जहाँ तक न जान लिया जाये, वहाँ तक यह कुत्ते की जाति है, गाय की जाति है—ऐसे जाति शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

१०. सुकडित्ति सुपक्कित्ति, सुच्छिण्णे सुहडे मडे।
सुनिट्ठिए सुलट्ठित्ति, सावज्जं वज्जए मुणी ॥४१॥

भोजनादि अच्छा बनाया, घेवर अच्छा पकाया, शाक आदि अच्छा छेदा, करेला आदि की कड़वास का अच्छा हरण किया, सत्तु आदि में घी अच्छा भरा, बहुत अच्छा रस निष्पन्न हुआ तथा चावल आदि बहुत इष्ट है, मुनि ऐसी सावद्यभाषा न बोले।

११. सुक्कीयं वा सुविक्कीयं, अकिज्जं किज्जमेव वा।
इमं गिण्ह इमं मुंच, पणीयं नो वियागरे ॥४५॥

यह माल अच्छा (सस्ता) खरीदा, यह अच्छा (नफे से) बेचा, यह बेचने योग्य है। इस माल को ले लो (महंगा होनेवाला है) और इसको बेच डालो (सस्ता हो जायेगा) करियाणे के बारे में साधु इस प्रकार न बोले।

१२. देवाणं मणुयाणं च, तिरियाणं च वुग्गहे।
अमुयाणं जओ होउ, मा वा होउत्ति नो वए ॥५०॥

देवों, मनुष्यों एवं तिर्यञ्चों (पशु-पक्षियों) का आपस में विग्रह होने पर 'अमुक विजयी हो, अमुक की विजय न हो'—ऐसा वचन साधु न बोले।

१३. वाओ वुट्ठं च सीउण्हं, खेमं धायं सिवंति वा।
कयाणु हुज्ज एयाणि, मा वा होउ त्ति नो वए ॥५१॥

वायु, बरसात, सर्दी-गर्मी, क्षेम (शत्रुसेना के उपद्रव की शान्ति) सुभिक्ष शिव (मरी रोग आदि की शान्ति)—ये कब होंगे अर्थात् जल्दी हों तो ठीक अथवा ये सब न हों तो ठीक। ऐसा वचन साधु न बोले।

१४. तहेव सावज्जणुमोयणी गिरा,
ओहारिणी जा य परोवघाइणी।

से कोह-लोह-भय-हास-माणवो,
न हासमाणे वि गिरं वइज्जा ॥५४॥

—दशवैकालिक अध्ययन ७

उसी प्रकार सावद्य का अनुमोदन करनेवाले संदेह-युक्त अर्थवाली, जीवोपघात करनेवाली—ऐसी भाषा साधु क्रोध, लोभ भयवश अथवा दूसरों का हास्य करता हुआ भी न बोले।

१५. ण लविज्ज पुट्ठो सावज्जं-ण णिरट्ठं ण मम्मयं।

—उत्तराध्ययन १।२५

साधु पूछने पर भी सावद्य, निरर्थक वचन न बोले।

१६. नक्खत्तं सुमिणं जोगं, निमित्तं मंत-भेसजं।
गिहिणो तं न आइक्खे, भूयाहिगरणं पयं ॥

—दशवैकालिक ८।५१

नक्षत्र, स्वप्नफल, वशीकरणादि योग निमित्त, मन्त्र और भैषज ये जीवहिंसा के अधिकरण हैं। अतः साधु इन सबका फलाफल गृहस्थ को न बताए।

१७. तुमं तुमंति अमणुन्नं, सव्वसो तं न वत्तए।

—सूत्रकृतांग १।६।२७

'तू-तू'—जैसे अभद्र शब्द कभी नहीं बोलने चाहिए।

१८. नो वयणं फरुसं वइज्जा। —आचारांग २।१।१६

कठोर-कटु-वचन न बोले।

१९. अणुचिंतिय वियागरे। —सूत्रकृतांग २।६।२५

जो कुछ बोले—पहले विचार कर बोले।

२०. जं छन्नं तं न वत्तव्वं। —सूत्रकृतांग १।६।२६

किसी की कोई गोपनीय जैसी बात हो, तो वह नहीं कहनी चाहिए।

२१. नो तुच्छए नो य विकत्थइज्जा।

—सूत्रकृतांग १।१४।२१

साधक न किसी को तुच्छ (हलका) बताए और न किसी की झूठी प्रशंसा करे।

२२. निरुद्धगं वावि न दीहइज्जा।

—सूत्रकृतांग १।१४।२३

थोड़े से में कही जानेवाली बात को व्यर्थ ही लम्बी न करे।

२३. नाइवेलं वएज्जा।

—सूत्रकृतांग १।१४।२५

साधक आवश्यकता से अधिक न बोले।

२४. नो छायए नो वि य लूसएज्जा।

—सूत्रकृतांग २।२४।१९

उपदेशक सत्य को कभी छिपाए नहीं, और न ही उसे तोड़-मरोड़ कर उपस्थित करे।

३२ साधुओं के लिए कल्प-अकल्प

१. यज्ज्ञानशीलतपसा - मुपग्रहं च दोषाणाम् ।
कल्पयति निश्चयेन, यत्तत्कल्प्यमकल्प्यमवशेषम् ।।१४३।।
यत्पुनरुपघातकरं, सम्यक्त्वज्ञानशीलयोगानाम् ।
तत्कल्प्यमप्यकल्प्यं, प्रवचनकुत्साकरं यच्च ।।१४४।।
किंचिच्छुद्धं कल्प्य, मकल्प्यं स्यादकल्प्यमपि कल्प्यम् ।
पिण्डः शय्या वस्त्रं, पात्रं वा भेषजाद्यं वा ।।१४५।।
देशं कालं पुरुष-मवस्थानुपयोगशुद्धिपरिणामान् ।
प्रसमीक्ष्य भवति कल्प्यं, नैकान्तात्कल्पते कल्प्यम् ।।१४६।।
तच्चिन्त्यं तद्भाष्यं, तत्कार्यं भवति सर्वथा यतिना ।
नात्मपरोभयबाधक-मिह यत्परतश्च सर्वाद्धम् ।।१४७।।

—प्रशमरति

जो ज्ञान, शील एवं तप को पुष्ट करता हुआ दोषों का निग्रह करता है, निश्चय-दृष्टि में साधु के लिए वही कार्य कल्प्य (करने योग्य) है, शेष अकल्प्य है ।। १४३ ।।

जो सम्यक्त्व, ज्ञान, शील एवं योग का नाश करता है और वीतरागवाणी की निन्दा करनेवाला है, वह कार्य कल्प्य होने पर भी अकल्पनीय है ।। १४४ ।।

आहार-शय्या-वस्त्र-पात्र-औषधि आदि द्रव्य भी देश, काल, पुरुष, अवस्था, उपयोग, शुद्धि और परिणाम की अपेक्षा से ही कल्प के योग्य होते हैं, एकान्तरूप से नहीं ।।१४५-१४६।।

साधु को वही सोचना चाहिए, वही बोलना चाहिए और वही काम करना चाहिए, जो इहलोक-परलोक में सदा स्व-पर-उभय बाधक न हो ! ।। १४७ ।।

२. आचेलक्कुद्देसिय, सिज्जायर-रायपिंड किइकम्मे ।
वयजेट्ठ-पडिक्कमण, मास - पज्जोसवण - कप्पो ।।

—पंचास्तिकाय-विवरण १७ गाथा, ८-१०

शास्त्रोक्त आचार एवं अनुष्ठानविशेष का नाम कल्प है। कल्प दस माने गए हैं—१ अचेलक, २ औद्देशिक, ३ शय्यातरपिण्ड, ४ राजपिण्ड, ५ कृतिकर्म, ६ व्रतकल्प, ७ ज्येष्ठकल्प ८ प्रतिक्रमणकल्प, ९ मासकल्प, १० पर्युषणकल्प, इन दसों कल्पों को निश्चितरूप से पालनेवाले साधु **स्थितकल्पिक** कहलाते हैं। ये प्रथम-अन्तिम तीर्थंकरों के समय में होते हैं। १ शय्यातर-पिण्ड, २ कृतिकर्म, ३ व्रत, ४ ज्येष्ठ—इन चार कल्पों को नियमितरूप से और शेष छः हों को यथासंभव पालनेवाले साधु **अस्थितकल्पिक** कहलाते हैं—ये महाविदेहक्षेत्र में तथा बाईस तीर्थंकरों के समय भरत-ऐरावत क्षेत्रों में होते हैं !

३. छ कप्पस्स पलिमंथू पण्णत्ता, तं जहा—कुक्कुइए संजमस्स पलिमंथू १, मोहरिए सच्चवयणस्स पलिमंथू २, चक्खु-लोलए इरियावहियस्स पलिमंथू ३, तितिणए एसणा-गोयरस्स पलिमंथू ४, इच्छालोलए मुत्तिमग्गस्स पलिमंथू ५, भुज्जो-भुज्जो नियाणकरणे मोक्खमग्गस्स पलिमंथू ६, सव्वत्थ भगवता अनियाणया पसत्था ।

— बृहत्कल्प ६।१३ तथा स्थानांग ६।५२९

साधु के आचार का मन्थन करनेवाले साधु कल्पपलिमन्थु कहलाते हैं। उनके छः भेद हैं—१ कौकुचिक, २ मौखरिक, ३, चक्षुलोलुप, ४ तितिणिक, ५ इच्छालोभिक, ६ निदानकर्ता ।

(१) **कौकुचिक**—(शरीर,स्थान एवं भाषा द्वारा कुचेष्टा करनेवाला) साधु संयम का पलिमन्थु होता है।

(२) **मौखरिक**—(वाचाल एवं कटुभाषी) साधु सत्यवचन का पलिमन्थु होता है।

(३) **चक्षुलोलुप**—(चलते समय इधर-उधर देखनेवाला, स्वाध्याय या चिन्तन करनेवाला) साधु ईर्यासमिति का पलिमन्थु होता है।

(४) **तिंतिणिक**—(यथेष्ट आहारादि न मिलने पर टनटनाट करनेवाला) साधु एषणासमिति का पलिमन्थु होता है।

(५) **इच्छालोभिक**—(लोभवश वस्त्र-पात्रादि का संग्रह करनेवाला) निर्लोभितारूप मुक्तिमार्ग का पलिमन्थु होता है।

(६) **निदानकर्ता**—(चक्रवर्ती आदि की ऋद्धि का निदान करनेवाला) साधु सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप मुक्तिमार्ग का पलिमन्थु होता है।

२९ कंदर्पादि में लीन साधुओं की गति

१. कंदप्प-कुक्कुयाइ, तह सील-सहाव-हास विगहाहिं।
विम्हावेंतो य परं, कंदप्पभावणं कुणइ ॥२६४॥

जो साधु कंदर्प-कामकथा कौत्कुच्य—भावभंगी और वाग्-विन्यास द्वारा हास्य उत्पन्न करता है तथा शील-निरर्थक चेष्टा, स्वभाव, हास्य और विकथाओं द्वारा दूसरों को विस्मित करता है, वह कंदर्पी-भावना का आचरण करता है अर्थात् मरकर कंदर्पी देवता (स्वर्ग का भांड) होता है।

२. मंता जोगं काउं, भूईकम्मं च जे पउंजंति।
साय-रस-इड्ढिहेउं, अभियोगं भावणं कुणइ ॥२६५॥

जो साधु साता, रस और ऋद्धि के लिए मंत्रप्रयोग एवं भूति-कर्म (मन्त्रित भस्मादिक का प्रयोग) करता है, वह आभियोगिक भावना का आचरण करता है यानी मरकर दूसरों का नौकर देवता बनकर पलों तक विवशता का दुःख सहन करता है।

३. णाणस्स केवलीणं, धम्मायरिस्स संघ-साहूणं।
माई अवण्णवाई, किब्बिसियं भावणं कुणइ ॥२६६॥

जो मायावी साधु ज्ञान, केवलज्ञानी, धर्माचार्य, संघ और साधुओं की निन्दा करता है, वह किल्बिषी-भावना का आचरण करता है अर्थात् मरकर किल्बषी देवता (मनुष्य लोक में हरिजन तुल्य) बनता है।

४. अणुबद्धरोसपसरो, तह य निमित्तंमि होइ पडिसेवी।
एएहिं कारणेहिं, आसुरियं भावणं कुणइ ॥२६७॥
— उत्तराध्ययन ३६

जो साधु निरन्तर रोष का प्रसार करता है एवं निमित्त का सेवन करता है, वह आसुरी-भावना का आचरण करता है यानी मरकर असुरकुमार देवता बनता है। (यह वर्णन स्थानांग ४।४ में भी है)

५. तवतेणे वयतेणे, रूवतेणे य जे नरे।
आयार-भावतेणे य कुव्वइ देवकिव्विसं ॥
—दशवैकालिक ५।२।४६

जो मुनि तपचोर, वचनचोर, रूपचोर, आचारचोर एवं भाव का चोर है, वह किल्विषी देवता में उत्पन्न होता है। जैसे-कोई पूछता है कि महाराज! आप लोगों में एक तपस्वी साधु सुने थे, क्या वे आप ही हैं? ऐसे पूछने पर "साधु-तपस्वी होते ही हैं" इस प्रकार कपटपूर्ण उत्तर दे, वह तपचोर कहलाता है। ऐसे ही वचनचोर आदि भी समझ लेना चाहिए।

१ ग्रन्थ सूची

अङ्गुत्तर निकाय
अंगिरास्मृति
अग्निपुराण
अथर्ववेद
अर्थशास्त्र
अध्यात्मसार
अध्यात्मोपनिषद्
अन्ययोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशिका
अनुयोग द्वार
अपरोक्षानुभूति
अभिधम्मपिटक
अभिधानराजेन्द्र
अभिधानचिन्तामणि
अभिज्ञान शाकुन्तल
अमितिगति श्रावकाचार
अमृतध्वनि
अमर भारती (मासिक)
अवेस्ता
अत्रिस्मृति
अष्टांग हृदय-निदान
आगम और त्रिपिटक:एक अनुशीलन
आचाराङ्ग सूत्र
आर्थिक व व्यापारिक भूगोल
आप्त-मीमांसा
आत्मानुशासन
आवश्यकनिर्युक्ति
आवश्यक मलयगिरि
आवश्यक सूत्र
आत्म-पुराण
आत्मविकास
आतुर प्रत्याख्यान
आपस्तम्बस्मृति
आवां अद्धी सुर्यशत
औपपातिक सूत्र
इतिहास समुच्चय
ईशोपनिषद्
इस्लामधर्म
इष्टोपदेश
ईश्वरगीता
उत्तरराम चरित्र

उत्तराध्ययन सूत्र
उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति
उदान
उपदेश तरङ्गिणी
उपदेशप्रासाद
उपदेशमाला
उपदेशसुमनमाला
उपासक दशा
ऋग्वेद
ऋषिभाषित
ऐतरेय ब्राह्मण
कठोपनिषद्
कथासरित्सागर
कल्याण (मासिक)
कवितावली
कात्यायन स्मृति
किशन बावनी
किरातार्जुनीय
कीर्तिकेयानुप्रेक्षा
कुमारपालचरित्र
कुमार सम्भव
कुरानशरीफ
कुरुक्षेत्र
कुवलयानन्द
कूटवेद
केनोपनिषद्
कौटिलीय अर्थशास्त्र
खुले आकाश में
गच्छाचार प्रकीर्णक
गरुड़ पुराण
गृहस्थधर्म
गीता
गीता भाष्य
गुर्जरभजनपुष्पावली
गुरुग्रन्थ साहिब
गोम्मटसार
गोतमस्मृति
गोरक्षा-शतक
घटचर्पटपंजरिका
चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र
चन्द-चरित्र
चरक संहिता
चरित्र रक्षा
चरकसूत्र
चाणक्यनीति
चाणक्यसूत्र
चित्राम की चोपी
चीनी सुभाषित
छान्दोग्य उपनिषद्
जपुजी साहिब

जागृति (मासिक)
जातक
जाबालश्रुति
जाह्नवी
जीतकल्प
जीवन-लक्ष्य
जीवन सौरभ
जीवाभिगम सूत्र
जैनभारती
जैनसिद्धान्त दीपिका
जैनसिद्धान्त बोलसंग्रह
टॉड राजस्थान इतिहास
टी. बी. हैण्डबुक
डिकेन्स
डेलीमिरर
तत्त्वामृत
तत्त्वार्थ-सूत्र
तन्दुलवैचारिकगाथा
तत्त्वानुशासन
ताओ-उपनिषद्
ताओ-तेह-किंग
तात्त्विक त्रिशती
तिरुकुरल
तीन बात
तैत्तरीय उपनिषद्
दशाश्रुत-स्कन्ध
दशाश्रुत-स्कन्धवृत्ति
दक्षसंहिता
दर्शनपाहुड
दान-चन्द्रिका
दिगम्बर प्रतिक्रमण त्रयी
दीर्घनिकाय
दोहा-संदोह
द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका
द्रव्य-संग्रह
धन-बावनी
ध्यानाष्टक
धम्मपद
धर्मबिन्दु
धर्मयुग
धर्मसंग्रह
धर्मरत्न प्रकरण
धर्मशास्त्र का इतिहास
धर्मों की फुलवारी
तैत्तिरीय ताण्ड्य महाब्राह्मण
तोरा
थेरगाथा
दशवैकालिक सूत्र
दर्शन-शुद्धि
धर्म-सूत्र

न्याय दीप
नन्दी सूत्र
नवी
नविश्ते
नवभारत टाइम्स (दैनिक)
नवनीत (मासिक)
नवीन राष्ट्र एटलस
नारद पुराण
नारद नीति
नारद परिव्राजकोपनिषद्
निर्णयसिन्धु
नियमसार
निरुक्त
निशीथ चूर्णि
निशीथ भाष्य
निरालम्बोपनिषद्
नीतिवाक्यामृत
नैषधीय चरित्र
पंचतंत्र
पंचास्तिकाय
पंजाबकेशरी
पद्मपुराण
पहेलवी टेक्सट्स्
पब्लियस साइरस
परमानन्द पंचविंशति
प्रवचन सार
प्रवचन सारोद्धार
प्रवचन डायरी
प्रश्नव्याकरण सूत्र
प्रशमरति
प्रज्ञापना सूत्र
पातंजल योगदर्शन
पारस्कर स्मृति
प्रास्ताविक श्लोकशतकम्
पुरानी बाइबिल
पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय
पुराण
पूर्व मीमांसा
बृहत्कल्प भाष्य
ब्रह्मग्रन्थावली
ब्रह्मानन्द गीता
बृहदारण्यकोपनिषद्
बृहस्पतिस्मृति
बाइबिल
बुखारी
बीरपशत्
बुद्ध-चरित्र
बंदीदाद
बौद्ध-साधक
बंगश्री

भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक
भक्ति-सूत्र
भगवती-सूत्र
भर्तृहरि नीतिशतक
,, वैराग्य शतक
,, शृंगार शतक
भविष्य-पुराण
भावप्रकाश
भाषा श्लोकसागर
भामिनीविलास
मालवीय श्रुति
भूदान पत्रिका
भोजप्रबन्ध
मज्झिमनिकाय
मन्थन
महाभारत
महानिद्देस पालि
महानिशीथ भाष्य
महानिर्वाण तन्त्र
मनुस्मृति
मनोनुशासनम्
मत्स्यपुराण
महाप्रत्याख्यान
मरकुस
मिलाप
मुण्डकोपनिषद्
मुस्लिम
मेडम द स्ताल
मेगजीन डाइजेस्ट
मोहमुद्गर
यजन्
यशत्
यशस्तिलकचम्पू
यजुर्वेद
याज्ञवल्क्य स्मृति
यूहन्ना
योगवाशिष्ठ
योगदृष्टि समुच्चय
योगशास्त्र
योगबिन्दु
रघुवंश
रश्मिमाला
राजप्रश्नीय सूत्र
रामचरित मानस
रामसतसई
रामायण
रीडर्स मेगजीन
लूका
व्यवहार चूलिका
व्यवहार-भाष्य

व्यवहार-सूत्र
व्यासस्मृति
व्यास-संहिता
बृहत्पाराशर संहिता
बृहद् द्रव्यसंग्रह
बाल्मीकि रामायण
वशिष्ठ-स्मृति
विचित्रा (मासिक)
विवेकचूड़ामणि
विदुर नीति
विनयपिटक
विवेक विलास
विशेषावश्यक भाष्य
विशेषावश्यक चूर्णि
विश्वकोष
विज्ञान के नए आविष्कार
विसुद्धिमग्गो
विष्णुस्मृति
विश्वमित्र (दैनिक)
वीतराग स्तोत्र
वैद्यक ग्रंथ
वैद्यक-शास्त्र
वैद्य रसराजसमुच्चय
वैशेषिक दर्शन
वैदिक धर्म क्या कहता है ?
वैदिक-विचार विमर्श
शतपथ ब्राह्मण
श्वेताश्वेतारोपनिषद्
शंकरप्रश्नोत्तरी
शंख स्मृति
शार्ङ्गधर
शान्त सुधारस
शान्तिगीता
श्राद्ध विधि
शास्त्रवार्तासमुच्चय
श्रावकप्रतिक्रमण
शिशुपालवध
शिवपुराण
शिव-संहिता
श्रीमद्भागवत
शील की नववाड़
शुकबोध
शुक्ल युजर्वेद
षट्प्राभृत
स्कन्ध पुराण
स्थानांग सूत्र
सभा तरंग
सचित्र-विश्व कोष
सत्यार्थप्रकाश
समयसार

समवायांग सूत्र
सम्बोधसत्तरि
सप्तव्यसन सन्धान काव्य
सरिता
सर्जना
सवैया शतक
स्वप्न शास्त्र
स्वर-साधना
समाधिशतक
सन्मति तर्कप्रकरण
स्टडीज इन डिसीट
सरल मनोविज्ञान
संयुत्तनिकाय
सामायिक सूत्र
सामवेद
सावधानी रो समुद्र
सिद्धान्त कौमुदी
सिन्दूर प्रकरण
सुखमणि संहिता
सुत्तनिपात
सुभाषितावलि
सुभाषितरत्न खण्ड-मंजूषा
सुभाषित रत्नभाण्डागार
सुभाषित संचय
सुत्तपाहुड
सुबोध पद्माकर
सुभाषित रत्न सन्दोह
सुश्रुत शरीर-स्थान
सूत्रकृतांग सूत्र
सूक्तरत्नावलि
सूक्तमुक्तावलि
सौर परिवार
हजरत् मज्दा
हदीश शरीफ
हरिभद्रीयआवश्यक
हनुमान नाटक
हृदय प्रदीप
हृषिकेश
हितोपदेश
हिंगुलप्रकरण
हिन्दुस्तान (दैनिक व साप्ताहिक)
हिन्दसमाचार
क्षेमेन्द्र
त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र
ज्ञाता-सूत्र
ज्ञानार्णव
ज्ञान-सार
ज्ञानप्रकाश

□□

व्यक्ति-नामावली २

अफलातून
अबुमुतजि
अबीदाऊद
अबूबकर कैतानी
अल्फान्सीकर
अरविन्द घोष
अरस्तू
आचार्य उमाशंकर
आचार्य श्रीतुलसी
आचार्य रजनीश
आरकिंग
आरजू
आस्तिनओमले
ओडोर पारकर
इपिक्टेट्स
इब्राहिम लिंकन
उमास्वाति
एच, मोर
एन्जिलो
एनीबिसेन्ट
एमर्सन
एडीसन
एविड
एलाव्हीलर
एलोसियस
कविराज हरनामदास
कबीर
कन्फ्युसियस
कण्डोर सेट
कांगफ्युत्सी
कार्लाइल
कार्लमार्क्स
कामवेल
किवकंक्
कालूगणी
कुन्दकुन्दाचार्य
कूपर
केटो
कैनेथवालसर
कैम्पिस
कैथराल
कॉलिंटन
खलील जिब्रान
ग्वाल कवि
गांधी
गिबन
गुरु गोरखनाथ
गुरु नानक
गेटे
ग्रेविल
ग्रेनविल
गोल्डस्मिथ
गोल्डो जी
गौतम बुद्ध
जगन्नाथ कवि
जयचन्द
जयशंकर प्रसाद
जयाचार्य
जवाहरलाल नेहरु
जार्ज चेपमैन

जान मिल्टन
जामी
जॉनसन
जाविदान ए. खिरद
जीनमाली
जुगल कवि
जुनैद
जुन्नून
जूबर्ट
जेंगविल
जे. फरीश
जे. नोफेन
जे. पी. सी. बर्नार्ड
जे. पी. हालेण्ड
जौक
टप्पर
टालस्टाय
टामस कैम्पिस
टालमेज
टी. एल. वास्वानी
ड. ल. जार्ज
डाइट रॉट
डॉ. हरदयालमाथुर
डॉ. एलेक्जी केरेल
डॉ. म्यास जे रोल्ड

डाह्विज
डिकेन्स
डिजरायली
डी० जेरोल्ड
डी० एल० मूडी
डेलकार्नेगी
तिरमजी
तुलसीदास
थामस केम्पी
थामस फूलर
थेल्स
थैकरे
थोरो
दादू
दीपकवि
धनमुनि
धूमकेतु
नकुलेश्वर
नंजिन
नलिन
नाथजी
निकोलस
निपट निरंजन
निर्मला हरवंशसिंह
नीत्से

नेपोलियन
प्लुटार्क
प्लेटो
पटोरिया
पद्माकर
परसराम
पीटर बैरो
पीपाकवि
पेस्क
प्रेमचन्द
पेरोसेल्स
पोप
फुलर
फ्रेंकलिन
बर्टन
बनारसीदास
बर्नार्डशा
बलवर
ब्रह्मदत्त कवि
ब्रह्मानन्द
बालजक
बावरी साहिब
बिल्हण कवि
बीचर
बुल्लेशाह

बुलकोट
बेकन
बेताल कवि
बेल
बी. बी.
बोधा
भगवतीचरण वर्मा
भिक्षु गणी
भूधर दास
महात्मा भगवानदीन
मदन द० रियू
महर्षि रमण
मार्कटेन
माण्टेन
माघकवि
मिल्टन
मेरीकोन एन्डी
मुहम्मद-बिन-बशीर
मेरी ब्राउन
मेसेंजर
मैकिन्तोस
मैथिलीशरण गुप्त
मोलियर
यशोविजय जी
यूसुफ असबात

रज्जबदास
रडयार्ड किपलिंग
रहीन
रबिया
रवि दिवाकर
रस्किन
रवीन्द्रनाथ टैगोर
रामकृष्ण परमहंस
रामचरण कवि
रामतीर्थ
रामरतन शर्मा
रिस्टर
रिशर
रूसो
रोम्यांरोला
रोशे
रोशफूको
लाफान्टेन
लावेल
लांगफेलो
लीटन
लीनलिज
लुकमान हकीम
लूथर
लेलिन

लोकमान्य तिलक
ब्लेर
ब्यावलो
वृन्द कवि
वायरन
वायर्स
वारटल
वाल्टेयर
वाशिंगटन इर्विन
विजयधर्मसूरि
विनोबा भावे
विलकाक्स
विलियमपिट
विलियमपेन
विवेकानन्द
शंकराचार्य
शापेनहावर
शिलर
शिवानन्द
शुभचन्द्राचार्य
शेक्सपियर
शेखसादी
स्टैनिलस
स्टील
स्पेंसर

सत्यदेवनारायण सिन्हा
सन्त आगस्तीन
संत ज्ञानेश्वर
संत तुकाराम
सन्त निहालसिंह
सद्गुरुशरण अवस्थी
समर्थगुरु रामदास
सायरस
सिगुरिनी
स्विट
सिसरो
सुकरात

सुन्दरदास
सूरत कवि
सूरदास
सेलहास्ट
सैनेका
सेमुअल जानसन
सोमदेव सूरि
हजरत अली
हजरत मुहम्मद
हरिभद्र सूरि
हलबर्ट
हयहया

ह्यूम
हाफिज
हावेल
हालीबर्टन
हार्टले
हे एन. भांग
हेनरी वार्ड बीचर
हैजलिट
हैली बर्टन
होमर
होरेश वाल पोल
श्रायण्ट

लेखक की महत्वपूर्ण रचनाएं

प्रकाशित

१. एक आदर्श आत्मा	०-४०	हरकचन्द इन्द्रचन्द नौलखा माधोगंज, लश्कर ग्वालियर (म० प्र०)
२. चमकते चांद	०-४०	रतीराम रामस्वरूप जैन पो० कैथलमण्डी (हरियाणा)
३. चरित्र-प्रकाश	२-५०	श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सभा बालोतरा (राजस्थान)
४. भजनों की भेंट	०-६०	" "
५. लोक प्रकाश	१-२५	" "
६. चौदह नियम	०-२०	आदर्श साहित्य संघ पो० चूरू (राजस्थान)
७. मोक्ष प्रकाश		" "
८. जैन-जीवन	०-६५	श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सभा टोहाना (हरियाणा)

९. प्रश्न प्रकाश	०-८०	श्री जैन श्वे० तेरापन्थी महासभा ३, पोर्चगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता-१
१०. मनोनिग्रह के दो मार्ग	१-२५	मदनचन्द सम्पतराय बोरड़ दुकान नं० ४०, धानमण्डी, श्रीगंगानगर (राजस्थान)
११. सच्चा धन	०-३०	श्री बलोधचन्द द्वारा : ला० दयाराम बृजलाल जैन
१२. सोलह सतियां (द्वि. सं.)	२-००	टोहाना मण्डी (हरियाणा)
सोलह सतियां (तृ. सं.)		श्री चांदमल मानिकचन्द चोरड़िया पो० छापर, (चूरू, राजस्थान)
१३. ज्ञान के गीत (चौथा संस्करण)	१-००	लाला दयाराम मंगतराम जैन टोहानामण्डी (हरियाणा)
१४. ज्ञान-प्रकाश	१-००	श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सभा पो० भीनासर (राजस्थान)
१५. जीवन प्रकाश (उर्दू)		श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सभा नाभा (पंजाब)
१६. सच्चा धन (उर्दू)	०-३०	,, ,,
१७. तेरापन्थ एटले शुं?	०-६२	नेमीचन्द नगीनचन्द जवेरी 'चन्द्र महल' १३०, शेखमेमन स्ट्रीट, बम्बई-२
१८. धर्म एटले शुं ?	०-७५	
१९. परीक्षक बनो !	०-७५	

२०. वक्तृत्वकला के बीज
(भाग १ से १० तक)
प्रत्येक भाग ५-५०
प्रकाशित ५ भाग
प्रेस में ५ भाग

समन्वय प्रकाशन
द्वारा : मोतीलाल पारख
पो० बाक्स नं० ४२,
अहमदाबाद-२२
एवं
संजय साहित्य संगम
दासबिल्डिंग नं० ५,
बिलोचपुरा, आगरा-२

लेखक की अप्रकाशित रचनाएं

हिन्दी :
अवधान-विधि
उपदेश-द्विपञ्चाशिका
उपदेश सुमनमाला
जैनमहाभारत :
जैन रामायण
दोहा-संदोह
व्याख्यान मणिमाला
व्याख्यान रत्नमञ्जूषा
वैदिक विचार विमर्शन (बड़ा)
संक्षिप्त वैदिक विचार विमर्शन
संस्कृत बोलने का सरल तरीका
संस्कृत :
ऐक्यम्
एकाह्निक कालूशतकम्
देवगुरु धर्म द्वात्रिंशिका
प्रास्ताविकश्लोक शतकम्
भाविनी
श्रीकालू कल्याणमन्दिरम्
श्रीभिक्षुशब्दानुशासन वृत्तिद्धि-
तप्रकरणम्
गुजराती :
गुर्जर व्याख्यान रत्नावलि
गुर्जर भजन पुष्पावलि
राजस्थानी :
औपदेशिक ढालें
कथा प्रबन्ध
ग्यारह छोटे व्याख्यान
छः बड़े व्याख्यान
धन बावनी
प्रास्ताविक ढालें
सवैया-शतक
सावधानी रो समुद्र
पंजाबी :
पंजाब पच्चीसी

□□

५

वक्तृत्व-कला के बीज

श्री धनमुनि "प्रथम"

उन जिज्ञासुओं को,

जिनकी उर्वर मनोभूमि में

ये बीज

अंकुरित

पुष्पित

फलित हो,

अपना विराट् रूप प्राप्त कर सकें !

प्राप्तिकेन्द्र

१. जनसुखलाल एंड कंपनी
c/o भगवतप्रसाद रणछोड़दास
५४, न्यूक्लॉथ मार्केट
अहमदाबाद–२

२. श्री सम्पतराय बोरड़
c/o मदनचंद सम्पतराय
४०, धानमंडी,
श्री गंगानगर (राजस्थान)

३. मोतीलाल पारख
दि अहमदाबाद लक्ष्मी कॉटनमिल्स कं० लि०
पो० बा० नं० ४२
अहमदाबाद–२२

प्राक्कथन

मानव जीवन में वाचा की उपलब्धि एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। हमारे प्राचीन आचार्यों की दृष्टि में वाचा ही सरस्वती का अधिष्ठान है, **वाचा सरस्वती भिषग्**[1]—वाचा ज्ञान की अधिष्ठात्री होने से स्वयं सरस्वती रूप है, और समाज के विकृत आचार-विचार-रूप रोगों को दूर करने के कारण यह कुशल वैद्य भी है।

अन्तर के भावों को एक दूसरे तक पहुँचाने का एक बहुत बड़ा माध्यम वाचा ही है। यदि मानव के पास वाचा न होती तो, उसकी क्या दशा होती ? क्या वह भी मूकपशुओं की तरह भीतर ही भीतर घुटकर समाप्त नहीं हो जाता ? मनुष्य, जो गूंगा होता है, वह अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए कितने हाथ-पैर मारता है, कितना छटपटाता है फिर भी अपना सही आशय कहां समझा पाता है दूसरों को ?

बोलना वाचा का एक गुण है, किंतु बोलना एक अलग चीज है, और वक्ता होना वस्तुतः एक अलग चीज है। बोलने को हर कोई बोलता है, पर वह कोई कला नहीं है, किंतु वक्तृत्व एक कला है। वक्ता साधारण से विषय को भी कितने सुन्दर और मनोहारी रूप से प्रस्तुत करता है कि श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। वक्ता के बोल श्रोता के हृदय में ऐसे उतर जाते हैं कि वह उन्हें जीवन भर नहीं भूलता।

कर्मयोगी श्रीकृष्ण, भगवान्‌महावीर, तथागतबुद्ध, व्यास और भद्रबाहु आदि भारतीय प्रवचन-परम्परा के ऐसे महान् प्रवक्ता थे,

---

१ यजुर्वेद १९।१२

जिनकी वाणी का नाद आज भी हजारों-लाखों लोगों के हृदयों को आप्यायित कर रहा है। महाकाल की तूफानी हवाओं में भी उनकी वाणी की दिव्य ज्योति न बुझी है और न बुझेगी।

हर कोई वाचा का धारक, वाचा का स्वामी नहीं बन सकता। वाचा का स्वामी ही वाग्मी या वक्ता कहलाता है। वक्ता होने के लिए ज्ञान एवं अनुभव का आयाम बहुत ही विस्तृत होना चाहिए। विशाल अध्ययन, मनन-चिंतन एवं अनुभव का परिपाक वाणी को तेजस्वी एवं चिरस्थायी बनाता है। बिना अध्ययन एवं विषय की व्यापक जानकारी के भाषण केवल भषण (भौंकना) मात्र रह जाता है, वक्ता कितना ही चीखे-चिल्लाये, उछले-कूदे यदि प्रस्तावित विषय पर उसका सक्षम अधिकार नहीं है, तो वह सभा में हास्यास्पद हो जाता है, उसके व्यक्तित्व की गरिमा लुप्त हो जाती है। इसीलिए बहुत प्राचीनयुग में एक ऋषि ने कहा था—**वक्ता शतसहस्रेषु**, अर्थात् लाखों में कोई एक वक्ता होता है।

शतावधानी मुनि श्री धनराज जी जैनजगत के यशस्वी प्रवक्ता हैं। उनका प्रवचन, वस्तुतः प्रवचन होता है। श्रोताओं को अपने प्रस्तावित विषय पर केन्द्रित एवं मंत्र-मुग्ध कर देना उनका सहज कर्म है। और यह उनका वक्तृत्व—एक बहुत बड़े व्यापक एवं गंभीर अध्ययन पर आधारित है। उनका संस्कृत-प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओं का ज्ञान विस्तृत है, साथ ही तलस्पर्शी भी! मालूम होता है, उन्होंने पांडित्य को केवल छुआ भर नहीं है, किंतु समग्रशक्ति के साथ उसे गहराई से अधिग्रहण किया है। उनकी प्रस्तुत पुस्तक **'वक्तृत्वकला के बीज'** में यह स्पष्ट परिलक्षित होता है।

प्रस्तुत कृति में जैन आगम, बौद्धवाङ्मय, वेदों से लेकर उपनिषद ब्राह्मण, पुराण, स्मृति आदि वैदिक साहित्य तथा लोककथानक, कहावतें, रूपक, ऐतिहासिक घटनाएँ, ज्ञान-विज्ञान की उपयोगी चर्चाएँ—

इसप्रकार शृंखलाबद्ध रूप में संकलित है कि किसी भी विषय पर हम बहुत कुछ विचार-सामग्री प्राप्त कर सकते हैं। सचमुच वक्तृत्व-कला के अगणित बीज इसमें सन्निहित हैं। सूक्तियों का तो एक प्रकार से यह रत्नाकार ही है। अंग्रेजी साहित्य व अन्य धर्मग्रंथों के उद्धरण भी काफी महत्वपूर्ण हैं। कुछ प्रसंग और स्थल तो ऐसे हैं, जो केवल सूक्ति और सुभाषित ही नहीं है, उनमें विषय की तलस्पर्शी गहराई भी है और उसपर से कोई भी अध्येता अपने ज्ञान के आयाम को और अधिक व्यापक बना सकता है। लगता है, जैसे मुनि श्री जी वाङ्‌मय के रूप में विराट् पुरुष हो गए हैं। जहां पर भी दृष्टि पड़ती है, कोई-न-कोई वचन ऐसा मिल ही जाता है, जो हृदय को छू जाता है और यदि प्रवक्ता प्रसंगतः अपने भाषण में उपयोग करे, तो अवश्य ही श्रोताओं के मस्तक झूम उठेंगे।

प्रश्न हो सकता है—'वक्तृत्वकला के बीज' में मुनि श्री का अपना क्या है ? यह एक संग्रह है और संग्रह केवल पुरानी निधि होती है; परन्तु मैं कहूंगा-- कि फूलों की माला का निर्माता माली जब विभिन्न जाति एवं विभिन्न रंगों के मोहक पुष्पों की माला बनाता है तो उसमें उसका अपना क्या है ? बिखरे फूल, फूल हैं, माली नहीं। माला का अपना एक अलग ही विलक्षण सौन्दर्य है। रंग-बिरंगे फूलों का उपयुक्त चुनाव करना और उनका कलात्मक रूप में संयोजन करना—यही तो मालाकार का कर्म है, जो स्वयं में एक विलक्षण एवं विशिष्ट कलाकर्म है। मुनि श्री जी वक्तृत्वकला के बीज में ऐसे ही विलक्षण मालाकार हैं। विषयों का उपयुक्त चयन एवं तत्सम्बन्धित सूक्तियों आदि का संकलन इतना शानदार हुआ है कि इस प्रकार का संकलन अन्यत्र इस रूप में नहीं देखा गया।

एक बात और—श्री चन्दनमुनि जी की संस्कृत-प्राकृत रचनाओं ने मुझे यथावसर काफी प्रभावित किया है। मैं उनकी विद्वत्ता का प्रशंसक रहा हूं। श्री धनमुनि जी उनके बड़े भाई हैं—जब यह मुझे

ज्ञात हुआ तो मेरे हर्ष की सीमाओं का और भी अधिक विस्तार हो गया। अब मैं कैसे कहूँ कि इन दोनों में कौन बड़ा है और कौन छोटा? अच्छा यही होगा कि एक को दूसरे से उपमित कर दूँ। उनकी बहुश्रुतता एवं इनकी संग्रह-कुशलता से मेरा मन मुग्ध हो गया है।

मैं मुनि श्री जी, और उनकी इस महत्त्वपूर्णकृति का हृदय से अभिनन्दन करता हूँ। विभिन्न भागों में प्रकाशित होने वाली इस विराट् कृति से प्रवचनकार, लेखक एवं स्वाध्यायप्रेमीजन मुनि श्री के प्रति ऋणी रहेंगे। वे जब भी चाहेंगे, प्रवचनरत्न के बीज में से उन्हें कुछ मिलेगा ही, वे रिक्तहस्त नहीं रहेंगे ऐसा मेरा विश्वास है।

प्रवक्तृ-समाज—मुनि श्री जी का एतदर्थ आभारी है और आभारी रहेगा।

जैन भवन
आश्विन शुक्ला-३
आगरा

—उपाध्याय अमरमुनि

सम्पादकीय

वक्तृत्वगुण एक कला है, और वह बहुत बड़ी साधना की अपेक्षा करता है। आगम का ज्ञान, लोकव्यवहार का ज्ञान, लोकमानस का ज्ञान और समय एवं परिस्थितियों का ज्ञान तथा इन सबके साथ निस्पृहता, निर्भयता, स्वर की मधुरता, ओजस्विता आदि गुणों की साधना एवं विकास से ही वक्तृत्वकला का विकास हो सकता है, और ऐसे वक्ता वस्तुत: हजारों लाखों में कोई एकाध ही मिलते हैं।

तेरापंथ के अधिशास्ता युगप्रधान आचार्य श्रीतुलसी में वक्तृत्वकला के ये विशिष्ट गुण चमत्कारी ढंग से विकसित हुए हैं। उनकी वाणी का जादू श्रोताओं के मन-मस्तिष्क को आन्दोलित कर देता है। भारतवर्ष की सुदीर्घ पदयात्राओं के मध्य लाखों नर-नारियों ने उनकी ओजस्विनी वाणी सुनी है और उसके मधुर प्रभाव को जीवन में अनुभव किया है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक मुनि श्री धनराजजी भी वास्तव में वक्तृत्वकला के महान गुणों के धनी एक कुशल प्रवक्ता संत हैं। वे कवि भी हैं, गायक भी हैं, और तेरापंथ शासन में सर्वप्रथम अवधानकार भी हैं; इन सबके साथ-साथ बहुत बड़े विद्वान तो हैं ही। उनके प्रवचन जहां भी होते हैं, श्रोताओं की अपार भीड़ उमड़ आती है। आपके विहार करने के बाद भी श्रोता आपको याद करते रहते हैं।

आपकी भावना है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी वक्तृत्वकला का विकास करें और उसका सदुपयोग करें, अत: जन-समाज के लाभार्थ आपने वक्तृत्व के योग्य विभिन्न सामग्रियों का यह विशाल संग्रह प्रस्तुत किया है।

बहुत समय से जनता की, विद्वानों की और वक्तृत्वकला के अभ्यासियों की मांग थी कि इस दुर्लभ सामग्री का जन-हिताय प्रकाशन किया जाय तो बहुत लोगों को लाभ मिलेगा। जनता की भावना के अनुसार हमने मुनिश्री की इस सामग्री को धारणा प्रारंभ किया। इस कार्य को सम्पन्न करने में श्री डूंगरगढ़, मोमासर, भादरा, हिसार, टोहाना, नरवाना, कैथल, हांसी, भिवानी, तोसाम, ऊमरा, सिसाय, अमरपुर, सिरसा और भटिंडा आदि के विद्यार्थियों एवं युवकों ने अथक परिश्रम किया है। फलस्वरूप लगभग सौ कापियों व १५०० विषयों में यह सामग्री संकलित हुई है। हम इस विशाल संग्रह को विभिन्न भागों में प्रकाशित करने का संकल्प लेकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हुए हैं।

वक्तृत्वकला के बीज का यह पांचवां भाग पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। इसके प्रकाशन का समस्त अर्थभार श्री जनमुखलाल एंड कंपनी, अहमदाबाद ने वहन किया है। इस अनुकरणीय उदारता के लिए हम उनके हृदय से आभारी हैं।

इसके प्रकाशन एवं प्रूफ संशोधन आदि में श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' तथा श्री ब्रह्मदेवसिंह जी आदि का जो हार्दिक सहयोग प्राप्त हुआ है—उसके लिए भी हम हृदय से कृतज्ञता-ज्ञापित करते हैं। आशा है यह पुस्तक जन-जन के लिए, वक्ताओं और लेखकों के लिए एक इनसाईक्लोपीडिया (विश्वकोश) का काम देगी और युग-युग तक इसका लाभ मिलता रहेगा....

●●

आत्म निवेदन

'मनुष्य की प्रकृति का बदलना अत्यन्त कठिन है'—यह सूक्ति मेरे लिए सवा सोलह आना ठीक साबित हुई। बचपन में जब मैं कलकत्ता—श्री जैनश्वेताम्बर-तेरापंथी-विद्यालय में पढ़ता था, जहाँ तक याद है, मुझे जलपान के लिए प्रायः प्रति-दिन एक आना मिलता था। प्रकृति में संग्रह करने की भावना अधिक थी, अतः मैं खर्च करके भी उसमें से कुछ न कुछ बचा ही लेता था। इस प्रकार मेरे पास कई रुपये इकट्ठे हो गये थे और मैं उनको एक डिब्बी में रखा करता था।

विक्रम संवत् १९७९ में अचानक माताजी की मृत्यु होने से विरक्त होकर हम (पिता श्री केवलचन्द जी, मैं, छोटी बहन दीपांजी और छोटे भाई चन्दनमल जी) परमकृपालु श्री कालुगणीजी के पास दीक्षित हो गए। यद्यपि दीक्षित होकर रुपयों-पैसों का संग्रह छोड़ दिया, फिर भी संग्रहवृत्ति नहीं छूट सकी। वह धनसंग्रह से हटकर ज्ञानसंग्रह की ओर झुक गई। श्री कालुगणी के चरणों में हम अनेक बालक मुनि आगम-व्याकरण-काव्य-कोष आदि पढ़ रहे थे। लेकिन मेरी प्रकृति इस प्रकार की बन गई थी कि जो भी दोहा-छन्द-श्लोक-ढाल-व्याख्यान-कथा आदि सुनने या पढ़ने में अच्छे लगते, मैं तत्काल उन्हें लिख लेता या संसार-पक्षीय पिताजी से लिखवा लेता। फलस्वरूप उपरोक्त सामग्री का काफी अच्छा संग्रह हो गया। उसे देखकर अनेक मुनि विनोद की भाषा में कह दिया करते थे कि "धन्नू तो न्यारा में जाने की (अलग विहार करने की) तैयारी कर रहा है।" उत्तर में मैं कहा करता—"क्या आप गारंटी दे सकते हैं कि इतने (१० या १५) साल तक आचार्य श्री हमें अपने साथ ही रखेंगे? क्या पता, कल ही अलग विहार करने

का फरमान करदें। व्याख्यानादि का संग्रह होगा तो धर्मोपदेश या धर्म-प्रचार करने में सहायता मिलेगी।"

समय-समय पर उपरोक्त साथी मुनियों का हास्य-विनोद चल ही रहा था कि वि० सं० १९८६ में श्री कालुगणी ने अचानक ही श्रीकेवलमुनि को अग्रगण्य बनाकर रतननगर (थैलासर) चातुर्मास करने का हुक्म दे दिया। हम दोनों भाई (मैं और चन्दन मुनि) उनके साथ थे। व्याख्यान आदि का किया हुआ संग्रह उस चातुर्मास में बहुत काम आया एवं भविष्य के लिए उत्तमोत्तम ज्ञानसंग्रह करने की भावना बलवती बनी। हम कुछ वर्ष तक पिताजी के साथ विचरते रहे। उनके दिवंगत होने के पश्चात् दोनों भाई अग्रगण्य के रूप में पृथक्-पृथक् विहार करने लगे।

विशेष प्रेरणा—एक बार मैंने 'वक्ता बनो' नाम की पुस्तक पढ़ी। उसमें वक्ता बनने के विषय में खासी अच्छी बातें बताई हुई थीं। पढ़ते-पढ़ते यह पंक्ति दृष्टिगोचर हुई कि "कोई भी ग्रन्थ या शास्त्र पढ़ो, उसमें जो भी बात अपने काम की लगे, उसे तत्काल लिख लो।" इस पंक्ति ने मेरी संग्रह करने की प्रवृत्ति को पूर्वापेक्षया अत्यधिक तेज बना दिया। मुझे कोई भी नई युक्ति, सूक्ति या कहानी मिलती, उसे तुरंत लिख लेता। फिर जो उनमें विशेष उपयोगी लगती, उसे औपदेशिक भजन, स्तवन या व्याख्यान के रूप में गूंथ लेता। इस प्रवृत्ति के कारण मेरे पास अनेक भाषाओं में निबद्ध स्वरचित सैकड़ों भजन और सैकड़ों व्याख्यान इकट्ठे हो गए। फिर जैन-कथा साहित्य एवं तात्त्विकसाहित्य की ओर रुचि बढ़ी। फलस्वरूप दोनों ही विषयों पर अनेक पुस्तकों की रचना हुई। उनमें छोटी-बड़ी लगभग २८ पुस्तकें तो प्रकाश में आ चुकी, शेष ३०-३२ अप्रकाशित ही हैं।

एक बार संगृहीत-सामग्री के विषय में यह सुझाव आया कि यदि प्राचीन संग्रह को व्यवस्थित करके एक ग्रन्थ का रूप दे दिया जाए, तो यह उत्कृष्ट उपयोगी चीज बन जाए। मैंने इस सुझाव को स्वीकार किया और आगे प्राचीन संग्रह को व्यवस्थित करने में जुट गया। लेकिन पुराने संग्रह में कौन-सी सूक्ति, श्लोक या हेतु किस ग्रन्थ या शास्त्र के हैं अथवा किस कवि, वक्ता या लेखक के हैं—यह प्रायः लिखा हुआ नहीं था। अतः ग्रन्थों या शास्त्रों आदि की साक्षियां प्राप्त करने के लिए—इन आठ-नौ वर्षों में वेद, उपनिषद्, इतिहास, स्मृति, पुराण, कुरान, बाइबिल, जैनशास्त्र, बौद्धशास्त्र, नीतिशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, स्वप्नशास्त्र, शकुनशास्त्र, दर्शन-शास्त्र, संगीत-शास्त्र तथा अनेक हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, राजस्थानी, गुजराती मराठी एवं पंजाबी सूक्तिसंग्रहों का ध्यानपूर्वक यथासम्भव अध्ययन किया। उससे काफी नया संग्रह बना और प्राचीन संग्रह को साक्षी सम्पन्न बनाने में सहायता मिली। फिर भी खेद है कि अनेक सूक्तियाँ एवं श्लोक आदि बिना साक्षी के ही रह गए। प्रयत्न करने पर भी उनकी साक्षियां नहीं मिल सकीं। जिन-जिन की साक्षियां मिली हैं, उन-उनके आगे वे लगा दी गई हैं। जिनकी साक्षियां उपलब्ध नहीं हो सकीं, उनके आगे स्थान रिक्त छोड़ दिया गया है। कई जगह प्राचीन संग्रह के आधार पर केवल महाभारत, वाल्मीकि रामायण, योग-शास्त्र आदि महान् ग्रन्थों के नाममात्र लगाए हैं; अस्तु !

इस ग्रंथ के संकलन में किसी भी मत या सम्प्रदाय विशेष का खण्डन-मण्डन करने की दृष्टि नहीं है, केवल यही दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि कौन क्या कहता है या क्या मानता है। यद्यपि विश्व के विभिन्न देशनिवासी मनीषियों के मतों का संकलन होने से ग्रन्थ में भाषा की एकरूपता नहीं रह

सकी है। कहीं प्राकृत-संस्कृत, पारसी, उर्दू एवं अंग्रेजी भाषा है तो कहीं हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, पंजाबी और बंगाली भाषा के प्रयोग हैं, फिर भी कठिन भाषाओं के श्लोक, वाक्य आदि का अर्थ हिन्दी भाषा में कर दिया गया है। दूसरे प्रकार से भी इस ग्रन्थ में भाषा की विविधता है। कई ग्रन्थों, कवियों, लेखकों एवं विचारकों ने अपने सिद्धान्त निरवद्यभाषा में व्यक्त किए हैं तो कई साफ-साफ सावद्यभाषा में ही बोले हैं। मुझे जिस रूप में जिसके जो विचार मिले हैं, उन्हें मैंने उसी रूप में अंकित किया है, लेकिन मेरा अनुमोदन केवल निर्वद्य-सिद्धान्तों के साथ है।

ग्रन्थ की सर्वोपयोगिता—इस ग्रन्थ में उच्चस्तरीय विद्वानों के लिए जहाँ जैन-बौद्ध आगमों के गम्भीर पद्य हैं, वेदों, उपनिषदों के अद्भुत मंत्र हैं, स्मृति एवं नीति के हृदयग्राही श्लोक हैं वहाँ सर्वसाधारण के लिए सीधी-सादी भाषा के दोहे, छन्द, सूक्तियां, लोकोक्तियां, हेतु, दृष्टान्त एवं छोटी-छोटी कहानियां भी हैं। अत: यह ग्रन्थ निःसंदेह हर एक व्यक्ति के लिए उपयोगी सिद्ध होगा—ऐसी मेरी मान्यता है। वक्ता, कवि और लेखक इस ग्रन्थ से विशेष लाभ उठा सकेंगे, क्योंकि इसके सहारे वे अपने भाषण, काव्य और लेख को ठोस, सजीव, एवं हृदयग्राही बना सकेंगे एवं अद्भुत विचारों का विचित्र चित्रण करके उनमें निखार ला सकेंगे, अस्तु !

ग्रन्थ का नामकरण—इस ग्रन्थ का नाम 'वक्तृत्वकला के बीज' रखा गया है। वक्तृत्वकला की उपज के निमित्त यहाँ केवल बीज इकट्ठे किए गए हैं। बीजों का वपन किसलिए, कैसे, कब और कहाँ करना—यह वप्ता (बीज बोनेवालों) की भावना एवं बुद्धिमत्ता पर निर्भर करेगा। फिर भी मेरी मनोकामना तो यही है कि वप्ता परमात्मपदप्राप्ति रूप फलों

के लिए शास्त्रोक्तविधि से अच्छे अवसर पर उत्तम क्षेत्रों में इन बीजों का वपन करेंगे। अस्तु !

यहाँ मैं इस बात को भी कहे बिना नहीं रह सकता कि जिन ग्रन्थों, लेखों, समाचार पत्रों एवं व्यक्तियों से इस ग्रन्थ के संकलन में सहयोग लिया है -वे सभी सहायक रूप से मेरे लिए चिरस्मरणीय रहेंगे।

यह ग्रंथ कई भागों में विभक्त है एवं उनमें सैकड़ों विषयों का संकलन है। उक्त संग्रह बालोतरा मर्यादा-महोत्सव के समय मैंने आचार्य श्रीतुलसी को भेंट किया। उन्होंने देखकर बहुत प्रसन्नता व्यक्त की एवं फरमाया कि इसमें छोटी-छोटी कहानियाँ एवं घटनाएँ भी लगा देनी चाहिये ताकि विशेष उपयोगी बन जाए। आचार्य श्री का आदेश स्वीकार करके इसे संक्षिप्त कहानियाँ तथा घटनाओं से सम्पन्न किया गया।

मुनिश्री चन्दनमलजी, डूंगरमलजी, नथमलजी, नगराजजी, मधुकरजी, राकेशजी, रूपचन्दजी आदि अनेक साधु एवं साध्वियों ने भी इस ग्रन्थ को विशेष उपयोगी माना। बीदासर-महोत्सव पर कई संतों का यह अनुरोध रहा कि इस संग्रह को अवश्य धरा दिया जाए।

सर्व प्रथम वि० सं० २०२३ में श्री डूँगरगढ़ के श्रावकों ने इसे धारणा शुरू किया। फिर थली, हरियाणा एवं पंजाब के अनेक ग्रामों-नगरों के उत्साही युवकों ने तीन वर्षों के अथक-परिश्रम से धारकर इसे प्रकाशन के योग्य बनाया।

मुझे दृढ़विश्वास है कि पाठकगण इसके अध्ययन, चिन्तन एवं मनन से अपने बुद्धि-वैभव को क्रमशः बढ़ाते जायेंगे—

वि० सं० २०२७ मृगसर बदी ४
मंगलवार, रामामंडी, (पंजाब)

—धनमुनि 'प्रथम'

अनुक्रमणिका

पहला कोष्ठक पृष्ठ १ से ६६

१ श्रावक (श्रावक की पूर्व भूमिका), २ श्रावक का स्वरूप, ३ श्रावक के गुण, ४ श्रावक धर्म, ५ श्रावक के विषय में विविध, ६ सामायिक, ७ सामायिक के विषय में विविध, ८ सामायिक का प्रभाव, ९ नाम की सामायिक, १० पौषध, ११ तप, १२ तप से लाभ, १३ तप कैसे और किसलिए, १४ तप के भेद, १५ अनशन, १६ उपवास, १७ प्रायश्चित्त, १८ प्रायश्चित्त के भेद, १९ आलोचना, २० आलोचना के विषय में विविध, २१ आलोचना के दोष, २२ आवश्यक, २३ वैयावृत्य ।

दूसरा कोष्ठक पृष्ठ ६७ से १३८

१ ध्यान, २ ध्यान से लाभ, ३ ध्याता (ध्यान करने वाला), ४ स्वाध्यायध्यान की प्रेरणा, ५ समाधि, ६ आहार, ७ भोजन, ८ भोजन की विधि, ९ भोजन कैसा हो ?, १० भोजन के भेद, ११ भोजन में आवश्यक तत्व, १२ रासायनिक तुलनात्मक चार्ट, १३ भोजन का ध्येय, १४ भोजन की शुद्धि, १५ भोजन का समय, १६ भोजन के समय ध्यान, १७ भोजन के बाद, १८ भोजन की मात्रा, १९ मित भोजन, २० अति भोजन, २१ अधिक खाने वाले आदमी, २२ राक्षसी खुराकवाले व्यक्ति, २३ मुफ्त का खाने वाले, २४ रात्रिभोजन निषेध, २५ रात्रिभोजन से हानि, २६ रात्रि भोजन के त्याग से लाभ, २७ भूख, २८ भूख में स्वाद, २९ भूखा, ३० भूखा क्या नहीं करता, ३१ पेट, ३२ पानी ।

तीसरा कोष्ठक पृष्ठ १४२ से २०३

१ मोक्ष (मुक्ति), २ मोक्ष की परिभाषाएं, ३ मोक्ष-स्थान, ४ मोक्ष-मार्ग, ५ मोक्ष के साधन, ६ मोक्षगामी कौन, ७ मुक्त आत्मा, ८ सिद्ध भगवान, ९ मुक्ति के सुख, १० संसार, ११ संसार का स्वरूप, १२ संसार के भेद, १३ दुःखरूप संसार, १४ सबको दुःख, १५ सुख-दुःखमय संसार, १६ गतानुगतिक संसार, १७ परिवर्तनशील संसार, १८ संसार का पागलपन, १९ संसार का स्वभाव, २० दृष्टि के समान सृष्टि, २१ संसार की उपमाएं, २२ दुनियां की ताकत, २३ जगत को वश करने के उपाय, २४ संसार की विशालता, २५ नरक संसार, २६ नरक के दुःख, २७ नरक में जाने के कारण, २८ नरकगामी कौन ? २९ देव संसार, ३० दैविक चमत्कार की विचित्र बातें ।

चौथा कोष्ठक पृष्ठ २१७ से ३२३

१ तिर्यञ्च संसार, २ आश्चर्यकारी तिर्यञ्च, ३ दृश्यमान विश्व

में पशु-पक्षी, ४ मनुष्य संसार, ५ मनुष्य का स्वभाव, ६ मनुष्य का कर्तव्य, ७ मनुष्य के लिए शिक्षाएँ, ८ मनुष्य का महत्व, ९ मनुष्य की दस अवस्थाएँ, १० मनुष्य के प्रकार, ११ मनुष्य जन्म की प्राप्ति १२ मनुष्य जन्म की श्रेष्ठता, १३ मनुष्य जन्म की दुर्लभता, १४ दुर्लभ मनुष्य जन्म को हारो मत, १५ मानवता, १६ आश्चर्यकारी मनुष्य, १७ आश्चर्यकारी मनुष्यणियां, १८ मनुष्य के विषय में ज्ञातव्य बातें, १९ मनुष्य लोक, २० वैज्ञानिकों के मतानुसार पृथ्वी आदि का जन्मकाल, २१ दृश्यमान जगत की आबादी, २२ भारत की कतिपय विशेष ज्ञातव्य बातें।

चारों कोष्ठकों में कुल १०७ विषय तथा दस भागों में

लगभग १५०० विषय हैं।

पाँचवां भाग

वक्तृत्वकला के बीज

पहला कोष्ठक

१ श्रावक

श्रावक की पूर्वभूमिका—

१. न्यायसम्पन्नविभवः शिष्टाचार - प्रशंसकः ।
कुलशीलसमैः सार्धं, कृतोद्वाहोऽन्यगोत्रजैः ॥४७॥
पापभीरुः प्रसिद्धं च, देशाचारं समाचरन् ।
अवर्णवादी न क्वापि, राजादिषु विशेषतः ॥४८॥
अनतिव्यक्तगुप्ते च, स्थाने सुप्रातिवेश्मिके ।
अनेकनिर्गमद्वार- विवर्जितनिकेतनः ॥४९॥
कृतसङ्गः सदाचारैर्मातापित्रोश्च पूजकः ।
त्यजन्नुपप्लुतं स्थान-मप्रवृत्तश्च गर्हिते ॥५०॥
व्ययमायोचितं कुर्वन्, वेषं वित्तानुसारतः ।
अष्टभिर्धीगुणैर्युक्तः, शृण्वानो धर्ममन्वहम् ॥५१॥
अजीर्णे भोजनत्यागो, काले भोक्ता च सात्म्यतः ।
अन्योन्याऽप्रतिबन्धेन, त्रिवर्गमपि साधयन् ॥५२॥
यथावदतिथौ साधौ, दीने च प्रतिपत्तिकृत् ।
सदाऽनभिनिविष्टश्च, पक्षपाती गुणेषु च ॥५३॥
अदेश कालयोश्चर्यां, त्यजन् जानन् बलाबलम् ।
वृत्तस्थज्ञानवृद्धानां, पूजकः पोष्यपोषकः ॥५४॥

दीर्घदर्शी विशेषज्ञः कृतज्ञो लोकवल्लभः।
सलज्जः सदयः सौम्यः, परोपकृतिकर्मठः ॥५५॥
अन्तरङ्गारिषड्वर्ग - परिहार - परायणः।
वशीकृतेन्द्रियग्रामो, गृहिधर्माय कल्पते ॥५६॥

—योगशास्त्र १

गृहस्थधर्म को पालन करने का पात्र अर्थात् श्रावक वह होता है, जिसमें निम्नलिखित विशेषताएं हों—

(१) न्याय-नीति से धन उपार्जन करनेवाला हो।

(२) शिष्टपुरुषों के आचार की प्रशंसा करनेवाला हो।

(३) अपने कुल और शील में समान भिन्न गोत्रवालों के साथ विवाह-सम्बन्ध करनेवाला हो।

(४) पापों से डरनेवाला हो।

(५) प्रसिद्ध देशाचार का पालन करे।

(६) किसी की और विशेषरूप से राजा आदि की निन्दा न करे।

(७) ऐसे स्थान पर घर बनाए, जो न एकदम खुला हो और न एकदम गुप्त ही हो।

(८) घर में बाहर निकलने के द्वार अनेक न हों।

(९) सदाचारी पुरुषों की संगति करता हो।

(१०) माता-पिता की सेवा-भक्ति करे।

(११) रगड़े-झगड़े और बखेड़े पैदा करनेवाली जगह से दूर रहे, अर्थात् चित्त में क्षोभ उत्पन्न करनेवाले स्थान में न रहे।

(१२) किसी भी निन्दनीय काम में प्रवृत्ति न करे।

(१३) आय के अनुसार ही व्यय करे।

(१४) अपनी आर्थिकस्थिति के अनुसार वस्त्र पहने।

(१५) बुद्धि के आठ गुणों से युक्त होकर प्रतिदिन धर्म-श्रवण करे।

(१६) अजीर्ण होने पर भोजन न करे।

(१७) नियत समय पर सन्तोष के साथ भोजन करे।

(१८) धर्म के साथ अर्थ-पुरुषार्थ, काम-पुरुषार्थ और मोक्ष-पुरुषार्थ का इस प्रकार सेवन करे कि कोई किसी का बाधक न हो।

(१९) अतिथि, साधु और दीन-असहायजनों का यथायोग्य सत्कार करे।

(२०) कभी दुराग्रह के वशीभूत न हो।

(२१) गुणों का पक्षपाती हो—जहाँ कहीं गुण दिखाई दें, उन्हें ग्रहण करे और उनकी प्रशंसा करे।

(२२) देश और काल के प्रतिकूल आचरण न करे।

(२३) अपनी शक्ति और अशक्ति को समझे। अपने सामर्थ्य का विचार करके ही किसी काम में हाथ डाले, सामर्थ्य न होने पर हाथ न डाले।

(२४) सदाचारी पुरुषों की तथा अपने से अधिक ज्ञानवान् पुरुषों की विनय-भक्ति करे।

(२५) जिनके पालन-पोषण करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर हो, उनका पालन-पोषण करे।

(२६) दीर्घदर्शी हो अर्थात् आगे-पीछे का विचार करके कार्य करे।

(२७) अपने हित-अहित को समझे, भलाई-बुराई को समझे।

(२८) लोकप्रिय हो अर्थात् अपने सदाचार एवं सेवा-कार्य के द्वारा जनता का प्रेम सम्पादित करे।

(२९) कृतज्ञ हो अर्थात् अपने प्रति किये हुए उपकार को नम्रता-पूर्वक स्वीकार करे।

(३०) लज्जाशील हो, अर्थात् अनुचित कार्य करने में लज्जा का अनुभव करे।

(३१) दयावान् हो।

(३२) सौम्य हो—चेहरे पर शान्ति और प्रसन्नता झलकती हो।

(३३) परोपकार करने में उद्यत रहे। दूसरों की सेवा करने का अवसर आने पर पीछे न हटे।

(३४) काम-क्रोधादि आन्तरिक छह शत्रुओं को त्यागने में उद्यत हो।

(३५) इन्द्रियों को अपने वश में रखे।[1]

---

१. जैसे बीज बोने से पहले क्षेत्र-शुद्धि की जाती है। ऐसा न किया जाए तो यथेष्ट फल की प्राप्ति नहीं होती तथा दीवार खड़ी करने से पहले नींव मजबूत कर ली जाती है। नींव मजबूत न की जाय तो दीवार के किसी भी समय गिरजाने का खतरा रहता है। इसी प्रकार गृहस्थधर्म-श्रावकव्रत को अंगीकार करने से पहले आवश्यक जीवन-शुद्धि कर लेना उचित है। यहाँ जो बातें बतलाई गई हैं, उन्हें गृहस्थ-धर्म की नींव या आधार-भूमि समझना चाहिए। इस आधार-भूमि पर गृहस्थधर्म का जो भव्यप्रासाद खड़ा होता है, वह स्थायी होता है। उसके गिरने का भय नहीं रहता।

इन्हें मार्गानुसारी के ३५ गुण कहते हैं। इनमें कई गुण ऐसे हैं, जो केवल लौकिकजीवन से सम्बन्ध रखते हैं। उन्हें गृहस्थ-धर्म का आधार बतलाने का अर्थ यह है कि वास्तव में जीवन एक

अखण्डवस्तु है। अतः लोक-व्यवहार में और धर्म के क्षेत्र में उसका विकास एक साथ होता है। जिसका व्यावहारिकजीवन पतित और गया-बीता होगा, उसका धार्मिकजीवन उच्चश्रेणी का नहीं हो सकता। अतः धर्ममय जीवनयापन करने के लिए व्यावहारिकजीवन को उच्च बनाना परमावश्यक है। जब व्यवहार में पवित्रता आती है, तभी जीवन धर्म-साधना के योग्य बन पाता है।

—योगशास्त्रकार श्री हेमचन्द्राचार्य के मन्तव्य से

२

श्रावक का स्वरूप

१. श्रद्धालुतां श्राति पदार्थचिन्तनाद्,
धनानि पात्रेषु वपत्यनारतम् ।
किरत्यपुण्यानि सुसाधुसेवना-
-दतोऽपि तं श्रावकमाहुरुत्तमा: ।।

—श्राद्धविधि, पृष्ठ ७२, श्लोक ३

श्रा—वह तत्त्वार्थचिन्तन द्वारा श्रद्धालुता को सुदृढ़ करता है।
व—निरन्तर सत्पात्रों में धनरूप बीज बोता है।
क—शुद्धसाधु की सेवा करके पापधूलि को दूर फेंकता रहता है अतः उसे उत्तमपुरुषों ने श्रावक कहा है।

२. श्रा-श्रद्धावान हो, व-विवेकी हो, क-क्रियावान हो, वह श्रावक है।

—घासीरामजी स्वामी

३. उपासन्ते सेवन्ते साधून्, इति उपासकाः श्रावकाः ।

—उत्तराध्ययन २ टीका

साधुओं की उपासना-सेवा करते हैं अतः श्रावक उपासक कहलाते हैं।

४. श्रमणामुपास्ते इति श्रमणोपासक: ।

—उपासकदशा १ टीका

श्रमणों-साधुओं की उपासना करने से श्रावक श्रमणोपासक कह-लाते हैं।

५. अपि दिब्बेसु कामेसु, रतिं सो नाधिगच्छति।
तिण्हक्खयरति होति, सम्मा स बुद्धसावको॥

—धम्मपद १८७

दिव्य काम-भोगों में जिसे रति नहीं होती एवं तृष्णा के क्षय होने में सुख होता है, वही बुद्ध का सच्चा श्रावक है।

६. सागारा अनगारा च, उभो अञ्ञोञ्ञ निस्सिता।
आराधयन्ति सद्धम्मं, योगक्खेमं अनुत्तरं॥

—इतिवुत्तक ४।८

गृहस्थ और प्रव्रजित (साधु) दोनों ही एक-दूसरे के सहयोग से कल्याणकारी सर्वोत्तम सद्धर्म का पालन करते हैं।

३ श्रावक के गुण

१. कयवयकम्मो तह सीलवं, गुणवं च उज्जुववहारी ।
गुरु सुस्सूसो पवयण-कुसलो खलु सावगो भावे ॥

—धर्मरत्न प्रकरण ३३

(१) जो व्रतों का अनुष्ठान करनेवाला है, शीलवान है, (२) स्वाध्याय-तप-विनय आदि गुणयुक्त है, (३) सरल व्यवहार करनेवाला है, (४) सद्गुरु की सेवा करनेवाला है, (५) प्रवचनकुशल है, वह 'भावश्रावक' है ।

शील का स्वरूप इस प्रकार है—

(१) धार्मिकजनों युक्त स्थान में रहना,

(२) आवश्यक कार्य के बिना दूसरे के घर न जाना,

(३) भड़कीली पोशाक नहीं पहनना,

(४) विकार पैदा करनेवाले वचन न बोलना,

(५) द्यूत आदि न खेलना,

(६) मधुरनीति से कार्यसिद्धि करना ।

इन छः शीलों से युक्त श्रावक 'शीलवान' होता है ।

२. से जहानामए समणोवासगा भवंति । अभिगय-जीवाजीवा, उवलद्ध-पुण्ण-पावा, आसव-संवर-वेयणा -णिज्जरा-किरिया-हिगरण-बंध-मोक्ख-कुसला, असहेज्ज-देवासुर-नाग- सुवण्ण-जक्ख-रक्खस-किन्नर किंपुरिस-गरुल-गंधव्व-महोरगाइहिं देव-गणेहिं निग्गन्थाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जा, इण-

मेव निग्गंथपावयणे निस्संकिया णिक्कंखिया निव्वितिगिच्छा लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अभिगयट्ठा अट्ठि-मिंजपेमाणुरागरत्ता—"अयमाउसो ! निग्गंथे पावयणे अट्ठे, अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठे– ।" उसिय-फलिहा, अवंगुय-दुवारा, अचियत्तंतेउर-परघर-पवेसा, चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठ-पुण्णिमासिणीसु पडिपुन्नं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कम्बल-पायपुच्छणेणं ओसह-भेसज्जेणं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणा, बहूहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति । ते णं एयारूवेणं विहारेणं बहूइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणंति; पाउणित्ता आबाहंसि, उप्पन्नंसि वा अणुप्पन्नंसि वा बहूइं भत्ताइं अणसणाए पच्चक्खायंति, बहूइं भत्ताइं अणसणाए पच्चक्खाएत्ता, बहूइं भत्ताइं अणसणाए छेदेंति, बहूइं भत्ताइं अणसणाए छेइत्ता आलोइय-पडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति, तं जहा—महड्ढिएसु महज्जुइएसु जाव महासुक्खेसु ।

—सूत्रकृतांग श्रु० २।२।३९

जैसे कि कई श्रमणोपासक होते हैं । वे जीव-अजीव के ज्ञाता, पुण्य-पाप के रहस्य के जाननेवाले, आश्रव, संवर, वेदना, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बंध और मोक्ष के ज्ञान में कुशल, किसी की सहायता से रहित, देव, असुर, किन्नर, यक्ष आदि देवगणों के

द्वारा निर्ग्रन्थप्रवचन से हटने के लिए बाध्य किये जाने पर, निर्ग्रन्थप्रवचन में शङ्का, काङ्क्षा, विचिकित्सा से रहित, अर्थ-आशय को पाकर, ग्रहणकर, पूछकर निश्चय करनेवाले, जानने वाले, वे अस्थि-मज्जा में निर्ग्रन्थ-प्रवचन के प्रेम से रंगे हुए, उनका कहना है कि—"आयुष्मन् ! यह निर्ग्रन्थप्रवचन ही अर्थ है, परमार्थ है, इसके सिवा शेष व्यर्थ है।" उनके गृह-द्वारों की अर्गला खुली रहती है अर्थात् साधुओं के लिए उनके द्वार खुले रहते हैं। वे दूसरे के अंतःपुर या घर में प्रवेश करने की लालसा नहीं रखते। वे चउदस, आठम, अमावस और पूनम के दिन प्रतिपूर्ण पौषध का सम्यक् पालन करते हैं। श्रमण-निर्ग्रन्थ को निरवद्य, एषणीय खान-पान, मेवा-मुखवास, वस्त्र पात्र, दवाई, पाट-पाटिए आदि देते हैं और बहुत से शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यानव्रत, पौषध-उपवास आदि ग्रहण किए हुए तप कर्मों के द्वारा आत्मा को भावित करते रहते हैं। इस प्रकार बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक-अवस्था का पालन करके, रोगादि बाधायें उत्पन्न होने या न होने पर, अनशन करके और आलोचना प्रतिक्रमण करके, शांति से मरकर देवलोक में महर्द्धिक, महा द्युतिवाले एवं महासुखी देवता होते हैं।

३.　धम्मरयणस्सजोग्गो, अक्खुद्दो रूववं पगइसोम्मो।
लोयप्पिओ अकूरो, भीरू असठो सुदक्खिन्नो।
लज्जालुओ दयालू, मज्झत्थो सोम्मदिट्ठी गुणरागी।
सक्कह सपक्खजुत्तो, सुदीहदंसी विसेसन्नू।
वुड्ढाणुगो विणीओ, कयन्नुओ परहिअत्थकारी य।
तह चेव लद्धलक्खो, एगवीसगुणो हवइ सड्ढो।
—प्रवचन सारोद्धार २३६ गाथा १३५६ से १३५८

सर्वज्ञभाषित धर्म के योग्य श्रावक के २१ गुण कहे हैं। यथा-

१ अक्षुद्र, २ रूपवान्, ३ प्रकृतिसौम्य, ४ लोकप्रिय, ५ अक्रूर ६ पापभीरु, ७ अशठ (छल नहीं करनेवाला), ८ सदाक्षिण्य (धर्मकार्य में दूसरों की सहायता करनेवाला), ९ लज्जावान, १० दयालु, ११ रागद्वेषरहित (मध्यस्थभाव में रहनेवाला), १२ सौम्यदृष्टिवाला, १३ गुणरागी, १४ सत्यकथन में रुचि रखनेवाले - धार्मिकपरिवारयुक्त, १५ सुदीर्घदर्शी १६ विशेषज्ञ, १७ वृद्ध महापुरुषों के पीछे चलनेवाला, १८विनीत, १९ कृतज्ञ (किए हुए उपकार को समझनेवाला), २० परहित करनेवाला, २१ लब्धलक्ष (जिसे लक्ष्य की प्राप्ति प्रायः हो गई हो ।)

१. पंचे व अणुव्वयाइं, गुणव्वयाइं च हुंति तिन्नेव।
सिक्खावयाइं चउरो, सावगधम्मो दुवालसहा।
—श्रावकधर्म प्रज्ञप्ति ६

पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, और चार शिक्षाव्रत—इस प्रकार 'श्रावकधर्म' बारह प्रकार का है।

२. अगारि सामाइयंगाइं, सड्ढी काएण फासए।
पोसहं दुहओ पक्खं, एगरायं न हावए॥
—उत्तराध्ययन ५।२३

श्रद्धालु-श्रावक को निःशङ्कित आदि सामायिक के आठों अंगों का पालन करना चाहिए। दोनों पक्षों में अमावस्या-पूर्णिमा को पोषध करना चाहिए, कदाचित् दो न हो सकें तो एक तो अवश्य करना ही चाहिए।

श्रावक के प्रकार—

१. उवासगो दुविहो, पण्णत्ते, तं जहा—वती, अवती वा।
—निशीथ उ० ११ चूर्णि

उपासक-श्रावक दो प्रकार के होते हैं—
व्रती, और अव्रती—(सम्यग्दृष्टि।)

४. नामादि चउभेओ, सड्ढो भावेण इत्थ अहिगारो,
तिविहो य भावसड्ढो, दंसण-वय-उत्तरगुणेहिं।
—श्राद्धविधि गाथा ४

१ नामश्रावक, २ स्थापनाश्रावक, ३ द्रव्यश्रावक, ४ भावश्रावक, इस प्रकार श्रावक के चार भेद हैं। यहाँ भावश्रावक का अधिकार है :

भाव श्रावक के तीन प्रकार—

१ दर्शनश्रावक—कृष्ण-श्रेणिक आदिवत् अव्रतीसम्यग्दृष्टि,
२ व्रती श्रावक—पाँच अणुव्रतधारी,
३ उत्तरगुणश्रावक—सम्पूर्ण बारहव्रत धारण करनेवाला।

५. चवदै चूक्यो बारह भूल्यो, नहीं जाणै छः काया का नाम।
गाँव ढंढेरो फेरियो, श्रावक म्हारो नाम।

—राजस्थानी दोहा

६. चत्तारि समणोवासगा पण्णत्ता, तं जहा—अम्मापिइसमाणे, भाइसमाणे, मित्तसमाणे, सवत्तिसमाणे।

—स्थानाङ्ग ४।३।३२१

चार प्रकार के श्रावक कहे हैं—

१ माता-पितासमान—एकान्त में हितशिक्षा देकर साधुओं को सजग करनेवाले।

२ भाईसमान—साधुओं को प्रमादी देखकर बाहर ऊपर से क्रोध भी करे, किन्तु हृदय में हित की इच्छा करनेवाले।

३ मित्रसमान—साधुओं के दोषों की उपेक्षा करके केवल गुण को लेनेवाले।

४ सपत्नीसमान—साधुओं के छिद्र देखनेवाले।

७. चत्तारि समणोवासगा पण्णत्ता, तं जहा—अद्दागसमाणे, पडागसमाणे, खाणुसमाणे, खरकंटसमाणे।

—स्थानाङ्ग ४।३।३२१

श्रावक चार प्रकार के कहे हैं—

१ दर्पण-समान—साधु के बताये हुए तत्त्व को यथावत् प्रति-पादन करनेवाले।

२ पताका-समान—अज्ञानवश हवा के साथ इधर-उधर खींचे जानेवाले-अस्थिरमस्तिष्क के।

३ स्थाणु-समान—सूखे लकड़े की तरह कठोर—अपना कदाग्रह नहीं छोड़नेवाले।

४ कण्टक-समान—समझाने पर भी न मानकर कुवचनरूप-काँटा चुभानेवाले।

५ श्रावक के विषय में विविध

श्रावक के चार विश्राम—

१. समणोवासगस्स णं चत्तारि आसासा पन्नत्ता, तं जहा—जत्थ वि य णं सीलव्वय-गुणव्वय-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं पडिवज्जइ, तत्थ वि य से एगे आसासे पन्नत्ते। जत्थ वि य णं सामाइयं देसावगासियं सम्ममणुपालेइ, तत्थ वि य से एगे आसासे पन्नत्ते। जत्थ वि य णं चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठ-पुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेइ, तत्थ वि य से एगे आसासे पन्नत्ते। जत्थ वि य णं अपच्छिम-मारणंतियसंलेहणा-झूसणाझूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगए कालमणवकंखमाणे विहरइ, तत्थ वि य से एगे आसासे पन्नत्ते।

—स्थानाङ्ग ४।३।३१४

भारवाहक की भाँति श्रावक के चार विश्राम हैं—

१ जिस समय श्रावक पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, नवकारसी आदि प्रत्याख्यान तथा अष्टमी-चतुर्दशी आदि के दिन उपवास धारण करता है, उस समय प्रथम विश्राम होता है।

२ जब श्रावक सामायिक एवं देशावकाशिक व्रत का पालन करता है, तब दूसरा विश्राम होता है।

३ चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा आदि पर्व-तिथियों

में जब श्रावक रात-दिन का पूर्ण पौषध करता है, तब तीसरा विश्राम होता है।

४ जब मारणान्तिक संलेखना-तप धारकर यावज्जीवन आहार-पानी का त्याग करके स्थिरता में मरण की वांछा न करता हुआ विचरता है, तब चौथा विश्राम होता है।

(भारवाहक पहले विश्राम में भार एक कंधे से दूसरे कंधे पर लेता है, दूसरे विश्राम में उसे उतारकर मल-मूत्र का त्याग करता है, तीसरे विश्राम में नाग आदि के मंदिर में ठहरता है और चौथे विश्राम में भार को जहाँ पहुंचाना होता है, वहाँ पहुंचाकर मुक्त होता है।)

श्रावक के तीन मनोरथ—

२. तिहिं ठाणेहिं समणोवासए महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ, तं जहा—कयाणमहमप्पं वा बहुं वा परिग्गहं परिचइस्सामि। कयाणं अहं मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामि। कयाणं अहं अपच्छिम-मारणंतिय-संलेहणा-झूसणाझूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगए कालमणवकंखमाणे विहरिस्सामि, एवं समणसा, सवयसा, सकायसा, जागरमाणे समणोवासए महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ।

—स्थानाङ्ग ३।४।२१०

निम्नलिखित तीन मनोरथों का चिन्तन करता हुआ श्रावक महा-निर्जरा एवं महापर्यवसान-समाधिमरणवाला होता है—(१) कब मैं थोड़ा या बहुत परिग्रह का सर्वथा त्याग करूंगा, (२) कब मैं गृहवास को छोड़ एवं मुण्डित होकर साधु बनूंगा तथा (३) कब मैं संलेखना-संथारा करके मरण की इच्छा न करता हुआ स्थिरता से विचरूंगा?

३. श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएं—

एक्कारस उवासगपडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—दंसणसावए, कयव्वयकम्मे, सामाइअकडे, पोसहोववासनिरए, दिआबंभ-यारी रत्तिपरिमाणकडे, दिआ वि राओ वि बंभयारी, असिणाई विअडभोई मोलिकडे, सचित्तपरिण्णाए, आरम्भ-परिण्णाए, पेसपरिण्णाए, उद्दिट्ठभत्तपरिण्णाए, समणभूए आवि भवइ समणाउसो ! —दशाश्रुत ६

प्रतिमा का अर्थ प्रतिज्ञा है। श्रावक के लिए ग्यारह प्रतिमाएं कही हैं—

पहली प्रतिमा में श्रावक शङ्का-काङ्क्षादि दोषरहित सम्यक्त्व का पालन करता है।

दूसरी प्रतिमा में श्रावक अणुव्रत-गुणव्रत का विधिवत् पालन करता है।

तीसरी प्रतिमा में श्रावक दोनों वक्त सामायिक एवं देशावका-शिक का आराधन करता है।

चौथी प्रतिमा में श्रावक पर्व के दिनों में पूर्णपौषध करता है।

पांचवीं प्रतिमा में श्रावक दिन में पूर्ण ब्रह्मचारी एवं रात को मर्यादासहित ब्रह्मचर्य का पालन करता है।

छठी प्रतिमा में श्रावक दिन-रात पूर्ण ब्रह्मचारी रहता है, स्नान एवं रात्रिभोजन का सर्वथा त्याग करता है और कच्छ नहीं बांधता।

सातवीं प्रतिमा में श्रावक सचित्त-आहार का त्याग करता है।

आठवीं प्रतिमा में श्रावक आरम्भ-समारम्भ का त्याग करता है।

नवमीं प्रतिमा में श्रावक नौकर आदि से भी आरम्भ नहीं कर-वाता।

दसवीं प्रतिमा में श्रावक अपने लिए बनाया हुआ भोजन नहीं करता। कोई हजामत करवाता है एवं कोई शिखा भी रखता है। घरसम्बन्धी कार्यों के विषय में पूछने पर **मैं जानता हूं या नहीं जानता** इन दो वाक्यों से ज्यादा नहीं बोल सकता।

ग्यारहवीं प्रतिमा में श्रावक साधु के समान वेष धारण करता है एवं प्रतिलेखन आदि क्रियाएं करता है, लेकिन सांसारिक प्रेम व अपमान के भय से अपने स्वजन-सम्बन्धियों के घरों से ही भिक्षा लेता है तथा क्षुर से हजामत करता है और कोई-कोई साधु की तरह लोच भी करता है।

४. श्रावक श्री रूपचन्दजी–

जन्म १९२३ जेठ सुदी १०, स्वर्गवास १९८३ फाल्गुन सुदी ७, एक घंटा पांच मिनट का संथारा। स्नान में पांच सेर जल, घटाते-घटाते अन्त में ४५ तोला रखा। रेल में जलपान भी नहीं, वि. सं. १९७२ के बाद रेल का त्याग। छत्ता नहीं, शयन में तकिया नहीं। जबान के पाबन्द, स्पष्टवक्ता, कपड़ा ५६ हाथ, सामायिक-पौषध में प्रायः फिरते नहीं, सहारा लेते नहीं। सामायिक अन्तिम दिन तक, आचार्य डालगणी की विशेष कृपा।

—'श्रावक रूपचन्दजी' पुस्तक से

६

सामायिक

१. समानि ज्ञान–दर्शन-चारित्राणि, तेषु अयनं-गमनं समायः, स एव सामायिकम् ।

मोक्षमार्ग के साधन ज्ञान-दर्शन-चारित्र **सम** कहलाते हैं; उनमें अयन यानी प्रवृत्ति करना **सामायिक** है।

२. समभावो सामाइयं, तण-कंचण-सत्तु-मित्त विसउ त्ति ।
णिरभिस्संगं चित्तं, उचियपवित्तिप्पहाणं च ।

—पंचाशक

चाहे तिनका हो, चाहे सोना, चाहे शत्रु हो, चाहे मित्र, सर्वत्र अपने मन को राग-द्वेष की आसक्ति से रहित रखना तथा पाप-रहित उचित धार्मिकप्रवृत्ति करना, 'सामायिक' है; समभाव ही सामायिक है।

३. समता सर्वभूतेषु, संयमः शुभ-भावना ।
आर्तरौद्र-परित्याग-स्तद्धि सामायिकं व्रतम् ।।

सब जीवों पर समता-समभाव रखना, पाँच इन्द्रियों का संयम-नियंत्रण करना, अन्तर्हृदय में शुभभावना शुभसंकल्प रखना, आर्त-रौद्र दुर्ध्यानों का त्याग करके धर्मध्यान का चिन्तन करना 'सामायिक' है।

४. त्यक्तार्त-रौद्र ध्यानस्य, त्यक्तसावद्यकर्मणः ।
मुहूर्त्तं समता या तां, विदुः सामायिक व्रतम् ।।

—योगशास्त्र ३।८२

आर्तध्यान और रौद्रध्यान का त्याग करके तथा पापमय कर्मों का त्याग करके मुहूर्त-पर्यन्त समभाव में रहना 'सामायिकव्रत' है।

५. सामाइयं नाम सावज्जजोगपरिवज्जणं निरवज्जजोग-पडिसेवणं च।
—आवश्यक-अवचूरि

सावद्य अर्थात् पापजनक कर्मों का त्याग करना और निरवद्य अर्थात् पापरहित कार्यों को स्वीकार करना 'सामायिक' है।

६. आया सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे।
—भगवती १।९

हे आर्य! आत्मा ही सामायिक है और आत्मा ही सामायिक का अर्थ-फल है।

सामायिक का महत्त्व—

७. सामाइयम्मि उ कए, समणो इव सावओ हवइ जम्हा।
एएण कारणेणं, बहुसो सामाइयं कुज्जा॥
—विशेषावश्यक-भाष्य २६९०
—तथा आवश्यक-निर्युक्ति ८००।१

सामायिकव्रत भलीभाँति ग्रहण करलेने पर श्रावक भी साधु जैसा हो जाता है, आध्यात्मिक-उच्चदशा को पहुँच जाता है; अतः श्रावक का कर्त्तव्य है कि वह अधिक से अधिक सामायिक करे।

८. सामाइय-वय-जुत्तो, जाव मणो होइ नियमसंजुत्तो।
छिन्नइ असुहं कम्मं, सामाइय जत्तिया वारा॥
—आवश्यकनिर्युक्ति ८००।२

चंचल मन को नियंत्रण में रखते हुए जब तक सामायिक व्रत की अखण्डधारा चालू रहती है तब तक अशुभकर्म बराबर क्षीण होते रहते हैं।

९. जे के वि गया मोक्खं, जेवि य गच्छंति जे गमिस्संति ।
ते सव्वे सामाइय- पभावेण मुणेयव्वं ॥

जो भी साधक अतीतकाल में मोक्ष गये हैं, वर्तमान में जा रहे हैं और भविष्य में जायेंगे, यह सब सामायिक का प्रभाव है ।

१०. किं तिव्वेण तवेणं, किं जवेणं किं चरित्तेणं ।
समयाइ विण मुक्खो, न हु हुओ कहवि न हु होइ ॥

—**सामायिकप्रवचन, पृष्ठ ७८**

चाहे कोई कितना ही तीव्र तप तपे, जप-जपे अथवा मुनि-वेष धारण कर स्थूल क्रियाकाण्डरूप चारित्र पाले; परन्तु समताभाव रूप सामायिक के बिना न किसी को मोक्ष हुआ है और न होगा ।

७ सामायिक के विषय में विविध

१. सामायिक के अधिकारी—

जो समो सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य ।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलि-भासियं ॥
जस्स सामाणिओ अप्पा संजमे णियमे तवे ।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलि - भासियं ॥

जो साधक त्रस-स्थावररूप सभी जीवों पर समभाव रखता है, उसी का सामायिक शुद्ध होता है—ऐसा केवली-भगवान् ने कहा है ।

जिसकी आत्मा संयम, तप और नियम में संलग्न हो जाती है; उसी का सामायिक शुद्ध होता है—ऐसा केवली-भगवान् ने कहा है ।

२. सामायिक के भेद—

दुविहे सामाइए पण्णत्ते, तं जहा—आगारसामाइए चेव, अणगारसामाइए चेव । —स्थानाङ्ग २।३

सामायिक दो प्रकार का कहा है—
(१) आगारसामायिक और (२) अनगार सामायिक ।

३. सामायिक के अतिचार—

एयस्स नवमस्स सामाइयवयस्स, पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—मण-दुप्पणिहाणे, वय-दुप्प

णिहाणे, काय-दुप्पणिहाणे, समाइयस्स सइ-अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया, तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

— श्रावक-आवश्यक

इस नौवें सामायिकव्रत के पांच अतिचार जानने योग्य हैं, लेकिन श्रावक के लिए वे आचरने योग्य नहीं। यथा—

१ मन की दुष्प्रवृत्ति, २ वचन की दुष्प्रवृत्ति, ३ काया की दुष्प्रवृत्ति, ४ सामायिक की स्मृति न रखना, ५ सामायिक को अव्यवस्थित करना।

४. सामायिक के ३२ दोष—

१. मन के दस दोष—

अविवेक जसो-कित्ती, लाभत्थी गव्व-भय नियाणत्थी।
संसय-रोस अविणओ, अबहुमाणए दोसा भाणियव्वा॥

१ अविवेक, २ यशः-कीर्ति, ३ लाभार्थ ४ गर्व ५ भय ६ निदान ७ संशय ८ रोष ९ अविनय १० अबहुमान।

२. वचन के दस दोष—

कुवयण-सहसाकारे, सच्छंद-संखेव कलहं च।
विगहा विहासोऽसुद्धं, निरवेक्खो मुणमुणा दस दोसा॥

१ कुवचन, २ सहसाकार, ३ स्वच्छन्द, ४ संक्षेप, ५ कलह, ६ विकथा, ७ हास्य, ८ अशुद्ध, ९ निरपेक्ष, १० मुम्मन।

३. काय के बारह दोष—

कुआसणं चलासणं चलादिट्ठी,
सावज्जकिरिया-लंबणा-कुंचण-पसारणं च।
आलस-मोडन-मल-विमासणं,
निद्दा वेयावच्चत्ति, बारस कायदोसा॥

—सामायिकप्रवचन, पृष्ठ १२

१ कुआसन, २ चलासन, ३ चलदृष्टि, ४ सावद्य क्रिया, ५ आलंबन, ६ आकुञ्चन-प्रसारण, ७ आलस्य, ८ मोड़न ९ मल, १० विमासन, ११ निद्रा, १२ वैयावृत्य।

(इनका विवेचन देखो श्रावक धर्मप्रकाश पुंज ६ में)

८

सामायिक का प्रभाव

१. **गीदड़बाहा** का एक जैनश्रावक मानसामंडी से १८ हजार रुपये लेकर बस में जा रहा था। डाकू मिले और बोले दिखाओ सब अपना-अपना सामान! श्रावक ने मुंहपत्ति पूंजणी एवं माला दिखाकर कहा—मेरे सामायिक का नियम है। डाकू बोले—मुंहपट्टिए का चेला है! ये साधु अच्छे होते हैं, यों कहकर श्रावक को छोड़ दिया—अन्य सभी को लूट कर धन-माल ले गये।

२. **उदयचन्द** सुराना का पन्ने का कंठा एक आदमी ले गया। समता रखी। फिर सामायिक करते समय एक दिन वापिस पहुंचा गया।

३. डाकू आनेवाले थे, घर के सब द्वार खोलकर सेठ ने सपरिवार सामायिक ले लिया। साधु समझकर डाकू वापस लौट गये।

६ नाम की सामायिक

१. सामायिक में समता भाव, गुड़ की भेली कुत्ता खाय।

—राजस्थानी कहावत

● सास घर में सामायिक कर रही थी। इतने में एक कुत्ता आया। बहू ने ध्यान नहीं दिया। सास से रहा नहीं गया और नवकार-मंत्र का जाप करती हुई कहने लगी—

लंबड़ पूंछो लंका पेटो घर में पेठोजी ! णमो अरिहंताणं।

बहू समझ तो गई, लेकिन कुत्ते को न निकाल कर अपना काम करती रही। कुत्ता रसोई में घुसने लगा। तब सास ने कहा—

उज्जलदन्तो कावरचित्तो रसोई को किवाड़ खोल्यो जी ! णमो सिद्धाणं।

फिर भी बहू ने गौर नहीं किया।

सास पुनः बोली—

दूध-दही रा भाडा फोड्या घी के चाडे ढूक्योजी ! णमो आयरिआणं।

इतने पर भी बहू नहीं आई, तब झुंझलाकर सास ने फिर कहा—

उजाड़ तो इण बहुलो कीधो बहुवर भेद न पायोजी ! णमो उवज्झायाणं।

आखिर हंस कर बहू ने इस प्रकार मंत्र की पूर्ति की—

सामायिक तो मारे पिहरे भी करता पण आ किरिया नहीं देखीजो ! णमो लोए सव्वसाहूणं ।

३. सेठ सामायिक कर रहे थे । बहू घर में काम कर रही थी । बाहर से सेठ को पूछता हुआ एक आदमी आया । बहू ने कहा—सेठजी मोची की दुकान पर जूते खरीद रहे हैं । जाकर देखा तो वहां न मिले । वापिस आकर पूछा । उत्तर मिला कि अब कपड़े की दुकान पर कपड़ा देख रहे हैं । वहां जाकर भी खाली आया । बहू बोली—वे तो इन्कम-टैक्स के दफ्तर में गये हैं । इस प्रकार आगन्तुक को कई जगह घुमाकर अंत में कहने लगी अब सेठजी सामायिक कर रहे हैं । इतने में सेठ सामायिक करके बाहर आये । और बहू पर क्रुद्ध होने लगे । बहू ने विनम्र शब्दों में कहा-पिताजी ! केवल मुंह बांधने से सामायिक नहीं होती, बतलाइए आप सामायिक करते समय मन से मोची आदि के यहां गये थे या नहीं ! सेठजी चुप रहे क्योंकि वास्तव में बहू की बात सत्य थी ।

१० पौषध

१. पोषं धर्मस्य धत्ते यत्, तद्भवेत् पौषधव्रतम् ।

—उपदेशप्रासाद

जो व्रत धर्म को पुष्ट बनाता है, उसे पौषधव्रत कहते हैं।

२. आहार-तनुसत्कारा-ऽब्रह्म-सावद्यकर्मणाम्,
त्यागः पर्वचतुष्टय्यां, तद्विदुः पौषधव्रतम् ।

—धर्मसंग्रह १।३७

आहार, शरीर का सत्कार, अब्रह्मचर्य, और सावद्यकार्य-चारों पर्व तिथियों (अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्य और पूर्णिमा) में इन सबका त्याग करना **पौषधव्रत है।**

३. बौद्ध परम्परा में पौषध की भांति उपोसथ का विधान है। बुद्ध के अनेक भक्त (उपासक) अष्टमी चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा को उपोसथ किया करते थे। (देखें-पेतावत्थु अट्ठकथा गाथा २०६ तथा विनयपिटक महावग्ग) उपोसथ में उपासक निम्न आठ शील का पालन करता है—(१) प्राणातिपात-विरति, (२) अदत्तादान-विरति, (३) काम भावना-विरति, (४) मृषावाद-विरति, (५) मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करना, (६) विकाल भोजन नहीं करना, (७) नृत्य, गीत, शरीर की विभूषा आदि नहीं करना, (८) उच्चासन तथा सजीधजी शय्या का त्याग करना।

—आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन पृष्ठ ६५५,

११ तप

१. तापयति अष्टप्रकारं कर्म इति तपः ।

—आवश्यक मलयगिरि खण्ड २ अ. १

जो आठ प्रकार के कर्मों को तपाता है, उसका नाम 'तप' है।

२. इन्द्रियमनसोर्नियमानुष्ठानं तपः ।

—नीतिवाक्यामृत १।२२

पाँच इन्द्रिय (स्पर्शन-रसना-घ्राण-चक्षु-श्रोत्र) और मन को वश में करना या बढ़ती हुई लालसाओं को रोकना तप है।

३. वेदस्योपनिषत् सत्यं, सत्यस्योपनिषद् दमः ।
दमस्योपनिषद् दानं, दानस्योपनिषत् तपः ॥

—महाभारत शान्ति पर्व अ० २५१।११

वेद का सार है सत्यवचन, सत्य का सार है इन्द्रियों का संयम, संयम का सार है दान और दान का सार है 'तपस्या'।

४. तपो हि परमं श्रेयः, संमोहमितरत्सुखम् ।

—वाल्मीकिरामायण ७।८४।९

तप ही परम कल्याणकारी है। तप से भिन्न सुख तो मात्र बुद्धि के सम्मोह को उत्पन्न करनेवाला है।

५. तपस्या जीवन की सब से बड़ी कला है। —गांधी

६. परक्कमिज्जा तवसंजमंमि । —दशवैकालिक ८।४१

तप-संयम में पराक्रम करना चाहिए।

१२ तप से लाभ

१. तवेण परिसुज्झइ। —उत्तराध्ययन २८।३५

तपस्या से आत्मा पवित्र होती है।

२. तवेण वोदाणं जणयइ। —उत्तराध्ययन २९।२७

तपस्या से व्यवदान अर्थात् कर्मों की शुद्धि होती है।

३. भवकोडीसंचियं कम्मं, तवसा निज्जरिज्जइ।

—उत्तराध्ययन ३०।६

करोड़ों भवों के संचित कर्म तपस्या से जीर्ण होकर झड़ जाते हैं।

४. तपसा प्राप्यते सत्त्वं सत्त्वात् संप्राप्यते मनः।
मनसा प्राप्यते त्वात्मा, ह्यात्मापत्त्या निवर्त्तते॥

—मैत्रायणी आरण्यक १।४

तप द्वारा सत्त्व (ज्ञान) प्राप्त होता है, सत्त्व से मन वश में आता है, मन वश में आने से आत्मा की प्राप्ति होती है और आत्मा की प्राप्ति हो जाने पर संसार से छुटकारा मिल जाता है।

५. तपसैव महोग्रेण, यद्दुरापं तदाप्यते।

—योगवाशिष्ठ ३।९८।१४

जो दुष्प्राप्य वस्तुएं हैं, वे उग्रतपस्या से ही प्राप्त होती हैं।

६. यद्दुस्तरं यद्दुरापं, यद्दुर्गं यच्च दुष्करम्।
सर्वं तु तपसा साध्यं, तपो हि दुरतिक्रमम्॥

—मनुस्मृति ११।२३८

जो दुस्तर है, दुस्साध्य है, दुर्गम है, और दुष्कर है—वह सब तप द्वारा सिद्ध किया जा सकता है, क्योंकि तप दुरतिक्रम है। इसके आगे कठिनता जैसी कोई चीज नहीं है।

७. तपसा च कृतः शुद्धो, देहो न स्यान्मलीमसः।

—हिंगुलप्रकरण

तपस्या से शुद्ध किया हुआ शरीर फिर मैला नहीं होता।

८. तवसा अवहट्टलेस्सस्स, दंसणं परिसुज्झइ।

—दशाश्रुत स्कन्ध ५।६

तपस्या से लेश्याओं को संवृत करनेवाले व्यक्ति का दर्शन-सम्यक्त्व परिशोधित होता है।

१३ तप कैसे और किसलिये ?

१. बलं थामं च पेहाए, सद्धामारोग्गमप्पणो ।
खेत्तं कालं च विन्नाय, तहप्पाणं निजुंजए ॥

—दशवैकालिक ८।३५

अपना बल, दृढ़ता, श्रद्धा आरोग्य तथा क्षेत्र-काल को देखकर आत्मा को तपश्चर्या में लगाना चाहिए।

२. तदेव हि तपः कार्यं, दुर्ध्यानं यत्र नो भवेत् ।
येन योगा न हीयन्ते, क्षीयन्ते नेन्द्रियाणि च ।

—तपोऽष्टक (यशोविजयकृत)

तप वैसा ही करना चाहिए, जिसमें दुर्ध्यान न हो, योगों में हानि न हो और इन्द्रियां क्षीण न हों।

३. नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तवमहिट्ठेज्जा ।

—दशवैकालिक ९।४

केवल कर्म-निर्जरा के लिए तपस्या करना चाहिए। इहलोक-परलोक व यशःकीर्ति के लिए नहीं।

४. णो पूयणं तवसा आवहेज्जा ।

—सूत्रकृतांग ७।२७

तपस्या द्वारा पूजा की इच्छा न करनी चाहिए।

५. तेसिं पि न तवो सुद्धो ।

—सूत्रकृतांग ८।२४

जो कीर्ति आदि की कामना से तप करते हैं, उनका तप शुद्ध नहीं है ।

६. न हु बालतवेण मुक्खुत्ति ।

—आचारांग निर्युक्ति २१४

अज्ञान-तप से कभी मुक्ति नहीं मिलती ।

१४ तप के भेद

१. सो तवो दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भिंतरो तहा।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भिंतरो तवो॥

—उत्तराध्ययन ३०।८

तप दो प्रकार का है—बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्यतप अनशन आदि छः प्रकार का है एवं आभ्यन्तर तप के प्रायश्चित्त आदि छः भेद हैं।

२. अणसणमूणोयरिया, भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ।
कायकिलेसो संलीणया य, बज्झो तवो होइ।
पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ।
झाणं च विउस्सग्गो, एस अब्भिंतरो तवो।

—उत्तराध्ययन ३०

बाह्य तप के छः भेद हैं— १ अनशन, २ ऊनोदरी, ३ भिक्षाचरी, ४ रसपरित्याग, ५ कायक्लेश, ६ प्रतिसंलीनता।
आभ्यन्तरतप के छः भेद हैं— १ प्रायश्चित्त, २ विनय, ३ वैयावृत्त्य, ४ स्वाध्याय, ५ ध्यान, ६ कायोत्सर्ग।

३. देव-द्विज-गुरु-प्राज्ञ-पूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च, शारीरं तप उच्यते॥ १४॥
अनुद्वेगकरं वाक्यं, सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव, वाङ्मयं तप उच्यते॥ १५॥

मनःप्रसादः सौम्यत्वं, मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्, तपो मानसमुच्यते ॥ १६ ॥
श्रद्धया परया तप्तं, तपस्तत्त्रिविधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥ १७ ॥
सत्कारमानपूजार्थं, तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं, राजसं चलमध्रुवम् ॥ १८ ॥
मूढग्राहेणात्मनो यत्, पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा, तत्तामसमुदाहृतम् ॥ १९ ॥

—गीता १७।

देवता, ब्राह्मण, गुरु एवं ज्ञानीजनों का पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा—ये शारीरिक तप हैं।

दूसरों को उद्विग्न न करनेवाले सत्य, प्रिय हितकारी वचन और सत्-शास्त्रों का अध्ययन-वाचिक(-वाणी का) तप कहलाता है।

मन की प्रसन्नता, शांतभाव, मौन, आत्मसंयम और भावों की पवित्रता मानसिक(-मन का) तप कहा जाता है।

पूर्वोक्त तीनों प्रकार का तप यदि फल की आकांक्षा किए बिना परम श्रद्धापूर्वक किया जाए तो वह सात्त्विक कहलाता है; यदि वह तप सत्कार, मान एवं पूजा-प्राप्ति के लिए दंभपूर्वक किया जाए तो वह राजस कहा गया है, उसके फलस्वरूप क्षणिक-भौतिक सुख मिल जाता है। अविवेकियों द्वारा दुराग्रहवश जो शरीर को पीड़ित किया जाता है अथवा दूसरों का नाश करने के लिए जो तप किया जाता है वह तामस कहा गया है।

१५ अनशन

१. तपोनानशनात् परम् ।
यद्धि परं तपस्तद् दुर्धर्षम् तद् दुराधर्षम् ।।

—मैत्रायणी आरण्यक १०।६२

अनशन से बढ़कर कोई तप नहीं है, साधारण साधक के लिए यह परम तप दुर्धर्ष है अर्थात् सहन करना बड़ा ही कठिन है ।

२. आहार पच्चक्खाणेणं जीवियासंसप्पओगं वोच्छिंदइ ।

—उत्तराध्ययन २९।३५

आहार प्रत्याख्यान अर्थात् अनशन से जीव आशा का व्यवच्छेद करता है यानी जीवन की लालसा से छूट जाता है ।

३. विषया विनिवर्तन्ते, निराहारस्य देहिनः ।

—गीता २।५९

आहार का त्याग करनेवाले व्यक्ति से शब्दादि इन्द्रियों के विषय निवृत्त हो जाते हैं ।

४. अणसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—इत्तरिए य, आवकहिए य
इत्तरिए अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—चउत्थे भत्ते,
छट्ठे भत्ते....... जाव छम्मासिए भत्ते....।
आवकहिए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
पाओवगमणे य, भत्तपच्चक्खाणे य । —भगवती २५-७

अनशन—आहार त्याग दो प्रकार का कहा है—
(१) इत्वरिक (२) यावत्कथिक।

इत्वरिक के अनेक भेद हैं—चतुर्थभक्त—उपवास, षष्ठभक्त—बेला........यावत् षाण्मासिकभक्त (छः महिनों का तप)।

यावत्कथिक—यावज्जीवन आहारत्याग दो प्रकार का कहा है—
(१) पादपोपगमन (२) भक्तप्रत्याख्यान।

५. जो सो इत्तरिओ तवो, सो समासेण छव्विहो।
सेढितवो पयरतवो, घणो य तह होइ वग्गो य ॥ १० ॥
तत्तो य वग्गवग्गो, पंचम छट्ठओ पइण्णतवो।
मणइच्छियचित्तत्थो, नायव्वो होइ इत्तरिओ ॥ ११ ॥

—उत्तराध्ययन अ० ३०

इत्वरिक तप संक्षिप्तरूप में छः प्रकार का है—
(१) श्रेणितप, (२) प्रतरतप, (३) घनतप, (४) वर्गतप, (५) वर्ग-वर्गतप, (६) प्रकीर्णतप—यह इत्वरिक तप मन-इच्छित फल देनेवाला है।

६. संवच्छरं तु पढमं, मज्झिमगाणट्ठमासियं होई।
छम्मासं पच्छिमस्स उ, माणं भणियं तवुक्कोसं ॥

—व्यवहारभाष्य उ० १

प्रथमतीर्थंकर का एक वर्ष, मध्यतीर्थंकरों का आठमास एवं चरमतीर्थंकर का उत्कृष्ट तप षट्मास था।

१६ उपवास

१. चतुर्विधाशनत्याग उपवासो मतो जिनैः ।

—सुभाषितरत्न-संदोह

अशन आदि चारों प्रकार के आहार का त्याग करना भगवान के द्वारा उपवास माना गया है।

२. उपवासः स विज्ञेयः, सर्वभोगविवर्जितः ।

—मार्गशीर्ष-एकादशी

सभी भोगों का त्याग करना उपवास नामक व्रत है।

३. आरोग्य रक्षा का मुख्य उपाय है उपवास ।

४. मर्यादा में रहकर उपवास करने से बहुत लाभ होता है।

५. साधु एक उपवास में जितने कर्म खपाता है, उतने कर्म हजारों वर्ष में भी नरक के जीव नहीं खपा सकते। बेले में साधु जितने कर्मों का नाश करता है, नारक-जीव लाखों वर्षों में उतने कर्म नहीं खपा सकते। साधु तेले में जितनी कर्म-निर्जरा करता है, नारक-जीव उतनी कर्म-निर्जरा करोड़ों वर्षों में भी नहीं कर सकते। साधु चोले में जितने कर्म नष्ट करता है, नारक-जीव कोटि-कोटि वर्षों में भी उतने कर्म नष्ट नहीं कर सकते।

—भगवती १६।४

६. (क) **उपवास से पहले तीन बातें मत करो—**

(१) गरिष्ठ भोजन, (२) अधिक भोजन, (३) चटपटा सुस्वादु भोजन।

(ख) **उपवास में तीन बातें मत करो।**

(१) क्रोध, (२) अहंकार, (३) निन्दा।

(ग) **उपवास में तीन बातें अवश्य करो।**

१ ब्रह्मचर्य का पालन, २ शास्त्र का पठन, ३ आत्म-स्वरूप का चिन्तन।

(घ) **तीन को उपवास नहीं करना चाहिए—**

१ गर्भवती स्त्री को, २ दूध पीते बच्चे की माता को, ३ दुर्बल—अजीर्ण के रोगी को।

—'तीन बातें' नामक पुस्तक से

१७ प्रायश्चित्त

१. प्रायः पापं विनिर्दिष्टं, चित्तं तस्य विशोधनम् ।

—धर्मसंग्रह ३ अधिकार

प्रायः का अर्थ पाप है और चित्त का अर्थ उस पाप का शोधन करना है अर्थात् पाप को शुद्ध करनेवाली क्रिया का नाम प्रायश्चित्त है।

२. अपराधो वा प्रायः चित्तं-शुद्धिः प्रायस्य चित्तं प्रायश्चित्तं—अपराध-विशुद्धिः ।

—राजवार्तिक ९।२२।१

अपराध का नाम प्रायः है और चित्त का अर्थ शोधन है। प्रायश्चित्त अर्थात् अपराध की शुद्धि।

३. पावं छिंदइ जम्हा, पायच्छित्तं ति भण्णइ तेणं ॥

—पंचाशक सटीक विवरण १६।३

पाप का छेदन करता है अतः प्राकृत भाषा में इसे '**पायच्छित्त**' कहते हैं।

४. प्रायइत्युच्यते लोक-स्तस्य चित्तं मनो भवेत् ।
तच्चित्त-ग्राहकं कर्म, प्रायश्चित्तमिति स्मृतम् ॥

—प्रायश्चित्तसमुच्चयवृत्ति

प्रायः का अर्थ लोक-जनता है एवं चित्त का अर्थ मन है। जिस क्रिया के द्वारा जनता के मन में आदर हो, उस क्रिया का नाम प्रायश्चित्त है।

५. पाप को शुद्धहृदय से मान लेना भी प्रायश्चित्त है।

गांधी जी ने कर्जदार से तंग आकर एक बार घर से एक तोला सोना चुराकर कर्ज तो चुका दिया, किन्तु चोरी के अपराध से हृदय झुलसने लगा। लज्जावश सामने कहने का साहस न होने से पिता को एक पत्र लिखा एवं भविष्य में ऐसा काम न करने का दृढ़संकल्प किया। पिता ने माफी दे दी।

६. प्रायश्चित्त की तीन सीढ़ियाँ होती हैं—

१ आत्मग्लानि, २ पाप न करने का निश्चय,
३ आत्मशुद्धि। —गुरुदेव बगवाली

प्रायश्चित से लाभ—

१. पायच्छित्तकरणेणं पावकम्मविसोहिं जणयइ, निरइयारे यावि भवइ। सम्मं च णं पायच्छित्तं पडिवज्जमाणे मग्गं च मग्गफलं च विसोहेइ, आयारं च आयारफलं च आराहेइ।

—उत्तराध्ययन २९।१६

प्रायश्चित्त करने से जीव पापों की विशुद्धि करता है एवं निरतिचार-निर्दोष बनता है। सम्यक् प्रायश्चित्त अंगीकार करने से जीव सम्यक्त्व एवं सम्यक्त्व के ज्ञान को निर्मल करता है तथा चारित्र एवं चारित्रफल-मोक्ष की आराधना करता है।

प्रायश्चित्त के भेद

१. पायच्छित्ते दसविहे पण्णत्ते, तं जहा—आलोयणारिहे, पडिक्कमणारिहे, तदुभयारिहे, विवेगारिहे, विउसग्गारिहे, तवारिहे, छेदारिहे, मूलारिहे, अणवट्ठप्पारिहे, पारंचियारिहे।

—स्थानाङ्ग १०।७३० तथा भगवती २५।७।८०१

प्रायश्चित्त के दस भेद कहे हैं—

१ आलोचनार्ह, २ प्रतिक्रमणार्ह, ३ तदुभयार्ह, ४ विवेकार्ह, ५ व्युत्सर्गार्ह, ६ तपार्ह, ७ छेदार्ह, ८ मूलार्ह, ९ अनवस्थाप्यार्ह, १० पाराञ्चिकार्ह।

(१) आलोचनार्ह—

संयम में लगे हुए दोष को गुरु के समक्ष स्पष्ट वचनों से सरलतापूर्वक प्रकट करना आलोचना है। आलोचना मात्र से जिस दोष की शुद्धि हो जाए, उसे **आलोचनार्ह-दोष** कहते हैं। ऐसे दोष की आलोचना करना **आलोचनार्ह-प्रायश्चित्त** है। गोचरी—पञ्चमी आदि में लगे हुए अतिचारों की जो गुरु के पास आलोचना की जाती है, वह इसी प्रायश्चित्त का रूप है।

(२) प्रतिक्रमणार्ह—

किए हुए दोष से पीछे हटना अर्थात् उसके पश्चाताप स्वरूप **मिच्छामिदुक्कडं** "मेरे पाप-मिथ्या (निष्फल) हों" ऐसी

भावना प्रकट करना **प्रतिक्रमण** है। हां तो जिस दोष की मात्र प्रतिक्रमण से (मिच्छामिदुक्कडं कहने से) शुद्धि हो जाए, वह **प्रतिक्रमणार्ह-दोष** एवं उसके लिए प्रतिक्रमण करना **प्रतिक्रमणार्ह-प्रायश्चित्त** है। समिति-गुप्ति में अकस्मात् दोष लग जाने पर 'मिच्छामिदुक्कडं' कह कर उक्त प्रायश्चित्त लिया जाता है। फिर गुरु के पास आलोचना करने की आवश्यकता नहीं रहती।

(३) **तदुभयार्ह—**

आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों करने से जिस दोष की शुद्धि हो उसके लिए आलोचना-प्रतिक्रमण करना **तदुभयार्ह-प्रायश्चित्त** है। एकेन्द्रियादि जीवों का संघट्टा होने पर साधु द्वारा उक्त प्रायश्चित्त लिया जाता है, अर्थात् **मिच्छा-मिदुक्कडं** बोला जाता है एवं बाद में गुरु के पास इस दोष की आलोचना भी की जाती है।

(४) **विवेकार्ह—**

किसी वस्तु के विवेक-त्याग से दोष की शुद्धि हो तो उसका त्याग करना **विवेकार्ह-प्रायश्चित्त** है। जैसे—आधाकर्म आदि आहार आ जाता है तो उसको अवश्य परठना पड़ता है, ऐसा करने से ही दोष की शुद्धि होती है।

(५) **व्युत्सर्गार्ह—**

व्युत्सर्ग करने से जिस दोष की शुद्धि हो, उसके लिए व्युत्सर्ग करना (शरीर के व्यापार को रोककर ध्येयवस्तु में उपयोग लगाना) **व्युत्सर्गार्ह-प्रायश्चित्त** है। नदी आदि पार करने के बाद यह प्रायश्चित्त लिया जाता है अर्थात् **कायोत्सर्ग** किया जाता है।

(६) **तपार्ह—**

तप करने से जिस दोष की शुद्धि हो, उसके लिए तप करना

तपार्ह-प्रायश्चित्त कहलाता है। इस प्रायश्चित्त में निर्विकृति-आयम्बिल-उपवास-बेला-पांचदिन दस-दिन-पन्द्रहदिन मास-चार मास एवं छः मास तक का तप किया जाता है।

(७) **छेदार्ह—**

दीक्षापर्याय का छेद करने से जिस दोष की शुद्धि होती है, उसके लिये दीक्षापर्याय का छेदन करना **छेदार्ह-प्रायश्चित्त** है। इसके भी मासिक, चातुर्मासिक आदि भेद हैं। तपरूप प्रायश्चित्त से इसका काम बहुत कठिन है, क्योंकि छोटे साधु सदा के लिए बड़े बन जाते हैं। जैसे—किसी ने छेदरूप चातुर्मासिक प्रायश्चित्त लिया तो उसकी दीक्षा के बाद चार महीनों में जितने भी व्यक्ति दीक्षित हुए हैं, वे सब सदा के लिए उससे बड़े हो जायेंगे, क्योंकि उसका चार मास का साधुपना काट लिया गया।

(८) **मूलार्ह—**

जिस दोष की शुद्धि चारित्रपर्याय को सर्वथा छेदकर पुनः महाव्रतों के आरोपण से होती है, उसके लिए वैसा करना अर्थात् दुबारा दीक्षा देना **मूलार्ह-प्रायश्चित्त है** [मनुष्य-गाय-भैंस आदि की हत्या, हो जाए ऐसा झूठ, शिष्यादि की चोरी एवं ब्रह्मचर्य-भङ्ग जैसे महान् दोषों का सेवन करने से उक्त प्रायश्चित्त आता है]

(९) **अनवस्थाप्यार्ह—**

जिस दोष की शुद्धि संयम से अनवस्थापित—अलग होकर विशेष तप एवं गृहस्थ का वेष धारकर फिर से नई दीक्षा लेने पर होती है, उसके लिए पूर्वोक्त कार्य करना-**अनवस्थाप्यार्ह-प्रायश्चित्त** है।

(१०) पाराञ्चिकार्ह—

जिस महादोष की शुद्धि पाराञ्चिक अर्थात् वेष और क्षेत्र का त्यागकर महातप करने से होती है, उसके लिए वैसा करना पाराञ्चिकार्ह-प्रायश्चित्त है।

स्थानाङ्ग ५।१।३६८ में पाराञ्चिक-प्रायश्चित्त के पांच कारण कहे गए हैं, यथा—

(१) गण में फूट डालना, (२) फूट डालने के लिए तत्पर रहना, (३) साधु आदि को मारने की भावना रखना, (४) मारने के लिए छिद्र देखते रहना, (५) बार-बार असंयम के स्थानरूप सावद्य अनुष्ठान की पूछताछ करते रहना अर्थात् अङ्गुष्ठ-कुड्य आदि प्रश्नों का प्रयोग करना, (इन प्रश्नों से दीवार या अंगूठे में देवता बुलाया जा सकता है।) इन पांच कारणों के सिवा साध्वी या राजरानी का शीलभङ्ग करने पर भी यह प्रायश्चित्त दिया जाता है। इसकी शुद्धि के लिए छः मास से लेकर बारह वर्ष तक गण, साधुवेष एवं अपने क्षेत्र को छोड़ कर जिनकल्पिक-साधु की तरह कठोर तपस्या करनी पड़ती है एवं उक्त कार्य सम्पन्न होने के बाद नई दीक्षा दी जाती है।

टीकाकार कहता है कि यह महापराक्रमवाले आचार्य को ही दिया जाता है। उपाध्याय के लिए नौवें प्रायश्चित्त तक और सामान्य साधु के लिए आठवें प्रायश्चित्त तक का विधान है।

यह भी कहा गया है कि जब तक चौदह-पूर्वधारी एवं वज्र-ऋषभ-नाराचसंहननवाले साधु होते हैं, तभी तक ये दसों प्राय-श्चित्त रहते हैं। उनका विच्छेद होने के बाद केवल आठ प्राय-श्चित्त रहते हैं, अस्तु!

१६ आलोचना

१. आ अभिविधिना सकलदोषाणां, लोचना-गुरुपुरतः प्रकाशना **आलोचना**।

—भगवती २५।७ टीका

मर्यादा में रहकर निष्कपटभाव से अपने सभी दोषों को गुरु के आगे प्रकट कर देने का नाम **आलोचना** है।

२. छत्तीसगुण-समन्नागएण, तेणवि अवस्सकायव्वा।
परसक्खिया विसोही, सुट्ठु वि ववहारकुसलेण॥
जह सुकुसलो वि विज्जो, अन्नस्स कहइ अत्तणो वाहिं।
विज्जुवएसं सुच्चा, पच्छा सो कम्ममायरइ।

—गच्छाचार प्रकीर्णक १२-१३

आचार्य के छत्तीसगुणयुक्त एवं ज्ञान-क्रिया-व्यवहार में विशेष-निपुण मुनि को भी पाप की शुद्धि परसाक्षी से करनी चाहिए। अपने-आप नहीं। जैसे—परमनिपुण वैद्य भी अपनी बीमारी दूसरे वैद्य से कहता है एवं उसके कथानुसार कार्य करता है।

३. आलोयणयाए णं माया - नियाण - मिच्छादंसणसल्लाणं मोक्खमग्ग-विग्घाणं अणंतसंसारवद्धणाणं उद्धरणं करेइ, उज्जुभावं च जणयइ। उज्जुभावपडिवन्ने वि य णं जीवे। अमाई इत्थीवेयं नपुंसगवेयं च न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ।

—उत्तराध्ययन २९।५

आलोचना से जीव मोक्षमार्ग-विघातक, अनन्तसंसार-वर्धक—ऐसे माया, निदान एवं मिथ्यादर्शन शल्य को दूर करता है और ऋजु-भाव को प्राप्त करता है। ऋजुभाव से मायारहित होता हुआ स्त्रीवेद और नपुंसकवेद का बन्ध नहीं करता। पूर्वबन्ध की निर्जरा कर देता है।

४. उद्धरियसव्वसल्लो, आलोइय-निंदिओ गुरुसगासे।
होइ अतिरेगलहुओ, ओहरियभारोव्व भारवहो॥

—ओघनिर्युक्ति ८०६

जो साधक गुरुजनों के समक्ष मन के समस्त शल्यों (कांटों) को निकाल कर आलोचना, निन्दा (आत्मनिन्दा) करता है, उसकी आत्मा उसी प्रकार हल्की हो जाती है, जैसे—सिर का भार उतार देने पर भारवाहक।

५. जह बालो जंपंतो, कज्जमकज्जं च उज्जयं भणई।
तं तह आलोएज्जा, माया-मयविप्पमुक्को उ॥

—ओघनिर्युक्ति ८०१

बालक जो भी उचित या अनुचित कार्य कर लेता है, वह सब सरलभाव से कह देता है। इसीप्रकार साधक को भी गुरुजनों के समक्ष दंभ और अभिमान से रहित होकर यथार्थ-आत्मा-लोचना करनी चाहिये।

६. आलोयणापरिणाओ, सम्मं संपट्ठिओ गुरुसगासं।
जइ अंतरो उ कालं, करेज्ज आराहओ तह वि॥

—आवश्यकनिर्युक्ति ४

कृतपापों की आलोचना करने की भावना से जाता हुआ व्यक्ति यदि बीच में मर जाए तो भी वह आराधक है।

७. लज्जाए गारवेण य, जे नालोयंति गुरु-सगासंमि।
बहुंपि सुय-समिद्धा, न हु ते आराहगा हुंति॥

—मरणसमाधिप्रकीर्णक १०३

लज्जा या गर्व के वश जो गुरु के समीप आलोचना नहीं करते वे श्रुत से अत्यन्त समृद्ध होते हुए भी आराधक नहीं होते।

८. जो साधु आलोचना किए बिना काल कर जाता है, वह आराधक नहीं होता एवं जो साधु कृतपापों की आलोचना करके काल करता है, वह संयम का आराधक होता है।

——भगवती १०।२

२० आलोचना के विषय में विविध

१. **आलोचना करने न करने के कारण—**

तीन कारणों से व्यक्ति कृतपापों की आलोचना करता है। वह सोचता है कि आलोचना नहीं करने से इहलोक परलोक एवं आत्मा निंदित होते हैं तथा सोचता है कि आलोचना करने से ज्ञान-दर्शन-चरित्र की शुद्धि होती है। तीन कारणों से मायी-पुरुष कृतपापों की आलोचना नहीं करता। वह सोचता है कि मैंने भूतकाल में दोष-सेवन किया है, वर्तमान में कर रहा हूं और भविष्य में भी किए बिना नहीं रह सकता तथा यह सोचता है कि आलोचना आदि करने से मेरे कीर्ति, यश, एवं पूजा-सत्कार नष्ट हो जायेंगे।

—स्थानाङ्ग ३।३

२. **आलोचना कौन करता है ?**

दसहि ठाणेहि सम्पन्ने अणगारे अरिहइ अत्तदोसे आलोइत्तए, तं जहा—१ जाइसंपन्ने, २ कुलसंपन्ने ३ विणयसंपन्ने ४ णाणसंपन्ने, ५ दंसणसंपन्ने, ६ चरित्तसम्पन्ने, ७ खंते, ८ दंते, ९ अमाई, १० अपच्छाणुतावी।

—भगवती २५।७।७९९ तथा स्थानाङ्ग १०।७३

४

दस गुणों से युक्त अनगार अपने दोषों की आलोचना करने योग्य होता है, वे इस प्रकार हैं—

१ **जातिसम्पन्न**— उत्तमजातिवाला, यह व्यक्ति प्रथम तो ऐसा बुरा काम करता ही नहीं, भूल से कर लेने पर वह शुद्धमन से आलोचना कर लेता है।

२ **कुलसम्पन्न**— उत्तमकुलवाला, यह व्यक्ति अपने द्वारा लिए गए प्रायश्चित्त को नियमपूर्वक अच्छी तरह से पूरा करता है।

३ **विनयसम्पन्न**— विनयवान्, यह बड़ों की बात मानकर हृदय से आलोचना कर लेता है।

४ **ज्ञानसम्पन्न**— ज्ञानवान्, यह मोक्षमार्ग की आराधना के लिए क्या करना चाहिए और क्या नहीं, इस बात को भलीप्रकार समझकर आलोचना कर लेता है।

५ **दर्शनसम्पन्न**— श्रद्धावान्, यह भगवान के वचनों पर श्रद्धा होने के कारण यह शास्त्रों में बताई हुई प्रायश्चित से होने-वाली शुद्धि को मानता है एवं आलोचना कर लेता है।

६ **चारित्रसम्पन्न**— उत्तमचरित्रवाला, यह अपने चारित्र की शुद्ध करने के लिए दोषों की आलोचना करता है।

७ **क्षान्त**— क्षमावान्, यह किसी दोष के कारण गुरु से भर्त्सना या फटकार मिलने पर क्रोध नहीं करता, किन्तु अपना दोष स्वीकार करके आलोचना कर लेता है।

८ **दान्त**— इन्द्रियों को वश में रखनेवाला, यह इन्द्रियों के विषयों में अनासक्त होने के कारण कठोर से कठोर प्राय-श्चित को भी शीघ्र स्वीकार कर लेता है एवं पापों की आलोचना भी शुद्धहृदय से करता है।

९ **अमायी—** माया-कपटरहित, यह अपने पापों को बिना छिपाये खुले दिल से आलोचना करता है।

१० **अपश्चात्तापी—** आलोचना कर लेने के बाद पश्चात्ताप न करनेवाला, यह आलोचना करके अपने आपको धन्य एवं कृतपुण्य मानता है।

२१ आलोचना के दोष

१. दस आलोयणादोसा पण्णत्ता, तं जहा—
आकंपइत्ता-अणुमाणइत्ता जं दिट्ठं बायरं च सुहुमं वा।
छन्नं सद्दाउलयं, बहुजण अव्वत्त तस्सेवी।

—भगवती २५।७।७९५ तथा स्थानाङ्ग १०।७३३

जानते या अजानते लगे हुए दोष को आचार्य या बड़े साधु के सामने निवेदन करके उसके लिए उचित प्रायश्चित्त लेना 'आलोचना' है। आलोचना का शब्दार्थ है, अपने दोषों को अच्छी तरह देखना। आलोचना के दस दोष हैं अर्थात् आलोचना करते समय दस प्रकार का दोष लगता है यथा—

१ **आकंपयित्ता**—प्रसन्न होने पर गुरु थोड़ा प्रायश्चित्त देंगे, यह सोचकर उन्हें सेवा आदि से प्रसन्न करके फिर उनके पास दोषों की आलोचना करना।

२ **अणुमाणइत्ता**—पहले छोटे से दोष की आलोचना करके, आचार्य कितना-क दण्ड देते हैं, यह अनुमान लगाकर फिर आलोचना करना अथवा प्रायश्चित्त के भेदों को पूछकर दण्ड का अनुमान लगा लेना एवं फिर आलोचना करना।

३ **दिट्ठं (दृष्ट)**—जिस दोष को आचार्य आदि ने देख लिया हो, उसी की आलोचना करना।

४ **बायरं (स्थूल)**—सिर्फ बड़े-बड़े दोषों की आलोचना करना।

५ **सुहुमं (सूक्ष्म)**—जो अपने छोटे-छोटे अपराधों की भी आलो-

जाना करता है, वह बड़े दोषोंको कैसे छिपा सकता है—यह विश्वास उत्पन्न करने के लिए केवल छोटे-छोटे दोषों की आलोचना करना।

६ छन्नं (प्रच्छन्न)—लज्जालुता का प्रदर्शन करते हुए प्रच्छन्नस्थान में आचार्य भी न सुन सकें—ऐसी आवाज से आलोचना करना।

७ सद्दाउलयं (शब्दाकुल)—दूसरों को सुनाने के लिए जोर-जोर से बोलकर आलोचना करना।

८ बहुजण (बहुजन)—एक ही दोष की बहुत से गुरुओं के पास आलोचना करना, प्रायः प्रशंसार्थी होकर ऐसा किया जाता है।

९ अव्वत्त (अव्यक्त)—किस अतिचार का क्या प्रायश्चित्त दिया जाता है, इस बात का जिसे ज्ञान नहीं हो, ऐसे अगीतार्थ साधु के पास आलोचना करना।

१० तस्सेवी (तत्सेवी)—जिस दोष की आलोचना करनी हो, उसी दोष को सेवन करनेवाले आचार्यादि के पास, यह सोचते हुए आलोचना करना कि स्वयं दोषी होने के कारण उलाहना न देगा और प्रायश्चित्त भी कम देगा।

२. प्रतिसेवना के दस प्रकार हैं—

दसविहा पडिसेवणा पण्णत्ता, तं जहा—
दप्प-प्पमाद-ऽणाभोगे, आउरे आवतीति य,
संकिण्णे सहसक्कारे, भय-प्पओसा य वीमंसा।

—भगवती २५।७ तथा स्थानाङ्ग १०।७३३

पाप या दोषों के सेवन से होनेवाली संयम की विराधना को प्रतिसेवना कहते है, वह दर्प आदि दस कारणों से होती है अतः दस प्रकार की कही गई है।

१. दर्पप्रतिसेवना— अहंकार से होने वाली संयम की

विराधना ।

२. **प्रमादप्रतिसेवना**—मद्यपान, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा—इन पाँच प्रकार के प्रमाद के सेवन से होनेवाली संयम की विराधना ।

(३) **अनाभोगप्रतिसेवना**– अज्ञान के वश होनेवाली संयम की विराधना ।

(४) **आतुरप्रतिसेवना**– भूख, प्यास आदि किसी पीड़ा से व्याकुल होकर की गई संयम की विराधना ।

(५) **आपत्प्रतिसेवना**– किसी आपत्ति के आने पर संयम की विराधना करना । आपत्ति चार प्रकार की होती है :–

(क) **द्रव्यापत्ति**– प्रासुक आहारादि न मिलना ।

(ख) **क्षेत्रापत्ति**-- अटवी आदि भयंकर जंगल में रहना पड़े ।

(ग) **कालापत्ति**-- दुर्भिक्ष आदि पड़ जाए ।

(घ) **भावापत्ति**– बीमार हो जाना, शरीर का अस्वस्थ होना ।

(६) **संकीर्णप्रतिसेवना**– स्वपक्ष एवं परपक्ष से होनेवाली जगह की तंगी के कारण समय का उल्लंघन करना अथवा **सङ्कित-प्रतिसेवना** ग्रहण करने योग्य आहार आदि में किसी दोष की शङ्का होजाने पर भी उसे ले लेना ।

(७) **सहसाकारप्रतिसेवना**– अकस्मात् अर्थात् बिना सोचे-समझे किसी अनुचित काम को कर लेना ।

(८) **भयप्रतिसेवना**- भय से संयम की विराधना करना, जैसे-

लोकनिन्दा एवं अपमान से डरकर झूठ बोल जाना, संयम को छोड़ कर भाग जाना और आत्महत्या आदि कर लेना।

(९) **प्रद्वेषप्रतिसेवना-** किसी के प्रद्वेष या ईर्ष्या से (झूठा कलङ्क आदि लगाकर) संयम की विराधना करना। यहाँ प्रद्वेष से क्रोधादि चारों कषायों का ग्रहण किया गया है।

(१०) **विमर्शप्रतिसेवना-** शिष्यादि की परीक्षा के लिए (उसे धमकाकर या उस पर झूठा आरोप लगाकर) की गई विराधना।

इस प्रकार दस कारणों से चारित्र में दोष लगता है। इनमें से दर्प, प्रमाद और द्वेष के कारण जो दोष लगाए जाते हैं, उनमें चारित्र के प्रति उपेक्षा का भाव और विषय-कषाय की परिणति मुख्य है। भय, आपत्ति और संकीर्णता में चारित्र के प्रति उपेक्षा तो नहीं, किन्तु परिस्थिति की विषमता-संकटकालीन अवस्था को पारकर उत्सर्ग की स्थिति पर पहुँचने की भावना है। अनाभोग और अकस्मात् में तो अनजानेपन से दोष का सेवन हो जाता है और विमर्श में चाहकर दोष लगाया जाता है। यह भावी हिताहित को समझने के लिए है। इसमें भी चारित्र की उपेक्षा नहीं होती।

(३) **आलोचनादाता के आठ गुण—**

अट्ठहिं ठाणेहिं सम्पन्ने अणगारे अरिहइ आलोयणं पडिच्छि-

ठाए, तंजहा-आयारवं, आहारवं, ववहारवं, उव्वीलए, पकुव्वए, अपरिस्सावी निज्जवए अवायदंसी।

—भगवती २५।७ तथा स्थानाङ्ग ८।६०४

आठ गुणों से युक्त साधु आलोचना सुनने के योग्य होता है—

(१) **आचारवान्**—ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तप-आचार, एवं वीर्याचार, जो इन पाँचों आचारों से सम्पन्न हो।

(२) **आधारवान्**—(अवधारणावान्) -आलोचक के बतलाए हुए दोषों को बराबर याद रख सकनेवाला हो, क्योंकि गम्भीर अतिचारों को दो या तीन बार सुना जाता है एवं आगमानुसार उनका प्रायश्चित्त दिया जाता है। प्रायश्चित्त देते समय आलोचनादाता को आलोचक के दोषों का स्मरण बराबर रहना चाहिए ताकि प्रायश्चित्त कम-ज्यादा न दिया जाए।

(३) **व्यवहारवान्**—आगम आदि पाँचों व्यवहारों का ज्ञाता एवं उचित विधि से प्रवर्तनकर्ता हो। मोक्षाभिलाषी आत्माओं की प्रवृत्ति-निवृत्ति को एवं तत्कारणभूत ज्ञान-विशेष को व्यवहार कहते हैं।

—स्थानाङ्ग ५।३।४२१ में

व्यवहार के पाँच भेद किए गए हैं—(१) आगम-व्यवहार, (२) श्रुत-व्यवहार, (३) आज्ञा-व्यवहार, (४) धारणा-व्यवहार, (५) जीत-व्यवहार।[1]

---

१. लेखक द्वारा लिखी पुस्तक '**मोक्ष प्रकाश**' पुंज १० प्रश्न ६ में इसका विस्तृत विवेचन देखिए।

(४) **अपव्रीड़क-** लज्जावश अपने दोषों को छिपानेवाले शिष्य की मधुर वचनों से लज्जा दूर करके अच्छी तरह आलोचना करानेवाला हो।

(५) **प्रकुर्वक-** आलोचित अपराध का तत्काल प्रायश्चित्त देकर अतिचारों की शुद्धि कराने में समर्थ हो। तत्त्व यह है कि प्रायश्चित्तदाता को प्रायश्चित्तविधि पूरी तरह याद होनी चाहिए। अपराधी के मांगने के बाद प्रायश्चित्त देने में विलम्ब करना निषिद्ध है।

(६) **अपरिस्रावी**—आलोचना करनेवाले के दोषों को दूसरे के सामने प्रकट नहीं करनेवाला हो। शास्त्रीय विधान है कि यदि आलोचनादाता आलोचना के दोषों को दूसरों के सामने कह देता है तो उसे उतना ही प्रायश्चित्त आता है, जितना उसने आलोचनाकर्ता को दिया था।

(७) **निर्यापक**—अशक्ति या और किसी कारणवश एक साथ पूरा प्रायश्चित्त लेने में असमर्थ साधु को थोड़ा-थोड़ा प्रायश्चित्त देकर उसका निर्वाह करनेवाला हो।

(८) **अपायदर्शी-** आलोचना करने में संकोच करनेवाले व्यक्ति को आगमानुसार परलोक का भय एवं अन्य दोष दिखाकर उसे आलोचना लेने का इच्छुक बनाने में निपुण हो।

४. आलोचना किसके पास ?

आलोचना सर्वप्रथम अपने आचार्य-उपाध्याय के पास

करनी चाहिए, वे न हों तो अपने सांभोगिक बहुश्रुतसाधु के पास, उनके अभाव में समानरूपवाले बहुश्रुतसाधु के पास, उनके अभाव में पच्छाकड़ा (जो संयम से गिरकर श्रावकव्रत पाल रहा है, किन्तु पूर्वकाल में संयम पाला हुआ होने से उसे प्रायश्चित्तविधि का ज्ञान है—ऐसे) श्रावक के पास एवं उनके अभाव में जिनभक्त बहुश्रुत यक्षादि देवों के पास अपने दोषों की आलोचना करनी चाहिए। भावी-वश इनमें से कोई भी न मिले तो ग्राम या नगर के बाहर जाकर पूर्व-उत्तरदिशा (ईशानकोण) में मुख करके विनम्र-भाव से अपने अपराधों को स्पष्टरूप से बोलते हुए अरि-हन्त-सिद्ध भगवान की साक्षी से अपने आप प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हो जाना चाहिए।

—व्यवहार उ० १ बोल ३४ से ३६

५. **आलोचना के भेद—**

(क) एक्केक्का चउकण्णा दुवग्ग-सिद्धावसाणा।

—ओघनिर्युक्ति गाथा १२

आलोचना के अनेक भेद हैं—जैसे चतुष्कर्णा, षट्कर्णा एवं अष्टकर्णा।

यदि साधु-साधु से या साध्वी-साध्वी से आलोचना करे तो वह आलोचना चतुष्कर्णा चार कानोंवाली होती है, क्योंकि तीसरा व्यक्ति उनके पास नहीं होता।

यदि साध्वी स्थविर साधु के पास आलोचना करे तो उस साध्वी के साथ ज्ञानदर्शन-सम्पन्न एवं प्रौढ़वयवाली एक

साध्वी अवश्य रहती है, अतः तीन व्यक्ति होने से यह आलोचना षट्कर्णा। **छः कानोंवाली** कहलाती है। यदि आलोचना करानेवाला साधु युवा-जवान हो तो उसके निकट प्रौढ़वयवाला एक साधु भी अवश्य रहता है। अतः दो साधु और दो साध्वियों के समक्ष होने से यह आलोचना अष्टकर्णा **आठ कानोंवाली** मानी जाती है। [यह विवेचन गम्भीर दोषों की अपेक्षा से समझना चाहिए]

(यह विवेचन बृहत्कल्पभाष्य गाथा ३९५, ३९६ के आधार पर किया गया है।)

[ख] सेयणमचित्तं दव्वं, जणवय सद्धाणे होइ खेत्तंमि।
दिण-निसि सुभिक्ख-दुभिक्ख, काले भावंमि हेट्ठियरे॥

द्रव्यादि की अपेक्षा से आलोचना के चार प्रकार हैं —

द्रव्य से—अकल्पनीयद्रव्य का सेवन किया हो—फिर वह चाहे अचित्त हो, सचित्त हो या मिश्र हो।

क्षेत्र से—ग्राम, नगर, जनपद व मार्ग में दोषसेवन किया हो।

काल से—दिन - रात में या दुर्भिक्ष - सुभिक्ष में दोषसेवन किया हो।

भाव से—प्रसन्न-अप्रसन्न, अहंकार एवं ग्लानि आदि किसी भी परिस्थिति में दोषसेवन किया हो। सभी प्रकार के दोषों की आलोचना करके शुद्ध बन जाना चाहिए।

६. **मिच्छामि दुक्कडं**—

'मि' त्ति मिउ - मद्दवत्ते
'छ' त्ति दोसाणछादणे होइ।

'मि' त्ति य मेराइठिआ,
'दु' त्ति दुगंछामि अप्पाणं ॥६८६॥
'क' त्ति कडं मे पावं,
'ड' त्ति डेवेमि तं उवसमेणं।
एसो 'मिच्छादुक्कड'-
पयक्खरत्थो समासेणं ॥६८७॥

—आवश्यकनिर्युक्ति

'नामैकदेशे नामग्रहणम्', इस न्याय के अनुसार 'मि' कार मृदुता-कोमलता तथा अहंकार रहित होने के लिए है। 'छ' कार दोषों को त्यागने के लिए है। 'दु' कार पापकर्म करनेवाली अपनी आत्मा की निन्दा के लिए है। 'क' कार कृत-पापों की स्वीकृति के लिए है। और 'ड' कार उन पापों का उपशमन करने के लिए है— यह 'मिच्छामिदुक्कडं' पद के अक्षरों का अर्थ है।

२२ आवश्यक

१. समणेण सावएण य, अवस्स कायव्वं हवइ जम्हा ।
अंतो अहोनिसस्स य, तम्हा आवस्सयं नाम ॥

—अनुयोगद्वार आवश्यकाधिकार

दिन-रात की संधि के समय साधु-श्रावक को यह अवश्य करना होता है। इसलिए इसका नाम आवश्यक है।

२. जे भिक्खू कालाइक्कमेणं वेलाइक्कमेणं समयाइक्कमेणं आलसायमाणे अणोवओगे पमत्ते अविहीए अन्नेसिं च असद्धं उप्पायमाणे अन्नयरमावस्सगं पमाइयसं....... से णं गोयमा ! महापायच्छित्ती भवेज्जा ।

—महानिशीथ अ. ७

जो भिक्षु आवश्यक-सम्बंधी काल, वेला एवं समय का अतिक्रमण करके आलस्य, उपयोगशून्यता, प्रमाद और अविधि के सेवन द्वारा अन्य साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकाओं में अश्रद्धा उत्पन्न करता हुआ छः आवश्यकों में से किसी एक आवश्यक को भी यदि प्रमाद-वश नहीं करता तो हे गौतम ! वह महाप्रायश्चित्त का भागी होता है।

३. आवस्सयं चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—
नामावस्सयं, ठवणावस्सयं, दव्वावस्सयं, भावावस्सयं ।

—अनुयोगद्वार आवश्यकाधिकार

आवश्यक चार प्रकार का कहा है—

१ नाम-आवश्यक, २ स्थापना-आवश्यक, ३ द्रव्य-आवश्यक
४ भाव-आवश्यक।

प्रतिक्रमण—

४. स्वस्थानाद् यत् परं स्थानं, प्रमादस्य वशाद् गतः।
तत्रैव क्रमणं भूयः, प्रतिक्रमणमुच्यते ॥
क्षायोपशमिकाद् भावा-दौदयिकस्य वशं गतः।
तत्रापि च स एवार्थः प्रतिकूलगमात् स्मृतः ॥

—आवश्यक, ४

प्रमादवश अपने स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान—हिंसा आदि में गये हुए आत्मा का लौटकर अपने स्थान—आत्मगुणों में आ जाना प्रतिक्रमण है तथा क्षायोपशमिकभाव से औदयिकभाव में गये हुये आत्मा का पुनः मूलभाव में आजाना प्रतिक्रमण है।

५. पंचविहे पडिक्कमणे, पण्णत्ते, तं जहा—आसवदार-पडिक्कमणे, मिच्छत्तपडिक्कमणे, कसायपडिक्कमणे, जोगपडिक्कमणे, भावपडिक्कमणे।

—स्थानाङ्ग ५।३।४६७
तथा आवश्यक हरिभद्रीय अ. ४

पाँच प्रकार का प्रतिक्रमण कहा है—

१. आसवद्वार—हिंसादि का प्रतिक्रमण २. मिथ्यात्व—प्रतिक्रमण ३. कषाय—क्रोधादिका प्रतिक्रमण ४. योग—अशुभयोगों का प्रतिक्रमण ५. भाव—प्रतिक्रमण ("मिच्छामि दुक्कडं" बोलकर पुनः वही दुष्कृत्य करते रहना द्रव्य—प्रतिक्रमण है और दुबारा उसका सेवन न करना भाव—प्रतिक्रमण है।)

६. पडिसिद्धाणं करणे, किच्चाणमकरणे पडिक्कमणं,
असद्दहणे य तहा, विवरीय परूवणाए य ।
—आवश्यक निर्युक्ति १२६८

हिंसादि निषिद्ध कार्य करने का, स्वाध्याय प्रतिलेखनादि कार्य न करने का, तत्त्वों में अश्रद्धा उत्पन्न होने का एवं शास्त्र-विरुद्ध प्ररूपणा करने का प्रतिक्रमण किया जाना चाहिए ।

७. पडिक्कमणेणं वयछिद्दाणि पीहेइ । —उत्तराध्ययन २९।१२

प्रतिक्रमण करने से जीव व्रतों के छिद्रों को ढंक देता है ।

८. सपडिक्कमणो धम्मो, पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स ।
मज्झिमयाण जिणाणं, कारणजाए पडिक्कमणं ॥२४७॥
गमणागमण-वियारे, सायं पाओ य पुरिम-चरिमाणं ।
नियमेण पडिक्कमणं, अइयारो होउ वा मा वा ॥२४८॥
—बृहत्कल्पभाष्य-६

प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों का सप्रतिक्रमण धर्म है । मध्यम-बाइस तीर्थंकरों के समय स्खलना होने पर प्रतिक्रमण करने का विधान है । प्रथम अन्तिम तीर्थंकरों के साधुओं के गमन-आगमन में एवं उच्चार आदि परठने में चाहे स्खलना हो या न हो, उन्हें सुबह-शाम षडावश्यकरूप प्रतिक्रमण अवश्य करना ही चाहिए ।

वैदिक संध्या—

१. ओउम् सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम् । यद्राज्या [यदह्ना] पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु यत् किञ्चिद् दुरितं मयि इदमहमापोऽमृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ॥ —नित्यकर्म विधि पृष्ठ ३२

हे सूर्यनारायण ! यज्ञपति और देवताओं मेरी प्रार्थना है कि यज्ञ विषयक तथा क्रोध से किए हुए पापों से मेरी रक्षा करें ! दिन-रात्रि में मन, वाणी, हाथ, पैर, उदर और शिश्न-लिङ्ग से जो पाप हुए हों, उन पापों को मैं अमृतयोनि सूर्य में होम करता हूं। इसलिए उन पापों को नष्ट करें !

संध्या के तीन अर्थ हैं–

१ उत्तम प्रकार से परमेश्वर का ध्यान करना।

२ परमेश्वर से मेल करना।

३ दिन-रात की संधि में किया जानेवाला कर्म।

२३ वैयावृत्त्य

१. वैयावृत्त्यम्-भक्तादिभिर्धर्मोपग्रहकारिवस्तुभिरुपग्रह-करणे

—आचारांग ५।१ टीका

धर्म मे सहारा देनेवाली आहार आदि वस्तुओं द्वारा उपग्रह-सहायता करने के अर्थ में **वैयावृत्त्य** शब्द आता है।

(वैयावृत्त्य अर्थात् सेवा)

२. दसविहे वेयावच्चे पण्णत्ते, तं जहा— १ आयरियवेयावच्चे, २ उवज्झायवेयावच्चे, ३ थेरवेयावच्चे, ४ तवस्सिवेयावच्चे, ५ गिलाणवेयावच्चे ६ सेहवेयावच्चे ७ कुलवेयावच्चे ८ गणवेयावच्चे ९ संघवेयावच्चे १० साहम्मियवेयावच्चे।

—स्थानांग १०।७४९

दस प्रकार की वैयावृत्त्य कही है— १ आचार्य की वैयावृत्त्य, २ उपाध्याय की वैयावृत्त्य, ३ स्थविर की वैयावृत्त्य, ४ तपस्वी की वैयावृत्त्य, ५ ग्लानमुनि की वैयावृत्त्य, ६ नवदीक्षित मुनि की वैयावृत्त्य, ७ कुल [एक आचार्य की संतति या चन्द्र आदि साधु समुदाय] की वैयावृत्त्य, ९ संघ [गणों का समूह] की वैयावृत्त्य, १० सार्धमिक-साधु की वैयावृत्त्य।

३. भत्ते पाणे सयणासणे (य), पडिलेह-पायमच्छि मद्धाणे।
राया तेणे दंडग्गाहे गेलन्नमत्ते य।

—व्यवहारभाष्य ३।१० गा० १२

आचार्य आदि को—१ आहार देना, २ पानी देना, ३ शय्या देना, ४ आसन देना, ६ उनका पडिलेहण करना, ५ पांव पूंछना, ७ नेत्ररोगी हों तो औषध-भेषज लाकर देना, ८ मार्ग में (विहार-आदि के समय) रक्षण देना, ९ राजा के क्रुद्ध होने पर उनकी रक्षा करना, १० चोर आदि से उन्हें बचाना, ११ अतिचार-सेवन कर के आएं हों तो उन्हें दण्ड देकर शुद्ध करना, १२ रोगी हों तो उनके लिए आवश्यक वस्तुओं का संपादन करना, १३ लघुशङ्का-निवारणार्थ पात्र उपस्थित करना।

उपर्युक्त १३ प्रकार से आचार्य आदि की वैयावृत्य की की जाती है।

(४) वेयावच्चेणं तित्थयरनाम गोयं कम्मं निबंधेइ।

—उत्तराध्ययन २९। ३

आचार्यादि की वैयावृत्य करने से जीव तीर्थंकर नाम-गोत्रकर्म का उपार्जन करता है।

(५) जे भिक्खू गिलाणं सोच्चा णच्चा न गवेसइ,
न गवेसंतं वा साइज्जइ........आवज्जइ
चउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—निशीथभाष्य १०।३७

यदि कोई समर्थ साधु किसी साधु को बीमार सुनकर एवं जानकर बेपरवाही से उसकी सार-संभाल न करे तथा न करनेवाले की अनुमोदना करे तो उसे गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

दूसरा कोष्ठक

१ ध्यान

१. ध्यानं तु विषये तस्मि-न्नेकप्रत्ययसंततिः ।

—अभिधानचिन्तामणि १।८४

ध्येय में एकाग्रता का हो जाना ध्यान है ।

२. चितस्सेगग्गया हवइ झाणं । —आवश्यकनिर्युक्ति १४५९

किसी एक विषय पर चित्त को एकाग्र-स्थिर करना ध्यान है ।

३. एकाग्रचिन्ता योगनिरोधो वा ध्यानम् ।

—जैनसिद्धान्तदीपिका ५।२८

एकाग्रचिन्तन एवं मन-वचन-काया की प्रवृत्तिरूप योगों को रोकना ध्यान है ।

४. उपयोगे विजातीय-प्रत्ययाव्यवधानभाक् ।
शुभैकप्रत्ययो ध्यानं, सूक्ष्माभोगसमन्वितम् ।

—द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका १८।११

स्थिर दीपक की लौ के समान मात्र शुभलक्ष्य में लीन और विरोधी लक्ष्य के व्यवधानरहित ज्ञान, जो सूक्ष्म विषयों के आलोचनसहित हो, उसे ध्यान कहते हैं ।

५. मुहूर्तान्तर्मनः स्थैर्यं, ध्यानं छद्मस्थ-योगिनाम् ।

—योगशास्त्र ४।११५

अन्तर्मुहूर्त तक मन को स्थिर रखना छद्मस्थयोगियों का ध्यान है।

६. स्वात्मानं स्वात्मनि स्वेन, ध्याते स्वस्मै स्वतो यतः।
षट्कारकमयस्तस्माद्, ध्यानमात्मैव निश्चयात्॥

—तत्त्वानुशासन ७४

आत्मा का आत्मा में, आत्मा द्वारा, आत्मा के लिए, आत्मा से ही ध्यान करना चाहिए। निश्चयनय में षट्कारकमय-यह आत्मा ही ध्यान है।

७. निश्चयाद् व्यवहाराच्च, ध्यानं द्विविधमागमे।
स्वरूपालम्बनं पूर्वं, परालम्बनमुत्तरम्॥

—तत्त्वानुशासन ९६

निश्चयदृष्टि से और व्यवहारदृष्टि से ध्यान दो प्रकार का है। प्रथम में स्वरूप का आलम्बन है एवं दूसरे में परवस्तु का आलम्बन है।

८. **ध्यानमुद्रा—**

अन्तश्चेता बहिश्चक्षु-रधःस्थाप्य सुखासनम्।
समत्वं च शरीरस्य, ध्यानमुद्रेति कथ्यते॥

—गोरक्षाशतक-६५

चित्त को अन्तर्मुखी बनाकर, दृष्टि को नीचे की ओर नासाग्र पर स्थापित करके सुखासन से बैठना तथा शरीर को सीधा रखना ध्यानमुद्रा कहलाती है।

९. **खेचरीमुद्रा:—**

कपालकुहरे जिह्वा, प्रविष्टा विपरीतगा।
भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टि-र्मुद्रा भवति खेचरी॥

न रोगो मरणं तस्य, न निद्रा न क्षुधा तृषा ।
न च मूर्च्छा भवेत्तस्य, मुद्रां यो वेत्ति खेचरीम् ।

—गोरक्षाशतक ६६-६७

जीभ को उलटकर कपालकुहर-तालु में लगाना और दृष्टि को दोनों भौंहों के बीच में स्थापित करना खेचरीमुद्रा होती है। जो खेचरीमुद्रा को जानता है, वह न बीमार होता, न मरता, न सोता, न उसे भूख-प्यास लगती और न ही मूर्च्छा उत्पन्न होती।

१०. **ध्यान के आलम्बन भूत सात कमल-चक्र —**

चतुर्दलं स्यादाधारं, स्वाधिष्ठानं च षड्दलम्,
नाभौ दशदलं पद्मं, सूर्यसंख्यादलं हृदि ।
कण्ठे स्यात् षोडशदलं, भ्रूमध्ये द्विदलं तथा ।
सहस्रदलमाख्यातं, ब्रह्मरन्ध्रे महापथे ।

ध्यान करने के लिए सात कमलरूप चक्रों की कल्पना भी की गई है। उनका रहस्य समझने के लिए पृष्ठ ७० के चार्ट को देखें।

सात कमल रूप चक्र—

	नाम	स्थान	वर्ण	पंखुड़ियाँ	अक्षर (पँखुड़ियों पर अक्षरों की स्थापना)
१.	मूलाधारचक्र	गुदा	अग्निवर्ण	४	वं. शं. षं. सं.
२.	स्वाधिष्ठानचक्र	लिंगमूल	सूर्यवर्ण	६	बं. भं. मं. यं. रं. लं.
३.	मणिपूरकचक्र	नाभि	रक्तवर्ण	१०	डं. ढं. णं. तं. थं. दं. धं. नं. पं. फं.
४.	अनाहतचक्र	हृदय	सुवर्णवर्ण	१२	कं. खं. गं. घं. ङं. चं. छं. जं. झं. ञं. टं. ठं.
५.	विशुद्धिचक्र	कण्ठ	चन्द्रवर्ण	१६	अ. आ. इ. ई. उ. ऊ. ऋ. ॠ. ऌ. ॡ. ए. ऐ ओ औ अं अः
६.	आज्ञाचक्र	भ्रूमध्य	लाल्विवर्ण	२	ह्ं क्षं
७.	ब्रह्मरंध्रचक्र	दशमद्वार	स्फटिकवर्ण	१०००	निरंतर सच्चिदानन्द ज्योतिःस्वरूप

● निर्दिष्ट स्थानों में कमल-चक्रों की अग्नि आदि वर्णमय कल्पना करके उपरोक्त पंखुड़ियाँ बनानी चाहिए एवं उनपर निर्दिष्ट अक्षरों का ध्यान करना चाहिए।

नोट— १ अथर्ववेद १०:२:३१ में आठचक्रों का कथन है, वहाँ ब्रह्मरंध्र में एक ललनाचक्र अधिक कहा गया है।

२ ध्यान सम्बन्धी विशेष जानकारी के लिए लेखक द्वारा लिखी पुस्तक मनोनिग्रह के दो मार्ग देखिए।

११. ध्यान के आलम्बनरूप चार ध्येय—

[क] पिण्डस्थं च पदस्थं च, रूपस्थं रूपवर्जितम् ।
चतुर्धा ध्येयमाम्नातं, ध्यानस्यालम्बनं बुधैः ।

—योगशास्त्र ७।८

ज्ञानी-पुरुषों ने ध्यान के आलम्बनरूप ध्येय को चार प्रकार का माना है—१. पिण्डस्थ, २. पदस्थ, ३. रूपस्थ, ४. रूपातीत ।

[ख] पार्थिवी स्यादथाग्नेयी, मारुती वारुणी तथा ।
तत्त्वभूः पञ्चमी चेति, पिण्डस्थं पञ्चधारणाः ।

—योगशास्त्र ७।९

पिण्डस्थ अर्थात् शरीर में विद्यमान आत्मा । उसके आलम्बन से जो ध्यान किया जाता है, वह **पिण्डस्थध्यान** है । उसकी पांच धारणाएं हैं— १. पार्थिवी, २. आग्नेयी, ३. मारुती, ४. वारुणी, ५. तत्त्वभू[1] ।

[ग] यत्पदानि पवित्राणि, समालम्ब्य विधीयते ।
तत्पादस्थं समाख्यातं, ध्यानं सिद्धान्तपारगैः ।

—योगशास्त्र ८।१

ध्येय में चित्त को स्थिररूप से बांध लेने का नाम धारणा है । पवित्रमन्त्राक्षर आदि पदों का अवलम्बन करके जो ध्यान किया जाता है, उसे सिद्धान्त के पारगामी पुरुष **पदस्थध्यान** कहते हैं ।

[घ] अर्हतो रूपमालम्ब्य, ध्यानं रूपस्थमुच्यते ।

—योगशास्त्र ९।७

---

१ धारणा तु क्वचिद् ध्येये, चित्तस्य स्थिरबन्धनम्

—अभिधानचिन्तामणि १।८४

अरिहंत भगवान के रूप का सहारा लेकर जो ध्यान किया जाता है। उसे रूपस्थध्यान कहते हैं।

[ङ] निरञ्जनस्य सिद्धस्य, ध्यानं स्याद्रूपवर्जितम्।

—योगशास्त्र १०।१

निरञ्जन सिद्ध भगवान का ध्यान रूपातीतध्यान है।

१२. ध्यान की सामग्री—

संगत्यागः कषायाणां, निग्रहो व्रतधारणम्।

मनोऽक्षाणां जयश्चेति, सामग्री ध्यानजन्मनि।

—तत्त्वानुशासन ७५

परिग्रह का त्याग, कषाय का निग्रह, व्रतधारण करना तथा मन और इन्द्रियों को जीतना—ये सब कार्य ध्यान की उत्पत्ति में सहायता करनेवाली सामग्री हैं।

१३. ध्यान के हेतु—

वैराग्यं तत्त्वविज्ञानं, नैर्ग्रन्थ्यं समचित्तता।

परिग्रह जयश्चेति, पञ्चैते ध्यानहेतवः॥

बृहद्द्रव्यसंग्रह संस्कृतटीका, पृ० २८१

१. वैराग्य, २. तत्त्वविज्ञान, ३. निर्ग्रन्थता, ४. समचित्तता, ५. परिग्रहजय—ये पाँच ध्यान के हेतु हैं।

१४. चार ध्यान एवं धर्म ध्यान के भेद-प्रभेद—

चत्तारि झाणा पण्णत्ता, तं जहा—अट्टे झाणे, रोद्दे झाणे धम्मेझाणे सुक्के झाणे।

धम्मे झाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—आणाविजए आवायविजए विवागविजए संठाणविजए।

धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि आलंबणा पण्णत्ता तं जहा—

वायणा, पडिपुच्छणा, परियट्टणा, अणुप्पेहा, धम्मकहा
धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, तं जहा—
आणारुई, णिसग्गरुई, सुत्तरुई ओगाढरुई।
धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ—
पण्णत्ताओ तं जहा—
एगाणुप्पेहा, अणिच्चाणुप्पेहा, असरणाणुप्पेहा
संसाराणुप्पेहा। —स्थानाङ्ग ४।१।२४७

चार ध्यान कहे हैं– १. आर्तध्यान, २. रौद्रध्यान, ३. धर्मध्यान, ४. शुक्लध्यान।

धर्मध्यान के चार प्रकार हैं– १. आज्ञाविचय, २. अपायविचय, ३. विपाकविचय, ४. संस्थानविचय

धर्मध्यान के चार आलम्बन कहे हैं– १. वाचन, २. प्रतिपृच्छा, ३. अनुप्रेक्षा, ४. धर्मकथा।

धर्मध्यान के चार लक्षण हैं– १. आज्ञारुचि, २. निसर्गरुचि, ३. सूत्ररुचि, ४. अवगाढ़रुचि।

धर्मध्यान की चार अनुप्रेक्षाएं हैं– १. एकत्वानुप्रेक्षा, २. अनित्यानुप्रेक्षा, ३. अशरणानुप्रेक्षा, ४. संसारानुप्रेक्षा।

२ ध्यान से लाभ

१. मोक्षः कर्मक्षयादेव स चात्मज्ञानतो भवेत् ।
ध्यानसाध्यं मतं तच्च, तद्ध्यानं हितमात्मनः ।

—योगशास्त्र ४।११३

कर्म के क्षय से मोक्ष होता है, आत्मज्ञान से कर्म का क्षय होता है और ध्यान से आत्मज्ञान प्राप्त होता है। अतः ध्यान आत्मा के लिए हितकारी माना गया है।

२. भाणणिलीणो साहू, परिचागं कुणइ सव्वदोसाणं ।
तम्हा दु भाणमेव हि, सव्वदिचारस्स पडिक्कमणं ।।

— नियमसार ९३

ध्यान में लीन हुआ साधक सब दोषों का निवारण कर सकता है। इसलिए ध्यान ही समग्र अतिचारों (दोषों) का प्रतिक्रमण है।

३. ध्यानयोगरतो भिक्षुः प्राप्नोति परमां गतिम् ।

—शंखस्मृति

ध्यान-योग में लीन मुनि मोक्षपद को प्राप्त करता है।

४. वीतरागो विमुच्येत, वीतरागं विचिन्तयन् ।

—योगशास्त्र ९।१३

ध्यान करता हुआ योगी स्वयं वीतराग होकर कर्मों से या वासनाओं से मुक्त हो जाता है।

५. ध्यानाग्नि-दग्धकर्मा तु, सिद्धात्मा स्यान्निरञ्जनः ।

—योगशास्त्र

शुक्लध्यानरूप अग्नि से कर्मों को जला देनेवाला अर्थात् सिद्ध भगवान् बन जाता है।

६. काउस्सग्गेणं तीयपडुप्पन्नपायच्छित्तं विसोहेइ विसुद्धपाय-च्छित्ते य जीवे निव्वुयहियए ओहरियभरुव्व भारवहे पसत्थज्झाणोवगए सुहं सुहेणं विहरइ।

—उत्तराध्ययन २९।१२

कायोत्सर्ग (ध्यान अवस्था में समस्त चेष्टाओं का परित्याग) करने से जीव अतीत एवं वर्तमान के दोषों की विशुद्धि करता है और विशुद्ध-प्रायश्चित्त होकर सिर पर से भार के उतर जाने से एक भारवाहकवत् हल्का होकर सद्ध्यान में रमण करता हुआ सुख-पूर्वक विचरता है।

३ ध्याता (ध्यान करनेवाला)

१. यस्य चित्तं स्थिरीभूतं, स हि ध्याता प्रशस्यते ।

—ज्ञानार्णव पृ० ८४

जिसका चित्त स्थिर हो, वही ध्यान करनेवाला प्रशंसा के योग्य है ।

२. जितेन्द्रियस्य धीरस्य, प्रशान्तस्य स्थिरात्मनः ।
सुखासनस्य नासाग्र-न्यस्तनेत्रस्य योगिनः ॥

—ध्यानाष्टक ६

जो योगी जितेन्द्रिय है, धीर है, शान्त है, स्थिरआत्मावाला है, वह ध्यान करने के योग्य होता है ।

३. ध्याता ध्यानं फलं ध्येयं, यस्य यत्र यदा यथा ।
इत्येतदत्र बोद्धव्यं, ध्यातुः कामेन योगिना ॥

—तत्त्वानुशासन ३७

ध्यान के इच्छुक योगी को योग के आठ अंगों को अवश्य जानना चाहिए, यथा—

१ **ध्याता**—इन्द्रिय और मन का निग्रह करने वाला ।

२ **ध्यान**—इष्टविषय में लीनता ।

३ **फल**—संवर-निर्जरारूप ।

४ **ध्येय**—इष्टदेवादि ।

५ **यस्य**—ध्यान का स्वामी ।

६ यत्र—ध्यान का क्षेत्र।

७ यदा—ध्यान का समय।

८ यथा—ध्यान की विधि।

४. मा मुज्झह ! मा रज्जह ! मा दूस्सह ! इट्ठ निट्ठअट्ठेसु।
थिरमिच्छह जइ चित्तं, विचित्तझाणप्पसिद्धीए।
मा चिट्ठह ! मा जंपह ! मा चिंतह ! किं वि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पंमि रओ, इणमेव परं हवे झाणं !

—द्रव्यसंग्रह

हे साधक ! विचित्र ध्यान की सिद्धि से यदि चित्त को स्थिर करना चाहता है, तो इष्ट-अनिष्ट पदार्थों में मोह, राग और द्वेष मतकर !

किसी भी प्रकार की चेष्टा, जल्पन व चिन्तन मत कर, जिससे मन स्थिर हो जाये। आत्मा का आत्मा में रक्त हो जाना ही उत्कृष्ट ध्यान है।

५. ध्यानमेकाकिना द्वाभ्यां, पठनं गायनं त्रिभिः।
चतुर्भिर्गमनं क्षेत्रं पञ्चभिर्बहुभी रणम् ॥

—चाणक्यनीति ४।१२

ध्यान अकेले का, पढ़ना दो का, गाना तीनों का, चलना चारों का, खेती करना पाँचों का और युद्ध बहुत व्यक्तियों का अच्छा माना गया है।

४ स्वाध्याय-ध्यान की प्रेरणा

१. स्वाध्यायाद् ध्यानमध्यास्तां, ध्यानात् स्वाध्यायमामनेत् ।
ध्यान स्वाध्यायसंपत्त्या, परमात्मा प्रकाशते ॥८१॥
यथाभ्यासेन शास्त्राणि, स्थिराणि सुमहान्त्यपि ।
तथाध्यानपिस्थैर्यं, लभतेऽभ्यासवर्तिनाम् ॥८२॥

—तत्त्वानुशासन

स्वाध्याय से ध्यान का अभ्यास करना चाहिए और ध्यान से स्वाध्याय को चरितार्थ करना चाहिए स्वाध्याय एवं ध्यान की संप्राप्ति से परमात्मा प्रकाशित होता है—अर्थात् अपने अनुभव में लाया जाता है । अभ्यास से जैसे महान् शास्त्र स्थिर हो जाते हैं, उसी प्रकार अभ्यास करने वालों का ध्यान स्थिर हो जाता है ।

२. जपश्रान्तो विशेद् ध्यानं, ध्यानश्रान्तो विशेज्जपम् ।
द्वाभ्यां श्रान्तः पठेत् स्तोत्र-मित्येवं गुरुभिः स्मृतम् ॥

—श्राद्धविधि, पृ०७६, श्लोक-३

जाप से श्रान्त होने पर ध्यान एवं ध्यान से श्रान्त होने पर जाप करना चाहिए तथा दोनों से श्रान्त हो जाने पर स्तोत्र पढ़ना चाहिए । ऐसे ही गुरुदेव ने कहा है ।

३. ओमित्येव ध्यायथ ! आत्मानं स्वस्ति वः,
पाराय तमसः परस्तात् । मुण्डकोपनिषद् २।२।६

इस आत्मा का ध्यान ओ३म् के रूप में करो ! तुम्हारा कल्याण

होगा अन्धकार दूर करने का यह एक ही साधन है।

४. अकारो वासुदेवः स्यादुकारस्तु महेश्वरः।
मकारः प्रजापतिः स्यात्, त्रिदेवो ॐ प्रयुज्यते॥
'अ' का अर्थ विष्णु है, 'उ' का अर्थ महेश है और 'म' का अर्थ ब्रह्मा है अतः तीनों देवों के अर्थ में ॐ का प्रयोग किया जाता है।

५. अरिहन्ता असरीरा, आयरिय-उवज्झाय-मुणिणो।
पढमक्खरनिप्फन्नो, ॐकारो पञ्चपरमिट्ठी॥
—बृहद्द्रव्यसंग्रहटीका, पृष्ठ १८२

जैनाचार्यों के मतानुसार'ॐ' का अर्थ इस प्रकार है—
अरिहन्त का 'अ' सिद्धों का दूसरा नाम अशरीरी भी है। अतः अशरीरी का भी 'अ' आचार्यों का 'आ' उपाध्याय का 'उ' और साधु का दूसरानाम मुनि भी है, इसीलिए मुनि का 'म' लिया। फिर इन सबकी सन्धि करने से ओम् बन गया। जैसे— अ+अ= आ, आ+आ=आ, आ+उ=ओ, ओ+म्=ओम्।

६. बच्चा जन्मते समय आ-आ-आ, कुछ बड़ा होने पर उ-उ-उ अधिक बढ़ने पर म-म-म, करने लगता है।
—स्वामी रामतीर्थ

स्वामीजी का कहना है कि ॐ स्वाभाविक शब्द है। अतएव बच्चे के मुंह से भी इसके अंश (अ. उ. म.) स्वभाव से ही निकलते हैं।

७. सकारं च हकारं च लोपयित्वा प्रयुज्यते।
सोहं में 'स' और 'ह' का लोप करने से ॐ रह जाता है, इस प्रकार सोहं में भी ॐ का प्रयोग किया जाता है।

५ समाधि

१. समाधिर्नाम राग-द्वेषपरित्याग:। —सूत्रकृतांग चूर्णि १।२।२

राग द्वेष का त्याग ही समाधि है।

२. कुसलचित्तेकग्गता समाधि। —विसुद्धिमग्ग ३।२

कुशल (पवित्र) चित्त की एकाग्रता ही समाधि है।

३. सुखिनो चित्तं समाधीयति। —विसुद्धिमग्ग १।४

सुखी का चित्त एकाग्र होता है।

४. समाहितं वा चित्तं थिरतरं होति। —विसुद्धिमग्ग ४।३६

समाहित (एकाग्र हुआ) चित्त ही पूर्ण स्थिरता को प्राप्त करता है।

५. समाहियस्सऽग्गिसिहा व तेयसा,
तवो य पन्ना य जसो य वड्ढइ। —आचाराङ्ग श्रु० २।१६।५

अग्नि-शिखा के समान प्रदीप्त एवं प्रकाशमान रहनेवाले समाधि-युक्त साधक के तप प्रज्ञा और यश निरन्तर बढ़ते रहते हैं।

६. लाभालाभेन मथिता, समाधिं नाधिगच्छन्ति।
—थेरगाथा १।१०२

जो लाभ या अलाभ से विचलित हो जाते है, वे समाधि को प्राप्त नहीं कर सकते।

७. समाहिकारए णं तमेव समाहिं पडिलब्भइ। —भगवती ७।१

समाधि देनेवाला समाधि पाता है।

६ **आहार**

अन्न—

१. अन्नं वै विशः। —शतपथब्राह्मण ६।७।३।७

अन्न ही प्रजा का आधार है।

२. अन्नं हि प्राणाः। —ऐतिरीय-ब्राह्मण-३२।१०

अन्न ही प्राण है।

३. अन्नेन वाव सर्वे प्राणा महीयन्ते। —तैत्तिरीयउपनिषद् १।४।१

अन्न से ही सब प्राणों की महिमा बनी रहती है।

४. अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। —तैतरीयआरण्यक ६।२

यह अच्छी तरह जान लीजिए कि अन्न ही ब्रह्म है।

५. अन्नसमं रत्नं न भूतं न भविष्यति। —वैद्यरसराज-समुच्चय

अन्न के समान रत्न न तो हुआ और न कभी होगा।

६. नास्ति मेघसमं तोयं, नास्ति चात्मसमं बलम्।
नास्ति चक्षुःसमं तेजो, नास्ति चान्नसमं प्रियम्।

—चाणक्यनीति ५।१७

मेघजल के समान जल नहीं, आत्मबल के समान बल नहीं, आँख के समान तेज नहीं और अन्न के समान कोई प्रिय वस्तु नहीं।

६

७. अन्नं न निन्द्यात् । —तैत्तिरीयउपनिषद् ३।७

अन्न की निन्दा मत करो।

८. अन्नेन हीदं सर्वं गृहीतम्, तस्मात् यावन्तो नोऽशनमश्नन्ति तेनः सर्वे गृहीता भवन्ति। —शतपथब्राह्मण ४।६।५।४

अन्न ने सब को पकड़ रखा है अतः जो भी हमारा भोजन करता है, वही हमारा हो जाता है।

९. अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम् । तस्मात सर्वौषधमुच्यते । अन्नाद् भूतानि जायन्ते । जातान्यन्नेन वर्धन्ते ।

—तैत्तरीयउपनिषद् ८।२

प्राणि जगत में अन्न ही मुख्य है। अन्न को समग्र रोगों की औषध कहा है, (क्योंकि सब औषधियों का सार अन्न में है) अन्न से ही प्राणी पैदा होते हैं और अन्न से ही बढ़ते हैं।

१०. अन्नं बहु कुर्वीत तद् व्रतम् । —तैत्तिरीयउपनिषद् ३।९

अन्न अधिकाधिक उपजाना-बढ़ाना चाहिए, यह एक व्रत (राष्ट्रीय-प्रण) है।

११. सर्वसंग्रहेषु धान्यसंग्रहो महान्, यतस्तन्निबन्धनं जीवितं सकलप्रयासश्च ।

—नीतिवाक्यामृत ८।१८

सभी संग्रहों में धान्य का संग्रह बड़ा है, क्योंकि जीवन तथा सारे प्रयासों का कारण धान्य ही है।

१२. अन्न मुक्ता र घी जुक्ता । —राजस्थानी कहावत

१३. हमारे बड़े-बूढ़े कहा करते थे कि अनाज मंहगा और रुपया सस्ता हो, वह जमाना 'खराब' और अनाज सस्ता और

रुपया मंहगा हो, वह जमाना 'अच्छा'; कारण अन्न से ही प्राण टिकते हैं।

१४. एक सेठ किसी कारणवश मकान में रह गया। बाहर से बन्द करके आरक्षक दूसरे गाँव चले गए। वहां हीरे, पन्ने, माणिक-मोती आदि जवाहरात काफी पड़ा था, लेकिन खाद्यवस्तु बिल्कुल नहीं थी। भूखा-प्यासा सेठ आखिर मर गया। प्राण निकलते समय उसने एक कागज पर लिखा कि "जवाहर से ज्वार का दाना बेहतर है।"

तुलसीदासजी ने भी कहा है—

तुलसी तब ही जानिए, राम गरीब निवाज।
मोती-कण मंहगा किया, सस्ता किया अनाज।

७ भोजन

१. शतं विहाय भोक्तव्यं, सहस्रं स्नानमाचरेत् ।

सौ काम छोड़कर खाना चाहिए और हजार काम छोड़कर नहाना चाहिए ।

२. चढ़ी हांडी में ठोकर नहीं मारणी ।

३. और बात खोटी, सिरै दाल-रोटी । —राजस्थानी कहावतें

४. यदि भोजन मिलता रहे तो सब दुःख सहे जा सकते हैं ।

५. चाह करेई हाक को हुवैनी । —राजस्थानी कहावत

६. तीन महीनों में मनुष्य अपने शरीर के वजन जितना भोजन कर लेता है । —एक अनुभवी

७. **भोजन का पाचनकाल :—**

पदार्थ	घंटे	पदार्थ	घंटे
उबले चावल	१	कच्चा-दूध	२।
जौ	२	मक्खन	३
साबूदाना	१।।	आलू	३।।
दूध	२	गोभी	४
		गाजर, मूली, मटर	३

८. आहारो, मैथुनं, निद्रा, सेवनात् तु विवर्धते ।

आहार, मैथुन और निद्रा, सेवन करने से इन तीनों में वृद्धि होती है ।

८ भोजन की विधि

१. पूजयेदशनं नित्य-मद्याच्चैतदकुत्सयन्।
दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च, प्रतिनन्देच्च सर्वशः ॥५४॥
पूजितं ह्यशनं नित्यं, बलमूर्जं च यच्छति।
अपूजितं तु तद्भुक्त-मुभयं नाशयेदिदम् ॥५५॥
नोच्छिष्टंकस्यचिद्दद्या-न्नाद्याच्चैव तथान्तरा।
न चैवात्यशनं कुर्यात्, न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ॥५६॥

—मनुस्मृति २

जो कुछ भोज्यपदार्थ मनुष्य को प्राप्त हो, वह उसे सदा आदर की दृष्टि से देखे। दोष न निकालता हुआ उसे खाए। उसे देखकर हर्ष, प्रसन्नता एवं उमंग का अनुभव करे ॥ ५४।

सत्कार किया हुआ अन्न बल और शक्ति को देता है एवं तिरस्कार की भावना से खाया हुआ अन्न उन दोनों का नाश कर देता है ॥ ५५ ॥

जूठा भोजन किसी को न दें। प्रातः भोजन करने के बाद सायंकाल से पहले बीच में कुछ न खाएं। अधिक न खायें और जूठे मुख कहीं न जावें ॥ ५६ ॥

२. अपवित्रोऽतिगार्ध्याच्च, न भुञ्जीत विचक्षणः।
कदाचिदपि नाश्नीया-दूर्ध्वीकृत्य च तर्जनीम्।

—विवेक-विलास

विचक्षण पुरुष अपवित्रता की अवस्था में भोजन न करे । अति-लोलुपता से न खाए तथा तर्जनी (अंगूठे के पासवाली अंगुली को ऊंचा करके भी न खाए ।

३. उष्णं स्निग्धं मात्रावत् जीर्णे वीर्याविरुद्धं इष्टे देशे, इष्टसर्वोपकरणं नातिद्रुतं नातिविलम्बितं अजल्पन् अहसन् तन्मना भुञ्जीत । आत्मानमभिसमीक्ष्य सम्यक् ।

—चरकसंहिता, विमानस्थान १।२४

उष्ण, स्निग्ध, मात्रापूर्वक पिछला भोजन पच जाने पर, वीर्य के अविरुद्ध, मनोनुकूल स्थान पर, अनुकूलसामग्रियों से युक्त, न अतिशीघ्रता से, न अतिविलम्ब से, न ही बोलते हुए, न ही हंसते हुए, आत्मा की शक्ति का विचार करके एवं आहार-द्रव्य में मन लगाकर भोजन करना चाहिए ।

४. ईर्ष्या-भय-क्रोधपरिक्षतेन, लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन ।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमान-मन्नं न सम्यक् परिणाममेति ।

—सुश्रुत

ईर्ष्या, भय, क्रोध, लोभ, रोग, दीनता, एवं द्वेष—इन सबसे युक्त मनुष्य द्वारा जो भोजन किया जाता है, उसका परिणाम अच्छा नहीं होता ।

५. विरोधी-आहार का सेवन नहीं करना चाहिए, इसके देश-विरुद्ध, कालविरुद्ध, अग्निविरुद्ध, मात्राविरुद्ध, कोष्ठविरुद्ध, अवस्थाविरुद्ध एवं विधिविरुद्ध आदि अनेक भेद हैं ।

—चरकसंहिता-सूत्रस्थान २७

६. **साथ न खाने के खाद्य पदार्थ—**

(१) गर्म रोटी आदि के साथ दही ।

(२) पानी मिला दूध और घी ।

(३) बराबर-बराबर घी-मधु (शहद)।
(४) चाय के पीछे ठण्डा पानी-ककड़ी-तरबूज आदि।
(५) खरबूजा और दही।
(६) मूली और खरबूजे के साथ मधु।

—कविराज हरनामदास

७. स्नानं कृत्वा जलैः शीतैः-रुष्णं भोक्तुं न युज्यते।

—विवेकविलास

ठण्डे जल से स्नान करके गरम-द्रव्य न खाए।

८. ठंडो न्हावै तातो खावै, त्यांरै वैद कदे नहीं आवै।

९. ऊभो मूतै सूतो खावै, तिणारो दलदर कदे न जावै।

—राजस्थानी कहावत

९ भोजन कैसा हो ?

१. स भारः सौम्य ! भर्तव्यो, यो नरं नावसादयेत् ।
तदन्नमपि भोक्तव्यं, जीर्यते यदनामयम् ।

—वाल्मीकिरामायण ३।५०।१८

हे सौम्य ! उसी भार को उठाना चाहिए, जिससे मनुष्य को कष्ट न हो । उसी अन्न को खाना चाहिए जो रोग पैदा किए बिना पच जाए ।

२. हितं मितं सदाश्नीयाद्, यत् सुखेनैव जीर्यते ।
धातुः प्रकुप्यते येन, तदन्नं वर्जयेद्यतिः ।

—अत्रिस्मृति

सदा हितकारी एवं परिमित भोजन करना चाहिए, जो सुखपूर्वक हजम हो जाए ।

३. षट् त्रिंशतं सहस्राणि, रात्रीणां हितभोजनः ।
जीवत्यनातुरो जन्तु-र्जितात्मा संमतः सताम् ॥

—चरकसंहिता, सूत्रस्थान २७।३४८

हितकारी भोजन करनेवाला प्राणी छत्तीस हजार रात्रि पर्यन्त अर्थात् १०० वर्ष तक जीवित रहता है तथा वह आत्मविजयी, नीरोग एवं सत्पुरुषों द्वारा सम्मानित होता है ।

४. पचे सोई खाइबो, रुचे सोई बोलिबो । —बंगला कहावत

पाचन शक्ति के अनुसार खाना खाना ... र रुचि के अनुसार बोलना चाहिए।

५. सुजीर्णमन्नं सुविचक्षणः सुतः
सुशासिता स्त्री नृपतिः सु...
सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य ...
सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम्।

—हितोपदेश १।२२

पचा हुआ भोजन, विचक्षण पुत्र, आज्ञा में रहनेवाली स्त्री, सुसेवित राजा, सोचकर कहा हुआ वचन और विचारपूर्वक किया हुआ काम—ये लम्बे समय तक विकार को प्राप्त नहीं होते।

६. अजीर्णे भोजनं विषम्।

—चाणक्यनीति ४।१५

अजीर्ण के समय किया हुआ भोजन विष के समान काम करता है।

७. तक्रान्तं खलु भोजनम्।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

भोजन के अन्त में तक्र (छाछ) पीनी चाहिए।

८. पुष्ट खुराक बिना नहीं, बनता तेज दिमाग।
तेल और बत्ती बिना, कैसे जले चिराग?

—दोहा-संदोहा ८३

९. राब खावै त्यामें रूप किसो।

—राजस्थानी कहावत

१०. मथुरा का पेड़ा अरु जयपुर की कलाकन्द,
बूंदी का लड्डू सब लड्डू से सवाया है।
उज्जैन की माजम, अजमेर की रेवड़ी रु.
काबुल सा मेवा और काहू न दिखाया है।
बनारस की शक्कर टक्कर सभी से लेत,
सिंध सा सिंघाड़ा स्वाद और न बनाया है।
कहत सुजान बीकानेर की अधिकताई,
मिसरी, मतीरा, भुजिया तीनूं ही सराया है।।

१० भोजन के भेद

१. अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेय-स्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति, हीयतेऽर्थाद् य
उ प्रेयो वृणीते। —कठोपनिषद् १।२।१

पदार्थ दो प्रकार के हैं—श्रेय और प्रेय!

आरम्भ में दुःख व अन्त में सुख देनेवाला श्रेय और इससे उल्टा प्रेय कहलाता है। श्रेय का ग्राहक सुखी और प्रेय का ग्राहक दुःखी होता है।

२. प्रेयदृष्टि से असन का, लेना है अन्याय,
श्रेयदृष्टि से असन तो, बन्धन है निरुपाय।

३. आयुः-सत्त्व-बलारोग्य-सुख-प्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या, आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥८॥
कट्वम्ल-लवणात्युष्ण-तीक्ष्ण-रूक्ष-विदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा, दुःखशोकामयप्रदाः ॥९॥
यातयामं गतरसं, पूति-पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं, भोजनं तामसप्रियम् ॥१०॥
—गीता अ०-१७

मनुष्य का आहार सात्त्विक, राजस और तामस के भेद से तीन प्रकार का है—आयु, जीवनशक्ति, बल, आरोग्य, सुख एवं प्रीति को बढ़ानेवाले तथा रसीले, चिकने, जल्दी खराब न होनेवाले एवं

हृदय को पुष्ट बनानेवाले भोज्यपदार्थ सात्त्विक-प्रकृतिवाले मनुष्यों को प्रिय होते हैं अतः ये **सात्त्विक** कहलाते हैं।

अतिकडुवे, अतिखट्टे, अतिनमकीन, अतिउष्ण, तीखे, रूखे, जलन पैदा करनेवाले दुःख-शोक एवं रोग उत्पन्न करनेवाले भोज्यपदार्थ राजस-प्रकृतिवाले मनुष्यों को प्रिय होते हैं अतः ये **राजस** कहलाते हैं।

बहुत देर का रखा हुआ, रसहीन, दुर्गन्धित, बासी, झूठा, अमेध्य-अपवित्र भोजन तामस-प्रकृतिवाले मनुष्यों को प्रिय होता है अतः यह **तामस** कहलाता है।

४. नामं ठवणा दविए, खेत्ते भावे य होंति बोधव्वो।
एसो खलु आहारो, निक्खेवो होइ पंचविहो॥
दव्वे सच्चित्तादि, खेत्ते नगरस्स जणवओ होइ।
भावाहारो तिविहो, ओए लोमे य पक्खेव॥

—**सूत्रकृतांग श्रु० २ अ० ३ निर्युक्ति**

आहार का नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, और भाव—ऐसे पांच प्रकार से निक्षेप होता है।

किसी वस्तु का नाम आहार रखना **नामआहार** है एवं आहार की स्थापना करना **स्थापनाआहार** है।

द्रव्यआहार तीन प्रकार का है—१. सचित्त २. अचित्त ३. मिश्र। जिस क्षेत्र में आहार किया जाता है, उत्पन्न होता है अथवा आहार का व्याख्यान होता है, उस क्षेत्र को **क्षेत्रआहार** कहते हैं अथवा नगर का जो देश, धन-धान्यादि द्वारा उपभोग में आता है, वह क्षेत्रआहार है।

क्षुधावेदनीयकर्म के उदय से भोजनरूप में जो वस्तु ली जाती है, उसे **भावआहार** कहते हैं। यह तीन प्रकार का है—

१ ओजआहार—जन्म के प्रारम्भ में लिया जानेवाला, २ लोम-आहार—त्वचा या रोम द्वारा लिया जानेवाला, ३ प्रक्षिप्तआहार—मुख अथवा इन्जेक्शन आदि द्वारा लिया जानेवाला।

५. णेरइयाणं चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा-इंगालोवमे, मुम्मुरोवमे, सीयले, हिमसीयले।

तिरिक्खजोणियाणं चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा-कंकोवमे, बिलोवमे, पाणमंसोवमे पुत्तमंसोवमे।

मणुस्साणं चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा-असणे, पाणे, खाइमे, साइमे।

देवाणं चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तंजहा-वण्णमंते, गंधमंते रसमंते फासमंते। —स्थानांग ४।४।३४०

नैरयिकों का आहार चार प्रकार का कहा है—

(१) **अंगारों के समान**—थोड़ी देर तक जलानेवाला।

(२) **मुर्मुर के समान**—अधिक समय तक दाह उत्पन्न करनेवाला।

(३) **शीतल**—सर्दी उत्पन्न करनेवाला।

(४) **हिमशीतल**—हिम के समान अत्यन्त शीतल।

तिर्यञ्चों का आहार चार प्रकार का कहा है—

(१) **कंक के समान**—सुभक्ष्य और सुखकारी परिणामवाला।

(२) **बिल के समान**—बिल में वस्तु की तरह (रस का स्वाद दिये बिना) सीधा पेट में जानेवाला।

(३) **मातङ्गमांस के समान**—मातङ्गमांसवत् घृणा पैदा करनेवाला

(४) **पुत्रमांस के समान**—पुत्रमांसवत् अत्यन्त दुःख से खाया जानेवाला।

मनुष्यों का आहार चार प्रकार का कहा है—

(१) **असन**—दाल-रोटी-भात आदि।

(२) **पान**—पानी आदि पेय पदार्थ।

(३) **खादिम**—फल-मेवा आदि।

(४) **स्वादिम**—पान-सुपारी आदि मुंह साफ करने की चीजें।

देवताओं का आहार चार प्रकार का कहा है—

(१) अच्छे वर्णवाला, (२) अच्छी गन्धवाला, (३) अच्छे रसवाला, (४) अच्छे स्पर्शवाला।

९. नव विगईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—खीरं, दहिं, णवणीयं, सप्पि, तिल्लं, गुलो, महु, मज्जं, मंसं। —स्थानांग ९।६७४

नव विकृतियां-विगय कही हैं—१ खीर-(दूध), २ दही ३ मक्खन, ४ घी, ५ तेल, ६ गुड़, ७ मधु-शहद ८ मद्य, ९ मांस। मक्खन मद्य, मांस, मधु—इन चारों को महाविगय भी कहा है।

११ भोजन में आवश्यक तत्त्व

[१] **प्रोटीन**—मांस जातीय-पौष्टिकपदार्थ।

[२] **फेट्स**—चर्बीले पदार्थ घी-तेल आदि।

[३] **खनिज**—लवण सदृश पदार्थ।

[४] **कार्बोहाइड्रेट्स**—शर्कराजातीय-चीनी आदि पदार्थ।

[५] **कैलशियम**—चूना-फासफोरस आदि।

[६] **लोहा**—लोहयुक्त पदार्थ।

[७] **पानी**—पेय पदार्थ।

[८] **कैलोरी**—शरीर को गर्मी और शक्ति देनेवाले तत्त्व।

किस खाद्य में प्रोटीन आदि प्रतिशत कितनी हैं एवं कैलोरीशक्ति प्रतिसहस्र कितनी है—यह निम्नलिखित चार्ट से समझने योग्य है।

१२ रासायनिक तुलनात्मक चार्ट

शाकाहारी-खाद्य

पदार्थ	प्रोटीन	फेट्स	खनिज लवण	कार्बोहाइड्रेट्स	कैलशियम	लोहा	पानी	कैलोरी
—	%	%	%	%	%	%	%	%Grs.
गेहूँ का आटा	१२·१	१·७	१·८	७२·२८	०·०४	७·३	१२·२	३५२
मकई	११·१	३·६	१·५	६६·२८	०·०१	२·१	१४·९	३४३
चावल	८·५	०·६	०·९	७७·४८	०·०१	२·८	१२·६	३४९
मूंग	२४·०	१·३	३.६	५६.६	०·१४	८·४	१०·४	३३४
उड़द	२४.०	१.४	३·४	६०·३	०·२०	९·८	१०·९	३५०
अरहर	२२.३	१.७	३·६	५७·२	०·१४	८·८	१५·२	३३३
मसूर	२५·१	०·७	२·१	५९·७	०·१३	२·०	१२·४	३४६
भुना मटर	२२·९	१·४	२·३	६३·५८	०·०७	५·०	९·९	३४८
भुना चना	२२·५	५·२	२·२	५८·९	०·०७	८·९	११·२	३७२
लोभिया बड़ा	२४·६	०·७	३·२	५५·७	०·०७	३·८	१२·०	३२५

सोयाबीन	४३.२	१९.५	४.६	२०.९	०.२४	११.५	८.१	४३२
भटवांस	४१.३	१७.०	४.५	२४.१	०.२१	९.९	—	४१५
दाल	२४.९	०.८	३.२	६०.१	०.०६	२.०	९.६	३४७
मेथी	२६.२	५.८	३.०	४४.१	०.१६	१४.१	१३.७	३३३
जीरा	१८.७	१५.०	५.८	३६.६	१.०८	३१.०	११.९	३५६
धनियां	१४.१	१६.१	४.४	२१.६	०.६३	१७.९	११.२	२८८
बादाम	२०.८	५८.९	२.८	१०.५	०.२३	३.५	५.२	६५५
काजू	२१.२	४६.९	२.४	२२.३	०.०५	५.०	५.९	५९६
भुनी मूंगफली	३१.५	३९.८	२.३	१९.३	०.०५	०.३	४.०	५६६
पिस्ता	१९.८	५३.५	२.८	१६.२	०.१४	१३.७	५.६	६२६
अखरोट	१५.५	६४.५	१.८	११.०	०.१०	४.८	४.५	६८७
मक्खन	—	८०.८	—	—	—	—	—	७२०
घी	—	९८.०	—	—	—	—	—	९००
पनीर	२४.१	२५.१	४.२	६.३	०.७९	२.१	४०.३	३४८
खोया	१४.१	३१.२	३.१	२०.५	०.६५	५.८	३०.६	४२१
स्प्रेटा दूध-पावडर	३८.०	०.१	६.८	५१.०	१.३७	१.४	४.१	३५७

मांसाहारी-खाद्य

पदार्थ	प्रोटीन %	फेट्स %	खनिज लवण %	कार्बोहाइड्रेट्स %	कैलशियम् %	लोहा %	पानी %	कैलोरी %Grs.
मुर्गी का अंडा	१३'३	१३'३	१'०	—	०'०६	२'१	७३'७	१७३
बत्तखका अंडा	१३'५	१३'७	१'०	०'७	०'०७	३'०	७१'०	१८०
कलेजी (भेड़)	१९'३	७'५	१'५	१'६	०'०१	६'३	७०'४	१५०
बकरीका गोस्त	१८'५	१३'३	१'३	—	०'१५	२'५	७१'५	१९४
सुअरका गोस्त	१८'७	४'४	१'०	—	०'०३	०'२	७७'४	११४
गायका गोस्त	२२'६	२'६	१'०	—	०'०१	०'८	७३'६	११४
मछली	२२'६	०'६	०'८	—	०'०२	०'६	७८'४	९१

---

१. भारत सरकार द्वारा प्रकाशित हेल्थ-बुलेटिन नं०-२३ से साभार।

● प्रकाशक—श्री केवलचन्द जैन, जनकल्याण समिति, १९४२, मालीवाड़ा-दिल्ली।

● (मांसाहारी-खाद्य से शाकाहारी-खाद्य की श्रेष्ठता दिखाने के निमित्त।

२. **विटामिन–**

विटामिन वे पदार्थ हैं, जिनकी मानवशरीर को कम मात्रा में आवश्यकता होती है, किन्तु वे अत्यावश्यक होते हैं। इनके बिना मानवशरीर सुचारुरूप से काम नहीं कर सकता।

विटामिन के प्रकार—विटामिन 'ए' आँखों के लिए बहुत जरूरी होता है।

विटामिन 'बी' कम्पलेक्स मांसपेशियों, नसों, भूख तथा पाचन शक्ति पर नियंत्रण रखता है।

विटामिन 'सी' छूत के रोगों का सामना करने की शक्ति देता है।

विटामिन 'डी' दांतों और हड्डियों को मजबूत बनाने में सहायक होता है।

विटामिन 'ए' आदि विशेषरूप से धारण करनेवाले पदार्थ–

विटामिन 'ए'–दूध और दूध से बनी चीजें, पालक, गाजर, आम, पपीता, टमाटर, मछली का तेल, अण्डे, कलेजी आदि।

विटामिन 'बी' कम्पलैक्स–गिरियाँ, हरी फलियाँ (मटर), सेम, आलू, डबलरोटी, हरी मूंग, बाजरा, सेला चावल, दूध, मांस और मछली।

· **विटामिन 'सी'**–ताजे फल और सब्जी, आंवला, मौसम्मी, (नींबू और सन्तरा), पत्तेवाली सब्जियाँ, (फूलगोभी,

बन्दगोभी, मूली के पत्ते), टमाटर, सहिजन की पत्तियाँ।

विटामिन 'डी'--सूरज की किरणें, दूध और दूध की बनी चीजें, मछली का तेल तथा अण्डे।[1]

--हिन्दुस्तान, १२ अप्रेल, १९७१

प्रोटीन आदि तत्त्व तथा विटामिन के लोभ से मांस मछली और अण्डों का सेवन करनेवाले व्यक्तियों को पुस्तक पृष्ठ ९६ से १०० तक का चार्ट और विटामिन का विवेचन ध्यान से पढ़कर मांसाहार परित्याग कर देना चाहिए।

--धनमुनि

---

१. भारत सरकार की तरफ से जनता के हित में पौष्टिक और स्वादिष्ट माडर्नब्रेड के निर्माता माडर्न बेकरीज की ओर से प्रकाशित।

१३ भोजन का ध्येय

१. खुराक स्वाद के लिए नहीं परन्तु शरीर को दवा की तरह पालने के लिए है। —गांधी

२. जीने के लिए खाना किसी एक दृष्टि से जरूरी है, किन्तु खाने के लिए जीना (रसलोलुप होना) सभी प्रकार से मूर्खता है।

३. स्वाद के लिए खाना अज्ञान, जीने के लिए खाना आवश्यकता और संयम की रक्षा के लिए खाना साधना है।

४. उतर्‌या घाटी, हुया माटी। —राजस्थानी कहावत

५. प्रतिदिन दस खरब रक्त के लालपरमाणु नष्ट होते हैं। उनकी पूर्ति आहार से ही की जा सकती है।

१४ भोजन की शुद्धि

१. आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः, सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः,
स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ।

—छान्दोग्योपनिषद् ७।२६।२

आहार की (इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किये गये विषयों की) शुद्धि होने से सत्त्व-अन्तःकरण की शुद्धि होती है। उससे स्थायी स्मृति का लाभ होता है। स्मृति के लाभ से अर्थात् जागरूक अमूढ़ज्ञान की प्राप्ति से मनुष्य की सब ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं।

२. आहार सुधारिये ! स्वास्थ्य अपने-आप सुधर जायेगा।

—गांधीजी

३. कुभोज्येन दिनं नष्टम् ! —सुभाषितरत्नखण्ड मंजूषा

कुभोजन करने से दिन को नष्ट हुआ समझो।

४. जिसो अन्न खावे, तिसो ही डकार आवे।

—राजस्थानी कहावत

५. जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन।
जैसा पीवे पानी, वैसी बोले बानी॥ —हिंदी कहावत

६. दीपो हि भक्षयेद् ध्वान्तं, कज्जलं च प्रसूयते।
यदन्नं भक्ष्यते नित्यं, जायते तादृशी प्रजाः॥

—चाणक्यनीति ८।३

जो जैसा अन्न खाता है उसके वैसी ही संतान पैदा होती है। दीपक काले अन्धेरे का भक्षण करता है तो उसकी संतान भी काली (काजल) होती है।

१५ भोजन का समय

१. बुभुक्षाकालो भोजनकालः ।

—नीतिवाक्यमृत २५।२६

भूख लगे, वही भोजन का समय है ।

२. अक्षुधितेनामृतमप्युपभुक्तं भवति विषम् ।

—नीतिवाक्यामृत

भूख के बिना खाया हुआ अमृत भी जहर हो जाता है ।

३. नाश्नीयात् संधिवेलायां, नगच्छेन्नापि संविशेत् ।

—मनुस्मृति ४।५५

संध्यासमय भोजन, गमन और शयन नहीं करना चाहिए ।

४. **कौन कब आहार के इच्छुक ?**

नरक के जीव असंख्यसमयवाले अन्तर्मुहूर्त से आहारार्थी (आहार करने के इच्छुक) होते हैं ।

तिर्यञ्चो में पृथ्वी आदि स्थावर-जीव प्रतिसमय, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय,-चतुरिन्द्रिय असंख्यसमय वाले अन्तर्मुहूर्त से तथा तिर्यञ्चपञ्चेन्द्रिय जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त से एवं उत्कृष्ट दो दिन से आहारार्थी होते हैं ।

मनुष्यों को जघन्य अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट तीन दिन के अन्तर से आहार की इच्छा होती है ।

(अवसर्पिणीकाल में पहले आरे के मनुष्य तीन दिन से, दूसरे आरे के दो दिन से, तीसरे आरे के एक दिन से, चौथे आरे के दिन में एक बार और पाँचवें आरे के दिन में दो बार भोजन किया करते हैं, किन्तु छठे आरेवाले मनुष्य आहार के विषय में मर्यादाहीन हैं अर्थात् उन्हें भूख बहुत लगती है ।)

देवों के आहार के विषय में ऐसा माना गया है कि दस हजार वर्ष की आयुवाले देवता एक दिन से, पल्योपम की आयुवाले दो दिन से यावत् नौ दिन से, एक सागर की आयुवाले एक हजार वर्ष से एवं तेंतीससागर की आयु-वाले देवता तेंतीस हजार वर्ष से, भोजन के इच्छुक होते हैं।

(प्रज्ञापनापद २८ के आधार से)

१६ भोजन के समय दान

१. त्यक्तेन भुञ्जीथाः । —यजुर्वेद ४०।१

कुछ त्याग करके खाओ !

२. केवलाघो भवति केवलादी । —ऋग्वेद १०।१७।१९

अतिथि आदि को दिये बिना अकेला भोजन करनेवाला केवल पाप का भागी होता है ।

३. एकः स्वादु न भुञ्जीत, एकश्चार्थान्न चिन्तयेत् ।
एको न गच्छेदध्वानं, नैकः सुप्तेषु जागृयात् ॥
—विदुरनीति १।५१

मनुष्य को चाहिए कि कभी भी अकेला स्वादिष्ट भोजन न करे, अकेला किसी विषय का निश्चय न करे, रास्ते में कभी अकेला न चले और न रात को सबके सो जाने के बाद अकेला जागता ही रहे।

४. अशितवत्यतिथावश्नीयात् । —अथर्ववेद ९।७।७

अतिथि के खाने के बाद ही खाना चाहिए ।

५. वीसमंतो इमं चिंते, हियमट्ठं लाभमट्ठिओ ।
जइ मे अणुग्गहं कुज्जा, साहू हुज्जामि तारिओ ॥९४॥
साहवो तो चिअत्तेणं, निमंतिज्ज जहक्कमं ।
जइ तत्थ केइ इच्छिज्जा, तेहिं सद्धिं तु भुंजए ॥९५॥

विश्राम करता हुआ लाभार्थी (मोक्षार्थी) मुनि इस हितकर अर्थ

का चिन्तन करे—यदि आचार्य और साधु मुझ पर अनुग्रह करें (मेरे द्वारा लाया हुआ आहार लें) तो मैं निहाल हो जाऊँ—मानूं कि उन्होंने मुझे भवसागर से तार दिया।

इस प्रकार विचारकर मुनि प्रेमपूर्वक साधुओं को यथाक्रम निमन्त्रण दे। उन निमन्त्रित साधुओं में से यदि कोई साधु भोजन करना चाहे तो उनके साथ भोजन करे।

६. **खानेवाले दो प्रकार के होते हैं—**

कुत्तों की तरह छीना-झपटी करके खानेवाले,
कौवे की तरह सभी साथ बैठकर खानेवाले।

—श्रीरामकृष्ण

भोजन के समय मौन—

१. भोजन करते समय खाद्यपदार्थों की निन्दा या प्रशंसा करने से कर्मों का बन्ध होता है अतः उस समय प्रायः मौन कर लेना चाहिए। —धनमुनि

२. ये तु संवत्सरं पूर्णं, नित्यं मौनेन भुञ्जते।
युगकोटिसहस्रं तैः, स्वर्गलोके महीयते॥

—चाणक्यनीति ११।६

जो भोजन करते समय एक वर्ष तक पूर्ण मौन रख लेते हैं, वे हजार-कोटि युग तक स्वर्ग में पूजे जाते हैं।

४० भोजन के बाद

१. भुक्त्वा राजवदासीत, यावदन्नक्लमो गतः,
ततः पादशतं गत्वा, वामपार्श्वेन संविशेत् ।   —सुश्रुत

खाने के बाद जब तक शरीर में अन्न की क्लान्ति रहे, तब तक राजा की तरह प्रसन्नमुद्रा में बैठना चाहिए। फिर सौ कदम टहल कर कुछ समय लेट जाना चाहिए।

२. ऑफ्टर डिनर रेस्ट ए व्हाइल, ऑफ्टर सपर वाक ए माइल।
—अंग्रेजी कहावत

मध्याह्न भोजन के बाद कुछ आराम करना चाहिए एवं सायंकाल भोजन के बाद कुछ घूमना चाहिए।

३. खाय-पीय कर सो जाणा, मार-कूट कर भाग जाणा।
—राजस्थानी कहावत

४. भुक्त्वा व्यायाम-व्यवायौ सद्यो व्यापत्तिकारणम्।
—नीतिवाक्यामृत २५।५०

खाते ही व्यायाम करना एवं मैथुन करना आपत्ति का कारण है।

१८ भोजन की मात्रा

१. मात्राशी स्यात्, आहारमात्रा पुनरग्निबलापेक्षिणी ।

—चरकसंहितासूत्रस्थान ५।३

मात्रायुक्त आहार करनेवाले बनो। आहार की मात्रा अपने अग्निबल की अपेक्षा रखती है।

२. वायोः संचारणार्थाय, चतुर्थमवशेषयेत् ।

श्वासोच्छ्वास के लिए अन्न की थैली का चौथा भाग खाली रखना चाहिए।

३. न भुक्तिपरिमाणे सिद्धान्तोऽस्ति। —नीतिवाक्यामृत २५।४३

कितना खाना—इस विषय में कोई निश्चय नहीं है।

४. तथा भुञ्जीत ! यथा सायमन्येद्युश्च न विपद्यते वह्निः ।

—नीतिवाक्यामृत २५।४२

वैसे खाना चाहिए, जिससे संध्या या सवेरे जठराग्नि न बुझे।

५. भक्षितेनापि किं तेन, येन तृप्तिर्न जायते ।

उस खाने से क्या लाभ ? जिससे तृप्ति न हो।

६. यदु वा आत्मसम्मितमन्नं तदवति, तन्न हिनस्ति,
यद् भूयो, हिनस्ति तद्, यत्कनीयो न तदवति।

शतपथब्राह्मण ६।६।३।६७

आवश्यकतानुसार खाया हुआ अन्न पुष्टि करता है, हानि नहीं।

अधिक होने पर हानि करता है और कम होने पर पुष्टि नहीं करता।

७. **कैलोरी**—हम जो भोजन करते हैं, वह ईंधन का काम करता है। वह धीरे-धीरे जलता रहता है और हमारे जीवित रहने के लिये आवश्यक गर्मी और शक्ति प्रदान करता है। कौनसा भोजन शरीर को कितनी गर्मी प्रदान करता है, इसे कैलोरियों में गिना जाता है। जैसे एक औंस लौकी में ८ कैलोरियाँ और एक औंस बादाम में ८० कैलोरियाँ होती हैं। बच्चों को अधिक कैलोरीयुक्त भोजन की जरूरत होती है। अगर उनकी अवस्था ६ से १२ वर्ष तक की है तो उन्हें प्रतिदिन २५०० कैलोरियों की आवश्यकता पड़ेगी। **—विश्वकोष भाग ३**

८. भारत में खाद्य पदार्थों के प्रति व्यक्ति उपभोग की कैलारी प्रतिदिन १७५१ से बढ़कर २१४५ हो गई। अनाज की प्रति व्यक्ति सप्लाई १२.८ औंस से बढ़कर १५.४ औंस प्रतिदिन हो गई।

—हिन्दुस्तान २१ अगस्त १९६६

१९ मित भोजन

१. यो मितं भुङ्क्ते, स बहु भुङ्क्ते ।

—नीतिवाक्यामृत २५।३८

जो परिमित खाता है, वह बहुत खाता है।

२. गुणाश्च षड्मितभुजं भजन्ते, आरोग्यमायुश्च बलं सुखं च
अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं, न चैनमाद्यून इति क्षिपन्ति ।

—विदुरनीति ५।३४

परिमित भोजन करनेवाले को ये छः गुण प्राप्त होते हैं—आरोग्य, आयु, बल और सुख तो मिलते ही हैं। उसकी संतान सुन्दर होती है तथा यह बहुत खानेवाला है, ऐसे कहकर लोग उसपर आक्षेप नहीं करते।

३. हियाहारा मियाहारा, अप्पाहारा य जे नरा।
न ते विज्जा तिगिच्छंति, अप्पाणं ते तिगिच्छगा ॥

—ओघनिर्युक्ति ५७८

जो मनुष्य हितभोजी, मितभोजी एवं अल्पभोजी हैं, उनको वैद्यों की चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती। वे अपने-आप ही चिकित्सक (वैद्य) होते हैं।

४. कालं क्षेत्रं मात्रां स्वात्म्यं द्रव्य-गुरुलाघवं स्वबलम् ।
ज्ञात्वा योऽभ्यवहार्यं, भुङ्क्ते किं भेषजैस्तस्य ॥

—प्रशमरति १३७

जो काल, क्षेत्र, मात्रा आत्मा का हित, द्रव्य की गुरुता-लघुता एवं अपने बल को विचार कर भोजन करता है, उसे दवा की जरूरत नहीं रहती।

५. बीमारियों की अधिकता पर यदि आपको आश्चर्य हो तो अपनी थाली गिनिये। —सिनेका

२०　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　अतिभोजन

१. अनारोग्यमनायुष्य-मस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ।

—मनुस्मृति २।५७

अधिक भोजन करना अस्वास्थ्यकर है। आयु को कम करनेवाला और परलोक को बिगाड़नेवाला है।

२. मधुरमपि बहुखादितमजीर्णं भवति ।

अधिक मात्रा में खाया हुआ मधुर पदार्थ भी बदहजमी पैदा कर देता है।

३. अतिमात्रभोजी देहमग्निं विधुरयति ।

—नीतिवाक्यामृत १६।१२

मात्रा से अधिक खानेवाला जठराग्नि को खराब करता है।

४ बहुभोजी एवं बहुभोगी बहुरोगी होता है।

—डायोजिनस

५. भूखों मर जाना विवशता है और खाकर मरना मूर्खता।

—आचार्य तुलसी

६. आहार मारै या भार मारै । —राजस्थानी कहावत

७. मनमां आवे तेम बोलवुं नहिं ने भावे तेटलुं खावुं नहिं।

अन्न पारकुं छे पण पेट कंई पारकुं नथी।

—गुजराती कहावत

८. एकबार खानेवाला महात्मा, दो बार संभलकर खानेवाला

बुद्धिमान और दिन भर बिना विवेक खानेवाला पशु।

—बुद्ध

९. अत्याहार खानेवालों की अपेक्षा कम आहार खानेवाले विशेष सुखी होते हैं।

१०. पांचवें आरेवाले मनुष्यों की अपेक्षा ४-३-२-१ आरेवाले मनुष्य एवं देवता क्रमशः अधिक सुखी हैं, क्योंकि वे कम खाते हैं।

११. थोवाहारो थोवभणियो य, जो होइ थोवनिद्दो य।
थोवोवहि-उवगरणो, तस्स देवावि पणमंति ॥

—आवश्यकनिर्युक्ति १२६५

जो साधक थोड़ा खाता है, थोड़ा बोलता है, थोड़ी नींद लेता है और थोड़ी ही धर्मोपकरण की सामग्री रखता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

१२. कम खाना और गम खाना अक्लमंदी है।

—हिन्दी कहावत

२१ अधिक खानेवाले आदमी

१. बालोतरा (मारवाड़) में एक मन घी को तेरह आदमी खा जाते थे एवं वे मण के तेरिये कहलाते थे। नये हाकिम ने उनको देखना चाहा। लोगों ने कहा—हजूर घटती का जमाना है। अतः अब तो नौ ही रह गये अर्थात् नौ आदमी ही मन घी खा जाते हैं।

२. बीकानेर में एक सेठानी ने खीर-पूड़े का श्राद्ध किया, सूंसा, तेजा एवं उनकी बहन लाज तीनों भाई बहन सवा मन दूध की खीर खा गये।

३. कलकत्ते में एक राजस्थानी ब्राह्मण ने खाना खाकर ठाकुर से दो पापड़ मांगे। ठाकुर ने कहा-फुलके चाहे जितने ले लो, पापड़ दो नहीं मिल सकते। विवाद बढ़ा ब्राह्मण ने ५६ फुलके खाए। ठाकुर ने माफी मांगी एवं दूसरा पापड़ देकर पल्ला छुड़ाया।

४. हरियाणा के एक खिलाड़ी ने परस्पर विवाद करके ६० रोटियां खाईं। विस्मित लोगों के पूछने पर कहा—ये कोई रोटियां थोड़ी ही हैं, ये तो बुरकियां हैं।

— हिन्दुस्तान, ३० मार्च, १९७१

५. गंगाशहर के जगन्नाथ वैद्य विवाह के प्रसंग पर रतनगढ़ में पौने दो थामा बादाम का सीरा खा गए। (एक थामे में लगभग ३-४ सेर सीरा समाता है।)

६. डूंगरगढ़-निवासी छोगमलजी-मूलचन्दजी भादानी ५-५ सेर बादाम की कतलियां खा जाते थे। हुकमचन्दजी भादानी ५-५ सेर आमरस पी जाते थे।

७. मघवागणी पायली पधारे। दीक्षार्थी भानजी का पक्का पानी और दाल-बाटियां अधिक देखकर रतनगढ़ के श्रावक कुछ शंकाशील हुए। दीक्षार्थी [illegible] होकर एक घड़ा पानी एक साथ पी गए। श्रावकों की शंका दूर हुई।

८. चैनजी-चिमनजी स्वामी ने चूरू में गुरुदुलरायजी कोठारी के यहाँ से दूध, दही, मक्खन, ठंडी रोटियाँ आदि १८ सेर करीब वजन की गोचरी की एवं विहार करके शहर के बाहर जाकर नाश्ता कर लिया। कोठारीजी ने पूछा कमी तो नहीं रही ? मुनि बोले--नाश्ता हुआ है, गोचरी तो आगे जाकर करेंगे।

९. चैनजी स्वामी एक बार आहार करने के बाद सवा सेर घी (अधिक आ गया था) डेढ़ सेर चीनी में मिलाकर खा गए। गृहस्थाश्रम में उन्होंने शर्त लगाकर गेहूँ से भरी हुई गाड़ी को अपनी पीठ पर उठाकर सारे गेहूँ ले लिए थे।

१०. छोटूजी स्वामी (जयपुर-निवासी) दुपहरी (टीफन) में पाँच रुपये की बर्फी खा जाते थे। उन्होंने दीक्षा की अर्ज की,

तब जयाचार्य ने कहा, बर्फी कहाँ से मिलेगी ? छोटूजी बोले, बर्फी न सही, दो रोटी तो मिलेंगी।

११. **बैंगकाक** के सीमावर्ती नगर **लोबपुर** से आया हुआ एक ४२ वर्षीय ग्रामीण सामान्यतया खानेवाले ३० मनुष्य के बराबर भोजन खा जाता है। एक बार में तीन गैलन पानी या सोडा-लैमन जैसे मधुरपेय की तीन-तीन पेटियाँ पी जाता है। **—नवभारत टाइम्स, २४ मई, सन् १९६५**

१२. विश्व में अधिक गेहूँ खानेवाला देश **फ्रांस** है और अधिक चीनी खानेवाला पंजाब है।

२२ राक्षसी-खुराकवाले व्यक्ति

१. अखाड़े में **किंगकांग** के नाम से मशहूर "एमाईल स्जाया" नामक व्यक्ति जिसे लोग दैत्याकार होने से **इन्सानी-पहाड़** भी कहा करते थे। १५ मई को सिंगापुर के अस्पताल में दो रुग्णशय्याओं पर मरा।

इस किंगकांग का वजन था ४०० पौंड। वह दुनियां का सबसे शानदार कुश्तीबाज था। कहते हैं कि वह नास्ते में तीन दर्जन कच्चे अण्डे और रात के भोजन में ६ मुर्गे खाता था। वह हर रोज १०-१५ पौंड फल, एक पौंड पनीर और दो दर्जन पाइन्ट दूध भी भोजन में लेता था।

२. रुस्तमेजर्मा **गामा** का दैनिक आहार था-बकरे की ४० टांगों का शोरबा, पांच सेर गोश्त, २५ सेर दूध, एक सेर बादाम, आधा सेर घी और ३० पौंड फल।

३. २७५ पौंड वजनी रुस्तमेहिन्द **दारासिंह** जिसने, किंग-कांग को कई वर्ष पूर्व फ्रीस्टाईल कुश्ती में हराया था वजिस कर लेने के बाद हर रोज चार परिन्दों का शोरबा आधा किलो बादाम, पाव किलो घी, चार किलो दूध और दस किलो फल लेता है।

४. एक डाक्टर ने मुआयना करके बताया कि फ्रांस के **एम० डिलेयर** का पेट गाय के जैसा था। वह दो घण्टों में ४२० पिन्ट जल पी जाता था। दस मिनटों में सौ गिलास बीयर पी जाता था। उसने दो दिनों में पावरोटी के २१० टुकड़े खा लिये थे। अपना आहार बदल-बदल कर लेने के शौक में वह जिन्दा मछलियां, कछुए तथा मेढ़क खा जाता था। —हिन्दुस्तान, ११ जुलाई, १९७०

२३ मुफ्त का खाने वाले

१. कॉक्स मेक फ्री आफ हार्सेस कार्न। —अंग्रेजी कहावत

पार के पैसे दीवाली।

२. भरले पेटा जारे दिवसा। —मराठी कहावत

मुफ्त का खाकर दिन काटनेवालों के लिये।

३. परघर चौका चीगटा, घर रा भर दे आंडा।
परघर ब्याह मंड्यो, नाकाजी, करो कीचड़ो में खांडा।

४. साठे कांमे लापसी, सौए कामे सीरो;
मिलियां सूं छोड़े नहीं, नणदबाई रो वीरो।

—राजस्थानी दोहे

५. दीखत दीखे टाबर्यो, पगां सूधो पोलो।

एक बहन ने छोटे से साधु को भोजन का निमन्त्रण दिया। साधु ने घर की सारी खाद्यसामग्री खा डाली तब बहन ने कहा—

पीयो पोयो सगलो खाधो, अब तो कांयक बोलो।

साधु ने उत्तर दिया—

म्हे हां साधु रामानन्दी तीन लोक में डोलां,
थां रांड रो हीयो फूट्यो, धाप्या हुवां तो बोलां।

—राजस्थानी दोहे

६. भोजनं कुरु दुर्बुद्धे ! मा शरीरे दयां कुरु !
परान्नं दुर्लभं लोके, शरीराणि पुनः-पुनः ॥

अरे मूर्ख ! भोजन करले, शरीर पर दया मत कर, क्योंकि संसार में पराया अन्न दुर्लभ है; शरीर तो फिर-फिर के मिलता ही रहता है।

माले मुफ्त दिले बेरहम। —उर्दू कहावत

मुफ्त री मुर्गी काजीजी नै हलाल। —राजस्थानी कहावत

मुफ्त का चन्दन घस बे लाला।
तू भी घस, तेरे बाप को बुलाला। —हिन्दी कहावत

२४ रात्रिभोजन-निषेध

१. घोरान्धकार रुद्धाक्षैः, पतन्तो यत्र जन्तवः ।
नैव भोज्ये निरीक्ष्यन्ते, तत्र भुञ्जीत को निशि ॥

—योगशास्त्र ३।४९

रात्रि में घोर अन्धकार के कारण भोजन में गिरते हुए जीव आँखों से दिखाई नहीं देते, उस समय कौन समझदार व्यक्ति भोजन करेगा !

२. नैवाहुतिर्न च स्नानं, न श्राद्धं देवतार्चनम् ।
दानं वा विहितं रात्रौ, भोजनं तु विशेषतः ॥

—योगशास्त्र ३।५६

अन्यमत में कहा है कि रात्रि में होम, स्नान, श्राद्ध देवपूजन या दान करना भी उचित नहीं है, किन्तु भोजन तो विशेषरूप से निषिद्ध है ।

३. देवैस्तु भुक्तं पूर्वाह्णे, मध्याह्ने ऋषिभिस्तथा ।
अपराह्णे च पितृभिः, सायाह्ने दैत्य-दानवैः ॥
संध्यायां यक्ष-रक्षोभिः, सदा भुक्तं कुलोद्वह !
सर्ववेलां व्यतिक्रम्य, रात्रौ भुक्तमभोजनम् ॥

—योगशास्त्र ३।५८-५९

हे युधिष्ठिर दिन के पूर्वभाग में देवों ने, मध्याह्न में ऋषियों ने

अपराह्न में पितरों ने, सायंकाल में दैत्यों-दानवों ने, तथा संध्या-दिन रात की संधि के समय यक्षों-राक्षसों ने भोजन किया है। इन सब भोजनवेलाओं का उल्लंघन करके रात्रि में भोजन करना अभक्ष्य-भोजन है।

४. हृन्नाभिपद्मसंकोचश्चण्डरोचिरपायतः।
अतो नक्तं न भोक्तव्यं, सूक्ष्मजीवादनादपि।

—योगशास्त्र ३।६०

आयुर्वेद का अभिमत है कि शरीर में दो कमल होते हैं--हृदय-कमल और नाभिकमल। सूर्यास्त हो जाने पर ये दोनों कमल संकुचित हो जाते हैं अतः रात्रि-भोजन निषिद्ध है। इस निषेध का दूसरा कारण यह भी है कि रात्रि में पर्याप्त प्रकाश न होने से छोटे-छोटे जीव भी खाने में आ जाते हैं। इसलिए रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए।

५. अत्थंगयम्मि आइच्चे, पुरत्था य अणुग्गए।
आहारमाइयं सव्वं, मणसा वि न पत्थए।

—दशवैकालिक ८।२८

सूर्य के अस्त हो जाने पर और प्रातःकाल सूर्य के उदय न होने तक सब प्रकार के आहारादि की साधु मन से भी इच्छा न करे।

६. रात्रि के समय यदि भोजन का उद्गार (डकार) आ जाए तो थूक देना चाहिए। न थूककर वापिस-निगल जानेवाले साधु-साध्वी को गुरु-चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है। —निशीथ १०।३५

७. सूर्य उदय हुआ जान कर साधु कदाच आहार को याचकर खाने लगे, फिर यदि पता लग जाए कि सूर्य उदय नहीं हुआ

तो आहार को परठ देना चाहिए। चाहे मुंह में हो, हाथों में हो या पात्र में हो। न परठनेवाले साधु-साध्वी को गुरु-चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

—निशीथ १०।३१-३२

८. जे भिक्खू राइ भोयणस्स वन्नं वदई वदंतं वा साइज्जई।

—निशीथ ११।७६

जो साधु रात्रिभोजन की प्रशंसा करे एवं प्रशंसा करते हुए का अनुमोदन करे तो उसे मासिक-प्रायश्चित्त आता है।

९. किं जैनैः रजनीभोजनं भजनीयम् !

क्या जैनलोगों को रात्रिभोजन करना चाहिए? नहीं-नहीं, कदापि नहीं।

१०. नोदकमपि पातव्यं, रात्रौ नित्यं युधिष्ठिर !
तपस्विनां विशेषेण, गृहिणां च विवेकिनाम् ॥

हे युधिष्ठर? रात के समय पानी भी नहीं पीना चाहिए, फिर भोजन का तो कहना ही क्या? यह बात साधुओं को और विवेकी गृहस्थों को विशेष ध्यान देने योग्य है।

११. मृते स्वजनमात्रेऽपि, सूतकं जायते किल।
अस्तं गते दिवानाथे, भोजनं क्रियते कथम्?
अस्तं गते दिवानाथे, आपो रुधिरमुच्यते।
अन्नं माससमं प्रोक्तं, मार्कण्डेयमहर्षिणा ॥
रक्तीभवन्ति तोयानि, अन्नानि पिशितानि च।
रात्रौ भोजनसक्तस्य, ग्रासे तन्मांसभक्षणात् ॥

स्वजन के मरने पर भी सूतक होता है तो फिर सूर्य के अस्त होने पर (मर जानेपर) भोजन कैसे किया जाए ?

सूर्य अस्त होने के बाद मार्कण्डेय ऋषि ने पानी को खून एवं अन्न को मांस के समान कहा है, क्योंकि रात्रिभोजन में आसक्त व्यक्ति के ग्रास में किसी जीव का मांस खाया जाने से पानी खून एवं अन्न मांसवत् हो जाता है।

२५ रात्रि भोजन से हानि

१. मेधां पिपीलिका हन्ति, यूका कुर्याज्जलोदरम् ।
कुरुते मक्षिका वान्ति, कुष्ठरोगं च कोलिकः ॥५०॥
कण्टको दारुखण्डं च, वितनोति गलव्यथाम् ।
व्यञ्जनान्तर्निपतित-स्तालु विद्ध्यति वृश्चिकः ॥५१॥
विलग्नश्च गले बालः, स्वरभङ्गाय जायते ।
इत्यादयो दृष्टदोषाः, सर्वेषां निशि भोजने ॥५२॥

—योगशास्त्र ३

भोजन के साथ चिउंटी खाने में आ जाय तो वह बुद्धि का नाश करती है, जूं जलोदर रोग उत्पन्न करती है, मक्खी से वमन हो जाता है और कोलिक-छिपकली से कोढ़ उत्पन्न होता है ॥५०॥ काँटे और लकड़ी के टुकड़े से गले में पीड़ा उत्पन्न होती है, शाक आदि व्यंजनों में बिच्छू गिर जाए तो वह तालु को बेध देता है ॥५१॥

गले में बाल फंस जाए तो स्वर भंग हो जाता है। रात्रि भोजन में पूर्वोक्त अनेक दोष प्रत्यक्ष दिखाई देते है ॥५२॥

२. उलूक-काक-मार्जार-गृध्र-शम्बर-शूकराः ।
अहि-वृश्चिक-गोधाश्च, जायन्ते रात्रिभोजनात् ॥

—योगशास्त्र ३।६७

रात्रिभोजन करने से मनुष्य मरकर उल्लू, काक, बिल्ली,

गीध, सम्बर, शूकर, सर्प, बिच्छू और गोह आदि अधम गिने जानेवाले तिर्यञ्चों के रूप में उत्पन्न होते हैं।

३. इन्दौर में पुजारी का दूध साँप पी गया, रात को उसे पीने से पुजारी मर गया।

४. उत्तरप्रदेश में रांधते समय खीर में साँप गिर जाने से काफी बराती मर गए।

५. मुजफ्फरनगर के गाँव में रात को पानी पीते समय बिच्छू आ गया एवं गले में डंक मारने से, पानी पीनेवाला व्यक्ति मर गया।

६. गोगुंदा (उदयपुर) में रात को खाते समय एक भाई के मुंह में आम के आचार की जगह मरी हुई चुहिया आ गई।

२६ रात्रिभोजन के त्याग से लाभ

१. ये रात्रौ सर्वदाहारं, वर्जयन्ति सुमेधस: ।
तेषां पक्षोपवासस्य, फलं मासेन जायते ।

जो रात्रि भोजन का सदा त्याग कर देते हैं, उनको महीने में पन्द्रह दिनों के उपवास का फल सहीं मिल जाता है।

२. एक भक्ताशनान्नित्य-मग्निहोत्रफलं भवेत् ।
अनस्तभोजनो नित्यं, तीर्थयात्राफलं लभेत् ।

रात्रिभोजन का त्याग करनेवाले को अग्निहोत्र का एवं तीर्थ-यात्रा का फल हमेशा मिलता रहता है।

२७ भूख

१. खुहासमा वेयणा नत्थि।

भूख के समान कोई भी दूसरी वेदना-पीड़ा नहीं है।

२. नास्ति क्षुधासमं दुःखं, नास्ति रोगः क्षुधासमः।

भूख जैसा कोई दुःख नहीं और भूख जैसी कोई बीमारी नहीं।

३. जिघच्छा परमा रोगा। —धम्मपद १५।७

भूख सबसे बड़ा रोग है।

४. आहारमग्निः पचति, दोषानाहारवर्जितः।
धातून् क्षीणेषु दोषेषु, जीवितं धातुसंक्षये। —आयुर्वेद

जठराग्नि आहार को पचाती है। आहार के अभाव में दोषों को, उनके अभाव में धातुओं को और उनके क्षीण होने पर जीवन को खा जाती है।

५. या सद्रूप विनाशिनी श्रुतहरी पञ्चेन्द्रियोत्कर्षिणी,
चक्षुः-श्रोत्र-ललाट-दैन्यकरणी वैराग्यमुत्पादिनी।
बन्धूनां त्यजनी विदेशगमनी चारित्रविध्वंसिनी,
सेयं बाध्यति पञ्चभूतदमनी क्षुत् प्राणसंहारिणी।
—वल्कलचीरास

जो रूप का विनाश करनेवाली है, ज्ञान का हरण करनेवाली

है, पांच इन्द्रियों का उत्कर्षण करनेवाली है, आंख-कान-नाक को हीन-दीन बनानेवाली है, वैराग्य को उखाड़ फेंकनेवाली है, स्वजन बन्धुओं से दूर करनेवाली है, विदेशों में भटकानेवाली है, चारित्र का ध्वंस करनेवाली है और पांचों भूतों का दमन करनेवाली है। वह प्राण-संहारिणी यह क्षुधा सारे जगत को पीड़ित कर रही है।

६. अशनाया वै पाप्मा मतिः। —ऐतरेय-ब्राह्मण २।२

भूख ही सब पापों की जड़ एवं बुद्धि को नष्ट करनेवाली है।

७. आगी बड़वागि से बड़ी है भूख पेट की। —तुलसी कवितावली

८. भूख रांड भूंडी, आंख जाय ऊंडी।
पग थाय पाणी, हैड़े नो आवे वाणी॥
बाजरानो रोटलो, तांदला नी भाजी।
एटला खाना जस तो मन थाय राजी॥ —गुजराती पद्य

९. काम न देखे जात-कुजात, भूख न देखे बासी भात।
नींद न देखे टूटी खाट, प्यास न देखे धोबी घाट।
—हिन्दी कहावत

१० ऊंघ न जुवे साथरो, भूख न जुवे भाखरो।
—गुजराती कहावत

११. छुहा जाव सरीरं, ताव अत्थि। —आचाराङ्ग चूलिका १।२।२
जब तक शरीर है, तब तक भूख है।

१२. बुभुक्षां जयते यस्तु, स स्वर्गं जयते ध्रुवम्।
—महाभारत-अश्वमेघपर्व ९०।९१

जो भूख को जीत लेता है, वह निश्चितरूप से स्वर्ग को जीत
९ लेता है।

२८ भूख में स्वाद

१. सब सूं मीठी भूख ! —राजस्थानी कहावत

२. भोजन के लिये सबसे अच्छी चटनी भूख है । —सुकरात

३. भूख मीठी क लापसी ! —राजस्थानी कहावत

४. सम्पन्नतरमेवान्नं, दरिद्रा भुञ्जते सदा ,
क्षुत् स्वादुतां जनयति, सा चाढ्येषु सुदुर्लभा ।
— विदुरनीति २।५०

गरीब व्यक्ति जो कुछ खाते हैं, स्वादिष्ट ही खाते हैं। भूख भोजन को स्वादिष्ट बना देती है। धनिकों को वह भूख दुर्लभ है। उन्हें प्रायः भूख कम लगती है।

५. तरुणं सर्षपशाकं, नवौदनपिच्छलानि च दधीनि ।
अल्पव्ययेन सुन्दरि ! ग्राम्यजनो मिष्टमश्नाति ॥

ताजा सरसों का शाक और थिरकी सहित दही में बनाये हुए नये भातों के भोजन खाकर ग्रामीण लोग थोड़े ही खर्च में मीठा भोजन कर लेते हैं।

६. दि फुल स्टमक लूथ्स दि हनी कोम्ब । —अंग्रेजी कहावत
भरे पेट पर शक्कर खारी ।

७. अमीर भूख की खोज करता है, गरीब रोटी की खोज करता है। —डेनिस कहावत

८. एक वे, जिनके पास भूख से ज्यादा भोजन है।
दूसरे वे, जिनके पास भोजन से ज्यादा भूख है।

—निकोलस चेम्फर्ट

९. खावे जीती भूख, सोवे जीती नींद। —राजस्थानी कहावत

१०. मारवाड़ का एक चारण २६ रोटियां खाता था। दुष्काल पड़ा। घरवाले उससे नाराज रहने लगे। ठाकुर साहब के कहने पर उसने सात-सात दिन से एक-एक रोटी घटानी शुरू कर दी। आखिर तीन रोटी पर आ गया।

२६ भूख

१. भूखा सो रूखा। —राजस्थानी कहावत

२. भूख्ये भक्ति न थाय मुरारी, न थाय जरारी।

—गुजराती कहावत

३. भूखां भजन न होय गोपाला;
ले ले अपनी कंठी-माला। —राजस्थानी कहावत

४. ढिड ना पईयां रोटीयां, सबे गल्लां खोटीयां।

—पंजाबी कहावत

५. भूखी कुतरी भोटीला खाय।

६. भूख्याने शुं लूखुं। —गुजराती कहावतें

७. कोफतारा नानेतिही कोफतरत। —पारसी कहावत

भूखे के लिये सूखी रोटी भी मिठाई के बराबर है।

८. भूखो धायां पतीजै। —राजस्थानी कहावत

९. भूखो मारवाड़ी गावे, भूखो गुजराती सूवे,
भूखो बंगाली भात-भात पुकारे।

१०. हाथ सूको र टाबर भूखो। —राजस्थानी कहावतें

११. बुभुक्षितः किं द्विकरेण भुङ्क्ते।
भूखा क्या दो हाथों से खाता है!

३० भूखा क्या नहीं करता ?

१. त्यजेत् क्षुधार्ता महिला स्वपुत्रं,
खादेत् क्षुधार्ता भुजगी स्वमण्डम् ।
बुभुक्षितः किं न करोति पापं,
क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति ॥ —हितोपदेश ४।५६

क्षुधा से पीड़ित स्त्री अपने पुत्र को त्याग देती है, सर्पिणी अपने अण्डों को खा जाती है। भूखा व्यक्ति क्या पाप नहीं करता ? क्षीण-पुरुष निर्दय हो जाते हैं।

२. अजीगर्तःसुतं हन्तु-मुपासर्पद् बुभुक्षितः । —मनुस्मृति १०।१०५

भूख से व्याकुल अजीगर्त ऋषि ने अपने पुत्र शुनःशेप को यज्ञ में होम करने के लिए बेचा।

३. क्षुधार्तश्चात्तुमभ्यागाद् विश्वामित्रः श्वजाघनीम् ।
चाण्डालहस्तादादाय, धर्माधर्म-विचक्षणः ॥
—मनुस्मृति १०।१०८

भूख से व्याकुल विश्वामित्र ऋषि चाण्डाल के हाथ से लेकर कुत्ते की जांघ का मांस खाने को तैयार हुए।

४. भूख से पीड़ित होकर मृत बालिका को उसके बाप-भाई खा गये।
—शाताधुत अ० १

५. सन् १९४५ के लगभग बंगाल में खाद्याभाव के कारण एक माता अपने बच्चे को पकाकर खा गई।

३१ पेट

१. पाँव दिये चलने-फिरने कहुँ,
हाथ दिये हरिकृत्य करायो।
कान दिये सुनिये प्रभु को यश,
नैन दिये तिन मार्ग दिखायो॥
नाक दियो मुख सोभन कारन,
जीभ दई प्रभु को गुण गायो।
सुन्दर साभ दियो परमेश्वर,
पेट दियो कहा पाप लगायो॥

२. बड़े पेट के भरन को, है **रहीम** दुख बाढ़ि।
यातें हाथी हिहर के, दिये दाँत द्वै काढ़ि॥

३. अस्य दग्धोदरस्यार्थे, किं न कुर्वन्ति मानवाः।
वानरीमिव वाग्देवीं, नर्तयन्ति गृहे-गृहे॥
इस पापी पेट के लिए मनुष्य क्या नहीं करते! सरस्वतीदेवी को भी वे वानरी की तरह घर-घर नचा रहे हैं।

४. कथन कला बोह क्रूर, किता मुख होय कवीश्वर,
मृत दासी नो सोय, न्याय-मुध होय नरेश्वर।
कायर नें सूरा कहै, कहै सूम नें दाता,
नरां घणां री नार, कहै आ लिछमी माता।

जाचवा काज जिग-जिग विधे, हुलस हाथ हेठे धरै।
दुभर पेट भरवा भणीं, करम एह मानव करै ॥१॥
रचण प्रवहण रचै, वोह नर बाहण बैसे,
अथग नीर - आगमे, पूर जोखा में पैसे।
किणहिक वाय-कुवाय, कोर कालेजा कंपै,
उरथ न को आधार, जीव दुख किण सूं जंपै।
जल में नाव डूबै जरै, बिरलो कोइक ऊबरै।
दुभर पेट भरवा भणीं, करम एह मानव करै ॥२॥
राते परघर जाय, गीत गावै गीतेरण।
रावण का रोवणां अधिक सीखे ऊगेरण ॥
खांसै बैठो कन्त, मेल्ह पर-मंदिर जावै।
ऊँची चढ़ आवास, पुरुष पारका मल्हावै ॥
ऊँचो साद तागें अधिक, एक पईसा ऊपरै।
दुभर पेट भरवा भणीं, करम एह मानव करै ॥३॥

५. सौ मणनी कोठी भराय पण सवा सेर नी कोठी नुं पुरूं न थाय।

६. दरिया नुं ताग आवे पण छः तसु छाती नुं ताग न आवे।

७. पेट माटे लंका जवुं पड़े।

८. पेट भर्युं एटले पाटण भर्युं।

९. आप जम्यां एटले जगत जम्यां।

१०. सौनुं हाथ मोंमणीं वले। —गुजराती कहावतें

११. बेली टीचेज ऑल आर्ट्स। —अंग्रेजी कहावत

पेट सब हुनर सिखा देता है।

१२. पेट थी सहु हेठ, पेट कराने वेठ।

१३. पैहली पेट नैं पछी सैठ। —गुजराती कहावतें

१४. पहली पेट पूजा, पछे देव दूजा। —राजस्थानी कहावत

१५. लज्जा स्नेहः स्वरमधुरता बुद्धयो यौवनश्रीः,
कान्ता संगः स्वजनममता, दुःखहानिर्विलासः।
धर्मः शास्त्रं, सुरगुरुमतिः शौचमाचारचिन्ता,
पूर्णे सर्वे जठर पिठरे प्राणिनां संभवन्ति॥

—पञ्चतंत्र ५।९२

लज्जा, स्नेह, स्वर का मिठास, काम करने में बुद्धि, जवानी की शोभा, स्त्री संग, स्वजनों का अपनत्व, दुःख नाश, खेलकूद आदि विलास, क्षमा आदि धर्म, वेद आदि शास्त्र, कर्त्तव्य का विवेचन करनेवाली बुद्धि, बाह्याभ्यन्तर शुद्धि और सदाचरण की चिन्ता ये सब बातें उदररूपी कुंड भर जाने पर ही संभवित होती हैं।

१६. जब पेट भरा होता है तभी—
आदमी को धर्म और ईमान सूझता है,
जब मन भरा होता है तभी—
आदमी को दर्शन और विज्ञान सूझता है,
आत्मा परमात्मा मानवता और
नैतिकता की बातें यूं बहुत अच्छी हैं;
लेकिन हकीकत यह है कि—
भूखे पेट को रोटी में ही भगवान सूझता है!

—'खुले आकाश में' से

१७. काकड़ी-चीभड़ कापी ने जोवाय पण चोरी ने जोवाय नहीं।

—गुजराती कहावत

१८. जठरं को न बिभर्ति केवलम्।

मात्र पेट को कौन नहीं भरता? कुत्ते भी भर लेते हैं।

३२

पानी

१. पानी समदर्शी है, इसकी दृष्टि में ऊंच-नीच, गरीब-अमीर का कोई भेद-भाव नहीं होता। यह समानरूप से सब की प्यास बुझाता है।

२. पानी मिलनसार है। यह जिसके साथ मिलता है, उसी के अनुरूप बन जाता है।

३. पानी से बिजली पैदा होती है तथा इसमें कभी खड्डा नहीं पड़ता। चाहे नीचे कितना ही गहरा खड्ढा हो, पानी ऊपर बराबर रहेगा।

४. पानी औषधि है। अंगुली आदि कटने पर या तेज बुखार होने पर इसकी पट्टी लगाई जाती है।
ऋगवेद १०।१३।७।६ में कहा है—

> आप इद्वा भेषजी आपो अमी वा चान नीः।
> आप सर्वस्वश्र भेषजी स्तास्तेकण्वतु भेषजम् ॥

जल औषधि है, वही रोगनाश का कारण है, वही सकल व्याधियों की औषधि है। हे जल! तुम लोगों की औषधि बनो।

५. अजीर्णे भेषजं वारि, जीर्णे वारि बलप्रदम्।
भोजनेचामृतंवारि, भोजनान्ते विषं जलम् ॥

—चाणक्यनीति ८।७

जलपान अजीर्ण में औषधि है, पचजाने पर बल देनेवाला है, भोजन के बीच में अमृत है, किन्तु भोजन के अन्त में जहर के समान अनिष्ट करनेवाला है।

६. प्रातकाल खटिया तें उठिके, पिये तुरत जो पानी।
ता घर वैद्य कबहुँ न आवें, बात घाघ कहे जानी॥

—घाघकवि

७. पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्।

—चाणक्यनीति १४।१

पृथ्वी में तीन रत्न हैं—जल, अन्न और सुभाषित।

८. पानी के बिना संसार में कुछ भी नहीं है—

एक बार बादशाह ने पूछा—२७ नक्षत्रों में से वर्षा के १० नक्षत्र निकाल दें तो शेष कितने रहे? बीरबल ने कहा—शून्य। तत्त्व यह है कि दस नक्षत्रों में ही वर्षा होती है। उनके अभाव में वर्षा न होगी और संसार शून्य हो जायगा।

९. शैत्यं नाम गुणस्तवैव सहजः, स्वाभाविकी स्वच्छता,
किं ब्रूमः शुचितां व्रजन्त्यशुचयः, सङ्गेन यस्यापरे।
किं चातः परमस्ति ते शुचिपदं, त्वं जीवितं देहिनां,
त्वं चेन्नीच पथेन गच्छसि पयः! कस्त्वां निरोद्धुं क्षमः॥

हे जल! तेरे में सहज शीतलता है, स्वाभाविक स्वच्छता है। तेरी पवित्रता के लिए क्या कहें! तेरा संग होते ही अशुचि पदार्थ दूर हो जाते हैं। इससे बढ़कर तेरा क्या पवित्र पद हो! तू ही देहधारियों का जीवन है। हे जल! इतना कुछ होने पर

भी यदि तू नीचे की ओर जाता है, तो अब तुझे कौन रोक सकता है ?

१०. वटेमार्गु मे दाणी रोके, के पाणी रोके।

—गुजराती कहावत

११. फारस की खाड़ी के उत्तर कुवैत रियासत में यंत्र द्वारा दस लाख गैलन खारा पानी मीठा बनाया जाता है।

—नवभारतटाइम्स, १ मई, १९५५

१२. सबसे ऊँचा झरना अफ्रीका में जो आउमान पर्वत से झरता है, एक मील ऊँचा है।

१३. दुनियाँ की सबसे बड़ी झील अमरीका में लेकसुपीरियर है तथा भारत राजस्थान में जयसमंद (५४ वर्गमील) है।

१४. फिलस्तीन की डेडसी नामक झील का पानी बेहद खारा होने के कारण इतना भारी है कि आदमी उसमें तैर नहीं सकता और डूब भी नहीं सकता।

—सर्जना, पृष्ठ ३३

१५. एक एकड़ भूमि में होनेवाली एक इंच वर्षा के पानी का भार लगभग २२६५१२ पौंड होता है।

—पंजाबकेसरी, ६ दिसम्बर १९७०

१६. न्यूजीलैंड में एक विचित्र झरना है, जिसका प्रवाह बंद हो तो थोड़ा-सा साबुन फेंकने से वह गरजता हुआ २०० फुट तक ऊँचा उठता है, लेकिन पत्थर आदि फेंकने से हिलता भी नहीं। —दैनिक हिंदुस्तान, ३० मई, सन् १९७१

तओ समुद्दा पगईए उदगरसेणं पण्णत्ते तं. जहा—कालोदे, पुक्खरोदे, सयंभुरमणे। तओ समुद्दा बहुमच्छकच्छभाइण्णा पण्णत्ता, तं जहा—लवणे, कालोदे, सयंभुरमणे।

—स्थानांग ३।३

तीन समुद्र स्वभाव से ही सामान्य पानी के समान स्वादवाले हैं—(१) कालोदधि (२) पुष्करोदधि (३) स्वयंभूरमणसमुद्र। तीन समुद्र मच्छ-कच्छप आदि जलजन्तुओं से अधिक भरे हुए हैं—(१) लवणसमुद्र, (२) कालोदधि, (३) स्वयंभूरमणसमुद्र।

तीसरा कोष्ठक

१ मोक्ष-(मुक्ति)

१. एगे मोक्खे।

—स्थानांग १।१

आठों कर्मों के नाशरूप मोक्ष एक है।

२. **पाँच प्रकार की मुक्ति :—**

१. **सालोक्य:**— भगवान के समान लोक-प्राप्ति।

२. **सार्ष्टि:**— भगवान् के समान ऐश्वर्य-प्राप्ति।

३. **सामीप्य:**— भगवान् के समीप स्थान-प्राप्ति।

४. **सारूप्य:**— भगवान् के समान स्वरूप-प्राप्ति।

५. **सायुज्य:**— भगवान् में लय-प्राप्ति।

—भागवत ३।२९।१३

२ मोक्ष की परिभाषाएँ

१. विवेगो मोक्खो। —आचाराङ्ग चूर्णि १।७।१

वस्तुतः विवेक ही मोक्ष है।

२. सव्वारंभ-परिग्गहणिक्खेवो, सव्वभूतसमया य।
एक्कग्गमणसमाहाणया य, अह एत्तिओ मोक्खो॥

—बृहत्कल्पभाष्य ४५८५

सब प्रकार के आरम्भ और परिग्रह का त्याग, सब प्राणियों के प्रति समता और चित्त की एकाग्रतारूपसमाधि—बस इतना मात्र मोक्ष है।

३. कृत्स्नकर्मक्षयादात्मनः स्वरूपावस्थानं मोक्षः।

—जैनसिद्धांतदीपिका ५।३९

समस्त कर्मों का फिर बन्धन न हो-ऐसा जड़मूल से कर्मक्षय होने पर आत्मा जो अपने ज्ञान-दर्शनमय-स्वरूप में अवस्थित होती है, उसका नाम मोक्ष है।

४. अज्ञानहृदयग्रन्थि—नाशो मोक्ष इतिस्मृतः। —शिवगीता

हृदय में रही हुई अज्ञान की गाँठ का नाश हो जाना ही मोक्ष कहा गया है।

५. आत्मन्येवलयो मुक्ति-र्वेदान्तिक मते मताः। —विवेकविलास

वेदान्तिकमत के अनुसार परब्रह्मस्वरूप ईश्वरीय शक्ति में लीन हो जाना मुक्ति है।

६. भोगेच्छा मात्र कोबन्ध-स्तत्त्यागो मोक्ष उच्यते ।

—योगवाशिष्ठ ४।३५।३

भोग की इच्छामात्र बन्ध है और उसका त्याग करना मोक्ष है।

७. प्रकृति वियोगो मोक्षः। —षड्दर्शन-समुच्चय ४३

सांख्यदर्शन के अनुसार आत्मारूप पुरुषतत्त्व से प्रकृतिरूप पुद्गल-तत्त्व भौतिकतत्त्व का अलग होजाना मोक्ष है।

८. कामानां हृदये वासः, संसार इति कीर्तितः।
तेषां सर्वात्मना नाशो, मोक्ष उक्तो मनीषिभिः ॥

हृदय में कामों-शब्दादि विषयों का होना संसार है एवं उनका समूल नष्ट हो जाना मोक्ष है—इस प्रकार मनीषियों ने कहा है।

९. चित्तमेव हि संसारो, रागादिक्लेशवासितम्।
तदेव तैर्विनिर्मुक्तं, भवान्त इति कथ्यते ॥

—बौद्ध

रागादि क्लेशयुक्त चित्त ही संसार है। वह यदि रागादिमुक्त हो जाय तो उसे भवान्त अर्थात् मोक्ष कहते हैं।

१०. नाशाम्बरत्वे न सिताम्बरत्वे, न तर्कवादे न च तत्त्ववादे।
न पक्षसेवाश्रयणेन मुक्तिः, कषायमुक्तिः किलमुक्तिरेव ॥

—हरिभद्रसूरि

मुक्ति न तो दिगम्बरत्व में है, न श्वेताम्बरत्व में, न तर्कवाद में है, न तत्त्ववाद में तथा न ही किसी एक पक्ष क सेवा करने में है। वास्तव में क्रोध आदि कषायों से मुक्त होना ही मुक्ति है।

३ मोक्ष-स्थान

१. अत्थि एगं धुवं ठाणं, लोगग्गंमि दुरारुहं ।
नत्थि जत्थ जरा-मच्चू, वाहिणो वेयणा तहा ।। ८१ ।।
निव्वाणंति अबाहंति, सिद्धीलोगग्गमेव य ।
खेमं सिवं अणाबाहं, जं चरंति महेसिणो ।। ८३ ।।

—उत्तराध्ययन २३

लोक के अग्रभाग पर एक ऐसा दुरारोह-ध्रुवस्थान है, जहाँ जरा, मृत्यु, व्याधि और वेदना नहीं है ।।८१।।

वह स्थान निर्वाण, अव्याबाध, सिद्धि, लोकाग्र, क्षेम, शिव और अनाबाध नाम से विख्यात है । उसे महर्षि लोग प्राप्त करते हैं ।।८३।।

२. तं ठाणं सासयं वासं, जं संपत्ता न सोयंति ।

—उत्तराध्ययन २३।८४

वह मोक्षस्थान शाश्वत निवासवाला है, जिसे पाकर आत्माएं शोकरहित हो जाती हैं ।

३. अविच्छिन्न सुखं यत्र, स मोक्षः परिपठ्यते । —शुभचन्द्राचार्य

जहाँ शाश्वत सुख है, उसे मोक्ष कहते हैं ।

४. स मोक्षो योऽपुनर्भवः ! —भागवत

जहाँ जाने के बाद फिर कभी जन्म नहीं होता, वह मोक्ष है ।

५. अभिलाषापनीतं यत्, तज् ज्ञेयं परमं पदम् —मोक्षाष्टक

आशा, तृष्णा, मूर्च्छा आदि सभी प्रकार की विकृत भावनाओं का जहाँ अभाव है, वह परमपद मोक्ष है।

६. अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्त-स्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते, तद्धाम परमं मम ॥

—गीता ८।२१

जो भाव अव्यक्त एवं अक्षर है, उसे परमगति कहते हैं। जिस सनातन-अव्यक्त भाव को प्राप्त होकर मनुष्य वापिस संसार में नहीं आते, वह मेरा परमधाम है।

७. न तद् भासयते सूर्यो, न शशाङ्को न पावकः ।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते, तद्धाम परमं मम ॥

—गीता १५।६

जिस स्वयं प्रकाशमय परमपद को न तो सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा एवं अग्नि प्रकाशित कर सकते हैं तथा जिस पद को पाकर मनुष्य पुनः संसार में नहीं आते, वह मेरा परमधाम है।

८. संसार भाड़े का घर है; वह समय होने पर सबको (चाहे देवता भी हों) खाली करना ही पड़ता है। मुक्ति अपना निजी घर है, जहाँ निवास करने के बाद कभी निकलना नहीं पड़ता।

४ **मोक्ष-मार्ग**

१. पणए वीरे महावीहिं, सिद्धिपहं णेयाउयं धुवं ।

—सूत्रकृतांग श्रुतस्कन्ध २।१।२१

मुक्तिमार्ग महान् विधिरूप है। न्याययुक्त एवं शाश्वत है। वीरपुरुष नम्र होकर उस पर चलता है।

२. नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एसमग्गुत्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥

—उत्तराध्ययन २८।२

सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र एवं सम्यक्तप मुक्ति का यह मार्ग विशिष्टज्ञानी जिनेश्वरों ने कहा है।

३. सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः ।

—तत्त्वार्थसूत्र १।१

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, एवं सम्यक्चारित्र-यह मोक्ष-मार्ग है।

५ मोक्ष के साधन

१. मोक्खसब्भूयसाहणा, नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं चेव।

—उत्तराध्ययन २३।३३

सम्यग् ज्ञान-दर्शन-चारित्र—ये मोक्ष के साधन है।

२. णाणं पयासगं, सोहओ तवो, संजमो य गुत्तिकरो।
तिण्हंपि समाजोगे, मोक्खो जिणसासणे भणिओ॥

—आवश्यक निर्युक्ति १०३

ज्ञान प्रकाश करता है, तप विशुद्धि करता है एवं संयम पापों का निरोध करता है। तीनों के समयोग से ही मोक्ष होता है। यही जिनशासन का कथन है।

३. नाणस्स सव्वस्स पगासणाए, अन्नाणमोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स य संखएणं, एगंतसोक्खं समुवेइ मोक्खं॥

—उत्तराध्ययन ३२।२

सम्पूर्ण ज्ञान के प्रकाश से अज्ञान एवं मोह के विवर्जन से तथा राग-द्वेष के क्षय से आत्मा एकान्तसुखमय मोक्ष को प्राप्त होती है।

४. नाण-किरियाहिं मोक्खो। —विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ३

ज्ञान एवं क्रिया (आचार) से ही मुक्ति होती है।

५. जे जत्ति आ अ हेउ भवस्स, ते चेव तत्तिया मुक्खे।

—ओघनिर्युक्ति ५३

जो और जितने हेतु संसार के हैं, वे और उतने ही हेतु मोक्ष के हैं।

६. मोक्षद्वारे द्वारपाला-श्चत्वारः परिकीर्त्तिताः ।
शमो विचारः संतोष-श्चतुर्थः साधुसंगमः ॥

—योगवाशिष्ठ २।१६।५८

मुक्तिमहल के चार द्वारपाल हैं—(१) शान्ति, (२) सद्विचार, (३) सन्तोष, (४) साधुसंगति ।

७. मुक्तिमिच्छसि चेत् तात ! विषयान् विषवत् त्यज ।
क्षमार्जव-दया-शौचं, सत्यं पीयूषवत् पिब ॥

—चाणक्यनीति ६।१

यदि मुक्ति पाने की इच्छा है, तो विषयों को विषतुल्य समझकर छोड़ो और क्षमा, सरलता, दया, पवित्रता एवं सत्य का अमृतवत् पान करो ।

६ मोक्षगामी कौन ?

१. णाणस्स दंसणस्स य, सम्मत्तस्स चरित्तजुत्तस्स ।
जो काही उवओगं, संसाराओ विमुच्चिहिति ॥

—आतुरप्रत्याख्यान ८०

जो ज्ञान, दर्शन और चारित्र का उपयोग करेगा, वह संसार से छुटकारा पायेगा—मुक्त बनेगा ।

२. जं किच्चा निव्वुडा एगे निट्ठं पावंति पंडिया ।

—सूत्रकृतांग १५।११

जिन सम्यग् ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना करके अनेक महापुरुष निर्वाण को प्राप्त हुए हैं, उन्हीं की आराधना द्वारा विद्वान् सिद्धि को प्राप्त करते हैं ।

३. सयं वोच्छिंद काम-संचयं, कोसारकीडेव जहाइ बंधणं ।

—ऋषिभाषित

जैसे—रेशम का कीड़ा अपने बन्धनों को तोड़ता है, उसी प्रकार आत्मा स्वयमेव कर्मबन्धनों को तोड़कर मुक्त होती है ।

४. निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुख-दुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढा पदमव्ययं तं ॥

—गीता १५।५

वे ज्ञानीपुरुष ही अव्यय पद-मोक्ष को प्राप्त होते हैं, जो मान-मोह से रहित हैं, आसक्तिदोष को जीतनेवाले हैं, सदा अध्यात्म

भाव में स्थित हैं, कामनाओं से निवृत्त हैं और सुख-दुःख नाम के द्वन्द्वों से मुक्त हो चुके हैं।

५. य इत् तद्विदुस्ते अमृतमानशुः। —अथर्ववेद ९।१०।१

जो उस उस ब्रह्म को जान लेते हैं, वे मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

६. यः स्नाति मानसे तीर्थे, स वै मोक्षमवाप्नुयात्।

—गरुड़पुराण

जो सत्य, शील, क्षमा, अहिंसा आदि मानसतीर्थ में स्नान करता है, वही मोक्ष को प्राप्त होता है।

७. सकामः स्वर्गमाप्नोति, निष्कामो मोक्षमाप्नुयात्॥

—अत्रिस्मृति

फलप्राप्ति की भावना से धर्म करनेवाला स्वर्ग एवं निष्काम-भाव से धर्म करनेवाला मोक्ष पाता है।

८. मोक्ष जाते समय भौतिक चीजें तो छोड़नी पड़ती ही हैं, लेकिन साधनभूत (घोड़े की तरह) धर्मक्रिया भी छोड़नी पड़ती है।

७ मुक्त आत्मा

१. न सुखाय सुखं यस्य, दुःखं दुःखाय यस्य नो ।
अन्तर्मुखमतेर्यस्य, स मुक्त इति उच्यते ॥

—योगवाशिष्ठ ६।२।१६६।१

जो अन्तर्मुखी बुद्धिवाला सुख को सुख एवं दुःख को दुःख नहीं मानता, वह 'मुक्त' कहलाता है।

२. नोदेति नास्तमायाति, सुखे-दुःखे मुखप्रभा ।
यथाप्राप्तस्थितेर्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते ।

—योगवाशिष्ठ ।१६ २१

जो कुछ प्राप्त हो उसी में प्रसन्न रहनेवाला वह व्यक्ति जीवन्मुक्त कहलाता है, जिसकी मुखकान्ति सुख में बढ़ती नहीं एवं दुःख में घटती नहीं।

३. अस्तुति-निन्दा नाहि जहिं, कंचन-लोह समान ।
कहे नानक सुन रे मना ! ताहि मुक्त तू जान ॥

८ सिद्ध भगवान

१. उम्मुक्ककम्मकवया अजरा अमरा असंगा य। ॥२०॥

सिद्ध आत्माएँ कर्म कवच से मुक्त हैं, अजर हैं, अमर हैं और असंग हैं।

निच्छिन्नसव्वदुक्खा, जाइ-जरा-मरण-बंधणविमुक्का।
अव्वाबाहं सोक्खं, अणुहोंति सासयं सिद्धा। ॥२१॥

जिन्होंने शारीरिक-मानसिक दुःखों को छेद डाला है, जो जन्म-जरा-मरण के बन्धनों से मुक्त हो गये हैं, ऐसे सिद्ध-मुक्त आत्माएँ अव्याबाध शाश्वतसुखों का अनुभव करते हैं।

सव्वमणागयमद्धं, चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता।

—औपपातिक सूत्र सिद्धवर्णन, ॥२२॥

सिद्ध आत्माएँ सदाकाल शाश्वत सुखों में स्थिर रहती हैं।

२. एतस्मान्न पुनरावर्तन्ते। **—प्रश्नोपनिषद्**

उस स्थान से मुक्त आत्माएँ पुनः संसार में नहीं आतीं।

३. तेषु ब्रह्मलोकेषु परापरावतो वसन्ति,
तेषां न पुनरावृत्तिः। **—बृहदारण्यकोपनिषद्**

उन ब्रह्मलोकों में मुक्त आत्माएँ अनन्तकाल तक निवास करती हैं। उनका पुनः संसार में आगमन नहीं होता।

सिद्धों के १५ भेद—

४. सिद्धा पण्णरसविहा पण्णत्ता, तंजहा—(१) तित्थसिद्धा, (२) अतित्थसिद्धा, (३) तित्थगरसिद्धा, (४) अतित्थगरसिद्धा, (५) सयंबुद्धसिद्धा, (६) पत्तेगबुद्धसिद्धा, (७) बुद्धबोहियसिद्धा, (८) इत्थीलिंगसिद्धा, (९) पुरिसलिंगसिद्धा, (१०) नपुंसगलिंगसिद्धा, (११) सलिंगसिद्धा, (१२) अन्नलिंगसिद्धा, (१३) गिहिलिंगसिद्धा, (१४) एगसिद्धा, (१५) अणेगसिद्धा।

—**प्रज्ञापना १**

(१) तीर्थसिद्ध, (२) अतीर्थसिद्ध, (३) तीर्थङ्करसिद्ध, (४) अतीर्थङ्करसिद्ध, (५) स्वयंबुद्धसिद्ध, (६) प्रत्येकबुद्धसिद्ध, (७) बुद्धबोधितसिद्ध, (८) स्त्रीलिङ्गसिद्ध, (९) पुरुषलिङ्गसिद्ध, (१०) नपुंसकलिङ्ग, (११) स्वलिंगसिद्ध, (१२) अन्यलिंगसिद्ध, (१३) गृहस्थलिंगसिद्ध, (१४) एकसिद्ध, (१५) अनेकसिद्ध।

५. सिद्धों के ३१ गुण—

नव दरिसणंमि चत्तारि, आउए पंच आइमे-अंते।
से-से दो-दो भेया, खीणभिलावेण इगतीसं।

—**समवायाङ्ग ३१**

आठों कर्मों की प्रकृतियों को अलग-अलग गिनने से सिद्धों के ३१ गुण हो जाते हैं।

जैसे :—ज्ञानावरणीयकर्म की ५, दर्शनावरणीयकर्म की ९, वेदनीय कर्म की २, मोहनीयकर्म की २, (दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय) आयुकर्म की ४, नामकर्म की २, (शुभनाम और अशुभनाम) गोत्रकर्म की २, (उच्चगोत्र और नीचगोत्र) तथा अन्तरायकर्म की ५—इन ३१ प्रकृतियों के क्षय होने से सिद्धों के ३१ गुण प्रकट होते हैं। मतिज्ञानावरणीय कर्म के क्षय होने से

से **क्षीणमतिज्ञानावरणीय** कहलाते हैं यावत् वीर्यान्तराय के क्षय होने से **क्षीणवीर्यान्तराय** कहलाते हैं।

८. जीवेणं भन्ते ! सिज्झमाणे कयरंमि आउए सिज्झइ ? गोयमा ! जहन्नेणं साइरेगट्ठवासाउए, उक्कोसेणं पुव्वकोडियाउए सिज्झइ। **—औपपातिकसूत्र सिद्धवर्णन**

भगवन् ! जीव किस आयु मे सिद्ध-मुक्त बन सकता है ? गौतम ! जघन्य साधिक आठ वर्ष मे और उत्कृष्ट करोड़ पूर्व की आयु में सिद्ध बन सकता है।

९. बत्तीसा अडयाला, सट्ठी बावत्तरि य बोधव्वा।
चुलसीई छिन्नउई य, दुरहिय-अट्ठुत्तरसयं च।

—प्रज्ञापना १

एक समय में अधिक से अधिक कितने जीव सिद्ध हो सकते हैं ? इसके लिए बतलाया गया है कि यदि प्रति समय १-२-३ यावत् ३२ जीव निरन्तर सिद्ध हों तो आठ समय तक हो सकते हैं। उसके बाद निश्चित रूप से अन्तर पड़ता है।

तेतीस से अड़तालीस तक जीव निरन्तर सात समय, उनचास से साठ तक जीव निरन्तर छः समय, इकसठ से बहत्तर तक जीव निरन्तर पाँच समय, तिहत्तर से चौरासी तक जीव निरन्तर चार समय, पचासी से छियानवे तक जीव निरन्तर तीन समय तथा सत्तानवें से से एक सौ दो तक जीव निरन्तर दो समय तक सिद्ध हो सकते हैं। फिर निश्चितरूप से अन्तर पड़ता है। एक सौ तीन से लेकर एक सौ आठ तक जीव यदि सिद्ध हों तो केवल एक ही समय हो सकते हैं, अर्थात् एक समय में १-२ यावत् १०८ सिद्ध होने के बाद दूसरे समय अवश्य अन्तर पड़ता है। दो, तीन आदि समय तक निरन्तर उत्कृष्ट सिद्ध नहीं हो सकते।

९

मुक्ति के सुख

१. आत्मायत्तं निराबाध-मतीन्द्रियमनीश्वरम् ।
घातिकर्मक्षयोद्भूतं-यत्तन्मोक्षसुखं विदुः ॥

—तत्त्वानुशासन २४२

जो सुख स्वाधीन है, बाधारहित है, इन्द्रियों से परे है—आत्मिक है, अविनाशी है और ज्ञानावरणीय आदि घातिक कर्मों के क्षय होने से प्रकट हुआ है, उसे मुक्तिसुख कहा जाता है।

२. णवि अत्थि मणुस्साणं, तं सोक्खं ण वि य सव्वदेवाणं ।
जं सिद्धाणं सोक्खं अव्वाबाहं उवगयाणं ॥
जं देवाणं सोक्खं, सव्वद्धा पिंडियं अणंतगुणं ।
ण य पावइ मुत्तिसुहं, णंताहिं वग्ग-वग्गूहिं ॥

—औपपातिक सिद्धवर्णन, गाथा १३-१४

निराबाधअवस्था को प्राप्त सिद्धों को जो सुख हैं, वैसे न तो मनुष्यों के पास हैं एवं न सभी प्रकार के देवों के पास हैं। देवताओं के तीनों (भूत, भविष्यत्, वर्तमान) काल के सुखों को एकत्रित किया जाय, फिर उन्हें अनन्तबार वर्ग अर्थात् गुणित किया जाय तो भी वे क्षण-भर मुक्तिसुखों के बराबर नहीं हो सकते।

१० संसार

१. संसरणं संसारः भवाद् भवगमनं, नरकादिषु पुनर्भ्रमणं वा।

—विशेषावश्यक-भाष्य

संसरण करना एवं एक भव से दूसरे भव में जाना अथवा नरकादि चार गतियों में पुनः-पुनः भ्रमण करना संसार कहलाता है।

२. जीवा चेव अजीवा य, एस लोए वियाहिए।
अजीवदेसमागासे अलोए से वियाहिए॥

—उत्तराध्ययन ३६।२

जिस आकाश के भाग में जीव-अजीव दोनों रहते हों, उसे **लोक** कहते हैं। जहाँ केवल आकाश ही हो, धर्म-अधर्म आदि न हों, उसे **अलोक** कहते हैं।

३. धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल-जन्तवो।
एस लोगोत्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं॥

—उत्तराध्ययन २८।७

धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल—ये पाँच अजीव और छठा जीव—ये छः द्रव्य लोक की आत्मा हैं। अतः जो यह षड्द्रव्यात्मक है, वही लोक है—ऐसा श्रेष्ठदर्शन के धारक श्रीजिनभगवान ने कहा है।

४. विचार के सिवा जगत् और कोई चीज नहीं है।

—महर्षिरमण

५. अच्छी-बुरी सभी प्रकृतियों के व्यक्तियों के संमिलन से ही विश्व की रचना होती है।

—डॉ. एस. जे रोल्ड

११ संसार का स्वरूप

१. अणंते नितिए लोए, सासए न विणस्सइ।

—सूत्रकृतांग १।४।६

यह लोक द्रव्य की अपेक्षा से नित्य है, शाश्वत है एवं इसका कभी नाश नहीं होता।

२. अनादिरेष संसारो, नानागतिसमाश्रयः।
पुद्गलानां परावर्ता, अत्रानन्तास्तथागताः॥

—योगबिन्दु ७०

नरकआदि गतिरूप पर्यायों का आश्रय यह संसार अनादि है। इसमें अनन्त-पुद्गलपरावर्तन व्यतीत हो चुके हैं।

३. सत्तविहे पोग्गलपरियट्टे पण्णत्ते, तं जहा—ओरालिय-पोग्गलपरियट्टे, वेउव्विय-पोग्गलपरियट्टे एवं तेया-कम्मा-मण-वइ-आणुपाणु-पोग्गलपरियट्टे।

—भगवती १२।४ तथा स्थानाङ्ग ७।५३६

सात प्रकार का पुद्गलपरावर्तन कहा है—
(१) औदारिक-पुद्गलपरावर्तन (२) वैक्रिय-पुद्गलपरावर्तन (३) तेजस-पुद्गलपरावर्तन, (४) कार्मण-पुद्गलपरावर्तन, (५) मनः-पुद्गलपरावर्तन, (६) वचन-पुद्गलपरावर्तन (७) श्वासोच्छ्वास-पुद्गल परावर्तन।

('मोक्ष प्रकाश' ८।१५ में इसका विस्तृत विवेचन है।)

४. तिहिं ठाणेहिं लोगंधयारे सिया, तं—अरिहंतेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं, अरिहन्तपन्नत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे, पुव्वगए वा वोच्छिज्जमाणे ।

—स्थानाङ्ग ३।१

तीन कारणों से लोक में अन्धकार होता है । १. अरिहन्तभगवान् का विच्छेद होने से, २. अरिहन्तप्ररूपित-धर्म का विच्छेद होने से एवं ३. पूर्वो के ज्ञान का विच्छेद होने से ।

१२ संसार के भेद

१. चउव्विहे संसारे पण्णत्ते, तं जहा दव्वसंसारे, खेत्तसंसारे, कालसंसारे, भावसंसारे।

—स्थानांग ४।१।२६१

चार प्रकार का संसार कहा है—

(१) षड्द्रव्य रूप-द्रव्यसंसार (२) चतुर्दशरज्जु-परिमित क्षेत्ररूप क्षेत्रसंसार (३) दिन-रात, पक्ष-मास यावत् पुद्गलपरावर्तनों तक परिभ्रमण रूप - कालसंसार (४) कर्मोदय से उत्पन्न होनेवाले विभिन्न राग-द्वेषात्मक विचाररूप-भावसंसार।

२. चउव्विहे संसारे पण्णत्ते, तं. जहा—णेरइयसंसारे जाव देवसंसारे। — स्थानाङ्ग ४।१।२६४

चार प्रकार का संसार कहा है—

(१) नैरयिकसंसार, (२) तिर्यञ्चसंसार,
(३) मनुष्यसंसार, (४) देवसंसार।

३. जीवाणं नवहिं ठाणेहिं संसारं वत्तिंसु वा वत्तंति वा वत्तिस्सति वा तं जहा-पुढवीकाइयत्ताए जाव पंचेंदियकाइयत्ताए।

—स्थानांग ९।३।६६६

जीवों ने नव स्थानों में संसार का अनुभव किया, कर रहे हैं एवं करेंगे—पृथ्वीकाय के रूप में यावत् पञ्चेन्द्रिय के रूप में।

४. लख चौरासी योनि में, गूंगा बावन लाख।
बत्तीस लाख है बोलता, लख चौपन बिन नाक॥[1]

---

१ चौरासी लाख योनी के जीवों में पृथ्वी–अप्–तेजस्–वायु–इन चारों के सात-सात लाख; प्रत्येक वनस्पति के दस लाख और साधारण-वनस्पति के १४ लाख—ये ५२ लाख गूंगे हैं अर्थात् जीभरहित हैं। शेष बत्तीस लाख बोलनेवाले हैं—जीभसहित हैं। पूर्वोक्त ५२ लाख और द्वीन्द्रिय के दो लाख—ऐसे ५४ लाख नाक-रहित हैं।

१३ दुःखरूप संसार

१. दुहरूवं दुहफलं, दुहाणुबंधी विडंबणारूवं।
संसारं जाणिऊण, नाणी न रई तहिं कुणइ॥

यह संसार रोग-शोक आदि दुःखरूप है, नरकादि दुःखरूप फलों का देनेवाला है, बारम्बार दुःखों से सम्बन्ध जोड़नेवाला है एवं विडंबनारूप है—ऐसा जानकर ज्ञानी को इस संसार से राग नहीं करना चाहिए।

२. पास लोए महब्भयं। —आचारांग ६।१

देखो! यह संसार महाभयवाला है।

३. एगंतदुक्खे जरिए व लोए। —सूत्रकृतांग १७।११

यह संसार ज्वर के समान एकान्त दुःखरूप है।

४. मच्चुणाब्भाहओ लोओ, जराए परिवारिओ।

—उत्तराध्ययन १४।२३

यह संसार मृत्यु से पीड़ित है एवं वृद्ध-अवस्था से घिरा हुआ है।

५. मृत्युनाभ्याहतो लोको, जरया परिवारितः।
अहोरात्राः पतन्त्येते, ननु कस्मान्न बुध्यसे॥

—महाभारत शान्तिपर्व, १७५।६

पुत्र ने कहा—पिताजी! यह सम्पूर्ण जगत् मृत्यु के द्वारा मारा जा रहा है। बुढ़ापे ने इसे चारों ओर से घेर लिया है और ये

दिन-रात ही वे व्यक्ति हैं—जो सफलतापूर्वक प्राणियों की आयु का अपहरणस्वरूप अपना काम करके व्यतीत हो रहे हैं, इस बात को आप समझते क्यों नहीं ?

(उक्त पिता-पुत्र संवाद उत्तराध्ययन १४ से मिलता-जुलता है।)

६. प्रदीप्ताङ्गारकल्पोऽयं, संसारः सर्वदेहिनाम् ।

—त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र

सभी प्राणियों के लिए यह संसार धधकते हुए अंगारे के समान है।

७. डज्झमाणं न बुज्झामो, राग-दोसग्गिणा जगं ।

—उत्तराध्ययन १४।४३

राग-द्वेषरूप अग्नि से जलते हुए इस संसार को देखकर भी हम नहीं समझते।

८. बहु दुक्खा हु जंतवो । —आचाराङ्ग ६।१

संसारी जीव बहुत दुःखों से घिरे हुए हैं।

९. न तदस्ति दुःखं किंचित्, संसारी यन्न प्राप्नोति ।

—योगवाशिष्ठ २।१२।४

ऐसा कोई भी दुःख नहीं है, जो संसारियों को सहना न पड़ता हो।

१०. सारीरा माणसा चेव, वेयणाओ अणंतसो ।

—उत्तराध्ययन १९।४६

इस संसार में शरीरसम्बन्धी और मनसम्बन्धी अनन्त वेदनायें हैं।

११. जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणि य ।
अहो ! दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसन्ति जंतुणो ॥

—उत्तराध्ययन १९।१६

जन्म का दुःख है, वृद्ध-अवस्था का दुःख है, रोग एवं मृत्यु का

दुःख है। अहो! यह संसार निश्चितरूप से दुःखमय है एवं इसमें प्राणी दुःख पा रहे हैं।

१२. हर सांझ वेदना एक नई, हर भोर सवाल नया देखा।
दो घड़ी नहीं आराम कहीं, मैंने घर-घर जा-जा देखा।

—हिन्दी कविता

१३. गतसारेऽत्रसंसारे, सुख-भ्रान्तिः शरीरिणाम्।
लालापानमिवाङ्गुष्ठे, बालानां स्तन्यविभ्रमः॥

—सुभाषितरत्न भाण्डागार, पृष्ठ ३८४

इस निःसार संसार में सुख न होने पर भी अज्ञानी जीव भ्रमवश सुख मानते हैं। जैसे—बच्चे अँगूठे के साथ अपनी लार (थूक) को चूसकर भी भ्रमवश उसे माता के स्तन का दूध समझते हैं।

१४. छोड़कर निश्वास कहता है नदी का यह किनारा,
उस किनारे पर जमा है, जगत भर का हर्ष सारा।
वह किनारा किन्तु लम्बी साँस लेकर कह रहा है,
हायरे! हर एक सुख उस पार ही क्या बह रहा है?

—हिन्दी कविता

१५. यह जगत् काँटों की बाड़ी है, देख-देख कर पैर रखना!

—गुरु गोरख

१४ सब को दुःख

१. कौन है जग में सुखी ? दुखिया तो सब संसार है।

२. वह मूर्खों में भी महामूर्ख है—जो मानता है कि संसार में सुख है। मुझे तो जो भी मिला दुःख की कहानी सुनाता मिला। —विनोबा

३. दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान।
कहु ना सुख संसार में, सब जग देख्यो छान॥ —कबीर

४. सूर्य गरम है चांद दगीला, तारों का संसार नहीं है।
जिस दिन चिंता नहीं सुलगेगी, ऐसा कोई त्यौहार नहीं है॥
—हिन्दी पद्य

५. कोई कहे शुं खाऊं अने कोई कहे शामां खाऊं ?
—गुजराती कहावत

६. ऊंचा चढ़-चढ़ देखो ! घर-घर ओही लेखो।
—राजस्थानी कहावत

७. केचिदज्ञानतो नष्टा, केचिन्नष्टाः प्रमादतः।
केचिद्ज्ञानावलेपेन, केचिन्नष्टैस्तु नाशिताः॥—सुभाषितावलि

संसार में कई अज्ञान से नष्ट हुए, कई प्रमाद एवं ज्ञान के अभिमान से नष्ट हुए तथा कइयों का नाश नष्ट होनेवालों ने कर दिया।

८. भूल गये रंग-राग, भूल गए छकड़ी।
तीन बात याद रही, तेल लूण लकड़ी। —राजस्थानी पद्य

१५ सुख-दुःखमय संसार

१ क्वचिद्वीणानादः क्वचिदपि च हाहेति रुदितं,
क्वचिद् विद्वद्गोष्ठी क्वचिदपि सुरामत्तकलहः।
क्वचिद् रम्या रामा क्वचिदपि जराजर्जरतनु,
न जाने संसारः किममृतमयः किं विषमयः॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृ. ९२

कहीं वीणा का नाद है तो कहीं हाहाकार रोदनमय है, कहीं विद्वानों की गोष्ठी है तो कहीं शराबियों का कलह है। कहीं सुन्दर नारियां हैं तो कहीं जर्जरित शरीर वाली वृद्धाएं हैं। अतः समझ में नहीं आता कि इस संसार में अमृतमय क्या है? और विषमय क्या है?

२ तितलियाँ हैं फूल भी हैं, है कोकिलाएं गान भी हैं।
इस गगन की छाँह में मानो ! महल उद्यान भी हैं।
पर जिन्हें कवि भूल बैठे, वे अभागे मनुज भी हैं।
हैं समस्याएं, व्यथाएं भूख है अपमान भी है।

—मिलिन्द

३ फल थोड़े हैं पात बहुत है, काम अल्प है बात बहुत है।
प्यार लेश आघात बहुत है, यत्न स्वल्प व्याघात बहुत है।
मंजिल में पग-पग पर देखा, विजय अल्प है हार बहुत है,
सार स्वल्प निस्सार बहुत है, सुन्दर कम आकार बहुत है॥

—'पथ के गीत' से

४ सारा संसार संतुष्ट है और सारा असंतुष्ट।
प्रत्येक प्राणी को इस खिचड़ी का भाग मिला है—
कहीं दाल अधिक है और कहीं भात।

—सद्‌गुरुचरण अवस्थी

५ जो केवल विचारते हैं, उनके लिए संसार सुखमय है,
किन्तु जो इसका अनुभव करते हैं, उनके लिए दुःखमय है।

—होरेस वालपोल

६ जैसे-ईर्ष्या और कुटिलता द्वारा संसार को हम नरक बना सकते हैं, वैसे—प्रेम द्वारा स्वर्ग भी।

७. अन्तर जितना उज्ज्वल होगा, जगत उतना मङ्गल होगा।

—संतज्ञानेश्वर

१६ गतानुगतिक-संसार

१. गतानुगतिको लोको, न लोकः पारमार्थिकः ।

—पंचतंत्र १।२६६

संसार गतानुगतिक—दूसरों की नकल करनेवाला है, किंतु वास्तविकता को नहीं देखता ।

२. कीड़ी नुं कटक—एक कीड़ी चाले एटले बधी चाले ।

—गुजराती कहावत

३. गड्डरीप्रवाह संसार । —हिन्दी कहावत

४. खरबूजे नै देख र खरबूजो रंग बदलै । —राजस्थानी कहावत

५. दुनियां मथुरा के बंदरों के समान नकल करनवाली है ।

६. इंगलैण्ड के राजा के गलगंड (कंठमाल) का रोग हुआ । डाक्टर ने सुन्दर पट्टा लगाया । देखा-देखी लोग भी पट्टा लगाने लगे एवं 'नेकटाई' चल पड़ी ।

७. यद् यदाचरति श्रेष्ठ-स्तत्तदेवेतरोजनः ।
स यत् प्रमाणं कुरुते, लोकस्तदनुवर्तते ॥ —गीता ३।२१

श्रेष्ठ व्यक्ति जो-जो आचरण करता है, साधारण लोग भी उसी तरह करते हैं । श्रेष्ठ व्यक्ति जो बात सत्य मानता है, लोग भी उसके पीछे चलते हैं ।

८. श्रेष्ठ पुरुषों को चाहिए कि वे कोई भी ऐसा काम न करें, जिसका अनुकरण करके लोगों को कष्ट का सामना करना पड़े । —धनमुनि

१७ परिवर्तनशील संसार

१. सभी वस्तुएँ नवीन और विचित्र रूपों में परिवर्तित होती रहती हैं।

—लांगफेलो

२. पर्यायार्थिक-नय की दृष्टि से सारा संसार समय-समय पर बदलता रहता है।

—जैनशास्त्र

३. केवल एक परिवर्तन को छोड़कर सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं।

—जांगविल

४. जो कुछ मैं पहले था, वह अब नहीं हूँ।

—बायरन

५. परिवर्तन के तीन क्रम—पहले हृदयपरिवर्तन, फिर जीवन-परिवर्तन और फिर समाजपरिवर्तन।

१८ संसार का पागलपन

१. आदित्यस्यगतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं,
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते ।
दृष्ट्वा जन्म-जरा-विपत्ति-मरणं त्रासश्च नोत्पद्यते,
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ॥

—भर्तृहरि-वैराग्यशतक ७

सूर्य के उदय-अस्त होने से दिन-दिन आयु घटती जा रही है। अनेक कार्यों के भार से बढ़े हुए व्यापारों में बीतता हुआ काल भी जाना नहीं जाता। जन्म-जरा-मरण को देखकर त्रास नहीं होता अतः प्रतीत होता है कि मोहमयी प्रमाद-मदिरा को पीकर जगत् मतवाला हो रहा है।

२. झूठा साचा कर लिया, विष को अमृत जाना।
दुख को सुख सब कोई कहे, ऐसा जगत दिवाना ॥

—कबीर

३. दुनिया आंधली नथी, दीवानी छे।

—गुजराती कहावत

४. रंगी को नारंगी कहे, पके दूध को खोया।
चलती को गाड़ी कहे, देख कबीरा रोया ॥ —कबीर

५. गाड़ी का नाम ऊंखली, चलती का नाम गाड़ी।

—हिन्दी कहावत

६. भारत में एक करोड़ तीस लाख पागल हैं, एक हजार में २३ मानसिक रोगी हैं उनमें से १८ केस संगीन समझने चाहिए।

(मानसिक रोग-चिकित्सालय के अधीक्षक डा० कैलाशचन्द्र दुबे)

७. काम क्रोध जल आरसी, शिशु त्रिया मद फाग,
होत सयाने बावरे, आठ बात चित्त लाग।

८. दिल्ली में पागलों की मर्दुमशुमारी हो रही थी, एक व्यक्ति ने गणना के अधिकारी से कहा--कि मेरा नाम पागलों में लिख लीजिये! मुझे लोग पागल कहते हैं। विस्मित अधिकारी ने पूछा--कैसे?
उसने कहा—एक दिन कई नौजवान लड़कियाँ अश्लील फिल्मी गीत गाती हुईं बाजार में नंगे सिर जा रही थीं, उनमें एक लड़की मेरे मित्र की पुत्री थी। मैंने उसे बुलाकर कहा—बेटी! ऐसे अश्लीलगीत गाते हुए बाजार में नंगे सिर घूमना अपने कुल को शोभा नहीं देता। लड़की ने कुछ शर्म महसूस की और चुपचाप चली गई। सहेलियों ने पूछा—यह बुड्ढा क्या कहता है? उसने जवाब दिया—कुछ नहीं, पागल है; यों ही बकवास करता है।

● एक दिन नवविवाहित पति-पत्नी हलवाई की दुकान पर खड़े-खड़े खा रहे थे, वे प्रेममुग्ध होकर एक-दूसरे के मुँह में चम्मच से कुछ डाल रहे थे। लड़का मेरे सम्बन्धी का

था इसलिए मेरे से रहा नहीं गया, अतः मैंने धीरे से उसे कह दिया, बेटा ! ऐसा व्यवहार अच्छा नहीं लगता। लड़के ने मुंह मोड़ लिया। बहू के पूछने पर कहने लगा—कुछ नहीं, यों ही पागलपन की बात करता है।

१९ संसार का स्वभाव

१. निन्दति तुण्हीमासीनं, निन्दति बहुभाणिनं ।
मितभाणिनं पि निन्दति, नत्थि लोए अनिन्दिओ ॥

—धम्मपद २२७

संसार चुप रहनेवालों की निन्दा करता है, बहुत बोलनेवालों की निन्दा करता है और मितभाषियों की भी निन्दा करता है। विश्व में ऐसा कोई नहीं, जिसकी निन्दा न होती हो।

२. दुनियां चढ़्या नें हंसे और पाला नें पण हंसे ।

—राजस्थानी कहावत

३. महात्मा छहों दिशाओं में पैर कर करके हार गये, क्योंकि लोगों ने कहा—पूर्व में जगन्नाथपुरी है, पश्चिम में द्वारका है, उत्तर में बद्रीनारायण है, दक्षिण में रामेश्वरम् है, नीचे शेष भगवान् हैं और ऊपर बैकुण्ठ है।

४. परिचितजनद्वेषी लोको नवं-नवमीहते । —माघकवि

संसार का यह स्वभाव ही है कि वह परिचित लोगों से द्वेष करता है एवं नए-नए व्यक्तियों को चाहता है।

५. अर्थार्थी जीवलोकोऽयम् । —विष्णु शर्मा

यह सारा संसार अपने स्वार्थ को सिद्ध करनेवाला है।

६. भिन्नरुचिर्हि लोकः । —रघुवंश

लोगों की रुचियां भिन्न-भिन्न हुआ करती हैं।

७. फकीर हाल में मस्त, जरदार माल में मस्त,
बुलबुल बाग में मस्त और आकाश दीदार में मस्त।

—उर्दू कहावत

८. अपनी-अपनी डफली, अपना-अपना राग।

९. अपना-अपना काम, अपना-अपना खाना।

१०. अपना टेंट न देखें और दूसरों की फूली निहारें।

११. दुनियां झुकती है, झुकानेवाला चाहिए।

—हिन्दी कहावतें

१२. मियांजी की दाढ़ी बले, लोग तापण नैं जावै।

—राजस्थानी कहावत

१३. घर आए पूजें नहीं, बांबी पूजन जाय।

—हिन्दी कहावत

१४. हाथ पोलो-जगत गोलो, हाथ काठो-जगत भाठो।

—राजस्थानी कहावत

२० दृष्टि के समान सृष्टि

१. जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।

—रामचरितमानस

२. इ नॉट मेजर अदर पीपुल्स कार्न बाइ युअर ओन बुशल।

—अंग्रेजी कहावत

दृष्टि के समान सृष्टि।

३. **समर्थगुरु रामदास** ने रामायण सुनाते समय कहा—हनुमान ने लंका में श्वेत फूल देखे। गुप्तहनुमान ने कहा—लाल फूल थे, तुम झूठे हो। दोनों राम के पास पहुँचे। राम ने कहा—फूल तो श्वेत थे, किन्तु हनुमान की आंखों में क्रोध की लालिमा थी अतः इनको लाल दीखे, क्योंकि दृष्टि के समान ही सृष्टि होती है।

४. एक एव पदार्थस्तु, त्रिधा भवति वीक्षितः।
कुणपः कामिनी मांसं, योगिभिः, कामिभिः श्वभिः॥

—चाणक्यनीति १४।१६

एक ही पदार्थ अर्थात् स्त्री का शरीर दृष्टिभेद से तीनरूपों में देखा जाता है, योगी मुर्दा के रूप, कामीपुरुष सुन्दर स्त्री के रूप में और कुत्ते उसे मांस-रूप में देखते हैं।

५. पुष्ट पुत्र को माता दुर्बल, स्त्री पतिदेवता, शत्रु राक्षस

एवं मित्र बन्धु मानते हैं। धर्मपुस्तकों को श्रद्धालुभक्त शास्त्र, रद्दीवाला रद्दीकागज और गाय-भैंस-बकरी आदि अपना खाद्य मानती हैं।

६. द्वारका में युधिष्ठिर को बुरा आदमी नहीं मिला और दुर्योधन को भला आदमी नहीं मिला।

७. सन् १८५७ की हलचल को अंग्रेजों ने गदर (रिवोलेशन) कहा और आज के लोग क्रान्ति कहते हैं।

८. १६ दिसम्बर १९७१ के दिन को बांगलावासी स्वतन्त्रता का स्वर्णिम प्रभात मानते हैं, भारत तथा कई अन्य देश इसे सुदिन की संज्ञा देते हैं। और पश्चिमी पाकिस्तान इस दिन को इतिहास का सबसे बड़ा मनहूस दिन कहता है।

९. दूसरे लोग हरिजन और विधवा को अपवित्र कहते थे, जबकि गांधीजी उन्हें पवित्र मानते थे।

१०. एक कहता है गुलाब खुशबूदार है, दूसरा कहता है, गुलाब कांटोंवाला है।

११. चर्मचीड़ी (चमगादड़) के लिए अंधेरी रात ही दिन है, जबकि कौवे के लिए वह डरावना अंधेरा है।

१२. दौड़ते घोड़े का चित्र उल्टा देखो तो घोड़ा लौटता दीखेगा।

१३. गांधी टोपीवालों को शराब पीते देखकर एक ने कहा— हाय! हाय! कांग्रेसी भी शराबी हो गए! दूसरा बोला नहीं-नहीं! शराबी कांग्रेसी-टोपी पहनने लग गए, ऐसा कहो!

१४. एक गरीब रसोईदारिन बेटे के लिए कागज के पुड़िया में थोड़ा सा हलवा ले चली। हाथ से पुड़िया छूट जाने से हलवा नीचे गिर गया। उसे देखकर एक बहन ने कहा—यह चोर है, दूसरी ने कहा—गरीबी का दोष है, तीसरी ने कहा—बेटे का ममत्व है।

१५. प्रत्येक व्यक्ति अपनी दृष्टि के अनुसार ही अपने सिद्धान्त की सृष्टि करता है। जैसे—वेदनिर्माता ने स्त्री और शूद्र को घृणित दृष्टि से देखकर कह दिया—

स्त्री-शूद्रौ नाधीयेताम् अर्थात् स्त्री और शूद्र को वेद नहीं पढ़ाना चाहिए। इसी प्रकार तुलसीदासजी ने भी कह डाला—

ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।

क्रोधी कहता है—

साँच कहूं होकर निडर, कोई हो नाराज,
मैंने तो सीखा यही, साँच बोलिए गाज।

कटुभाषी ने कहा—

बुरे लगे हित के वचन, हिये विचारो आप,
कड़वी औषधि बिन पिये, मिटे न तन का ताप।

व्यापारी बोला—

सत्यानृतं तु वाणिज्यम्! अर्थात् साँच-झूठ का नाम ही व्यापार है, यह केवल सत्य से नहीं चल सकता।

१६. शहर के बाहर मेला लग रहा था। वृक्ष पर चिड़िया चीं-चीं कर रही थीं। वृक्ष के नीचे विभिन्न विचार के कई

व्यक्ति बैठे थे। उनमें से हिन्दू ने कहा—चिड़िया कह रही है—

राम-लछमन-दसरथ, राम-लछमन-दसरथ !

मुसलमान ने कहा—नहीं-नहीं ! यह तो कह रही है—

सुभान तेरी कुदरत, सुभान तेरी कुदरत !

पहलवान ने कहा—नहीं, नहीं ! यह तो कह रही है—

दण्ड मुग्दर कसरत, दण्ड मुग्दर कसरत !

किराने के व्यापारी ने कहा—नहीं,नहीं ! यह तो कह रही है—

हल्दी धनियां अदरख, हल्दी धनियां अदरख !

आखिर सूत कातनेवाली बुढ़िया ने कहा—नहीं, नहीं, यह तो कहती है—

चरखा पोनी चमरख, चरखा पोनी चमरख !

२१ संसार की उपमाएँ

१. सुपने सब कुछ देखिए, जागे तो कुछ नांहि।
ऐसा यह संसार है, समझ देख ! मन मांहि॥

—दादूजी

२. जग है सपना अपना न कहूं,
नर काहे को भूल में जात ठगा॥
कवि **सूरत** क्यों न भजे प्रभु को,
तज धूतज भूल के भाव लगा॥
तेरे जीवत हैं सब ही गरजी,
बरजी इह आल न खात दगा॥
तेरे अंत समै भगवंत बिना,
न भगा न पगा न लगा न सगा॥

३. नाटक सो संसार, **जुगल** पार्ट सब कर रह्या।
एक-एक रे लार, मंच छोड़ सब चालसी॥

४. सम्पूर्ण विश्व एक मंच है और स्त्री-पुरुष इस पर अभिनय करनेवाले पात्र। —शेक्सपियर

५. संसार एक सिनेमा है। सिनेमा में जैसे प्रकाश और अंधकार दो तत्त्व काम करते हैं, एक से काम नहीं बनता, वैसे संसार-सिनेमा में भी ज्ञान-अज्ञान दोनों तत्त्व आवश्यक

है। जहाँ ज्ञान है वहाँ अनासक्ति, ऐश्वर्य एवं आनन्द है तथा जहाँ अज्ञान है वहाँ आसक्ति, वासना एवं दुःख हैं। कीड़े मक्खी, मच्छर, पशु-पक्षी, साधारणमनुष्य एवं ज्ञानी-मुनियों में क्रमशः ज्ञान की विशेषता होने से वे गंदगी घास-फूस, रुपया-पैसा आदि-आदि पूर्व-पूर्व वस्तुओं में आनन्द नहीं मानते। सिनेमा में पूर्ण प्रकाश होते ही खेल खतम हो जाता है, ऐसे ही पूर्ण-ज्ञान मिलने से मुक्ति मिल जाती है। फर्क इतना-सा है कि सिनेमा में पर्दों पर चित्रित मनुष्य, पशु-पक्षी जड़ होते हैं और सांसारिक प्राणी चेतन।

६. **वृक्ष**—संसार वृक्ष है। इस पर बंदर भी बैठते हैं और पक्षी भी। बंदर इधर-उधर वृक्षों पर भटकते रहते हैं किन्तु पक्षी मौका पाकर उड़ जाते हैं। तुम बंदर बनोगे या पक्षी? पक्षी बनना हो तो पाँखें मैं लगा दूं।

७. **कोठरी**—जग काजल की कोठरी, रहिये सदा सशंक।
रत्नाकर को तनय भी, बच्यो न बिना कलङ्क॥

८. हरो ताप सींचो सुधा, छहरो ज्योति अमंद।
लाख करो अब **प्रेमनिधि**, जात कलङ्क न चन्द॥

९. कहत भली समझत बुरी, यही जगत की रीति।
रज्जब कोठी गार की, ज्यों धोवे त्यों कीच॥

१०. विश्व एक सुन्दर पुस्तक के समान शिक्षापूर्ण है, किन्तु उसके लिए कुछ भी नहीं, जो इसे पढ़ नहीं सकता।

—**गोल्डोनी**

११. सरीरमाहु नावत्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो॥

—उत्तराध्ययन २३।७३

शरीर नाव है, जीव नाविक है, संसार समुद्र है, इससे महर्षि लोग ही पार तरते हैं।

१२. संतोषः साधुसङ्गश्च, विचारोऽथ शमस्तथा।
एत एव भवाम्भोधा-वुपायास्तरणे नृणाम्॥

—योगवाशिष्ठ २।१२।१६

संतोष, साधुसंगति, सद्विचार और क्रोध आदि कषायों का शमन—ये ही मनुष्यों के लिए संसारसमुद्र से तरने के उपाय हैं।

२२ दुनियां की ताकत

१. को लोकमाराधयितुं समर्थः ।

—हृदयप्रदीप

इस संसार को एक साथ प्रसन्न करने में कौन समर्थ है ?

२. ढोर नां चाव्या मां कूचो रहे, पण लोकोनां चाव्या मां न रहे ।

३. घंटी ना गालमां बचे, पण लोकोनां चाव्या मां न बचे ।

४. कुआने मोढे ढांकणो देवाय पण गामने मोढे न देवाय ।

—गुजराती कहावतें

५. डू एज यू लाइक यू कैन्नॉट कर्ब मैन्स टंग ।

—अंग्रेजी कहावत

अपनी जबान पकड़ सकते हो, दूसरों की नहीं ।

६. मारनार नुं हाथ झलाय पण बोलनार नी जीभ न झलाय ।

—गुजराती कहावत

२३ जगत् को वश करने के उपाय

१. क्षमया, दयया, प्रेम्णा, सूनृतेनार्जवेन च,
वशीकुर्याज्जगत्सर्वं, विनयेन च सेवया ।

क्षमा, दया, प्रेम, मधुरभाषण, नम्रता, सरलता और सेवा से इस जगत् को वश में करना चाहिए ।

२. यदीच्छसि वशीकर्तुं, जगदेकेन कर्मणा ।
पुरा पञ्चदशास्येभ्यो, गां चरंतीं निवारय !

—चाणक्यनीति १४।१४

जो एक ही कर्म से जगत् को वश किया चाहते हो तो पहले पन्द्रह मुखों से चरती हुई मनरूपी गाय को रोको । तात्पर्य यह है कि आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा—ये पाँचों ज्ञानेन्द्रियां हैं । मुख, हाथ, पाँव, लिंग, गुदा ये पांच कर्मेन्द्रियां हैं । शब्द, स्पर्श रूप, रस, गंध—ये पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं । इन पन्द्रहों के सहारे से ही मन इधर-उधर भटकता है । अतः इसे इनके सम्पर्क से हटाओ !

३. सद्भावेन हरेन्मित्रं, संभ्रमेण तु बान्धवान् ।
स्त्री-भृत्यौ दान-मानाभ्यां, दाक्षिण्येनेतरान् जनान् ॥

—हितोपदेश

सद्भावना से मित्र को, सम्मान से बांधवों को, दान से स्त्री को, मान से सेवक को और चतुरता से अन्य लोगों को वश में करना चाहिए ।

४. लुब्धमर्थेन गृह्णीयात्स्तब्धमञ्जलिकर्मणा ।
मूर्खं छन्दानुरोधेन, याथार्थ्येन च पण्डितम् ॥

—चाणक्यनीति ६।१२

लोभी को धन से, अभिमानी को हाथ जोड़कर, मूर्ख को उसका मनोरथ पूरा करके और पण्डित को सच-सच कह कर वश में करना चाहिए ।

२४ संसार की विशालता

चौदह रज्ज्वात्मक संसार कितना बड़ा है, इसको समझाने के लिये जैनशास्त्र (भगवती ११। ०) में छः देवों का दृष्टान्त दिया गया है, वह इस प्रकार है—

जम्बूद्वीप की परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठाईस धनुष्य और कुछ अधिक साढ़े तेरह अंगुल है। अब कल्पना कीजिये कि महान् ऋद्धिवाले छः देवता जम्बूद्वीप के मेरु-पर्वत की चूलिका को घेर कर खड़े हैं। इधर चार दिक्कु-मारियां, (देवियां) हाथों में बलिपिण्ड लेकर जम्बूद्वीप की आठ योजन ऊँची जगती पर चारों दिशाओं में बाहर की तरफ मुख करके खड़ी हैं। वे एक ही साथ चारों बलिपिण्डों को नीचे गिरायें। उस समय उन छहों देवों में से हर एक देवता मेरुचूलिका से अपनी शीघ्रतर गति द्वारा नीचे आकर पृथ्वी तक पहुँचने से पहले ही उन चारों बलिपिण्डों को ग्रहण करने में समर्थ है। बलिपिण्ड जितनी देर में देवियों के हाथों से छूटकर जमीन तक आठ योजन भी नहीं आ पाते, उतनी-सी देर में वह देवता मेरुचूलिका से लाख योजन तो नीचे आजाता है और लगभग सवा

तीन लाख योजन का जम्बूद्वीप के चारों ओर एक चक्कर लगा देता है अर्थात् सवा चार लाख योजन क्षेत्र लांघ देता है।

लोक कितना बड़ा है, यह जानने के लिए उपर्युक्त शीघ्रगति से उन छहों देवों में से घनीकृत लोक के मध्य भाग से चार देवता तो चारों दिशाओं में जायें और दो ऊपर-नीचे जायें। उस समय हजार वर्ष की आयुवाला एक बालक उत्पन्न होकर पूर्ण आयुष्य भोगकर मर जाये, यावत् उसकी सात पीढ़ियां बीत जायें एवं उसके नाम-गोत्र भी नष्ट हो जायें। इतने लम्बे समय तक भी यदि वे छहों देवता अपनी शीघ्रतरगति से निरन्तर चलते ही जायें तो भी इस लोक का अन्त नहीं आ सकता एवं जितना रास्ता वे तय करते हैं, उससे असंख्यातवां भाग शेष रह जाता है।

२. आईन्स्टीन के मतानुसार प्रति सेकिण्ड एक लाख ८६ हजार मील चलनेवाली प्रकाश की किरणें यदि संसार की परिक्रमा करें तो उन्हें १२ करोड़ वर्ष लग जायेंगे।

३. **ग्रहों और ब्रह्माण्डों के विषय में वैज्ञानिकों का मत—**

वैज्ञानिकों के मतानुसार यह पृथ्वी एक लम्बूतरे फुटबॉल की तरह गोल है और एक हजार मील प्रति घंटा की गति से अपनी धुरी पर घूम रही है तथा ६६ हजार मील प्रति घंटा की गति से सूर्य की वार्षिक परिक्रमा पूरी कर रही

है। पृथ्वी की तरह अन्य ग्रह भी सूर्यमण्डल के चारों ओर घूम रहे हैं। सूर्य से इनकी दूरी निम्न प्रकार है—

ग्रह	दूरी (मीलों में)
बुध	३ करोड़ ६० लाख
शुक्र	६ करोड़ ७२ लाख
पृथ्वी	९ करोड़ ३० लाख
मंगल	१४ करोड़ १५ लाख
बृहस्पति	४८ करोड़ ३० लाख
शनि	८८ करोड़ ७१ लाख
अरुण	१७८ करोड़ ५० लाख
वरुण	२७९ करोड़ ७० लाख
यम	३४७ करोड़

हमको यह भी जान लेना चाहिए कि सूर्य का आकर्षण इन ग्रहों से भी करोड़ों मील दूर तक है। पर वहां कोई ग्रह नहीं है। सूर्यमंडल १०० करोड़ मील लम्बा है और उतना ही चौड़ा है। यह गोला इस ब्रह्माण्ड (जिसे आकाशगंगा कहते हैं) के चारों ओर घूम रहा है। इसे अपना एक चक्कर पूरा करने में ३० करोड़ ५७ लाख २० हजार वर्ष लगते हैं। इस ब्रह्माण्ड के बाहर हमारा सूर्य-मण्डल अकेला ही नहीं है ऐसे डेढ़ अरब सूर्यमण्डल घूम रहे हैं। हमारा यह सूर्यमण्डल उन सबसे छोटा है। पूर्वोक्त बृहत् सूर्यमण्डलों के बीच में घूमता हुआ हमारा यह सूर्य-मण्डल ऐसा प्रतीत होता है, मानो हजारों मील प्रतिघंटा

की गति से चलती हुई आंधी में घूमते हुए बड़े-बड़े वृक्षों एवं पहाड़ों के बीच में एक राई का दाना घूम रहा है।

आकाशगंगा से आगे जो चमकते हुए सितारे दिखाई देते हैं, उनमें से प्रत्येक सितारा एक-एक ब्रह्माण्ड है। ऐसे कितने ब्रह्माण्ड हैं, यह किसी को पता नहीं है। कहाजाता है कि लगभग १० हजार करोड़ ब्रह्माण्ड तो वैज्ञानिकों ने गिन लिए हैं। कई सितारे तो पृथ्वी से इतने दूर हैं कि १ लाख ८३ हजार मील प्रतिसैकिण्ड की गति से चलने वाली उनकी रोशनी यहां अरबों वर्षों तक भी नहीं पहुंच सकती। इन सबसे परे भी कितने खरब ब्रह्माण्ड और हैं, उनका अभी तक कोई पता नहीं लगा है और न कभी लग सकता है। अस्तु, इस अनन्त सृष्टि पर ज्यों-ज्यों विचार किया जाता है त्यों-त्यों हैरानी होती है और दिमाग चक्कर खाने लगता है।

हमारी यह दृश्यमान पृथ्वी एक सिरे से दूसरे सिरे तक ७९२७ मील चौड़ी है इस पर ३५० करोड़ से भी अधिक मनुष्य रहते हैं। चाँद पृथ्वी से लगभग ढाई लाख मील दूर है

(मिलाप, २१ मई १९६९ के सम्पादकीय लेख के आधार पर।)

२५ नरक-संसार

१. नरकः पापकर्मिणां यातनास्थानेषु ।

—सूत्रकृतांग श्रुत २ अ. १ टीका

पापी जीवों के दुःख भोगने के स्थानों के अर्थ में नरक शब्द का प्रयोग होता है ।

२. अहेलोगेणं सत्त पुढवीओ पन्नत्ताओ........एयासिणं सत्तण्हं पुढवीणं सत्त णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—घम्मा, वंसा, सेला, अंजणा रिट्ठा, मघा माघवती । —स्थानांग ७

अधोलोक में सात पृथ्वियाँ हैं, उनके ये सात नाम हैं—
१ घमा, २ वंशा, ३ शैला, ४ अञ्जना, ५ रिष्ठा, ६ मघा, ७ माघवती ।

३. एयासिणं सत्तण्हं पुढवीणं सत्त गोत्ता पण्णत्ता, तं जहा—रयणप्पभा, सक्करप्पभा, वालुकाप्पभा, पंकप्पभा, धूमप्पभा, तमा, तमतमा । —स्थानांग ७

इन सातों पृथ्वियों के सात गोत्र हैं—१ रत्नप्रभा, २ शर्कराप्रभा, ३ बालुकाप्रभा, ४ पङ्कप्रभा, ५ धूम्रप्रभा, ६ तमःप्रभा, ७ तम-तमाप्रभा ।

(शब्दार्थ से सम्बन्ध न रखनेवाली अनादिकाल से प्रचलित संज्ञा को **नाम** कहते हैं । शब्दार्थ का ध्यान रखकर किसी का जो नाम दिया जाता है, उसे **गोत्र** कहते हैं । घमा आदि सात पृथ्वियों के नाम हैं और रत्नप्रभा आदि गोत्र हैं । —प्रज्ञापना २ टीका

४. आसीयं बत्तीसं, अट्ठावीसं तहेव वीसं च ।
अट्ठारस सोलसगं, अट्ठुत्तरमेव हेट्ठिमया ॥

—जीवाभिगम प्रतिपत्ति ३ उ. १- नरकाधिकार

रत्नप्रभादि पृथ्वियों की मोटाई क्रमशः निम्नलिखित है—
(१) एक लाख अस्सी हजार योजन, (२) एक लाख बत्तीस हजार योजन, (३) एक लाख अठाईस हजार योजन, (४) एक लाख बीस हजार योजन, (५) एक लाख अठारह हजार योजन,
(६) एक लाख सोलह हजार योजन, (७) एक लाख आठ हजार योजन ।

५. तीसा य पन्नवीसा, पन्नरस दसा य तिन्नि य हवंति ।
पंचूणसयसहस्सं, पंचेव अणुत्तरा णरगा ॥

—जीवाभिगम प्रतिपत्ति ३., उ. १ नरकाधिकार

१ तीस लाख, २ पच्चीस लाख, ३ पन्द्रह लाख ४ दस लाख, ५ तीन लाख, ६ पाँच कम एक लाख, ७ पांच । ये क्रमशः सातों नरकों के नरकवासों की संख्या है । (सब मिलकर ८४ लाख नरकावास होते हैं ।)

६. रत्नप्रभा आदि पृथ्वियों में ग्राम-नगर आदि नहीं हैं । (विग्रहगति प्राप्त जीवों के अतिरिक्त) बादर अग्निकाय नहीं है । वहाँ जो बादल-गर्जना एवं वृष्टि होती है, वह सुर-असुर एवं नागों द्वारा की जाती है ।

—भगवती ६।८

७. नरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा, अहे खुरप्पसंठाणसंठिया, निच्चंधकारतमसा, ववगयगह-चंद-सूर-नक्खत्त-जोइसप्पहा, मेद-वसा-मांस-रुहिर - पूयपडल - चिक्खल - लित्ताणु-

लवेणतला, असुचिविसा, परमदुब्भिगंधा, काउयअगणि-वण्णाभा, कक्खडफासा, दुरहियासा, असुभानरगा, असुभा नरएसु वेयणा। नो चेव णं नरए नेरइया निद्दायंति वा, पयलायंति वा, सुइं वा, रइं वा, धिइं वा, मइं वा उवलभंति।
—दशाश्रुत स्कन्ध ६

नरकस्थान भीतर से गोल, बाहर से चौकोना और नीचे से उस्तरे के समान तीक्ष्ण है। वहाँ सदा अंधकार रहता है। सूर्य-चन्द्रादिक का प्रकाश नहीं होता। नरकों का भूमितल विकृत चर्बी मांस-लोही-पीव के समूह के कीचड़ से लिप्त रहता है। मल-मूत्रादि युक्त एवं दुर्गन्धसहित है, कृष्णअग्नि के समान प्रभा है। उसका स्पर्श कर्कश एवं दुस्सह है। इस प्रकार नरक-स्थान अशुभ है एवं उसमें वेदना भी अशुभ है। नरक में पापीजीव निद्रा एवं विशेषनिद्रा नहीं ले सकते तथा स्मृति, रति, धृति एवं मति की प्राप्ति नहीं कर सकते।

८. नेरइयाणं भंते! केवइयं कालंठिई पन्नत्ता?
गोयमा! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।
—प्रज्ञापना ४

भगवन्! नरकों में आयुष्य कितनी है?

गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष की एवं उत्कृष्ट तेंतीस सागरोपम की है।

२६ नरक के दुःख

१. जारिसा माणुसे लोए, ताया दीसंति वेयणा।
एत्तो अणंतगुणिया, नरएसु दुक्खवेयणा॥

—उत्तराध्ययन १९।७४

मनुष्यलोक में जो वेदनाएं नजर आ रही हैं, नरकों में उनसे अनन्तगुणी वेदनाएं हैं।

२. अच्छिनिमीलियमेत्तं, नत्थि सुहं दुक्खमेव पडिबद्धं।
नरए नेरइयाणं, अहोनिसं पच्चमाणाणं ॥१॥
अइसीयं अइउण्हं अइतण्हा अइखुहा अइभयं वा।
नरए नेरइयाणं, दुक्ख सयाइं अविस्सामं ॥२॥

—जीवाभिगम-प्रतिपत्ति ३ उ. २. नरकाधिकार

नरक में पापी जीव दिनरात दुःख में पच रहे हैं। उन्हें आंख-मींच कर खोलें, इतनी देर भी सुख नहीं है। नरक में अतिशीत, अति उष्णता, अतितृषा, अतिक्षुधा एवं अतिभय आदि सैकड़ों प्रकार के दुःख हैं, जिन्हें पापी जीव अविश्रान्तरूप से सह रहे हैं।

३. णेरइयाणं दसविहं वेयणं पच्चणुभवमाणा विहरंति तं जहा-सीयं, उसिणं, खुहं पिवासं, कंडुं, परज्झं, भयं, सोगं, जरं, वाहिं।

—स्थानाङ्ग १०।७५३

नरक के जीव १० प्रकार की वेदना का अनुभव करते हुए विचरते हैं। यथा—(१) शीत, २ उष्ण, ३ भूख, ४ तृषा, ५ खाज, ६ परवशता, ७ भय, ८ शोक, ९ जरा-वृद्धावस्था, १० ज्वर-कुष्ट आदि रोग।

४. एगमेगस्स णं.......नेरइयस्स असब्भावपट्ठवणाए सव्वोदही वा सव्वपोग्गले वा आसगंसि पक्खिवेज्जा, णो चेव णं से णेरइए तित्ते वा सिया वितण्हे वा सिया। एरिसया णं गोयमा! णेरइया खुहप्पिवासं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

—जीवाभिगम, प्रतिपत्ति ३ उ. २ नरकाधिकार

असत्कल्पना से यदि एक नरकनिवासी जीव के मुख में सारे समुद्रों का पानी और दुनिया के सारे खाद्य-पुद्गल डाल दिए जायें तो भी उसकी भूख-प्यास नहीं बुझती। हे गौतम! नरक के जीव इस प्रकार अनन्त भूख-प्यास का अनुभव कर रहे हैं।

५. ते णं तत्थ णिच्चं भीया, णिच्चं तसिया, णिच्चं छुहिया, णिच्चं उव्विग्गा, णिच्चं उपप्लुया, णिच्चं वहिया, णिच्चं परममसुभमउलमणुबद्धं निरयभवं पच्चणुभवमाणा विहरंति। —जीवाभिगम, प्रतिपत्ति ३ नरकाधिकार उ. २

वे नरक के जीव सदा भयभीत, त्रस्त, क्षुधित, उद्विग्न एवं व्याकुल रहते हैं। वे निरन्तर वध को प्राप्त होते हैं वे अतुल-अशुभ परमाणुओं से अनुबद्ध होते हैं। इस तरह घोर-पीड़ा का अनुभव करते हुए विचरते हैं।

६. हण छिंदह भिंदह णं दहेति,
सद्दे सुणित्ता परहम्मियाणं।
ते नारगाओ भयभिन्नसन्ना,
कंखंति कं नाम दिसं वयामो। —सूत्रकृताङ्ग ५।१।६

इन पापियों को मुद्गरादिक से मारो, खड्गादिक से छेदो, शूलादिक से भेदो, अग्नि से जलाओ। परमाधार्मिक देवों के ऐसे शब्द सुनकर नैरयिक भय से त्रस्त आत्मसंज्ञा से होकर सोचते हैं कि अब भाग कर कहाँ जाएँ ?

७. छिंदंति बालस्स खुरेण नक्कं,
उट्ठे वि छिंदंति दुवे वि कन्ने।
जिब्भं विणिक्कस्स विहत्थिमित्तं,
तिक्खाहिं सूलाहिऽभितावयंति।

—सूत्रकृताङ्ग ५।१।२२

परमाधार्मिक देवता पूर्वजन्म में किये हुए पापों का स्मरण करवा कर छुरे से पापी जीवों के नाक, होंठ एवं दोनों कान काटते हैं। उनकी जीभों को खींचकर वितस्ति (गिठ) मात्र बाहर निकाल लेते हैं और फिर उसका तीखे शूलों द्वारा भेदन करते हैं।

८. कर-कर पाप प्रचंड नर, पड़े नरक जमहत्थ।
बन बिकराल विशेष सुर, फिर गये ते सब सत्थ॥
फिर गये ते सब सत्थत, पकड़ पिछत्थत,
धर के लग्गग, गुर्ज अगग्गग,
सिंह बिण भग्गग, डरपित अग्गन मग्गग पग्गग,
धर भुंई धुजत थर-थर, शुद्धज नांह सुबुद्धज हीन,
कुबुद्धज कर-कार। —अमृतध्वनिछंद

९. जं नरए नेरइया, दुहाइं पावंति घोर-अणंताइं।
तत्तो अणंतगुणियं, निगोयमज्झे दुहं होइ॥

नरक में जो पापीजीव घोर अनन्त दुःख पा रहे हैं, निगोद में उससे अनन्तगुणा दुःख होता है।

२७ नरक में जाने के कारण

१. चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—महारंभयाए, महापरिग्गहयाए, पंचिंदियवहेणं, कुणिमाहारेणं।

—स्थानांग ४।४।३७३

चार कारणों से जीव नरक के योग्य आयुष्य का उपार्जन करते हैं। यथा—१ महाआरम्भ से, २ महापरिग्रह से, ३ पञ्चेन्द्रिय-जीवों का वध करने से, ४ मद्य-मांस का आहार करने से।

२. त्रिविधं नरकस्येदं, द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभ-स्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ॥

—गीता १६।२१

काम क्रोध और लोभ—ये तीन नरक के द्वार हैं।

३. पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुग्गइं गच्छन्ति तं जहा—पाणाइवाएणं जाव परिग्गहेणं।

—स्थानाङ्ग ५।१।३९१

पांच कारणों से जीव दुर्गति में जाता है—प्राणातिपात से यावत् परिग्रह से।

२८ नरकगामी कौन ?

१. जे केइ बाला इह जीवियट्ठी,
पावाइं कम्माइं करंति रुद्दा।
ते घोररूवे तमिसंधयारे,
तिव्वाभितावे नरए पडंति॥

—सूत्रकृतांग ५।१।३

जो अज्ञानी इहलोक के अर्थी बनकर घोरपाप करते हैं, वे अत्य-धिक अन्धकारवाले एवं तीव्रअभितापवाले नरक में पड़ते हैं।

२. इमं दंडेह, इमं मुंडेह, इमं तज्जेह, इमं तालेह....
इमं हत्थछिन्नयं करेह, इमं पायछिन्नयं करेह, इमं, उट्ठ-छिन्नयं करेह, इमं सीसछिन्नयं करेह, इमं मुहछिन्नयं-करेह, इमं वेयछिन्नयं करेह,.... इमं भत्तपाण निरुद्धयं करेह, इमं जावज्जीवबंधणं करेह, इमं अन्नयरेणं असुभ-कुमारेणं मारेह !...

तहप्पगारे पुरिसजाए .... कालमासे कालं किच्चा-धरणीयलमईवइत्ता अहे नरगधरणीयले पइट्ठाणे भवइ।

—दशाश्रुतस्कन्ध ६

इसे दण्डित करो, इसे मुण्डित करो, इसे मारो, इसे पीटो, इसके हाथ काटो, इसके पैर काटो, इसके कान काटो, इसकी नाक

काटो, इसके होंठ काटो, इसका सिर काटो, इसका मुखच्छेदन करो, इसका लिंगच्छेदन करो, इसका भोजन-पानी रोको, इसे यावज्जीवन के लिए बांधो तथा इसे किसी एक कुमरण से मारो ! इस प्रकार आदेश-निर्देश करनेवाला पुरुष मरकर नीचे नरक-पृथ्वीतल में जाता है।

३. आशापाशशतैर्बद्धाः, काम-क्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते काम-भोगार्थ-मन्यायेनार्थसंचयान् ॥१२॥
इदमद्य मया लब्ध-मिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे, भविष्यति पुनर्धनम् ॥१३॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी, सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥१४॥
आढ्योऽभिजनवानस्मि, कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य, इत्यज्ञानविमोहिताः ॥१५॥
अनेकचित्तविभ्रान्ता, मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः काम-भोगेषु, पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥१६॥

—गीता १६

आशारूप, सैकड़ों बन्धनों से बंधे हुए काम-क्रोध में लीन प्राणी काम-भोग की प्राप्ति के लिए अन्याय से धन का संचय करना चाहते हैं ॥१२॥

वे सोचते हैं—यह तो मुझे आज मिल गया और आगे यह मिल जाएगा। मेरे पास यह इतना धन तो है एवं इतना फिर हो जाएगा ॥१३॥

मैंने इस शत्रु को मार दिया, दूसरों को भी मार दूंगा। मैं ईश्वर हूं, भोगी हूं, सिद्ध हूं, बलवान हूं, सुखी हूं ॥१४॥

मैं धनवान् हूँ, परिवारवाला हूँ, आज मेरे समान दूसरा कौन है ? मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा और हर्षित हो जाऊँगा ॥१५॥

ऐसे अज्ञान से मोहित अनेक प्रकार से चित्त में विभ्रांत मोह-जाल में फँसे हुए एवं काम-भोग में तत्पर प्राणी अपवित्र नरक में जाते हैं ॥१६॥

४. मित्रद्रोही कृतघ्नश्च, यश्च विश्वासघातकः।
ते नरा नरकं यान्ति, यावच्चन्द्र-दिवाकरौ ॥

—पञ्चतन्त्र १।४५४

जो मनुष्य मित्रद्रोही, कृतघ्न एवं विश्वासघाती होते हैं; वे नरक में जाते हैं, जब तक सूर्य चन्द्र विद्यमान हैं।

५. कुक्षि-भरणनिष्ठा ये, ते वै नरकगामिनः। —गरुड़पुराण

जो केवल पेटभराई की चिंता में रहते हैं, वे नरकगामी होते हैं।

२९ देव-संसार

१. देवों की पहचान—

अमिलाय - मल्लदामा, अणिमिसनयणा य नीरजसरीरा,
चउरंगुलेण भूमिं, न छिवंति सुरा जिणो कहए ।

—व्यवहार ३।२ भाष्य

देवता अम्लानपुष्पमालावाले अनिमेष नेत्रवाले, निर्मल शरीर-वाले और पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर रहने वाले होते हैं—ऐसा भगवान का कथन है ।

२. देवों की उत्पत्ति—

मनुष्यणियों की तरह देवियाँ गर्भ धारण नहीं करतीं। देवों के उत्पन्न होने का एक नियत स्थान होता है, उसे **उपपात** कहते हैं । —स्थानाङ्ग ५।३।१४

३. देवों की कार्यक्षमता—

(क) कई देवता हजार प्रकार के रूप बनाकर पृथक्-पृथक् हजार भाषायें बोल सकते हैं । —भगवती १४।६।६

(ख) कई देवता मनुष्यों की आंखों के भापणों पर बत्तीस प्रकार का दिव्यनाटक दिखा देते हैं, फिर भी मनुष्यों को बिल्कुल तकलीफ नहीं होने देते। उन देवों को अव्याबाध देव कहते हैं । —भगवती १४।८।१७

(ग) शक्रेन्द्र महाराज के लिए कहा जाता है कि वे मनुष्य के मस्तक को तलवार से काटकर, उसे कूट-पीट कर चूर्ण बना देते हैं एवं कमंडलु में डाल लेते हैं। फिर तत्काल उस चूर्ण के रजकणों का पुनः मस्तक बनाकर मनुष्य की धड़ से जोड़ देते हैं। कार्य इतनी दक्षता व शीघ्रता से करते हैं कि मनुष्य को पीड़ा का बिलकुल अनुभव तक नहीं होने देते।

—भगवती १४।८।१४

४. **देवों की आयु—**

(क) देवों की आयु जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट ३३ सागर की है। **—प्रज्ञापना ४ के आधार से**

(ख) चउहिं ठाणेहिं जीवादेवाउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—सरागसंजमेणं, संजमासंजमेणं, बालतवोकम्मेणं, अकामणिज्जराए। **—स्थानांग ४।४।३७३**

चार कारणों से जीव देवता का आयुष्य बांधते हैं। यथा—(१) राग भावयुक्त संयम पालने से, (२) श्रावक-व्रत पालने से, (३) अज्ञान दशा की तपस्या से (४) अकाम—मोक्ष की इच्छा के बिना की गई निर्जरा से।

(ग) दानं दरिद्रस्य विभोः क्षमित्वं,
यूनां तपो ज्ञानवतां च मौनम्।
इच्छानिवृत्तिश्च सुखोचितानां,
दया च भूतेषु दिवं नयन्ति॥

—पद्मपुराण, पाताल खण्ड ९२।५८

जो आदमी दरिद्र हैं उनका दान करना, जो सामर्थ्यवाले हैं उनका क्षमा करना, जो जवान हैं उनका तपस्या करना, जो ज्ञानी हैं उनका मौन रखना, जो सुख भोगने के योग्य हैं उनका सुख की इच्छा का त्याग करना और सभी प्राणियों पर दया करना—ये सद्गुण मनुष्य को स्वर्ग में लेजानेवाले हैं।

५. देवों के भेद—

(क) देवा चउव्विहा पण्णत्ता तं जहा—भवणवई, वाणमंतरा, जोइसिया, वेमाणिया। —प्रज्ञापना १

देवता चार प्रकार के होते हैं—(१) भवनपति, (२) व्यन्तर, (३) ज्योतिष्क, (४) वैमानिक।

(ख) पंचविहा देवा पण्णत्ता, तं जहा—भवियदव्वदेवा, णरदेवा, धम्मदेवा, देवाधिदेवा, भावदेवा।

—स्थानांग ५।१

पाँच प्रकार के देव कहे हैं—

(१) भव्य द्रव्यदेव—भविष्य में देवयोनि में उत्पन्न होनेवाले जीव, (२) नरदेव—चक्रवर्ती, (३) धर्मदेव—अनगार-साधु, (४) देवाधिदेव—तीर्थंकर (५) भावदेव—भवनपतिदेव आदि।

३० दैविक-चमत्कार की विचित्र बातें

१. झाला राजपूत-पाटड़ीनरेश करण गेला की रानी से बादरा भूत संगम करने लगा। हलवद के राजपूत श्री हरपालदेव जो पाटड़ीनरेश के भानजे थे, छिपकर रानी के महल में रहे। ज्योंही भूत आया, चोटी पकड़ कर उसे पछाड़ने लगे। भूत ने हारकर भारी उम्र सेवा स्वीकार की। भूत को जीत कर घर जाते समय भूख लगी। श्मसान में चिता जल रही थी। हरपालदेव उसमें दो बकरे पकाने लगे। अचानक जलती चिता में से दो हाथ निकले। मांस समर्पण किया, लुप्त हुआ, तब जंघा चीर कर खून दिया। शक्तिदेवी प्रकट हुई एवं मुझको पूछे बिना कोई काम न करना—इस शर्त से वह हरपालदेव की रानी बनी। भूत का उपद्रव मिटाने से पाटड़ीनरेश ने यथेष्ट मांगने का वरदान दिया। भूत एवं शक्ति की सलाह से रात-रात में तोरण बांधे जायँ, उतने गांव मांगे। राजा की स्वीकृति मिली, हरपालदेव घोड़े पर चढ़कर दौड़े एवं २३५२ गांवों में तोरण बांधे। फिर ५५० गांव शक्तिरानी को विशेषरूप से दान में दिये। ध्रांगध्रा राजधानी बनाई गई।

एकदिन राजकुमार खेल रहे थे। मत्त हाथी उन्हें

मारने लगा। महल में बैठी हुई शक्ति रानी ने हाथ लम्बे किये एवं राजकुमारों को झाल (पकड़) कर ऊँचे ले लिये। झालने से झाला राजपूत कहलाए। बात प्रसिद्ध होने से शक्ति अन्तर्धान हो गई। राज-परिवार अब भी शक्ति-माता की पूजा करता है। —ध्रांगध्रा में श्रुत

२. **मेवे की खिचड़ी**—

महाराणा प्रताप जंगल में थे। अकबर फकीर के रूप में आया एवं मेवे की खिचड़ी मांगी। सामान न होने से शर्मिन्दा होकर महाराणा मरने लगे। अचानक एक आदमी बैल पर समान लाद कर लाया और देकर गायब हो गया। मेवे की खिचड़ी बनाकर खिलाई। अकबर महाराणा की उदारता पर प्रसन्न होकर लौटा। —उदयपुर में श्रुत

३. **रुपयों की थैली**—

नेपोलियनबोनापार्ट से माता ने पैसे मांगे। न दे सकने से वह मरने लगा। एक दोस्त रुपयों की थैली देकर गुम होगया।

४. **वंशच्छेद सांप**—

फतेपुर निवासी 'धीरमलजी माहेश्वरी' व्यापारार्थ भिवानी जा रहे थे। रास्ते में एक गांव में एक जाट के घर ठहरे। वहां सांप के काटने से ठाकुर का कुंवर मर गया था। उसे चिता में सुलाकर जलाने की तैयारी होरही थी। धीरमल जी वहां पहुँचे। चाकू से उसका खून लिया और बोले—इसे बाहर निकालो, यह जी जायेगा। बाहर निकाल कर

मंत्र पढ़ा, सांप आया। पूछने पर कहा—इसने खेलते समय मुझे पत्थर से मारा था। धीरमलजी ने मन्त्र पढ़कर माफ करने के लिये कहा। सांप बोला—१०० कमेड़े दिलाऊँगा। फिर मन्त्र पढ़कर आग्रह किया, सांप ने पचास कमेड़े घटाए। इस प्रकार धीरमलजी पुनः-पुनः मन्त्र पढ़ते गये और कमेड़ों की संख्या घटती गई। आखिर एक कमेड़े पर सांप अड़ गया। फिर मन्त्र पढ़ा एवं कहा–आधा हनुमान के नाम का और आधा मेरे नाम का छोड़ दे! सांप माना एवं कुंवर जी गया।

● एक बार संपेरों से विवाद हुआ। उन्होंने एक राजसर्प लाकर धीरमलजी पर छोड़ा, सांप ने डंक मारा एवं वे बेहोश हुए। पूर्व कथानुसार उन्हें गोबर से भरे खड्डे में सुला कर ऊपर भी गोबर डाल दिया गया। सात दिन के बाद गोबर फटा एवं बाहर निकालकर उनके मुंह में घी डाला गया। वे तत्काल होश में आगये। फिर वे जंगलों में घूमकर एक बिल्कुल पतला पीले रंग का सांप लाये और कहने लगे इसका नाम "वंशच्छेद सर्प" है। यह जिसे भी काटेगा उसके वंश के सभी मर जायेंगे। सपेरों ने हार मानी। —साध्वी श्रीओपाजी से श्रुत

५. **सांपों की गाड़ी**—कच्छ की बात है, एक मन्त्रवेत्ता ठाकुर घोड़े पर चढ़कर कहीं जा रहे थे। दो कालेनागों पर सवार होकर जाता हुआ एक हरा सांप मिला। ठाकुर ने मन्त्र पढ़कर रास्ते में लकीर खींची, नाग रुके, सर्पराज ने नीचे

उतरकर उसको मिटा दिया। नाग चलने लगे, पुनः लकीर खींची, पुनः मिटाई। ज्यों ही तीसरी बार लकीर खींची, सर्पराज ने उस लकीर पर पूछ का प्रहार किया एवं घोड़े से गिरकर ठाकुर मर गए। **—धीड़ालगणी से प्राप्त**

६. **मन्त्रित कौड़ियाँ**—डूमार (बंगाल) में एक आदमी को साँप ने काट खाया। मन्त्रवादी ने चारों दिशाओं में मंत्रित कौड़ियाँ फेंकी। तीन दिशाओं से वापिस आ गईं लेकिन चौथी दिशा से तीन कौड़ियाँ साँप को लेकर आईं। मंत्रवादी ने दूध के चार प्याले रखे, साँप डंक चूसता गया और दूध में डालता गया। तीन प्यालों के दूध का रंग नीला हो गया। फिर चौथे प्याले का दूध पीकर सांपचला गया और वह आदमी जी गया।

—पृथ्वीराज सुराणा से श्रुत

७. **वर्ष भर का खर्च**—अहमदाबाद लाल-पोल में एक पटेल की मृत्यु के बाद जब तक उसकी स्त्री जीवित रही, तब तक नये वर्ष के दिन भोंयरा के द्वार पर सारे वर्ष के खर्च का हिसाब और एक दूध का प्याला रख दिया जाता। साँप आकर दूध पी जाता और खर्च के रुपए रख जाता। माता की मृत्यु के पश्चात् पुत्रों ने भोंयरा खोला, एक आदमी मिला तब से उस साँप का आना बन्द हो गया।

८. **सिकोतरी**—अकबर भटेवर के तालाब पर सो रहा था। महाराणाप्रताप जांबूड़ी की नाल में गए। कृषक खेत में पत्थर फेंक रहा था। बुढ़िया बोली—"अरे ध्यान राखजे!

मेवाड़नाथ पधारे हैं" फिर प्रताप को दूध पिलाया। वह बुढ़िया सिकोतरी थी अतः विद्या से घोड़ी बनकर प्रताप को अकबर के डेरे में ले गई। राणा ने तलवार उठाई। आवाज आई--"ऊँ हूँ" राणा ने पूछा कौन? उत्तर मिला वीर हूं। फिर दाढ़ी और मूंछ काटकर ले आये। उसके बाद फिर अकबर ने मेवाड़ आना छोड़ दिया।

—उदयपुर में श्रुत

९. **रुई का फुआं**—चुरू में हीरालालजी यति ने श्रावकों का अतिआग्रह देखकर मन्त्र पढ़ना शुरू किया। ३०-४० आदमी चमत्कार देखने के लिए बैठे थे। पहले एक रुई का फुआं आकर गिरा। चन्द ही क्षणों में वह फुआं बालक, जवान एवं दाढ़ीवाला बूढ़ा बन गया। दर्शक सारे मूर्छित हो गए। फिर यति जी ने मन्त्रित खून का छींटा डालकर उस उपद्रव को शांत किया।

कहा जाता है कि दर्शकों में से दो तो मर गये और एक (सुखलाल बरड़िया के पिता) चार दिन के बाद सचेत हुये।

—सुखलाल बरड़िया से श्रुत

१०. **यतिजी का पत्र**—पटियाला-महाराज ने सुनाम के यति से पूछा—मैं कौन से मार्ग से निकलूंगा? यतिजी ने एक पत्र लिखा और उसे बन्द करके उन्हें दे दिया। राजा यतिजी को झूठा करने के लिए शहरपनाह की दीवार को फोड़-कर बाहर निकला और एक वृक्ष की डाली पकड़कर वह

पत्र पढ़ने लगा। राजा ने जो कुछ किया वह सब उस पत्र में पहले से लिख रखा था। राजा ने प्रसन्न होकर भेंट के रूप में प्रतिवर्ष उन्हें ८४ रुपया देना स्वीकार किया।

११. अक्षय ठंडाई—सालोचरा (मारवाड़) में एक दिन 'सगतमलजी' आदि संत यतीजी का पुस्तकभण्डार देख रहे थे। दोपहर के बाद यतीजी ने थोड़ी-सी (तीन पाव अन्दाज) ठण्डाई बनाई और एक बर्तन में ढंककर रख दी। पीनेवाले आते गए और यतीजी पिलाते गये। लगभग तीस-चालीस आदमी पी गये। बाद में ढंका हुआ वस्त्र हटाकर देखा तो ठंडाई ज्यों की त्यों थी। फिर सन्तों के जलपात्र पर हाथ घुमाया। पानी जम गया एवं पात्र से चिपक गया। सन्त कुछ घबराये। यतीजी ने पुनः पात्र पर हाथ फेरा। सन्त पात्र उठाकर देखने लगे तो सारा पानी ढुल गया।

—सगतमलजी से श्रुत

१२. मन्त्रित उड़द—डाकिनियों ने एक यती के शिष्य को ग्रहण कर लिया एवं वह मर गया। क्रुद्ध गुरु ने मंत्रित उड़द दिये। जलती चिता में फेंकने से चीलों के रूप में आकर डाकिनियां उसमें गिरकर भस्म होने लगीं। एक मुट्ठी उड़द रख लेने से कुछ जीवित बच गयीं।

—उदयपुर में श्रुत

१३. सुराणाजी बचे—सादड़ी गांव में तेजमालजी सुराणा को डाकिनी ने ग्रहण कर लिया। यतीजी ने अपना घुटना

मूंडा, ठाकुर साहब की माता (जो डाकिनी थीं)[1] का सिर मूंडा गया एवं मुराणा जी बचे। यतीजी को उसी समय ऊंट पर चढ़कर भागना पड़ा।

—चुरू के श्रावकों से श्रुत

१४. **मूसलाधार बरसात**—मालेरकोटला में यतीजी ने सवारी निकलते समय सलाम नहीं किया। नवाब क्रुद्ध हुआ। लोगों ने कहा—ये चमत्कारी पुरुष हैं। नवाब ने दस बजे तक बारिश बरसाने के लिये कहा। साढ़े नौ बजे के बाद बादल निकले और मूसलाधार बरसात होने लगी। नवाब एवं लोगों ने माफी मांगी। वृष्टि बन्द की। फिर वहाँ से यतीजी सिरसा चले गये। —हाकमचन्द से श्रुत

१५. **जलाशय सुखा दिए**—रानियां गांव पर बीकानेर का हमला हुआ। यतीजी ने रानियाँ से तीन-तीन कोस में सभी

---

१ डाकिनी मनुष्यणी ही होती है और यदा-कदा जरख पर सवार होकर घूमा करती है। पहले वह मन्त्र के बल से बिलौने में रहे हुए मक्खन को तथा तरबूज आदि फलों में रही हुई गिरी को स्यारने (खींचने) लगती है। इस प्रकार स्यारने के कारण वह स्यारी कहलाती है। ऐसा करते-करते जब वह बच्चों का कलेजा निकाल कर खाने लगती है तब उसे डाकिनी कहते हैं। डाकिनियों द्वारा गृहीत बालक सूखने लग जाता है और अन्त में मर जाता है। ऐसी भी दन्त कथा है कि जमीन में दाटे हुए मृत बच्चे को डाकिनी रात के समय निकालकर जीवित कर लेती है, उस समय यदि डाकिनी को मार दिया जाय तो बच्चा जीवित भी रह सकता है।

जलाशय सुखा दिये। शत्रु-सेनापति ने भिक्षु के वेष में आकर माफी मांगी तब तीन कोस पर एक तालाब में जल प्रकट किया। —हुकमचन्द से श्रुत

१६ (क) **फीकी-कड़वी चीनी**—राजलदेसरनिवासी मालचंदजी वैद ने चीनी (शक्कर) को मन्त्र द्वारा फीकी एवं कड़वी बना दिया। **प्रकाश वैद** का मुंह बहुत देर तक तक कड़वा रहा। **—चूरू में आंखों देखा**

(ख) उन्हीं मालचन्दजी ने दिव्य-शक्ति से खिवाड़ा (मारवाड़) में विदामांजी की दीक्षा के समय नौ सेर गुड़ की लापसी से २४५ मनुष्यों को भोजन करवाया और सात सेर लापसी बचा भी ली।

(ग) मारवाड़ जंक्शन में खारची गांव से बालचन्दजी के घर से पांच सेर बादाम की बर्फी मंगवाकर लोगों को खिलाई तथा लाडनूं में विवाह के प्रसंग पर खुद तीस सेर मिठाई खा गये। और कुछ समय के बाद पुनः ज्यों की त्यों दिखा दी। **—मालचन्दजी से श्रुत**

१७. **कालूगणी की आवाज**—विक्रम संवत २००२ पोष की बात है। आचार्यश्री तुलसी मोमासर से सरदारशहर पधार रहे थे। उन दिनों आचार्यश्री के खांसी का प्रकोप इतना बढ़ रहा था कि कोई भी औषधि काम नहीं कर रही थी। मोमासर से छः मील दूर भादासर गांव में रात के समय खांसी बहुत अधिक सता रही थी और नींद न आने से

काफी परेशानी हो रही थी। उस समय अष्टमाचार्य कालूगणी की आवाज आई—चिंता मत कर, ओढ़कर सो जा! आचार्यश्री सो गये। खांसी बिल्कुल बन्द थी। कुछ देर बाद पुनः विचार आया कि कालूगणी की आवाज नहीं आई, केवल मन का भ्रम था। बस, खांसी पहले से भी अधिक चलने लगी। आचार्यश्री बहुत खिन्न हो गये और सोचने लगे कि जो सन्देह किया वह मेरी गलती हुई। इतना-सा सोचने के साथ ही नींद आगई। प्रातः उठे तो खांसी का नाम-निशान भी नहीं था।

—आचार्यश्री तुलसी से श्रुत

१८. **लाडनूं का वृद्ध श्रावक**—संभवतः वि. सं. २००१ मिगसिर की बात है। रात को हम कई साधु आचार्य श्री तुलसी की सेवा में बैठे थे और देवताओं की बातें चल रही थीं। आचार्य श्री ने फरमाया कि अभी कुछ दिन पहले 'लाडनूं' से एक वृद्ध श्रावक दर्शनार्थ यहां (छापर) आगये। मैंने उनसे साश्चर्य पूछा—आंखों से तुम्हें पूरा दीखता नहीं, चलने की तुम्हारी शक्ति नहीं और बवासीर रोग से तुम पीड़ित हो, इस हालत में अकेले दर्शनार्थ कैसे आये? उन्होंने कहा—गुरुदेव! दर्शन की अभिलाषा बहुत दिनों से लग रही थी, लेकिन साधन के अभाव में उसकी पूर्ति नहीं हो सकी। एक दिन रात के समय छोटा बेटा (जो मर चुका था) दृष्टिगोचर हुआ और कहने लगा, पिताजी! चलिये मैं करवा लाऊं आपको दर्शन। मैंने पूछा तू कहां है? उसने कहा-व्यंतरदेवता की योनि में हूं। कई बार

अपने मित्रदेव के साथ आचार्य श्री के पास जाया करता हूं, मैंने कहा तू मुझे दर्शन कैसे करवाएगा ? उसने कहा, आप टिकिट लेकर केवल गाड़ी में बैठ जाइए। फिर मैं अपने आप संभाल लूंगा। गुरुदेव ! मैं उसका विश्वास करके गाड़ी में बैठ गया, गाड़ी रवाना होते ही मैं पूर्ण-स्वस्थ हो गया और आपके चरणों में पहुंच गया।

—धनमुनि

२० **श्रीभिक्षुस्वामी के स्मारक की उपलब्धि—**

जैनश्वेताम्बर तेरापंथ के आचार्य श्रीभिक्षुस्वामी का स्वर्गवास वि० सं० १८६० भाद्र सुदी १३ के दिन सिरयारी (मारवाड़) में हुआ था। १३ खंडी मंडी बनाई गई, १४० गांवों के आदमी इकट्ठे हुए एवं नदी के किनारे अग्नि-संस्कार किया गया। वहां एक स्मारक बनाया तो गया था, लेकिन सिरियारी के श्रावकों की स्थिति बदल जाने से (कहा जाता है कि सिरियारी में तेरापंथी श्रावकों के जो ७०० घर थे वे प्रायः दक्षिण में व्यापार्थ चले गये और अब वहां केवल ३०-३५ घर ही रह गये हैं।) उसकी सार,संभाल यहां तक नहीं हुई कि वह स्मारक कहां है और कौनसा है ? यह भी पता नहीं रहा। तेरापंथ-द्विशताब्दी के अवसर पर पुराने स्मारकों का अन्वेषणकार्य युवकवर्ग ने संभाला। सम्पतकुमार गधैया एवं मन्नालाल बरड़िया आदि सिरियारी पहुंचे। काफी खोज की गई, किन्तु स्मारक का पता नहीं लगा। जिसे लोग श्रीभिक्षुस्वामी का स्मारक मान रहे

थे, उस पर वहाँ के 'गुरांसा' 'हमारे पूर्वजों का है!' ऐसा दावा करने लगे। रात को स्मारक की चर्चा करते-करते सब सो गये। प्रातः उठकर वे युवक लोग शौचार्थ जङ्गल गये। चर्चा वही चल रही थी, वे नदी के किनारे एक वीरान पहाड़ी-ढाल पर पहुँचे और स्मारक की खोज में हाथ-पैर मार रहे थे; इतने में सफेद बाल, झुकी कमर और चमकीली आंखोंवाला एक बूढ़ा (जंगली-सा) आदमी पहाड़ी से उतरकर नीचे आया और पूछने लगा—'भाई! क्या ढूंढ रहे हो'?

सबने सिर झुकाकर कहा 'बाबा! स्वामी जी का स्मारक!'

बाबा—'कौनसे स्वामीजी का?'

युवक—तेरापंथ के आदि गुरु 'श्रीभिक्षु स्वामी का।'

बाबा—'हाँ-हाँ, था तो सही, भाई! मैं अपने दादागुरु के साथ यहाँ अनेक बार आया करता था और दादागुरु कहते भी थे कि जिसने एक नया पंथ चलाया है यह उस 'बाबे' का चबूतरा है।"

युवक—'बाबा! वह कहाँ है?'

बाबा ने अँगुली लगाकर कहा—'इस स्थान पर होना चाहिए।'

बस, सभी युवक जुट गये और लोटों से मिट्टी खोदने लगे। कुछ ही क्षणों में एक ईंट निकली और बाद में चबूतरा भी प्रकट हो गया, जो तीन तरफ ठीक था, एक

ताला लगा हुआ था । अन्दर झुककर देखा तो बूढ़ा बाबा नजर नहीं आया था । काफी प्रयत्न करने पर भी पता नहीं लगा कि वह कौन था एवं कहाँ से आया था ।

बस, पता लगते ही स्वर्गीय श्री बस्तीमलजी छाजेड़ आदि शहर के अनेक श्रावक वहाँ आ पहुँचे एवं युवकों को धन्यवाद देने लगे । फिर समाज ने चबूतरे पर संगमरमर का 'स्मारक-भवन' बनवा दिया, जो इस समय विद्यमान है । **—बंगलोर से प्रकाशित स्मारिका के आधार पर**

श्रीजयाचार्य के स्मारक का चमत्कार—

सन् १९४३ के अगस्त मास में जब जयपुर के नक्शे का आमूलचूल परिवर्तन किया जा रहा था और नयी सड़कें निकाली जा रही थीं, 'म्युजियम भवन' की एक सड़क के कटाव में, लूणियाजी के बाग में विद्यमान श्री जै. श्वे. तेरापंथ के चतुर्थपूज्य श्रीजयगणी का स्मारक (चबूतरा) भी आ गया । उसका एक तिहाई हिस्सा तोड़ना तय हुआ । वहाँ के श्रावकों ने काफी प्रयत्न किया, किन्तु सफलता नहीं मिली । क्योंकि मुख्यमन्त्री श्री मिर्जास्माइल ने बड़े-बड़े महल, मंदिर एवं मकबरे भी तुड़वा डाले थे । फिर स्मारक की तो बात ही क्या थी ।

उस समय आचार्य श्रीतुलसी का चातुर्मास गंगाशहर था । यह समाचार सुनकर सेठ ईश्वरचंदजी चौपड़ा आदि समाज के मुखिया लोग परस्पर मिले । सबकी सलाह के अनुसार ३-४ साथियों सहित श्री तिलोकचंदजी चौपड़ा

जयपुर गये। वे छोटे-मोटे सभी इंजीनियरों एवं सरमिर्जा से भी मिले. लेकिन उत्तर यही मिला—"जो कुछ तय किया गया है, वही ठीक है।" श्रीचौपड़ाजी ने मुख्य-मन्त्री से निवेदन किया—कृपया, एक बार मौका तो देख लीजिये। अति आग्रहवश मुख्यमंत्री ने मौका देखना स्वीकार किया। पता लगते ही पुलिस गश्त लगाने लगी; पैमायश करनेवाले फीते लेकर स्मारक के चारों तरफ घूमने लगे थे। इंजीनियर पसीना-पसीना हो रहे थे। कारण यह था कि उनका नाप ठीक नहीं बैठ रहा था। दूसरे सब निशान ठीक थे, लेकिन श्री जयगणी का स्मारक जिसका एक तिहाई हिस्सा सड़क में आने से 'रेडमार्क' से विभूषित था, सड़क से तीन-चार फीट दूर हो गया था। सरमिर्जा के आते ही चीफ इंजीनियर ने कहा—'साहब! धरती पलट गई।' विस्मित मिर्जा साहब के हाथ जुड़ गये, बूट खुल गये और वे सिर झुकाकर बोले—'सचमुच वह एक महान् पुरुष था। मैं उसे अदब से सलाम करता हूँ। मिस्टर चौपड़ा, थैंक्स!

इस सम्बन्ध में पुराने लोगों का कहना है कि श्री जयाचार्य के संस्कार के बाद वहाँ एक चंदन का वृक्ष प्रकट हुआ, जो तीस-चालीस साल तक रहा। बाग के माली को वहाँ अनेक बार अर्धरात्रि के समय श्वेतवस्त्रधारी दिव्य पुरुष के दर्शन हुये थे। एक बार प्रत्यक्ष होकर माली से कहा भी गया था—'यहाँ गंदगी न होने दी जाय।' कई लोगों

ने वहाँ प्रकाश-पुंज भी देखा था। आज भी अंधेरे-अंधेरे न जाने कौन वहाँ अर्चन करने आता है। अस्तु !

श्री जयाचार्य का स्वर्गवास वि. सं. १९३८ भाद्रवदी १२ को हुआ था एवं अन्त्येष्टि-जुलूस राजकीय सम्मान के साथ अजमेरी गेट से निकाला गया था। उक्त स्मारक पहले चूने का था; अब संगमर्मर का है एवं उसके ऊपर एक छोटी-सी छतरी भी बनादी गई है।

चौथा कोष्ठक

१ तिर्यञ्च संसार

१. नारक, मनुष्य और देवों को छोड़कर सब सांसारिक जीव-जन्तु तिर्यञ्च कहे जाते हैं।

तिर्यञ्च पाँच प्रकार के होते हैं—१ एकेन्द्रिय, २ द्वीन्द्रिय, ३ त्रीन्द्रिय, ४ चतुरिन्द्रिय, ५ पञ्चेन्द्रिय।

एकेन्द्रिय तिर्यञ्च पाँच प्रकार के होते हैं—पृथ्वीकाय, २ अप्काय, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च दो प्रकार के हैं—सम्मूच्छिम और गर्भज। दोनों ही मुख्यतया तीन-तीन प्रकार के हैं—जलचर, स्थलचर और खेचर।

—लोकप्रकाशपुञ्ज ३

२. चउहिं ठाणेहिं जीवा तिरिक्खजोणियत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—माइल्लयाए, नियडिल्लयाए, अलियवयणेणं कूडतुलकूडमाणेणं। —स्थानाङ्ग ४।४।३७३

चार कारणों से जीव तिर्यञ्चयोनि के योग्य कर्म बांधते हैं—१ माया-छल से, २ गूढ़ माया से, ३ असत्य बोलने से, ४ झूठा तोल-माप करने से।

आश्चर्यकारी वृक्ष—

१. दक्षिणी अमरीका के ब्राजीलदेश में एक ऐसा वृक्ष है, जिसके तने में छेद करने से मीठा-पौष्टिक दूध निकलता है।

- इंडोनेशिया के सुमात्राद्वीप में एक जलवर्धक वृक्ष है, जो दोपहर के समय तेजसूर्य की किरणों से हवा के द्वारा भाप लेकर कुछ देर के बाद बरसता है, उससे घड़ा भी भर जाता है।
- अमरीका के मिशिगन प्रदेश 'हार्लोक्लार्क' नामक व्यक्ति के उद्यान में एक ऐसे वृक्ष का ठूंठा खड़ा है, जो मानवाकृति है। उसके हाथ-पैर एवं सिर है, यहाँ तक कि सिर पर टोपी तथा दाहिने हाथ में घड़ी भी है।
- बिहार में पाँच लाख वर्ग फुट विस्तृत एक बड़ (बरगद) का वृक्ष है। कहा जाता है कि उसके नीचे बीस हजार कब्रें हैं।

२. मैक्सिको में एक वृक्ष पाया जाता है, उसका गुण यह है कि वह हर समय सुई-डोरा तैयार करता है। वृक्षों की प्रत्येक पत्ती पर सुई-काँटा लगा रहता है-जिसे खींचने पर दो फुट लम्बा धागा निकल आता है। पथिक बखूबी उस प्राकृतिक सूई से अपना काम चला सकता है।

—नवभारतटाइम्स, १७ अक्टूबर, १९७१

३. अफ्रीका में माडागास्कार टापू के जंगल में 'कोडो' नामक वृक्ष था। वह निकट आते ही मनुष्य को खींच लेता एवं उसका सार चूसकर वापस फेंक देता था। —डा. कार्ल-लीच

४. जल में रहनेवाला एक 'लेडर वर्ट' नामक वृक्ष होता है। उसके तने पर छोटे-छोटे थैले लगे रहते हैं, उन थैलों के मुंह पर एक दरवाजा होता है, ज्योंही कोई कीड़ा-मकोड़ा अन्दर पहुंचता है, त्योंही दरवाजा अपने आप बन्द हो जाता है और वृक्ष कीड़ों का खून चूस लेता है।

● न्यू साउथवेल्स तथा क्वींसलैंड स्थित जंगलों में 'जीनस-लापोर्टिया' नामक अस्सी से १०० फुट एक दैत्याकार वृक्ष पाया जाता है, जिसे वहाँ के लोग 'टच-मी-नॉट' की संज्ञा देते हैं। इस वृक्ष के हृदयाकार पत्ते एक फुट से भी लम्बे होते हैं। पत्तों में रेशेदार भूरे कांटे होते हैं, जो जहरीले होते हैं। यदि किसी प्राणी का शरीर इन पत्तों से रगड़ खा जाय तो कम से कम चार दिन तक उसे प्राणघातक जलन व पीड़ा भुगतनी ही पड़ती है।

● जावा के समुद्री तट पर 'वृपन्स' नामक एक नरभक्षी-वृक्ष है। धोखे से इसके नीचे आते ही हाथी जैसे जानवर पर भी कंटीली शाखाएं झपट पड़ती हैं। टस्मानिया के जंगल में 'हेरिजिटल' नामक एक ऐसा ही खतरनाक वृक्ष पाया गया है। वहाँ के लोगों का कहना है कि अच्छे से अच्छा जंगल का अनुभवी व्यक्ति भी किसी अन्य की मदद के बिना इस वृक्ष के क्रूर पंजों से मुक्ति नहीं पा सकता। और तो और अगर कोई घुड़सवार भी इसकी बगल से गुजरे तो यह उसे भी अपना शिकार बना लेता है।

—**नवभारत टाइम्स, १७ अक्टूबर, १९७१**

५. **अद्भुत तरबूज**—ताजिकिस्तान के तरबूज उत्पादक, ५५ किलोग्राम वजन तक के तरबूजों को पैदा करने में सफल हो गए हैं। [विशेषज्ञों के मतानुसार तरबूजों का वजन सामान्यतः १६ किलोग्राम तक ही होता है और उनमें ११ प्रतिशत मिठास होती है] ऐसे तरबूज 'दुशानबे' में आयोजित एक प्रदर्शनी में रखे गए हैं, इनमें मिठास की मात्रा भी २० प्रतिशत है।

—हिंदुस्तान, ६ सितम्बर, १६७१

२ आश्चर्यकारी तिर्यञ्च

१. (क) **गाय**-अमेरिका में एक गाय का १६० रत्तल दूध था एवं सांड की कीमत ४॥ लाख रुपए थी।

(ख) बाव (गुजरात) के पास एक गांव में ६ महीनों की पाड़ी दूध देती थी।

(ग) एक गाय के पीठ पर भी चार स्तन थे, जिनसे दूध की धारा निकलती थी। **—संकलित**

२. **घोड़े**–उदयपुर महाराणा के यहाँ कई ऐसे घोड़े थे, जो एकादशी के दिन उपवास करते थे एवं 'ग्यारशिया' नाम से सम्बोधित किए जाते थे। ग्यारस के दिन यदि उनके सामने कभी दाना रख दिया जाता तो वे अपना मुंह मोड़ लेते। **—संतों ने आंखों से देखा**

३. **हाथी**–

(क) हाथी की सूंड में चार हजार मांसपेशियां होती हैं। इसका दिमाग मनुष्य के दिमाग से चारगुना तथा शरीर लगभग ५ टन का होता है। प्रतिदिन का भोजन ५० किलो पानी और ७० किलो घास-पात, पेड़ों की हरी पत्तियां आदि है।

—सर्जना तथा विश्वकोष भाग २ के आधार से

(ख) कनाडा में भारत से लाया गया एक ऐसा हाथी था जो पैरों में जूते पहने बिना बाहर नहीं निकलता था।

—सरिता, सितम्बर, द्वितीय, १९७१

(ग) संसार का विशालकाय हाथी—

कन्धे के पास से ऊंचाई १२ फुट नौ इंच थी, चमड़ी (खाल) का वजन दो टन था। इस विशालकाय हाथी को अफ्रीका के जंगलों में हंगरी के एक शिकारी ने सन् १९५५ में मारा था। हाथी का अस्थिपंजर 'स्मिथ सोनिएल इन्स्टीट्यूट की नेचरल हिस्ट्री कालेज' में रखा गया है।

—कादंबिनी, दिसम्बर १९६४

(घ) प्रतापगढ़ (उ० प्र०) जिले का एक पालतू हाथी एक बार क्रोधित होकर अपने चालक (पीलवान) को पैरों तले दबाकर सूंड से चीर डाला। दुखित पत्नी विकल होकर अपने इकलौते पुत्र को क्रुद्ध हाथी के आगे फेंक दिया। मदोन्मत्त हाथी ने उस बच्चे को सूंड से उठाकर पीठ पर बैठा लिया। कहते हैं कि तबसे वही बच्चा उस हाथी का चालक (पीलवान) बन गया। उसकी अनुपस्थिति में हाथी पागलों की भांति हाथ-पैर पटकता, चिंघाड़ता। वह यावज्जीवन उस लड़के के इशारे पर चलता रहा।

* इसी जिले में एक बारात में गये हुये हाथी के चालक से बरातियों द्वारा लेन-देन के मामले में विवाद हो उठने से हाथी मदोन्मत्त होकर सारे बरातियों पर टूट पड़ा। कुछ

मरे, कुछ घायल हुये बहुत सारा सामान नष्ट-भ्रष्ट हो गया। अन्त में एक व्यक्ति ने उस हाथी को गोली से मार कर शान्ति स्थापित की।

—गोंडा निवासी श्री हनुमानबख्शसिंह से प्राप्त

४. **धर्मिष्ठ कुत्ते :–**

(क) दुर्गापुर में एक वृद्ध कुत्ता एकादशी के दिन कुछ नहीं खाता-पीता और निर्जल उपवास करता है। पारणे के दिन मांस नहीं खाता।

(ख) गोहाटी के एक सरकारी अधिकारी का **भोलू** नामक कुत्ता अमावस्या-पूर्णिमा एवं एकादशी—ऐसे महीने में तीन उपवास करता है। उपवास के दिन भूलकर कोई उसे रोटी दे दे तो भी वह नहीं खाता।

(ग) बस्तर के पास भैरवीमन्दिर में आरती के समय एक कुत्ता हर रोज आता है एवं एक घण्टा तक आँखें बन्दकर प्रतिमा के सामने खड़ा रहता है, फिर सात बार परिक्रमा देता है। यह सब कर लेने के बाद ही वह कुछ खाता-पीता है।

(घ) आर्यविद्वान् शास्त्रार्थमहारथी पण्डित बिहारीलाल शास्त्री की दादी का कुत्ता मंगलवार को व्रत रखता था।

(ङ) देहरादून के तपोवन-आश्रम में ठाकुर रामसिंहजी का कुत्ता एकादशी का व्रत करता है, उस दिन रोटी डालने पर पीछे हट जाता है और बाध्य करने पर मुंह में रोटी लेकर वृक्ष के नीचे छिपा आता है एवं

दूसरे दिन निकालकर खा लेता है।

—नवभारतटाइम्स, २५ अप्रेल, १९६५

चोरी डकैती का पता लगानेवाले कुत्ते—

(च) पुलिस डिपार्टमेंट में कई ऐसे कुत्ते होते हैं, जो चोरों-डाकुओं या चुराए हुए धन को खोज निकालते हैं।

खगड़िया (बिहार) में रात के समय नौकर से मिलकर कई गुण्डों ने एक सेठ को कत्ल कर दिया। उसका सारा धन (लाख सवा लाख का) लेकर वे तीन मील दूर जंगल में गए और वहाँ खड्डा खोदकर उसे दाट दिया। फिर तत्काल उस पर एक ईंटों का खम्भा चिनकर वे कहीं भाग गये। सुबह पुलिसथाने में खबर दी गई। पुलिस के साथ दो कुत्ते आए। उन्होंने कत्ल किए हुए सेठ को सूंघा। फिर शहर में और आस-पास के जंगल में खूब चक्कर लगाए। दूसरे दिन एक कुत्ता वहीं पहुँच गया और चिने हुये खंभे को सूंघ कर उस पर पंजे मारने लगा। पुलिस ने खंभे को हटाया तो उसके नीचे सारा धन मिल गया।

—संचियालालजी नाहटा से श्रुत

(छ) **गिल्डा कुत्ता—**

अमरीका में आगाखाँ की भूतपूर्व पुत्रवधू एवं 'प्रिंस अलीखाँ' की भूतपूर्व पत्नी विश्व की विख्यातसुन्दरी अभिनेत्री 'रिताहेवर्थ' का कुत्ता 'गिल्डा' है। उसकी खाने की मेज ५ हजार की है। बैठने का सोफा १२

हजार का है, बिस्तर-पलंग लाख-डेढ़ लाख के हैं तथा वस्त्र एवं साज-शृंगार ४० हजार से २ लाख तक है। गिल्डा दिन में सात बार कपड़े बदलता है। विश्व-सौन्दर्य प्रतियोगिता में सर्वप्रथम आने से स्वामिनी ने बृहत् प्रीति-भोज दिया। ४५० मेहमान आए, सभी गिल्डा को चूमना चाहते थे। २०० से एक हजार तक चुम्बनशुल्क रखा गया था लेकिन होड़ लगने लगी। आखिर पैरिस की कुमारी "निवाला" ने ५० हजार देकर सर्वप्रथम चुम्बन किया। गेबी (कुतिया) से गिल्डा का विवाह हुआ, पाँच लाख रुपए लगे। उससे होनेवाली प्रथम संतान का मूल्य २ लाख तक बढ़ गया। गिल्डा सवेरे टोस्ट के साथ चाय पीता है। बारह बजे नहाकर भोजन करता है, तीसरे प्रहर एक गिलास अंगूर का रस पीता है और रात को ६ बजे फिर खाना खाता है। भोजन के समय गिल्डा रेडियो सुनता है एवं गाने का बहुत रसिक है।

—नवनीत, सितम्बर १९५३ से

५. बन्दर—

(क) मुबालीखेड़ा में बंदरों को मारने के लिये विष मिलाकर खीर का कुण्डा एक छत पर रख दिया गया, बंदर सूंघ-सूंघ कर चले गये। एक बंदर जंगल से एक लकड़ी लाकर उससे खीर को हिलाने

लगा। हिलाता गया और सूंघता गया। आखिर सब मिलकर उस खीर को खा गये। (लकड़ी में विष नष्ट करने की शक्ति थी)

(ख) इन्दौर में बंदर के बच्चे को सांप ने काट खाया। अनेक बंदर इकट्ठे हुए, एक बूढ़े बंदर ने गेंदे (फूल) की जड़ लाकर बच्चे के मुंह में उसका रस डाला एवं बच्चा जी गया। —इन्दौर में वैद्यजी से श्रुत

(ग) बुवानीखेड़ा में छोटे बच्चे को एक बंदरिया उठाकर ले गई। और रोटी देने पर वह बच्चे को धीरे से छत पर छोड़कर चली गई। —बुवानीखेड़ा में श्रुत

५. नेवलों का चमत्कार—

(क) भद्रपुर (नेपाल) से लगभग दस मील दूर सेंदरी गांव का एक राजवंशी-किसान कहता है कि नेवले सांप को टुकड़े-टुकड़े करके उसमें से खाने का द्रव्य खा लेते हैं, फिर शेष टुकड़ों को बराबर रख कर जंगल से कोई जड़ी-बूटी लाते हैं और खण्ड-खण्ड हुए सांप के शरीर पर उसे लगाकर सांप को जीवित कर देते हैं। यह बात बिल्कुल असम्भव सी लगती है। परन्तु उस किसान का कथन है कि मैंने अनेक बार यह खेल अपनी आँखों से देखा है।

(ख) सुनने में आया है कि जब सांप और नेवले की लड़ाई होती है, उस समय सांप उसके शरीर पर काफी जोर

से डंक मारता है लेकिन जड़ी के प्रभाव से वह पुनः सज्जित होकर आ भिड़ता है और अन्त में उसे मार डालता है। (नेवले के पास एक जड़ी होती है जिसे छूते ही सांप का जहर उतर जाता है एवं घाव मिट जाता है।)

६. सांप–

(क) मेरठ में बदन पर बालवाला एक सांप था। वह सात फुट तीन इंच लम्बा एवं पांच फुट मोटा था। जहरीला इतना था कि डंक मारते ही मनुष्य के कपड़े जल गए एवं उसके शरीर के दो टुकड़े हो गए।

—हिन्दुस्तान, २५ सितम्बर, १९५२

(ख) अफ्रीका में ५० फुट लम्बे सांप पाये जाते हैं। जावा के निकटवर्ती द्वीप में उड़नेवाले भी सांप पाये जाते हैं।

—हिन्दुस्तान, २२ मार्च, १९७१

(ग) सर्पिणी की समझदारी—भद्रपुर (नेपाल) से ४-५ मील दूर रामगढ़ गांव के निकट एक खेत में सर्पिणी के बच्चे पड़े थे। उस खेतवाले को दया आई एवं एक कुंडे में डाल उन्हें खेत की खाई में रख दिया। पीछे से सर्पिणी आई और अपने बच्चों को न देखकर व्याकुल हुई। खेत में इधर-उधर काफी दौड़-धूप की लेकिन बच्चे न मिले। उसे बहुत ज्यादा प्यास लगी! खेत में पड़े हुए घड़े में से पानी पीया और जाते समय उसमें जहर डाल गई। फिर अपने बच्चों की खोज करती हुई वह खाई में पहुंची। बच्चे मिले, उन्हें लेकर वह उस पानी के

घड़े के पास आई और अपनी पूंछ के प्रहार से उसे औंधा कर दिया। संभवतः मतलब यह था कि उसका पानी पीकर कोई मर न जाये।

—भंवरलाल चंडालिया से श्रुत

(घ) **सांपों का हमला**—बगदाद, १६ मई (राय) कुर्दीपत्र 'अलताखी' के एक समाचार के अनुसार उत्तरी इराक के एक गांव कुर्दी जाल के निवासियों पर पिछले दिनों लगभग २०० पीले सांपों ने अचानक हमला किया। गांववालों ने छुरा और नंगी तलवारों से उनका सामना करके उनमें से ६५ को मार डाला। शेष भाग गए।

—हिन्दुस्तान, १८ मई, १९७१

७. चूहे—

(क) विश्व स्वास्थ्य-संगठन के विशेषज्ञों के मतानुसार चूहे-चुहिया के एक जोड़े से पैदा हुई सन्तानों से तीन वर्षों में ३५ करोड़ चूहे हो सकते हैं। लेकिन सौभाग्य की बात है कि ऐसा होता नहीं। चूहा-चुहिया का एक जोड़ा प्रति वर्ष ७० बच्चे पैदा कर सकता है। अगर वे सभी जीवित रह जाएँ तो उनसे तीन वर्षों में ३५ करोड़ चूहे हो जाएं।

—हिन्दुस्तान, १९ जनवरी, १९६८

(ख) बम्बई में ऐसे चूहे देखने में आए, जिनसे डर कर बिल्लियाँ भी भाग जाती हैं।

—धनमुनि

८. मेंढक–

(क) महेन्द्रगंज में एक बड़ा मेंढक १८ इञ्च लम्बे सांप के साथ लड़ा एवं उसे मार कर निगल गया।

—बम्बई समाचार, २७ सितम्बर १९५०

(ख) दक्षिणी अमेरिका में एक प्रकार का मेंढक पांच फुट लम्बे सांप को खा जाता है।

—कादम्बिनी, मई, १९६४

९. जलजन्तु–

(क) देवमासा मछली तीन दिन में ८०० माइल तैरती है।

—बम्बईसमाचार, २१ अगस्त १९५०

(ख) ह्वेल मछली १४० फुट लम्बी और १४० टन भारी होती है। उसके मुंह में २४ हजार दांत होते हैं। तीन-तीन सौ दांतों की ८० कतारें होती हैं।

—नवभारत टाइम्स, २८ मार्च, १९५१

(ग) अमरीका का समुद्री घोंघा प्रति वर्ष ४० करोड़ अण्डे देता है। कुछ सीपियां और खर हैं, जो प्रतिदिन ४१ हजार एवं एक वर्ष में १४४ करोड़ अण्डे देते हैं।

—कादम्बिनी, मई, १९६४

१०. कई अन्य पशु-पक्षी—

(क) पशुओं में चीता ७० मील प्रतिघंटा दौड़ सकता है, किन्तु अधिक लम्बा नहीं दौड़ सकता।

—साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ३१ अक्टूबर १९७१

(ख) शतुर्मुर्ग की गति प्रति घंटा २६ मील तक है। उसकी छोटी से छोटी पांख की कीमत ३०-४० रुपये हैं।

(ग) कबूतर ६० मील और चिड़िया कोई-कोई ३०० मील प्रतिघंटा उड़ सकती हैं।

—नवभारतटाइम्स, २८ मार्च, १९५१

(घ) लंदन के अजायबघर में सुमात्रा से एक अद्भुत छिपकली लायी गयी थी, वह १५ फुट लम्बी थी और उसकी जीभ १५ इंच लम्बी थी।

३ दृश्यमान विश्व में पशु-पक्षी

विश्व के पशुओं को दो वर्गों में रख सकते हैं—प्रथम वर्ग में पशु जो मनुष्य के भोजन के साधन हैं, जैसे—गाय, भैंस, भेड़, बकरी, सुअर और मुर्गी आदि। द्वितीय वर्ग में पशु जो बोझा ढोने अथवा सवारी के काम आते हैं; जैसे-घोड़े, गधे, खच्चर, बैल, ऊँट, याक आदि। प्रो० मारोग्रिया के अनुसार पृथ्वी पर ३५०० प्रकार के पशुओं में से केवल १७ पशु, १३००० प्रकार की चिड़ियों में से केवल ५ चिड़ियाँ और ४,७०,००० कीड़ों में से केवल दो प्रकार के कीड़े पालतू बनाये गये हैं। नीचे की तालिका में विश्व के कतिपय पालतू पशु-पक्षियों की संख्या देखिये :—

पशु	संख्या	पशु-पक्षी	संख्या
भेड़	६८ करोड़	ऊँट	६० लाख
गाय-बैल	७१ ,,	रेनडियर (बारहसींगा)	२० लाख
सुअर	२९ ,,	लामा आदि	२० लाख
बकरी	११ ,,	मुर्गियाँ	१ अरब ६० करोड़
घोड़े	६ ,,	बत्तखें	११ करोड़
गधे	१.५ ,,	हंस	७ करोड़ ३ लाख
खच्चर	१५ ,,	टर्की	२ करोड़ ३० लाख

मनुष्य—

१. मत्वा-हिताहितं ज्ञात्वा कार्याणि सीव्यन्तीति मनुष्याः ।

अपने हित-अहित को समझकर काम करते हैं, इसलिए मनुष्यों का नाम मनुष्य है ।

२. यो वै भूमा तदमृतं, अथ यदल्पं तद् मर्त्यम् ।

—छांदोग्योपनिषद्, ७।२४

जो महान् है, वह अमृत है—शाश्वत है और जो लघु है, वह मर्त्य है—विनाशशील है (मर्त्य नाम मनुष्य का है) ।

३. पात्रे त्यागी गुणे रागी, भोगी परिजनैः सह ।
शास्त्रे बोद्धा रणे योद्धा, पुरुषः पञ्च लक्षणः ।।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १४८

(१) पात्र को देनेवाला, (२) गुणों का अनुरागी, (३) परिजनों के साथ वस्तु का उपभोग करनेवाला, (४) शास्त्रज्ञ, (५) युद्ध करने में वीर । पुरुष के ये पाँच लक्षण हैं ।

४. मनुष्य का मापदण्ड उसकी सम्पदा नहीं, अपितु उसकी बुद्धिमत्ता है ।

—डी. एल. वास्वानी

५. हर आदमी की कीमत उतनी ही है, जितनी उन चीजों की है, जिनमें वह संलग्न है ।

—आरिलियस

६. अगर तू अपनी कीमत आँकना चाहता है तो धन-जायदाद-पदवियों को अलग रखकर अंतरंग जाँच करले ! —सेनेका

७. आदमी की कीमत का अंदाज इससे लगता है कि खुद अपनी नजर में उसकी क्या कीमत है।

८. मनुष्य समाज से तिरस्कृत होने पर दार्शनिक, शासन से प्रताड़ित होने पर विद्रोही, परिवार से उपेक्षित होने पर महात्मा और नारी से अनादृत होने पर देवता बनता है।

—महर्षि रमण

९. मनुष्य जो कुछ खाते हैं उससे नहीं, किन्तु जो कुछ पचा सकते हैं, उससे बलवान बनते हैं। धन का अर्जन करते हैं, उससे नहीं, जो कुछ बचा सकते हैं, उससे धनवान बनते हैं। पढ़ते हैं उससे नहीं, जो कुछ याद रखते हैं, उससे विद्वान् होते हैं। उपदेश देते हैं उससे नहीं, जो आचरण में लाते हैं, उससे धर्मवान बनते हैं—ये बड़े परन्तु साधारण सत्य हैं। इन्हें अतिभोजी, अतिव्ययी, पुस्तक के कीट और पाखंडी लोग भूल जाते हैं। —लार्ड बेकन

१०. यो न निर्गत्य निःशेषा-मालोकयति मेदनीम्।
अनेकाश्चर्यसम्पूर्णां स नरः कूपदर्दुरः॥

—चंदचरित्र, पृ. ८६

जो घर से निकलकर अनेकआश्चर्यपूर्ण पृथ्वी का अवलोकन नहीं करता, वह कुएं का मेंढक है।

११. अगनि उघाड़ी ना खटै, जल फूट्यां विगड़ंत।
नारी भटक्यां बीगड़ै, नर भटक्यां सुधरंत॥

१२. आदमी-आदमी में अन्तर, कोई हीरा कोई कंकर।

—हिन्दी कहावत

१३. मिनख रो काम मिनख सूं सौवार पड़ै।

—राजस्थानी कहावत

१४. मानवजाति दो बातों से नष्ट हुई है :—
विलासिता मे और द्वेष मे — शेक्सपियर

१५. गणित की अपेक्षा से मनुष्यों के चार आश्रमों का रहस्य—

(१) ब्रह्मचर्याश्रम जोड़ (+) है—इसमें वीर्य-विद्या-कला कौशल्य आदि इकट्ठे किये किए जाते हैं।

(२) गृहस्थाश्रम बाकी (−) है—इसमें संगृहीत वस्तु का खर्च होता है।

(३) वानप्रस्थाश्रम गुणाकार (×) है—इसमें हर प्रकार से गुणों की वृद्धि की जाती है।

(४) सन्यास-आश्रम भागाकार (÷) के तुल्य है—इसमें प्राप्त किये हुये तप-जप-ज्ञान-ध्यान आदि बांटे जाते हैं। अर्थात् उनका लोगों में प्रचार किया जाता है। —संकलित

५ मनुष्य का स्वभाव

१. पुरुकामो हि मर्त्यः । —ऋग्वेद १।१७९।५

मनुष्य स्वभाव से ही बहुत कामनावाला होता है।

२. उत्सवप्रिया हि मनुष्याः । —अभिज्ञान शाकुंतल

मनुष्य नित्य नये आनन्द के प्रेमी हुआ करते हैं।

३. (क) मनुष्याः स्खलनशीलाः । —संस्कृत कहावत

(ख) टू ईरर इज ह्यूमन । —अंग्रेजी कहावत

मनुष्य भूल करने की आदतवाले होते हैं।

४. पुढो छंदा इह माणवा । —आचारांग ५।२

संसार में मानव भिन्न-भिन्न विचारवाले होते हैं।

५. अणेगचित्ते खलु अयं पुरिसे ।
से केयणं अरिहए पूरइत्तए ॥ —आचारांग ३।२

यह मनुष्य अनेक चित्त है, अर्थात् अनेकानेक कामनाओं के कारण मनुष्य का मन बिखरा हुआ रहता है। वह अपनी कामनाओं की पूर्ति क्या करना चाहता है, एक तरह चलनी को जल से भरना चाहता है।

६. पकने पर कड़ुआ होनेवाला एक फल है—'मनुष्य'।

७. मनुष्य अपनी श्रेष्ठता को आंतरिकरूप से प्रकट करते हैं और पशुता को बाह्यरूप से। —रूसी कहावत

८. सिर्फ आदमी ही रोता हुआ जन्मता है, शिकायत करता हुआ जीता है और निराश होकर मर जाता है।

—सर वाल्टर टेम्पल

९. अनार्यता निष्ठुरता, क्रूरता निष्क्रियात्मता।
पुरुषं व्यञ्जयन्तीह, लोके कलुषयोनिजम् ॥

—मनुस्मृति १०।५८

अनार्यता, निष्ठुरता, क्रूरता और निष्क्रियात्मता-आलसीपन—ये चार्यं मनुष्य को नीचयोनि से उत्पन्न है—ऐसे प्रकट करनेवाले हैं।

११. नदी बहना नहीं छोड़ती, समुद्र मर्यादा नहीं छोड़ता, चाँद-सूर्य प्रकाश देना नहीं छोड़ते, वृक्ष फलना-फूलना नहीं छोड़ते, फूल सुगन्धि नहीं छोड़ता, तो फिर मनुष्य अपना स्वभाव-गुण क्यों छोड़ता है ?

१२. आदमी की अक्ल से अब डर रहा है आदमी,
आदमी को लूट कर घर भर रहा है आदमी।
आदमी ही मारता है, मर रहा है आदमी,
समझ कुछ आता नहीं, क्या कर रहा है आदमी ?
आदमी अब जानवर की, सरल परिभाषा बना है,
भस्म करने विश्व को, वह आज दुर्वासा बना है।
क्या जरूरत राक्षसों की, सृजने इन्सान को जब,
आदमी ही आदमी के, खून का प्यासा बना है।

—खुले आकाश में

६

मनुष्य का कर्तव्य

१. पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः । —ऋग्वेद ६।७५।१४

एक दूसरे की रक्षा-सहायता करना मनुष्य का पहला कर्तव्य है।

२. आनृशंस्यं परोधर्मः । —वाल्मीकिरामायण ५।३८।३६

मानवता का समादर करना मनुष्य का परमधर्म है।

३. अगरबत्ती की तरह जलकर भी दूसरों को सुगन्धित करना मनुष्य का कर्तव्य है।

४. यओज्दो मश्याइ अइपी जाँथम् वहिश्ता। —यस्न. हा. ४८।५

मनुष्य के लिए यह सबसे अच्छा है कि वह जन्म से ही पवित्र रहे।

५. मनुष्य के तीन मुख्य कर्तव्य हैं—

(१) दुश्मन को दोस्त बनाना,

(२) दुष्ट को सदाचारी बनाना,

(३) अशिक्षित को शिक्षित बनाना।

—शायस्त. ला. शायस्त २०।६ (पारसी धर्मग्रन्थ)

६. किं दुर्लभ ? नृ जन्म, प्राप्येदंभवति किं च कर्तव्यम् ?
आत्महितम हितसंग-त्यागो रागश्च गुरुवचने ॥

दुर्लभ क्या है ? मनुष्य-जन्म। इसे पाकर क्या करना चाहिए ? आत्मा का हित, कुसंग का त्याग और सद्गुरु की वाणी में प्रेम।

७ मनुष्य के लिए शिक्षाएँ

१. मनुष्य आकृति से जन है, उसे सज्जन या महाजन बनने की कोशिश करनी चाहिए, किन्तु दुर्जन बनने की कभी नहीं। उसे ऊपर चढ़ते रहना चाहिए, वरना नीचे गिर जाएगा।

२. हर एक आदमी भक्षक है, उसे उत्पादक होना चाहिए।

—एमर्सन

३. तीन कारणों से मनुष्य दूसरे के पास जाता है—सहायता देने, सहायता लेने और कुछ सीखने। यदि सहायता देने गया हो तो ऐसा न हो कि उसका बोझा बढ़ जाए। यदि सहायता लेने गया हो तो बाप बनकर नहीं ले सकता। यदि कुछ सीखने गया हो तो सुने-विचारे, लेकिन ऐसा न हो कि उल्टा सिखाने लगे।

४. विद्वांश्चेत् पठनोद्यतान् सरलया रीत्या मुदा पाठय,
शिल्पी चेदुचितश्च शिक्षय कला निष्कामबुद्ध्याखिलाः।
वक्ता चेदसि दर्शय प्रवचनैः सन्नीतिमार्गं सदा,
वैद्यश्चेत् कुरु रोगनाशनकृते तेषां व्यवस्थां शुभाम्।

रे मनुष्य! यदि तू विद्वान् है तो पढ़ने के इच्छुक व्यक्तियों को सरल

रीति से पढ़ा, यदि शिल्पी है तो निःस्वार्थभाव से दूसरों को सत्-कलाओं की शिक्षा दे, यदि वक्ता है तो अपने प्रवचनों द्वारा नीति-मार्ग का प्रदर्शन करे और यदि वैद्य है तो दुनिया में रोग-नाश की शुभ व्यवस्था करे।

८ मनुष्य का महत्त्व

१. गुह्यं ब्रह्म तदिदं वो ब्रवीमि।
न मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किंचित्॥

—महाभारत शान्तिपर्व २९९।२०

तुम लोगों को मैं एक बहुत गुप्त बात बता रहा हूँ, सुनो! मनुष्य से बढ़कर और कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है।

२. पुरुषो वै प्रजापतेः नेदिष्टम्। —शतपथब्राह्मण २।५।१।१

सब प्राणियों में मनुष्य सृष्टिकर्ता परमेश्वर के अत्यन्त समीप है।

३. बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः। —मनुस्मृति १।९६

बुद्धिमानों में मनुष्य सबसे श्रेष्ठ है।

४. नरो वै देवानां ग्रामः।

—तैत्तिरीय ताण्ड्यमहाब्राह्मण ६।९।२

मनुष्य देवों का ग्राम है अर्थात् निवासस्थान है।

५. मुसलमानों के 'हदीस' में अल्ला ने फरिश्तों से कहा है कि तुम इन्सान की सेवा करो।

६. गधे, घोड़े, गाय, भैंस आदि पशु नहीं समझते कि यह राज-महल है या ठाकुर जी का मन्दिर है अथवा जौहरीबाजार है, यहाँ मल-मूत्र का त्याग नहीं किया जाता जबकि

साधारण से साधारण मनुष्य भी इस बात को समझता है। क्योंकि मनुष्य में विवेक है।

७. राष्ट्र की सम्पत्ति तो मनुष्य है, रेशम, कपास, स्वर्ण नहीं।
–रिचार्ड हॉर्वे

८. यदि तुम पढ़ना जानते हो तो प्रत्येक मनुष्य स्वयं एक पूर्ण ग्रन्थ है।
–चेनिंग

९. संसार को स्वाद बनानेवाला एक नमक है—मनुष्य।

१०. मिनखां माया, बिरखां छाया।

११. आदमी री दवा आदमी, आदमी रा शैतान आदमी।
–राजस्थानी कहावतें

१२. मानवीय मस्तिष्क–

सुनार की पेटी में विराजमान चांदी का प्याला बोला—"बस ! मैं तो मैं ही हूँ।"

स्वर्णपात्र–चुप ! मेरे सामने तेरा अभिमान झूठा है।

हीरा–क्या मेरा तेज नहीं देखा, जो घमंड करता है?

पेटी–तुम सारे, क्यों मैं-मैं कर रहे हो, आखिर रक्षिका तो मैं ही हूँ।

ताला–चुप रह, वाचाल ! मेरे बिना तेरे में क्या है?

चाबी–तू तो मेरे इशारे पर नाचनेवाला है क्यों गरज रहा है?

हाथ–पगली ! मेरे बिना तो तू हिल भी नहीं सकती है !

सुनार बोला–अरे भाई ! यह सब मानवीय मस्तिष्क का प्रभाव है अतः बड़ा तो मानव ही है।

१३ मनुष्य के पीछे संसार–

कागज पर एक तरफ संसार का चित्र था और दूसरी तरफ मनुष्य का। पिता ने फाड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए। फिर अपने छोटे पुत्र से उसे जोड़ने के लिए कहा। बच्चे ने संसार का चित्र जोड़ने का काफी यत्न किया, किन्तु जुड़ नहीं सका। तब दूसरी तरफ मनुष्य का चित्र देखा। ज्योंही उसे जोड़ा, संसार भी जुड़गया। वास्तव में संसार मनुष्य के पीछे ही है।

१४. मनुष्य से विधाता भी चकित–

कहते हैं कि भाग्यफल सुनाकर विधाता ब्रह्मलोक से ३२ मनुष्य, मनुष्य-लोक में भेज चुके थे। तैंतीसवें का भाग्यफल इस प्रकार सुनाया जा रहा था—यह धनी-खानदान में जन्म लेकर सब तरह से सुखी होगा। पन्द्रह वर्ष की आयु में दुर्घटना-वश गूंगा बहरा होगा, माँ बाप मर जायेंगे, धन नष्ट हो जायगा, फिर भिखारी के रूप में भटकता-भटकता अंधा एवं कोढ़ी भी बन जायगा, ऐसे पूरे सौ वर्ष तक दुःखमय जीवन व्यतीत करेगा। बीच ही में मनुष्य बोल उठा–क्या सौ वर्ष ? बस, इतना कहने के साथ ही वह चीखता हुआ गिर पड़ा और मरगया।

११ मनुष्य जन्म की प्राप्ति

१. कम्माणं तु पहाणाए, आणुपुव्वी कयाइ उ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता, आययंति मणुस्सयं॥

—उत्तराध्ययन ३।७

क्रमशः कर्मों का क्षय होने से शुद्धि को प्राप्त जीव कदाचित् बहुत लम्बे समय के पश्चात् मनुष्य जन्म को प्राप्त होता है।

२. चउहिं ठाणेहिं जीवा मणुस्सत्ताए कम्मं पगरेंति तं जहा—पगइ-भद्दयाए, पगइविणीययाए, साणुक्कोसयाए, अमच्छरियाए।

—स्थानांग ४।४।३७३

चार कारणों से जीव मनुष्यगति का आयुष्य बांधते है, सरल प्रकृति से, विनीत-प्रकृति से, दयाभाव से और अमात्सर्यभाव से।

३. माणुसत्तं भवे मूलं, लाभो देवगइ भवे।
मूलच्छेएण जीवाणं, णरग-तिरिक्खत्तणं धुवं॥

—उत्तराध्ययन ७।१६

मनुष्यजन्म प्राप्त करना मूलधन की रक्षा है। देवत्व प्राप्त करना लाभस्वरूप है और नरक-तिर्यञ्च में जाना मूलधन को खो देना है।

१२ मनुष्य जन्म की श्रेष्ठता

१. मनुष्यजन्म से ही मुक्ति मिल सकती है, अतः यह जन्म सर्वश्रेष्ठ है।

२. स्वर्ग के देवता भी इच्छा करते हैं कि हमें मनुष्यजन्म मिले, आर्य देश मिले और उत्तम कुल मिले।

—स्थानांग ३।३।१७८

३. जैसे सामग्री के अभाव में राजमहल की अपेक्षा खेत की झोंपड़ी अच्छी है, उसी प्रकार धर्मसामग्री का अभाव होने से स्वर्ग की अपेक्षा मनुष्यलोक श्रेष्ठ है। कहा जाता है कि भक्ति से प्रसन्न होकर गोपियों के लिए इन्द्र ने विमान भेजा, तब गोपियों ने कहा—

'व्रज वहालुं मारे वैकुंठ न थी जावुं'
त्यां नंदनोलाल क्यां थी लावुं। —वैष्णवी मान्यता

४. अमेरिका के डाक्टर थोमर कहते हैं कि तुम्हारा भार उठानेवाली पृथ्वी से स्वर्ग को अधिक मानो तो तुम्हें इस पृथ्वी पर पैर भी नहीं रखना चाहिए।

५. मनुष्यजीवन अनुभव का शास्त्र है। —विनोबा

६. मनुष्यजीवन की तीन बड़ी घटनाएँ विवाद से पूर्णतया परे हैं—जन्म, विवाह और मृत्यु।

७. मानवजीवन के पाँच रत्न हैं—(१) प्रेम अर्थात् मिलनसारी, (२) मित्रता—अक्रोध-भाव, (३) शान्ति-भाव—क्षमा (४) संयम—नियमितता (५) समता-संतोष।

८. पात्रे दानं सतां सङ्गः, फलं मनुष्यजन्मनः।

—सूक्तरत्नावली

मनुष्यजन्म का फल है—सुपात्र को दान देना और सत्संग करना।

९. जिह्वे! प्रह्वीभव त्वं सुकृति-सुचरितोच्चारणे सुप्रसन्ना,
भूयास्तामन्यकीर्ति श्रुति रसिकतया मेऽद्यकर्णौ सुकर्णौ।
वीक्ष्यान्य प्रौढ़लक्ष्मी द्रुतमुपचिनुतं लोचने! रोचनत्वं,
संसारेऽस्मिन्नसारे फलमिति भवतां जन्मनो मुख्यमेव॥

—शान्तसुधारस, प्रमोदभावना १४

हे जीभ! धार्मिकों के दानादि गुणों का गान करने में अत्यन्त प्रसन्न होकर तत्पर रहो। कानो! दूसरों की कीर्ति सुनने में रसिक होकर सुकर्ण (अच्छे कान) बनो। नेत्रो! दूसरों की बढ़ती हुई लक्ष्मी को देखकर प्रसन्नता प्रकट करो। इस असार-संसार में जन्म पाने का तुम्हारे लिए यही मुख्य फल है।

१३ मनुष्य-जन्म की दुर्लभता

१. माणुस्सं खु सुदुल्लहं। —उत्तराध्ययन २०।११

मनुष्यजन्म मिलना अत्यन्त कठिन है।

२. कबीरा नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर-पट्टन यह गली, बहुर न देखो आय।

३. बड़े भाग्य मानुष तनु पावा,
सुरदुर्लभ सद्ग्रन्थहि गावा। —रामचरितमानस

४. दुर्लभं त्रयमेवेतद्, देवानुग्रहहेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं, महापुरुष संश्रयः॥ —शंकराचार्य

ये तीन चीजें दुर्लभ एवं सद्भाग्य की कृपा के कारण हैं। मनुष्यता, मुमुक्षुता और महापुरुषों की संगति।

५. चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमंमि य वीरियं॥
—उत्तराध्ययन ३।१

संसार में सब जीवों के लिए चार परम अंग (उत्तम संयोग) दुर्लभ हैं—(१) मनुष्यता, (२) धर्म-श्रवण, (३) धर्म में श्रद्धा, (४) संयम में वीर्य-पराक्रम करना।

६. छठाणाइं सव्वजीवाणं सुलभाइं भवंति—
तं जहा—माणुस्सए भवे, आरिए खित्ते जम्मे, सुकुले पच्चायाती, केवलिपन्नत्तस्स, धम्मस्स सवणया, सुयस्स वा सद्दहणया, सद्दहियस्स वा पत्तियस्स वा रोइयस्स वा सम्मं काएणं फासणया।

—स्थानांग ६।४८५

छः वस्तुएँ सभी जीवों के लिए दुर्लभ हैं—(१) मनुष्य-भव (२) आर्य क्षेत्र (३) उत्तमकुल में जन्म (४) केवलीप्ररूपित धर्म का सुनना (५) उस पर श्रद्धा-प्रतीति—रुचि करना (६) उसके अनुसार आचरण करना।

१४ दुर्लभ मनुष्यजन्म को हारो मत !

१. दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं, हारयध्वं मुधैव मा।

—पार्श्वनाथचरित्र

दुर्लभ मनुष्यजन्म को पाकर व्यर्थ मत गवाओ।

२. नर को जनम बार-बार ना गवार सुन,
अजहु सवार अवतार ना बिगोइये।
लीजेगो हिसाब तब दीजेगो जबाब कहा,
कीजे जु सताब तो सताबे शुद्ध होइये।
पाप करके अज्ञानी सुख की कहा कहानी,
घृत की निशानी कित पानी जो बिलोइये।
स्वारथ तजी जे परमारथ किसन कीजे,
जनम पदारथ अख्यारथ न खोइये।
नदी-नाव को सो योग मिल्यो लख लोग तामें,
काको-काको कीजे शोक काकूं-काकूं रोइये।
को है काको मित्त तापे काहे काको चित परो,
सीतपति मन में निचित होय सोइये।
ध्याइये न विमुख उपाइये न कैते दुःख,
बोइये न बीज जोपे आक बीज बोइये।

४. (क) रोम में एक ऐसा आदमी है जो सिर के बल चलता है, तथा उसका कहना है कि उल्टे होकर देखो तो दुनियां सीधी दिखाई देगी।

(ख) एशिया का सबसे लम्बा आदमी १० फुट ५ इंच है।

—सर्जना, पृष्ठ ३३

५. छियानवे इंच की मूंछ-सौराष्ट्र में लाठी ग्राम का रहीश जाति का अहीर एवं नाम अर्जुन डांगर था। उसकी मूंछ ९६ इंच लम्बी थी। वह १९३३ के विश्व-मेले में अमेरिका गया था।

६. बंगाल-बेलकोबा ग्राम में एक मनुष्य का पग २८ इंच था।

७. सात अंगुलि वाले–

सबेरा-डी-वीटरेगो नामक स्पेन के एक गाँव में प्रत्येक आदमी के हाथों-पैरों के सात-सात अंगुलियां (छः अंगुलियाँ और एक अंगूठा) हैं। उनके शादी-विवाह भी सात अंगुली-वालों में होते हैं। पांच अंगुली वाले मनुष्यों को देख कर वे अचम्भा करते हैं। —हिन्दुस्तान १३ जून, १९७१

८. तीन सांप खानेवाला आदमी–

ग्वालियर में सिनेमा के ओवरटाइम में एक आदमी बीन बजाकर सांपों को अपने सामने खड़ा कर लेता था एवं बुडका भरकर उन्हें खा जाता था। उसने कई दिनों तक २-३ साँप खाकर लोगों को चमत्कार दिखाया।

—इन्द्रचन्द्र नवलखा से श्रुत

९. तुर्की के इस्तम्बूल शहर में रहनेवाला अहमद नामक व्यक्ति सर्पों को जीवित ही निगल जाता है।

—विचित्रा, वर्ष ३, अंक ४, १९७२

१०. इंजेक्शन द्वारा काले नाग का विष निकालने वाले वैद्य—

वि. सं. १९९६ की बात है। हम कई साधु कारणवश सुजानगढ़ में ठहरकर दवा ले रहे थे। वहाँ चोपड़ा औषधालय में एक काला नाग निकला। बड़नगर वाले वैद्य—श्रीभगवतीप्रसाद जी ने उसे पकड़ा एवं इंजेक्शन द्वारा उसकी दाढ़ से जहर निकाला। आश्चर्यचकित सैकड़ों लोगों ने उस चमत्कार को देखा। पूछने पर वैद्यजी ने कहा—काले साँप का ऐसा शुद्ध जहर मिलना बहुत मुश्किल है। यह समय पर अमृत का काम करता है। मरते समय जब मनुष्य की जबान बन्द हो जाती है, इसकी एक मात्रा देने पर तत्काल मनुष्य एक बार बोलने लग जाता है।

—धनमुनि

११. विचित्र सर्प फार्म चलाने वाले अमेरिकन नवयुवक—

अमेरिकन नवयुवक-विटेकर रोम्युलस—जिन्हें बचपन से ही साँपों से अपूर्व स्नेह रहा है, केवल ६ वर्ष की आयु में ही साँपों से ऐसे हिल-मिल गये थे मानो वे उनके अंतरंग साथी हों। साँपों के साथ इतना निकट का लगाव होने के कारण वे १९६२ से १९६५ तक मियामी के विश्वविख्यात सर्प-अनुसन्धान फार्म में सहकारी डाइरेक्टर का कार्य करते रहे। १९७० वर्ष के आरम्भ में विटेकर को अन्तर्राष्ट्रीय पशु-

संरक्षण-संस्था से आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ। फलतः उन्होंने मद्रास में अपना विचित्र सर्प-फार्म खोला। इस एक एकड़ के सर्प फार्म में लगभग ३० जातियों के ३०० से भी अधिक सांप हैं। यहाँ साँपों का जहर निकाला जाता है। इसकी विष निकालने की प्रणाली भी अद्भुत एवं खतरनाक है। सांप को एक पतली छड़ से जिसके सिरे पर मुड़ा हुआ 'हुक' लगा होता है, सावधानी से पूरा दबोच लिया जाता है। फिर गर्दन से पकड़ कर सांप को एक पतली झिल्ली से मढ़े हुए कांच के शीशे पर डंक मारने को मजबूर किया जाता है, साथ ही साथ गर्दन पर दबाव किया जाता है, जिससे मटमैले रंग का तरल विष शीशे में उतर आता है। यह विष यथाशीघ्र बम्बई के हाफकिन इन्स्टीट्यूट में भेज दिया जाता है। वहाँ उसकी अल्पमात्रा घोड़े के शरीर में सुई द्वारा प्रविष्ट की जाती है। क्रमशः घोड़े के रक्त में जहरमोहरा पैदा हो जाता है, जिसका प्रयोग सांप द्वारा काटे हुये व्यक्ति पर किया जाता है।

—साप्ताहिक, हिन्दुस्तान, १ अगस्त १९७२

१२. रूमानिया का 'कैरोलग्रेन' नामक व्यक्ति अभी तक न सोया है और न उसको झपकी ही आई है।

—हिन्दुस्तान, १३ जून, १९७१

१३. साठ साल से नहीं सोया—(मैड्रिड २६ सितम्बर) कृषि-फार्म में काम करनेवाला ७८ वर्षीय 'वेलेन्टिन

मेंडिना' गत ६० सालों से नहीं सोया है। वह २४ घण्टे काम करके तिगुना वेतन प्राप्त करता है। मेंडिना २४ घण्टों में दो बार नाश्ता, दो बार लंच तथा दो बार डिनर खाता है। —हिन्दुस्तान, २८ सितम्बर, १९६४

१४. जोधपुर में 'भोपालचन्दजी लोढ़ा' के सरकारी आरोप लगने से, दिल पर ऐसा धक्का लगा कि वे बेहोश हो गये। ७ वर्ष बाद एक दिन अचानक तानें आईं और उनकी बेहोशी दूर हो गई। —जोधपुर में श्रुत

१५. भारत के प्रसिद्ध साइकिल-चालक एवं कलाकार 'श्री एम. कुमार जौनपुरी' ने हिण्डौन में लगातार १०४ घण्टे तक साइकिल चलाने का सफल प्रदर्शन कर हजारों दर्शकों की प्रशंसा अर्जित की। उनके विविध प्रदर्शनों को देखने के लिये चार दिनों तक गांवों तथा नगर के हजारों लोगों का तांता लगा रहा। श्री जौनपुरी ने साइकिल चलाते हुए स्नान करना, वस्त्र बदलना, जलपान करना आदि अनेक रोचक कार्यक्रम प्रदर्शित किये।

—हिन्दुस्तान, २४ अगस्त, १९७१

१६. बेल्जियम का 'अलाइस द क्रिमी' नामक ढोल बजाने वाला सुबह छः बजे से शाम के छः बजे तक लगातार (आधे घण्टे की खाने की छुट्टी के अलावा) ढोल बजाता था और इन बारह घंटों में ५५ मील पैदल चलता था।

—सरिता, अंक ३९५, सितम्बर, १९७१

१७. पिलबर्न के 'विलियम हेगरी' नेत्रहीन थे पर उन्होंने अंधेपन

के बावजूद अपनी जिन्दगी में १० लाख मील की यात्रा की, इसमें से उन्होंने दो लाख मील घोड़े की पर यात्रा की। —सरिता अंक-३९५, सितम्बर १९७१

१८. **पैदल चलने का नया विश्व रिकार्ड**—इंग्लैंड के दूर पैदल यात्री ५३ वर्षीय 'वाकरजौनसिक्लेयर' ने ऑकलैंड के निकट ग्राण्ड की रेस ट्रैक में लगातार चलते हुए २१८ मील ९० गज सफर किया (उसका पिछला रिकार्ड २१५ मील १६०० गज का था) उसने ६० घण्टे ४२ मिनिट लगाए। —**हिन्दुस्तान, २ अप्रेल, १९७१**

१९. **सबसे मोटे मनुष्य**—

(क) अमरीका के फ्लोरिड्स के जेक्सानविल का 'चार्ल्स स्लेन मेटज' ५२ स्टोन १२ पौंड (७४० पौंड) का था। वह ३८ वर्ष की आयु में मरा। मरते समय उसकी कमर ११५ इंच की थी।

(ख) अमरीका के उत्तरी करोलीना का 'माइल्स डारडेन' का वजन १००० पौंड था। वह ७ फुट ८ इंच ऊँचा था।

(ग) एक अमरीकी नीग्रो महिला दुनियाँ की सबसे भारी औरत है। वह ८४० पौंड की है।

(घ) अमरीका के इण्डियाना का 'रौबर्ट अर्ल ह्यूजस' १०६७ पौंड का था। अस्पताल के दरवाजों में से उसका घुसना असम्भव था। उसके लायक कोई चारपाई भी न थी। —**हिन्दुस्तान, ११ जुलाई, १९७०**

(ङ) अमेरिका के एक आदमी का वजन ५८८ पौंड एवं उसकी स्त्री का वजन ४८८ पौंड था। पुरुष की लम्बाई पाँच फीट चार इंच थी एवं उसका सीना छः फीट चार इंच चौड़ा था।

२०. **पाषाणयुगीन कबीला**—मनीला (फिलिपाइन) से ५०० मील दक्षिण की ओर मिण्डानाओ द्वीप में एक ऐसे कबीले का पता चला है जो पाषाणयुग के लोगों की तरह रहता है। इन लोगों को न भाषा का ज्ञान है, न ही इन्होंने कभी चावल, चीनी या रोटी खाई है और न नमक चखा है। ये लोग मांस या जंगली घास खाते हैं एवं चमड़ा पहनते हैं। इस कबीले का नाम तासाडस है एवं विश्व में इन लोगों की संख्या बहुत ही थोड़ी है। इनके हथियार पत्थर या बाँस के होते हैं।

—हिन्दुस्तान १० जुलाई १९७१

२१. **विश्व का सबसे छोटा मनुष्य**—आस्ट्रेलिया निवासी जार्ज डावी का क़द १ फुट ४ इंच अर्थात् २१. १/२ अंगुल का है। आयु ४६ वर्ष की है। द्वितीय महायुद्ध में जार्ज एक कुशल गुप्तचर (सी. आई. डी.) का काम करते थे। महायुद्ध के बाद उन्होंने अपना अधिकांश समय होटलों में व्यतीत किया।

अनोखा विवाह—श्रीमती जार्ज की जार्ज से पहली भेंट पेरिस में हुई थी। उन्होंने देखते ही कौतूहलवश जार्ज को गोदी में उठा लिया और पूछा—क्या मेरे घर चलोगे?

४. एक हबशी स्त्री के होठ १४ इंच लम्बे हैं। उन पर छोटी रकाबी रखी जा सकती है।

५. बेंगलोर-कांग्रेस-प्रदर्शनी १९६७ में एक २२ वर्षीया तरुणी देखने में आई। उसके शरीर में निरन्तर बिजली प्रवाहित होती थी। उसके शरीर के किसी भी भाग में बिजली के बल्ब लगाने से बल्ब प्रकाशित हो उठते थे। ५ से १० हॉर्स पॉवर की मोटर का तार पकड़ते ही वह स्टार्ट हो जाती थी। उसे भोजन आदि काष्ठ के बर्तनों में दिया जाता था। जब कोई व्यक्ति उस युवती को स्पर्श करता तो एक जोर का झटका (शॉक) लगता था।

—सहदेवसिंह

६. ओहियो अमेरिका में रबर की वस्तुएँ बनानेवाले एक कारखाने में रोज कहीं न कहीं छोटी-मोटी आग बड़े रहस्यमय ढंग से लग जाती थी। मालिक ने प्रो. "रोबिन बीच" को जाँच-पड़ताल के लिए बुलवा भेजा। सारी बात सुनकर प्रो. साहब ने एक-एक कर सभी मजदूरों को धातु की एक चादर पर खड़े होने के लिए कहा। मजदूरों में एक जवान औरत जब धातु की चादर पर आकर खड़ी हुई तो अचानक मीटर की सुई ने एक गहरी छलांग लगाई। उसके शरीर में ३०,००० वोल्ट की इलेक्ट्रो-स्टेटिक बिजली और ५००,००० ओ एच. एम. एस. की प्रतिरोध शक्ति (रेसिस्टेंट) मौजूद थी।

प्रो. ब्लीच ने घोषणा की—"इस कारखाने में अग्नि-विस्फोट की जड़ यही है।" —विचित्रा वर्ष ३, अंक ४, १९७१

६. आस्ट्रिया के ड्यूक फ्रेडरिक पंचम की पत्नी के हाथ इतने मजबूत थे कि वह लकड़ी के मोटे तख्ते में मुक्का मारकर कील ठोक देती थी।

—सरिता, सितम्बर अंक २९५, १९७१

☼

२०.

वैज्ञानिकों के मतानुसार पृथ्वी आदि का जन्मकाल

१. पृथ्वी का जन्मकाल २०० करोड़ वर्ष पूर्व, प्राणियों का उद्‌भव ३० करोड़ वर्ष पूर्व, मनुष्यों का जन्म तीस लाख वर्ष पूर्व, ज्योतिष विद्या तीस हजार वर्ष पूर्व, दूरवीक्षण यन्त्र व आधुनिक विज्ञान ३०० वर्ष पूर्व उत्पन्न हुए।

—सर जेम्स जीन्स 'बॅगयो' से

२. भू-शास्त्री जेली के मतानुसार सागर की न्यूनतम आयु ७० करोड़ एवं अधिकतम दो अरब ३५ करोड़ वर्ष निश्चित की गई है। शैल-प्रमाणों से तथा हिलियम विधि से पृथ्वी की आयु दो अरब वर्ष से अधिक मानी गई है। खगोलीय आधारों पर पृथ्वी की आयु दस अरब वर्ष, सूर्य की आठ अरब वर्ष, चन्द्रमा की चार अरब वर्ष लगभग मानी गई है। 'हेरोल्ड जेफरीस' के मतानुसार आज से लगभग चार अरब वर्ष पूर्व चन्द्रमा पृथ्वी से आठ हजार मील दूर था किन्तु दूरी बढ़ते-बढ़ते आज लगभग ढाई लाख मील दूर हो गया। —नवभारत, ८ मार्च, १९६९

—(केदारनाथ प्रभाकर, सहारनपुर)

३. भूगर्भ संसार की खोज—

विख्यात शोधक और लेखक "डा. रेमोण्ड बरनार्ड ए. बी. एम. ए. पी-एच. डी. न्यूयार्क विश्वविद्यालय" अपनी नवीन पुस्तक **दी हॉलो अर्थ** में लिखते हैं कि–उड़न चकियों का असली गृह एक विशाल भूगर्भ-संसार है, जिसका प्रवेशद्वार उत्तरीय ध्रुव के एक मुखद्वार में है। पृथ्वी के खोखले अन्तरिक्ष में एक मानवोत्तर जाति निवास करती है। जो सतह पर रहनेवाले मनुष्यों से कोई सम्बन्ध रखना नहीं चाहती! उसने अपनी उड़नचकियों को तभी उड़ाना प्रारम्भ किया, जब मनुष्यों ने अणुबमों के विस्फोटों से दुनियाँ को त्रस्त कर दिया।

डा. बरनार्ड आगे लिखते हैं कि एडमीरल बार्ड ने एक नौकादल को उक्त ध्रुवीय मुखद्वार में प्रवेश करने का अधिनायकत्व किया तथा इस भूगर्भस्थित लोक में पहुँचे। यह लोक तुषार और हिम से स्वतन्त्र है। इसमें जंगलाच्छादित पर्वत श्रेणी हैं। झीलें, नदियाँ वनस्पति तथा विभिन्न पशु भी हैं। इस आविष्कार के समाचार को अमरीका सरकार ने रोक लिया, जिससे दूसरे देश भवान्तरीण लोक पर हक कायम न कर लें। इस भूगर्भ लोक का क्षेत्र उत्तरीय अमेरिका क्षेत्र से अधिक विस्तृत है। पृथ्वी की सतह से ८०० मील नीचे एक नवीन संसार की खोज मानव इतिहास की महानतम खोज है, जिसमें लाखों उच्चतर बुद्धिमान लोग निवास करते हैं।

—मोहन, बांठिया "चंचल" जैनभारती, ७ नवम्बर, १९६५

२१. दृश्यमान जगत की आबादी

१. अनुमान है कि पत्थर युग में इस दुनियां की जनसंख्या एक-डेढ़ करोड़ थी। दो हजार वर्ष पूर्व क्राइस्ट के युग में यह जनसंख्या २० करोड़ हो गई। ईसवी सन् १६५० में पचास करोड़, १७५० में सत्तर करोड़, १८५० में करीब एक अरब, १९०० में डेढ़ अरब और १९६० में डेढ़ से तीन अरब हो गई।
—जैनभारती, अंक २३

२. संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के अनुसार सन् १९६३ के मध्य तक विश्व की आबादी ३ अरब १८ करोड़ थी।
—हिन्दुस्तान २४ अक्टूबर, १९६३

३. वर्ल्ड रेडियो टी. वी. हैंडबुक १९७१ संस्करण के अनुसार वर्तमान विश्व की जनसंख्या ३,५२,८७,७०,५५८ है। (कुछ देशों की जनसंख्या उपलब्ध नहीं हो सकी है।)

४. विश्व में प्रति मिनट १२५, प्रतिदिन एक लाख ८० हजार, प्रति मास ५० लाख और प्रति वर्ष ६ करोड़ ४८ लाख मनुष्य बढ़ते हैं।
—नवभारत ६ दिसम्बर १९६५

५. विश्व में प्रति घंटा १३५०० मनुष्य पैदा होते हैं और ६५०० मरते हैं।
—हिन्दुस्तान, २८ अगस्त, १९६६

६. विश्व में प्रति मिनट ५९, प्रतिदिन ८५ हजार और प्रतिवर्ष ३ करोड़ **गर्भपात** कराये जाते हैं।

—नवभारत, ७ सितम्बर, १९७१

७. विश्व के महासागर एवं महाद्वीप—

१. वैज्ञानिकों की दृष्टि में इस दृश्यमान पृथ्वी के धरातल का १/३ भाग स्थल है और २/३ भाग जल है। स्थल के ७ बड़े-बड़े खण्ड हैं जिन्हें महाद्वीप कहते हैं तथा जल के ५ बड़े-बड़े खण्ड हैं, जिन्हें महासागर कहते हैं।

२. महासागर के नाम	क्षेत्रफल वर्गमीलों में
१—प्रशान्त महासागर	६,३८,०१६६८
२—अन्ध महासागर	३,१८,३९,३०६
३—हिन्द महासागर	२,८३,५६,२७६
४—उत्तरी ध्रुव महासागर ५—दक्षिणी ध्रुव महासागर (आर्कटिक महासागर)	५४,४०,१९३

३. महाद्वीपों के नाम	क्षेत्रफल (वर्गमील)	जनसंख्या (७०.)
१—एशिया	१,७४,६१,५८३	१,९६,९१,६५,७८९
२—अफ्रीका	१,१९,९६,५ २	३४,०९,८१,६९९
३—यूरोप	३५,२५,७५५	७०,२४,९६,६४५
४—उत्तरी अमेरिका	९३,५७,०२६	४९,६[illegible],२४,७९७
५—दक्षिणी अमेरिका	६८,६८,०९८	
६—आस्ट्रेलिया	३३,०३,००२	२,००,०१,६२८
७—अंटार्कटिका	५१,००,०००	आबाद नहीं है।

[महाद्वीपों के निकटवर्ती देशों की जनसंख्या उन-उन महाद्वीपों के साथ जोड़ी गई है, जिन-जिनके वे विशेष निकट हैं।]

४. **महाद्वीपों का संक्षिप्त परिचय :—**

● **एशिया**—यह सबसे बड़ा महाद्वीप है। इसमें लगभग सभी प्रकार की जल-वायु, वनस्पति, जीव-जन्तु और मनुष्य मिलते हैं। यूरोप भी वास्तव में इसी महाद्वीप का एक बड़ा पश्चिमी प्रायद्वीप है।

यह पूर्वी गोलार्द्ध (पुरानी दुनिया) में भूमध्य रेखा से उत्तरी ध्रुव देश तक स्थित है। इसके उत्तर में उत्तरी ध्रुव सागर, पूर्व में प्रशान्तमहासागर दक्षिण में हिन्दमहासागर और पश्चिम में रक्तसागर, अफ्रीका, रूमसागर, कृष्ण-सागर, कॅस्पियनसागर, यूरालपर्वत और यूरोपमहाद्वीप हैं।

● **अफ्रीका**—एशिया के बाद अफ्रीका संसार के शेष महाद्वीपों में सबसे बड़ा है। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह एशिया का दो तिहाई है, लेकिन इसकी आबादी एशिया का कुल साढ़े पाँचवा हिस्सा है। एशिया और यूरोप इसके निकट के पड़ोसी हैं। अफ्रीका और यूरोप को जिब्राल्टर-जलसंधि अलग करती है, तथा अफ्रीका और एशिया को स्वेज-थल संधि मिलाती है।

अफ्रीका के उत्तर में कर्क रेखा के निकट संसार का सबसे बड़ा मरुस्थल **सहारा** है। दक्षिण में मकर रेखा के निकट **कालाहारी** मरुस्थल है। इस महाद्वीप में विक्टोरिया, टांगानीका आदि झीलें तथा नील, काङ्गो आदि नदियां हैं।

इस महाद्वीप के अन्तर्गत मिश्र देश में सन् १८६६ में स्वेज स्थल-डमरुमध्य[1] को काट कर १६० किलोमीटर लम्बी जहाजी-नहर बनाई गई। इसका नाम स्वेज नहर है। वह रक्तसागर और रूमसागर को मिलाती है। उसके बनने से पहले यूरोप से भारत आदि पहुंचने के लिये सारे अफ्रीका महाद्वीप का चक्कर लगाना पड़ता था। अब ७००० किलो मीटर की बचत हो गई है।

● **यूरोप**—महाद्वीप यूरोप एशिया के पश्चिम में और अफ्रीका के उत्तर की ओर स्थित है। वास्तव में यूरोप और एशिया एक ही महान् भू भाग है, जिसे यूरेशिया कहते हैं। यूरोप के उत्तर में उत्तरी ध्रुव सागर है, दक्षिण में रूम सागर, कृष्ण सागर और काफ पर्वत है, पश्चिम की ओर अन्ध महासागर है और पूर्व में कैस्पियन सागर, यूराल पर्वत और एशिया महाद्वीप है। यह महाद्वीप आस्ट्रेलिया को छोड़कर शेष सभी महाद्वीपों से छोटा है परन्तु धन-सम्पत्ति, व्यापार, शिक्षा-दीक्षा और सामाजिक उन्नति की दृष्टि से संसार भर में सबसे प्रथम स्थान पर है।

● **उत्तरी अमेरिका**—यह संसार के सात-महाद्वीपों में तीसरा सबसे बड़ा महाद्वीप है। सिर्फ एशिया और अफ्रीका ही क्षेत्र में इससे बड़े हैं। जनसंख्या की दृष्टि

नोट १ **स्थल डमरुमध्य**—ऐसे तंग भू भाग को कहते हैं, जो दो बड़े भू भागों को जोड़ता है।

से भी इसका नम्बर एशिया और यूरोप के बाद तीसरा है।..........उत्तरी अमेरिका अनेक देशों में बंटा हुआ है। उनमें सबसे बड़ा कनाडा है। उसके बाद संयुक्त राज्य अमेरीका है। (जिसके अन्तर्गत ५० राज्य हैं। इसीलिए इसके राष्ट्रध्वज पर ५० सितारे लगाये गये हैं।) अन्य देश काफी छोटे हैं।

- **दक्षिणी अमरीका**—दक्षिणी अमरीका महाद्वीप उत्तरी अमरीका से छोटा है, किन्तु यूरोप से लगभग दुगना है। दक्षिणी अमरीका छोटे-बड़े अनेक देशों में विभक्त है। इनमें सभी तरह के देश हैं। सबसे बड़ा देश ब्राजील जो सबसे छोटे देश फ्रेंच गायना से लगभग २००० गुना है। इन देशों में स्पेनी और पुर्तगाली भाषाओं का प्रयोग होता है। ये दोनों ही भाषाएँ लैटिन भाषा से निकली हैं। इसीलिए इन्हें लातिन-अमरीकी देश कहा जाता है।

- **मध्य अमरीका**—उत्तरी अमरीका का मेक्सिको से दक्षिण वाला पतला-सा भाग दक्षिणी अमरीका तक चला गया है। इस भाग को मध्य अमरीका कहते हैं। मध्य अमरीका में मेक्सिको आदि अनेक देश हैं। लगभग दस मील चौड़ी जमीन की पट्टी, जिसमें से होकर पनामानहर बहती है, अमेरिका के अधिकार में है। मध्य अमेरिका के अधिकतर निवासी पूर्ण या आंशिक रूप से इंडियन-आदिवासी हैं।

- **आस्ट्रेलिया**—यूरोप वालों को आस्ट्रेलिया महाद्वीप का पता सब महाद्वीपों के अंत में लगा। सन् १७७० में कप्तान

कुक ने इसकी खोज की। यहाँ विशेष रूप से गेहूं की खेती होती है और सोने-तांबे-चांदी शीशे आदि की खानें हैं तथा भेड़ों को बड़े पैमाने पर पाला जाता है। कुल मिलाकर यहाँ १३०००००० भेड़ें हैं। दुनियाँ की एक तिहाई ऊन आस्ट्रेलिया से ही आती है।

—नवीन राष्ट्रीय एटलस तथा सचित्र विश्वकोश
भाग १० के आधार से—

८. वर्तमान विश्व के देश, उनकी जनसंख्या एवं राजधानियाँ—

१. (एशिया—जनसंख्या १,९६,९१,६५,७८९)

देश	जनसंख्या	राजधानी
१. अफगानिस्तान	१,६०,००,०००	काबुल
२. बहराइन	२,०२,०००	बहराइन
३. ब्रुनेई	१,५०,०००	ब्रुनेई
४. बर्मा	२,६३,६०,०००	रंगून
५. कम्बोडिया	६६,६०,०००	नोमपेन्ह
६. श्रीलंका	१,२५,००,०००	कोलम्बो
७. चीन (जनवादी)	७४,००,००,०००	पेकिंग
८. चीन (गणतन्त्र ताइवान)	१,४४,७६,४७८	ताईपेई
९. हाँगकाँग	४०,२९,७००	हाँगकाँग
१०. भारत	५२,७०,००,०००	नई दिल्ली
११. इंडोनेशिया	११,३०,००,०००	जकार्ता
१२. ईरान	२,६९,६५,०००	तेहरान

१३.	ईराक	८६,३६,०००	बगदाद
१४.	इजरायल	२६,७५,७३५	जेरूशलम
१५.	जापान	१०,२०,००,०००	टोकियो
१६.	जॉर्डन	२१,४०,०००	अम्मान
१७.	कोरिया (उत्तरी)	१,३२,५०,०००	प्योंगयांग
१८.	कोरिया (दक्षिणी)	३,१८,००,०००	सियोल
१९.	कुवेत	५,४१,०००	कुवेत
२०.	लाओस	३०,००,०००	वियेनतियान
२१.	लेबनान	२७,३४,४४५	बेरूत
२२.	मकाऊ	२,६९,०००	मकाऊ
२३.	मलयेशिया	१०,३,६०,०००	कुआलालम्पुर
२४.	मालदीव	१,१०,७५०	माले
२५.	मंगोलिया	१,१,७५,०००	ऊलानबातर
२६.	मस्कट एवं अमन		ओमन
२७.	नेपाल	१,१,०४४,०००	काठमांडू
२८.	पाकिस्तान	११,२०,००,०००	रावलपिंडी[1]
२९.	फिलिपिन्स	३,७०,००,०००	मनीला
३०.	क्वेटर	८१,०००	डोहा
३१.	र्‍यूक्यू द्वीपसमूह	९,६८,०००	औकिनावा
३२.	सऊदी अरब	७२,००,०००	रियाध
३३.	सिंगापुर	२१,७५,०००	सिंगापुर
३४.	दक्षिण यमन(गणराज्य)	१३,००,०००	अदन
३५.	सीरिया	६०,३६,०००	दमिश्क

1. अभी इस्लामाबाद

३६.	सबाह (मलयेशिया)	६,१६,०००	कोटाकिनबालू
३७.	सारावाक(मलेशिया)	९,४५,०६१	कूचिंग
३८.	थाइलैंड	३३,७००,०००	बैंकाक
३९.	तिमोर(पुर्तगाली टापू)	५,९०,०००	डिलि
४०.	आबूधाबी (ब्रिटिश उपनिवेश)	५५,०००	आबूधाबी
४१.	शारजाह (ब्रि. उ.)		सरजा
४२.	दूबाई टापू (ब्रि. उ.)		दुबाई
४३.	टर्की	३,३५,४५,०००	अंकारा
४४.	वियतनाम उत्तरी	२,१०,००,०००	हनोई
४५.	वियतनाम (दक्षिणी)	१,७४,१०,०००	सेगीन
४६.	यमन	६०,००,०००	साना

२. (अफ्रीका—जनसंख्या २४९९७१६९९)

१.	अफार्स एण्ड इसास (फ्रेंच)	१,५०,०००	जिबूटी
२.	अलजीरिया	१,२९,४८,०००	अल्जीयर्स
३.	अंगोला	५३,६२,०००	लुआन्डा
४.	एसेंसियनद्वीप (ब्रिटिश)	१,६७२	एसेंसियन
५.	बोट्स्वाना	६,२०,०००	गैबरुन
६.	बुरुण्डी	३४,७५,०००	बुजुम्बरा
७.	कैमेरून	५५,७०,०००	याउण्डा
८.	केनेरीद्वीप समूह	१२,५०,०००	टेनेरिफ
९.	केपवर्ड द्वीपसमूह	२,५४,४१४	प्राइआ
१०.	मध्यअफ्रीकन गणराज्य	१५,००,०००	बाङ्गुई

११. चाड	४०,०२,०००	फोर्टलामी
१२. कोमरो द्वीप समूह	२,६१,३८२	कौमोर्स
१३. कांगो जनवादी गणतंत्र	१,५८,०८,०००	किन्शासा
१४. कांगो गणराज्य	८,५०,०००	ब्राजाविले
१५. संयुक्त अरब गणराज्य	३,२०,००,०००	काहिरा
१६. गिनी गणराज्य	२,८२,०००	फर्नान्डोपो
१७. इथियोपिया	२,३५,००,०००	आदिस अबाबा
१८. गैबन	४,८०,०००	लिब्रेविले
१९. गौम्बिया	३,५१,०००	बार्थस्र्ट
२०. घाना	८५,०२,०००	अकरा
२१. गिनी पुर्तगीज	५,५०,०००	बिसाउ
२२. गिनी	३८,००,०००	कोनाक्री
२३. आइवरी कोस्ट	४१,२०,०००	आबिदजान
२४. केन्या	१,१०,००,०००	नैरोबी
२५. लिसोथो	९,१२,०००	मासेरू
२६. लाइबेरिया	११,३२,५००	मोनरोविया
२७. लिबिया	१८,०८,०००	त्रिपोली
२८. मेडेरा	२,७०,०००	फूंचल
२९. मेलेगासी मेडागास्कर	७०,००,०००	तैनानारिव
३०. मलावी	४५,६५,०००	ब्लान्टीयर

३१. [illegible]	४८,००,०००	बोमाको
३२. मौरीतानिया	१५,००,०००	नोयाकचोट
३३. मारीशश	८,२०,०००	मारीशश
३४. मोरक्को	१,५०,००,०००	रबात
३५. मोजाम्बिक	७२,७५,०००	लोरेंसमार्किस
३६. नाइजर	४०,००,०००	नियामी
३७. नाइजीरिया	६,२६,५०,०००	लागोस
३८. रयूनियन	४,२५,०००	लारियूनियन
३९. रोडेशिया	५१.८८,४००	सालीसबरी
४०. रवाण्डा	३५,००,०००	किगाली
४१. सहारा	....	आइडन
४२. साओटॉम एंप्रिंसिप	६८,५००	साओटॉम
४३. सेनेगाल	३६,७२,०००	डकार
४४. सिचेलीज	४९,५००	विक्टोरिया
४५. सियरोलियोन	२३,००,०००	फ्रीटाउन
४६. सोमाली	२७,४५,०००	मोगाडीशू
४७. दक्षिण अफ्रीका	१,९२,००,०००	जोहांसबर्ग
४८. सेंटहेलेना	४,८१५	सेंटहेलेना
४९. सूडान	१,४७,७५,०००	ओमडर्मन
५०. स्वाजीलैंड	४,००,०००	मबाबान
५१. तांजानिया	१,२६,००,०००	दारेस्सलाम
५२. टोगो	१६,५५,९१६	लोम
५३. ट्रिस्टन-डा-कुन्हा	....	ट्रिस्टन-डा-कुन्हा
५४. ट्यूनीशिया	४९,६०,०००	ट्यूनिश

५५. युगांडा	८१,४०,०००	कम्पाला
५६. अपरवोल्टा	५१,५६,०००	ओगाडोगू
५७. जाम्बिया	४०,६४,०००	लुसाका
५८. डहोमी	२५,७२,०००	कोटोनू

३. यूरोप—जनसंख्या ७०,२४,९६,६४५

१. अल्बानिया	[illegible]	[illegible]
२. अण्डोरा	१७,२२०	अण्डोरा
३. आस्ट्रिया	७३,९१,०००	वियना
४. अजोर्स (पुर्त० उप०)	३,५०,०००	अजोर्स
५. बेल्जियम	९६,६१,०००	ब्रूसेल्स
६. बलगारिया	८४,७९,२०६	सोफिया
७. साइप्रस	६,३५,०००	निकोसिया
८. चेकोस्लोवेकिया	१,४४,७५,७०५	प्राग
९. डेन्मार्क	४९,०७,०००	कोपेनहैगन
१०. फारोई द्वीपसमूह (डेनिश)	३८,५००	तोरशावन
११. फिनलैंड	४६,९५,०००	हेलसिंकी
१२. फ्रांस	५,०७,००,०००	पेरिस
१३. जर्मनी (पश्चिमी)	६,१४,२३,०००	बोन
१४. जर्मनी (पूर्वी)	१,७०,०५,०००	बर्लिन
१५. जिब्राल्टर	२५,३००	जिब्राल्टर
१६. ग्रेट ब्रिटेन	५,५५,२१,२००	लन्दन
१७. ग्रीस (यूनान)	८९,००,०००	एथेंस
१८. हालैंड	१,३०,३२,४४७	हिल्वरसम

१६.	हंगरी	१,०३,००,०००	बुडापेस्ट
२०.	आइसलैंड	२,०२,३६५	रेइकजावेक
२१.	आयरलैंड	२६,२२,०००	डब्लिन
२२.	इटली	५,४६,०१,६८३	रोम
२३.	लक्सम्बर्ग	३,२६,१००	लक्सम्बर्ग
२४.	माल्टा	३,२५,५१३	माल्टा
२५.	मोनाको	२३,१००	मोन्टेकारलो
२६.	नार्वे	३८,६६,४६८	ओस्लो
२७.	पोलैंड	३२,८२७,१००	वारसा
२८.	पुर्तगाल	६५,०५,०००	लिस्बन
२६.	रूमानिया	२,००,००,०००	बुखारेस्ट
३०.	सानमारिनो	....	सानमारिनो
३१.	स्पेन	३,३५,००,०००	मेड्रिड
३२.	स्वीडन	८०,५०,२०८	स्टाकहोम
३३.	स्विट्जरलैंड	६२,००,०००	बर्न
३४.	सोवियतरूस	२४,००,००,०००	मास्को
३५.	वाटिकन	१,०००	वाटिकन
३६.	यूगोस्लाविया	२,०५,७३,०००	बेलग्रेड

४. उत्तरी अमेरिका—जनसंख्या २२,४४,५६,१००

१	बरमूडा (ब्रिटिश)	५७,०००	हैमिल्टन
२	कनाडा	२,१३,७७,०००	ओटावा
३	ग्रीनलैंड	४०,६००	गुडथाव
४	संटपियरेटमाइक्वेलन (फ्रेंच)	५५,०००	संटपिअर्स

५	संयुक्त राज्य अमेरिका	२०,२६,७६,०००	वाशिंगटन

५. दक्षिणी अमेरिका—जनसंख्या १८,२६,१७,२०८

१	अर्जेन्टाइना	२,३६,२०,०००	ब्यूनस आयर्स
२	बोलिविया	४४,४१,०००	लापाज
३	ब्राजील	९,१०,००,०००	रियोडिजनेरो
४	चिली	९३,५२,०००	सैंटियागो
५	कोलंबिया	१,९८,२८,०००	बोगोटा
६	इक्वेडोर	५७,००,०००	क्विटो
७	फाकलैंड द्वीपसमूह	२,०९८	स्टानले
८.	गायना	७,१८,११०	जार्ज टाउन
९.	फ्रेंच गायना	४५,०००	कायेने
१०.	पैरागुए	२२,३५,५००	असुन्सियन
११.	पेरू	१,२७,७५,०००	लीमा
१२.	सुरीनाम	३,७५,५००	पैरामेरिवो
१३.	युरागे	२८,२५,०००	मौंटिविडियो
१४.	वेनुजुएला	९७,००,०००	कैरेकस

६. मध्य अमेरिका एवं केरेबियन द्वीप

जनसंख्या—८,९०,५१,४८९

१.	कोस्टारिका	१६,९५,०००	सानजोस
२.	अलसल्वाडोर	३२,६७,५००	सनसल्वाडोर
३.	ग्वाटेमाले	४८,६५,०००	ग्वाटेमाला
४.	होंडुरास (ब्रिटिश)	१,२०,०००	बेलिज
५.	होंडुरास	२५,३६,०००	तेगुसिगल्पा

६. मेक्सिको	४,९०,०००००	मेक्सिको
७. निकारागुआ	१८,४४,०००	मानागुआ
८. पनामा	१३,७३,०००	पनामा
९. बहामास	१,६८,०००	नसाऊ
१०. बारबडोस	२,५३,०००	बारबडोस
११. क्यूबा	८१,१०,०००	हवाना
१२. डोमिनिकन (रिपब्लिक)	४०,११,५८९	सेंटोडोमिंगो
१३. गुआडेलूप	३,३६,०००	अर्नोविले
१४. हैटी	४६,७७,०००	केपहेटियन
१५. जमैका	१९,१५,०००	किंग्सटन
१६. लीवार्ड द्वीप समूह	१,७५,०००	अंटीगुआ
१७. मार्टीनीक	३,३५,०००	फोर्ट डिफ्रांस
१८. नेदरलैंड्स एंटिल्स	२,१५,०००	बोनारी
१९. प्युरटोरिको	२७,००,०००	हाटोरे
२०. ट्रिनिडाड एंड टोबैगो	१०,३१,०००	पोर्ट ऑफ स्पेन
२१. टर्क्स एण्ड केकास द्वीप समूह	६,८००	ग्रैंडटर्क
२२. वर्जिन द्वीपसमूह (ब्रिटिश)	९,६०००	टोरटोला
२३. वर्जिन-द्वीपसमूह (अमेरिकन)	६१,०००	सैंट टामस
२४. विंडवार्ड-द्वीपसमूह	२,७३,०००	ग्रेनेडा
२५. एंगुइला	७,०००	एंगुइला

—वर्ल्ड रेडियो टी. वी. हैंडबुक १९७१ संस्करण

७. आस्ट्रेलिया एवं प्रशान्त-महासागरीय-देश

जनसंख्या--२,००,०१,६२८—

देश	जनसंख्या	राजधानी	
१. आस्ट्रेलिया	१,२५,५१,३००	केनबरा	
२. कुकद्वीपसमूह	२०,६५०	रारोटोंगा	
३. फिजी	५,०७,०००	सूवा	
४. गिलबर्ट एवं एलिस द्वीप समूह (अमेरिकन)	५५,२००	तारावा	
५. गुआम	१,२०,०००	गुआम	अमेरिका के अधीनस्थ
६. हवाई	८,४१,०००	होनोलूलू	अमेरिका के अधीनस्थ
७. माइक्रोनेशिया	८६,०००	[कई हैं]	
८. टोंगा	८१,५००	न्युकुओल्फा	
९. न्यू केलेडोनिया (फ्रांस)	९५,०००	नोमिया	
१०. न्यू हेब्राइड्स	८०,५००	विला	
११. न्यूजीलैण्ड	२८,२०,००	वेलिंगटन	न्यूजीलैण्ड के अधीन
१२. नाऊरू	६,६०३	नाऊरू	न्यूजीलैण्ड के अधीन
१३. नीयूद्वीप	५,३५०	नीयूद्वीप	न्यूजीलैण्ड के अधीन
१४. नोरफोक के द्वीप	१,५२५	किंगस्टन	न्यूजीलैण्ड के अधीन
१५. पापुआ एवं न्यू गिनीया (आस्ट्रेलिया)	२२,००,०००	कोनेबेरू	
१६. समोआ	२७,०००	पागोपागो	अमेरिका के अधीन
१७. समोआ (पश्चिमी)	१,४६,०००	आपिया	

१८. सोलोमन द्वीपसमूह (ब्रिटिश)
१,५२,००० होनियारा

१९. ताहिती (फ्रेंच) १,०५,००० पापीति

८. अंटार्कटिका—

इसमें कोई आबादी नहीं है। इसके निकटवर्ती नार्वे देश में स्थित नोर्डकिन अन्तरीप में छः महीने दिन-रात सूरज चमकता रहता है और ६ महीने सूरज दिन में भी दिखाई नहीं देता।

● उपरोक्त गणना के अनुसार वर्तमान विश्व में [illegible] राष्ट्रों की स्थिति इस प्रकार है—

एशिया में ४६, अफ्रीका में ५८, यूरोप में २६, उत्तरी, दक्षिणी एवं मध्य अमेरिका में ५४ एवं आस्ट्रेलिया में १९। (संभव है कि कई राष्ट्र गणना में नहीं भी आ सके हों।)

९. वर्तमान विश्व की लम्बी नदियाँ—

क्र०	नदी	लम्बाई (मीलों में)
१.	नील (मिश्र)	४०२७
२.	मिसीसिपी (उ० अमेरिका)	३९८२
३.	अमेजन (ब्राजील)	३६९०
४.	यांगटीसीक्यांग (चीन)	३२००
५.	ओब (सोवियत संघ)	३२००
६.	कांगो (कांगो)	३०००
७.	लीना (रूस)	३०००
८.	येनिसेई (सोवियत संघ-रूस)	२८००
९.	अमूर (सोवियत संघ चीन)	२८००

१०.	परानाला प्लाता (ब्राजील-अर्जेन्टीना)	२७२०
११.	वोल्गा (रूस)	२४००
१२.	डैन्यूब (यूरोप)	१७२५
१३.	सिंधु (पाकिस्तान)	१७००
१४.	ब्रह्मपुत्र (भारत)	१६८०
१५.	गंगा (भारत)	२५००

—संक्षिप्त विश्वकोश भाग १ तथा हिन्दुस्तान २१-२-७१

१०. भूगोल के रिकार्ड—

१. सबसे बड़ा महाद्वीप	एशिया	(१,७४,६१,५८३ वर्गमील)
२. ,, ,, समुद्र	प्रशान्त महासागर	(६,३८,०१,६६८ व. मी.)
३. ,, ,, द्वीप	ग्रीनलैंड	(८,४६,३४० व. मी.)
४. ,, ,, देश (आबादी में)	चीन	(७० करोड़)
५. ,, ,, ,, (क्षेत्रफल में)	रूस	(८६,०२,७०० व. मी.)
६. सबसे घनी आबादीवाला क्षेत्र	जावा	(८१७ व्यक्ति प्रति वर्गमील)
७. सबसे ऊँचा देश	तिब्बत	
८. सबसे बड़ा शहर (क्षेत्रफल में)	लन्दन	(७०० व. मी.)
९. सबसे बड़ा शहर (आबादी में)	न्यूयार्क	(१,१९,५०,६००)
१०. ,, ,, बन्दरगाह	राटरडम (हालैंड) (१,१०,००० जहाजों का प्रतिवर्ष आवागमन)	
११. सबसे बड़ी नदी	नील	(४,०३७ मील लम्बी)
१२. ,, ,, झील	सुपीरियर (उ. अमेरिका)	
१३. सबसे बड़ा पार्क	सं. रा. अमेरिका	(१३,५०० व. मी. क्षेत्र फल)
१४. ,, ,, रेगिस्तान	सहारा	(२,००,००० व. मी. क्षे. फ.)
१५. सबसे ऊँचा पर्वत शिखर	माउण्ट एवरेस्ट	(२९,०२८ फीट)
१६. सबसे लम्बा रेलमार्ग	सं. रा. अमेरिका	(२,२४,८१६ मील)

१७. सबसे बड़ा रेलवे स्टेशन	न्यूयार्क	(४७ प्लेटफार्म)
१८. ,, ,, प्लेटफार्म	सोनपुर (बिहार)	
१९. सबसे बड़ी रेलवे सुरंग	सिम्पलन (एलप्स)	(१२॥ मील)
२०. सबसे बड़ा जहाज	क्वीन एलिजाबेथ	(८५ हजार टन)
२१. सबसे ऊँचा हवाई अड्डा	लद्दाख (भारत)	
२२. सबसे ऊँची सड़क	मनाली-लेह मार्ग (भारत)	
२३. सबसे ऊँची इमारत	एम्पायर स्टेट बिल्डिंग न्यूयार्क	(१४७२ फीट)[1]

[1]—इस भवन में १०२ मंजिलें हैं। इसका मुख्य भाग ८५ मंजिलों का है। उसके ऊपर १७ मंजिलों की ऊंची मीनार है। सन् १९५० में इस पर २२२ फुट ऊँची टेलीवीजन-प्रसारण-मीनार और बनाई गई। इसकी नींव सड़क की सतह से ५५ फुट नीचे एक मजबूत चट्टान पर रखी गई है। इस भवन के बनाने में केवल इस्पात ही ६०,००० टन से ज्यादा लगा था। पूरे भवन का वजन लगभग ३,६५,००० टन है। इसमें इतनी जगह है कि किसी भी समय इसमें ८०,००० लोग रह सकते हैं।

—सचित्र विश्वकोश भा. ४, पृष्ठ २२

२४. सबसे बड़ा पुस्तकालय	लेनिन स्टेट लाइब्रेरी (मास्को)[1]	
२५. सबसे बड़ी मीनार	पेरिस (फ्रांस)	
२६. ,, ,, दीवार	चीन की दीवार	(१,५०० मील लम्बी)
२७. सबसे बड़ा राजमहल	मैड्रिड	
२८. ,, ,, सिनेमाघर	न्यूयार्क	(६००० सीटें)
२९. ,, ,, अजायबघर	ब्रिटिश म्यूजियम (लंदन)	
३०. ,, ,, भवन	वैटिकन सिटी (पोप का)	
३१. ,, ,, गुम्बज	बीजापुर का गोल गुम्बज (भारत)	
३२. सबसे बड़ी हीरों की खान	किम्बर्ले (द. अफ्रीका)	
३३. ,, ,, दूरबीन	माउन्ट विल्सन (अमेरिका)	

—सर्जना, सचित्र विश्वकोश, व्यावहारिक आर्थिक भूगोल (सक्सेना-हक्कू) तथा विज्ञान के नये आविष्कार के आधार से।

१—इसमें १६० भाषाओं की १ करोड़ १० लाख पुस्तकें हैं। इस लाइब्रेरी के तख्ते एक के बाद एक रखने से वे १३० माइल स्थान घेरते हैं।

११. संसार के बड़े शहर और उनकी आबादी

शहर	देश	आबादी
न्यूयार्क	यू. एस. ए.	१,१५,५०,६००
न्यूयार्क (शहर)		७९,९४,२०७
तोकियो	जापान	१,१३,५०,०००
तोकियो (शहर)		९०,१२,०००
ब्यूनस आयर्स	अर्जेण्टीना	९८,७०,०००
ब्यूनस आयर्स (शहर)		३५,४९,०००
पेरिस	फ्रांस	८१,९६,७४६
पेरिस (शहर)		२५,९८,७७१
लन्दन	ग्रेट ब्रिटेन	७७,६३,८००
मास्को	रूस	७०,६१,०००
मास्को (शहर)		६९,४२,०००
कलकत्ता	भारत	७०,५०,३६२
कलकत्ता (शहर)		३१,४१,१८०
शंघाई	चीन	६९,००,०००
लॉस एंजिल्स	यू. एस. ए.	६८,५९,६००
लॉस एंजिल्स (शहर)		२४,७९,०१५
लॉंगबीच		६८,५९,६००
लॉंगबीच (शहर)		३,४४,१६८
शिकागो	यू. एस. ए.	६८,१५,३००
शिकागो (शहर)		३५,५०,४०४
बम्बई	भारत	५९,६८,५४६
फिलडेल्फिया	यू. एस. ए.	४८,२८,५००

फिलडेल्फिया (शहर)		२०,३२,४००
काहिरा	सं. अरब गणराज्य	४२,२५,७००
रिओडेजेनरिओ	ब्राजील	४२,०७,३२२
पीकिंग	चीन	४०,१०,०००
लेनिनग्राद	रूस	३९,५०,०००
लेनिनग्राद (शहर)		३५,१३,०००
सियोल	कोरिया (द.)	३७,९४,९५९
दिल्ली	भारत	३६,२९,८४२
दिल्ली (शहर)		३२,८८,६९५
मेक्सिको	यू. एस. ए.	३४,८३,६४९
ओसाका	जापान	३०,७८,०००

जिन शहरों के नाम दो बार लिखे हैं, उन में प्रथम के साथ दी गई जन संख्या में वहाँ के अन्तर्गत आनेवाली ग्रामीण आबादी भी सम्मिलित है।

(साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १० अक्तूबर, १९७१)

१२. वर्तमान विश्व के निरक्षर और ग्रंथों की संख्या

१. **निरक्षर**---यद्यपि पिछले बीस वर्षों में ६० करोड़ व्यक्तियों को साक्षर बनाया गया है, तथापि यूनेस्को-रिपोर्ट के अनुसार दुनिया में आज निरक्षरों की संख्या ७८,३०,००,००० है। उक्त रिपोर्ट का यह भी कहना है कि सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद अगले २० वर्षों में भी दुनिया में ६५,००,००,००० लोग निरक्षर ही बने रहेंगे।

निरक्षरता व्यापक रूप से, अफ्रीका, एशिया और लेटिन

अमरीका में डेरा जमाये हैं। ये वे ही महाद्वीप हैं, जो विदेशी-प्रभुत्व के अन्तर्गत थे।

—हिन्दुस्तान, ३ सितम्बर १९७१

२. **अन्धे**—आज के विश्व में अंधों की कुल संख्या १·५ करोड़ है, जबकि अकेले भारत में उनकी संख्या ४५ से ५० लाख के लगभग है। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् के सर्वेक्षण के अनुसार मैसूरराज्य में अंधों की संख्या सबसे अधिक है। सर्वेक्षण से पता चला है कि भारत में अन्धेपन का मुख्य कारण रोहा, कोढ़वा, मोतियाबिन्द, ग्लाकोमा, अल्सर जैसी बीमारियों के अलावा पौष्टिक खाद्य की कमी भी है।

—हिन्दुस्तान ६ अक्टूबर १९७१

१३. विश्व के प्रलयकारी भूकम्प

१. एक अमरीकी सर्वेक्षण के अनुसार पिछली ४ शताब्दियों में कलकत्ता को, भूकम्प के कारण, सर्वाधिक विनाश सहना पड़ा है। कलकत्ता क्षेत्र में ११ अक्टूबर १९३७ में आये भूकम्प में ३,००,००० व्यक्ति मौत के शिकार हुये थे।

२. विश्व के इतिहास में सबसे भयानक भूकम्प २४ जनवरी १९५६ ई० को चीन के शांसी नामक स्थान में आया था, जिसमें ८,३०,००० व्यक्ति मरे थे। इस शताब्दी के आरम्भ में पुनः चीन एक भयंकर भूकम्प का शिकार हुआ। १६ दिसम्बर १९२० को कांसू प्रान्त में आये भूकम्प में १,८०,००० व्यक्ति मौत के शिकार हुए थे।

३. भारतीय द्वीप में इस शताब्दी का सबसे अधिक विनाशकारी भूकम्प क्वेटा में ३१ मई १९३५ को आया था। यह स्थान अब प. पाकिस्तान में है। इसमें ६०,०००व्यक्ति मारे गये थे।

४. अभी ३० मई सन् १९७० को पेरू में आया हुआ भूकम्प हाल के वर्षों में आये हुए भूकम्पों में सबसे अधिक विनाशकारी भूकम्प कहा जाता है। इसमें १ लाख व्यक्तियों के मरने का अनुमान है। —नवभारत टाइम्स, ५ जून १९७०

एशिया महाद्वीप में स्थित यह भारत एक विस्तृत देश है। सन् १९४७ में विभाजित होने के बाद भी यह संसार का सातवाँ सबसे बड़ा देश है। इसका क्षेत्रफल लगभग ३२,८७,७८२ वर्ग किलोमीटर है एवं इसकी स्थली-सीमा १५,२०० किलोमीटर से भी अधिक है।

इस देश के तीन नाम हैं—(१) भारत अथवा भारतवर्ष, (२) हिन्दुस्तान (३) इण्डिया। प्रसिद्ध राजा दुष्यन्त के पुत्र चक्रवर्ती सम्राट भरत के नाम पर ही इस देश का नाम 'भारत' पड़ा। ईरानियों ने इस देश को हिन्दुस्तान और ग्रीक लोगों ने इसे इण्डिया कहकर पुकारा।

—आर्थिक व व्यापारिक भूगोल द्वारा (कुक्कू-सक्सेना) पृष्ठ २६।

२. भारत की आबादी

(क) भारत की आबादी पहली शताब्दी में दस करोड़, १५वीं शताब्दी में १५ करोड़, सन् १८७२ में (जब सर्वप्रथम जन-गणना हुई) २१ करोड़, सन् १९२१ में २५ करोड़, १९५१ में ३५ करोड़ ७० लाख एवं १९६१ में ४३ करोड़ थी।

—जैनभारती अंक २३

(ख) भारत की जनसंख्या (१२ अप्रैल १९७० तक) ५४ करोड़, ६१ लाख ५५ हजार नौ सौ पैंतालीस है। पुरुष २८ करोड़ ३० लाख और स्त्रियां २६ करोड़ ३१ लाख से कुछ अधिक

हैं। विगत दस वर्षों में (१९६१ से १९७१ तक) १० करोड़ ७७ लाख के लगभग जनसंख्या बढ़ी है।

(ग) गत ७० वर्षों में आबादी की वृद्धि की दर

नीचे तालिका में १९०१ से लेकर प्रति दशाब्दि जनसंख्या वृद्धि की दर दी गई है :—

वर्ष	आबादी	प्र. श. वृद्धि की दशाब्दि	१९०१ के बाद से प्र. श. वृद्धि
१९०१	२३८३३७३१३ (संयुक्त भारत)	—	—
१९११	२५२००५४७० (संयुक्त भारत)	+५.७३	+५.७१
१९२१	२५१२३९४९२ (संयुक्त भारत)	−०.३०	+५.४१
१९३१	२७८८६७४३० (संयुक्त भारत)	+११.००	+१७.०१
१९४१	३१८५३६०६० (संयुक्त भारत)	+१४.२३	+३३.६६
१९५१	३६०९५०३६५ (बंटवारे के बाद)	+१३.३१	+५१.४५
१९६१	४३९०७२५८२	+२१.६४	+८४.२२
१९७१	५४६९५५९४५	+२४५७	+१२९.४९

(घ) **भारत में प्रतिदिन** ५० हजार से अधिक एवं प्रतिवर्ष लगभग २ करोड़ बच्चे जन्म लेते हैं और ९० लाख मनुष्य मरते हैं। अतः १ करोड़ २ लाख व्यक्ति प्रतिवर्ष बढ़ते हैं।

—भारतीय अर्थशास्त्र खण्ड २, पृष्ठ ६३, सन् १९७०

३. भारत गणराज्य के अन्तरवर्ती राज्य—

(क) भारत गणराज्य के १९ राज्य हैं और १० केन्द्र प्रशासित प्रदेश हैं। उनके नाम, क्षेत्रफल, जनसंख्या, राजधानियाँ, आबादी का घनत्व और भाषाएँ इस प्रकार हैं—

क. सं.	राज्य	क्षेत्रफल (कि. मी. में)	जनसंख्या (१९७१ में)	राजधानी	आबादी का घनत्व (प्रति कि. मी.)	मुख्य भाषा
१.	मध्य प्रदेश	४,४३,४००	४,१४,४९,७२८	भोपाल	९३	हिन्दी
२.	राजस्थान	३,४२,२००	२,५७,६४,१४२	जयपुर	७५	विभिन्न प्रकार की राजस्थानी तथा हिन्दी
३.	महाराष्ट्र	३,०७,५२०	५,०२,६५,०८१	बम्बई	१६३	मराठी
४.	उत्तर प्रदेश	२,९४,३६५	८,८२,९९,४५३	लखनऊ	३००	हिन्दी, उर्दू
५.	आन्ध्र प्रदेश	२,७५,२८१	४,२३,९४,९५१	हैदराबाद	१५७	तेलगु

६.	जम्मू कश्मीर	२,२२,८००	४६,१५,१७६	श्रीनगर		कश्मीरी, डोगरी उर्दू
७.	असम	२,०३,३६०	१,४८,५७,३१४	शिलांग	१४६	बंगला, असमिया
८.	मैसूर	१,९२,२०४	२,९२,२४,०४६	बंगलौर	१५२	कन्नड़
९.	गुजरात	१,८७,११०	२,६६,६०,९२६	अहमदाबाद	१३६	गुजराती
१०.	बिहार	१,७४,०००	५,६३,८७,२९६	पटना	३२४	हिन्दी
११.	उड़ीसा	१,५५,८००	२,१९,३४,८२७	भुवनेश्वर	१४१	उड़िया
१२.	तमिलनाडु	१,३०,३६०	४,११,०३,१२५	मद्रास	३१६	तमिल
१३.	पूर्वी पंजाब	५०,३२८	१,३४,७२,९०२	चंडीगढ़	२६८	पंजाबी, हिन्दी
१४.	हरियाणा	४३,८६९	९९,७१,१६५	चंडीगढ़	२२५	,, हिन्दी
१५.	प. बंगाल	८७,६००	४,४४,४०,०९५	कलकत्ता	५०७	बंगला
१६.	केरल	३८,९००	२,१२,८०,३९७	त्रिवेन्द्रम्	५४८	मलयालम
१७.	हिमाचल प्रदेश	२८,२००	३४,२४,३३२	शिमला		हिन्दी, पहाड़ी
१८.	नागालैण्ड	१६,४५०	५,१५,५६१	कोहिमा		बंगला, असमिया
१९.	मेघालय		९,८३,३३६	शिलांग		खासिया

केन्द्र-प्रशासित प्रदेश—

क. सं.	प्रदेश	क्षेत्रफल (कि. मी. में)	जनसंख्या (सन् ७१)	राजधानी	आबादी का घनत्व (प्रति कि. मी.)	मुख्यभाषा
१.	अंडमान व निकोबार द्वीप समूह	८,२९३	१,१५,०९०	पोर्ट ब्लेयर		
२.	लक्षद्वीप, मिनिकाय व अमीन द्वीप समूह	२८	३१,७९८	कोझिकोड (केरल)	९९४	पुरानी मलयालम
३.	दिल्ली	१,४८५	४०,४४,३३८	नई दिल्ली	२,७५४	हिन्दी, उर्दू, पंजाबी

४.	मणिपुर	२२३४७	१०,६९,५५५	इम्फाल		बंगला असमिया
५.	त्रिपुरा	८,६२०	१५,५६,८२२	अगरतला	१४६	,, ,, ,,
६.	दादरा और नगरहवेली	४८६	७४,१६५	सिलवासा	१५१	
७.	गोआ दमन और दीव	३,६९३	८,५७,१८०	पंजिम	२२५	मराठी, गुजराती
८.	पांडिचेरी	४७९	४,७१,३४७	पांडिचेरी	६८२	फ्रांसीसी, तमिल
९.	नेफा	८०,४८६	४,४४,७४४	शिलांग		
१०.	चंडीगढ़		२,५६,९७९	चंडीगढ़		पंजाबी

भूटान और सिक्किम पश्चिमी बंगाल के उत्तर में दो स्वाधीन हिमालयवर्त्ती राज्य हैं। ये विशेष संधियों द्वारा भारत गणराज्य में सम्मिलित हैं। इनके क्षेत्रफलादि निम्न प्रकार हैं :—

१.	भूटान	१९,३०५	८,४०,०००	थिम्फू	तिब्बती से मिलती-जुलती
२.	सिक्किम	२,८२५	१,८४,६००	गंगटोक	सिक्किमी गोरखावाली

(विश्वकोश भाग १०, आर्थिक-व्यापारिक भूगोल तथा हिन्दुस्तान १४ अप्रैल, १९७१ के आधार से)

(ख) भारत की जनसंख्या का आयु विवरण

(१९५१ के आधार पर)

आयु समूह (वर्षों में)	कुल जनसंख्या का प्रतिशत
४ वर्ष तक के मनुष्य	१५·०
५ से १४ वर्ष तक के मनुष्य	२६·०
१५ से २४ ,, ,, ,,	१६·७
२५ से ३४ ,, ,, ,,	१५·४
३५ से ४४ ,, ,, ,,	११·०
४५ से ५४ ,, ,, ,,	८·०
५५ से ६४ ,, ,, ,,	४·८
६५ से ७४ ,, ,, ,,	२·१
७५ से अधिक ,, ,,	१·०
	योग १००·०

(ग) भारत में वैवाहिक स्थिति—

(संख्या हजारों में)

आयु वर्ग (वर्षों में)	विवाहित महिलाएँ	विधवा महिलाएँ
१० वर्ष से १४ वर्ष तक	४,८२६	३०
१५ ,, १९ ,, ,,	१२,०२२	९१
२० ,, २४ ,, ,,	१७,५५२	२४८

—भारत का आर्थिक भूगोल तथा भारतीय अर्थशास्त्र द्वितीय खण्ड पृष्ठ ५८, ५९

(४) भारत के गाँव और शहर—

(क) सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार भारत में ५ लाख ६६ हजार ८७८ गाँव हैं, जिनमें ६२ प्रतिशत व्यक्ति निवास करते हैं।

शहरों की संख्या २६९९ है और उनमें १८ प्रतिशत व्यक्ति रहते हैं। **—भारतीय अर्थशास्त्र, खण्ड २ पृष्ठ ५३,५४ सन् ७०**

(ख) भारत के ९ महानगर और उनकी आबादी (सन् ७१)

१. कलकत्ता-७०,४०,३४५
२. बम्बई-५९,३१,९८९
३. दिल्ली-३६,२९,८४२
४. मद्रास-२४,७०,२८८
५. हैदराबाद-१७,९८,९१०
६. अहमदाबाद-२,७,४६,१११
७. बंगलोर-१६४८२३२
८. कानपुर-१२,७३,०४२
९. पूना-११,२३,३९९

नोट—दस लाख से अधिक जनसंख्यावाले नगर महानगर कहलाते हैं।) **—हिन्दुस्तान-१४ अप्रेल ७१**

(५) भारत में बेघर और घरवाले—

सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार भारत में ५० लाख व्यक्ति बेघर हैं। उनमें से ९ प्रतिशत शहरों में रहते हैं। एक बम्बई में इनकी संख्या ७२ हजार है। देश में कुल घर १० करोड़ ७ लाख हैं। उनमें ८ करोड़ ३ लाख परिवार रहते हैं। एक परिवार एक रसोई का प्रयोग करता है तथा उसके औसत ५ व्यक्ति सदस्य हैं। ४ करोड़ परिवारों के पास एक कमरा है। ३६·४ प्रतिशत के पास-पास कमरे हैं। २३·३ प्रतिशत के पास ३ या अधिक कमरे हैं। ५९·६

प्रतिशत लोग कच्चे गारों के मकान में रहते हैं, ४४ प्र.श. के अपने घर हैं और ५२ प्र. श. किराये के मकानों में रहते हैं। —हिन्दुस्तान २३ अप्रैल, १९६४

(६) भारत में पशुधन—

सन् १९६१ की पशुगणना के अनुसार भारत में गाय-बैल लगभग १७॥ करोड़, भैंसें ५ करोड़, बकरियाँ ६॥ करोड़, भेड़ें ४ करोड़, मुर्गियाँ ११·२० करोड़, ऊँट ९ लाख से अधिक और घोड़े १५॥ लाख हैं।

(७) भारत में दूध—

भारत में अन्य देशों की अपेक्षा यद्यपि अधिक गाय हैं, किन्तु यहां की औसत गाय प्रतिवर्ष अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम दूध देती है। देखिए, नीचे की तालिका—

देश	प्रति गाय दूध (प्रति वर्ष)	देश	प्रति गाय दूध (प्रति वर्ष)
१. नीदरलैंड्स	८,००० पौंड	४. सं. रा. अमेरिका	५,८०० पौंड
२. आस्ट्रेलिया	७,१०० ,,		
३. स्वीस	६,००० ,,	५. भारत	४१३ पौंड

भारत में कुल उत्पादन का लगभग ४२ प्रतिशत भाग दूध गायों से प्राप्त होता है, ५४ प्र.श. दूध भैंसों से और २ प्र.श. दूध बकरियों से। ऊपर की तालिका से स्पष्ट है कि भारत में प्रति गाय औसतरूप से वर्ष में लगभग ४१३ पौंड दूध देती है। परन्तु भैंस औसतरूप से भारत में १,१०० पौंड वार्षिक दूध देती है।

यद्यपि दूध उत्पादन की मात्रा की दृष्टि से विश्व में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के बाद, भारत ही सबसे अधिक दूध उत्पादन करता है, परन्तु यहाँ की घनी आबादी को देखते हुए यह मात्रा बहुत कम है। भारत में प्रतिवर्ष लगभग ७ करोड़ मन दूध होता है, जबकि 'अमेरिकन रिपोर्टर' के अनुसार संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में प्रतिवर्ष १·५ अरब मन से भी अधिक दूध होता है। इस कथन के अनुसार इतना दूध होता है कि ८८२५ कि.मी. लम्बी, १२ मीटर चौड़ी और १ मीटर गहरी नदी को दूध से सुगमता पूर्वक भरा जा सकता है।

ठीक स्वास्थ्य के लिए प्रति व्यक्ति को प्रतिदिन कम से कम १५-२० औंस दूध की आवश्यकता है, किन्तु भारत में प्रति व्यक्ति को प्रतिदिन औसतन ५·५ औंस (२॥ छटांक) दूध मिलता है, जबकि अन्य देशों में कहीं उसकी सातगुनी और दसगुनी से भी अधिक उपलब्धि है। देखिए, नीचे की तालिका—

देश	उपलब्धि	देश	उपलब्धि
कनाडा	५६ औंस	डेनमार्क	४० औंस
न्यूजीलैंड	५५ ,,	सं. रा.	
आस्ट्रेलिया	४५ ,,	अमेरिका	३५ ,,
इंगलैंड	४० ,,	भारत	५५ ,,

—आर्थिक व व्यापारिक भूगोल (कुक्कू-सक्सेना) पृष्ठ १६४

(८) भारतीय इतिहास की प्रमुख तिथियाँ—

ईसा पूर्व—

१.	३५००-१५००	सिंधु सभ्यता
२.	२५००	आर्यों का भारत में आगमन आरम्भ
३. क	१५००-२०००	ऋग्वेद की रचना
ख	१०००	महाभारत युद्ध
४.	५९९-५२७	वर्द्धमान महावीर का जन्म और निर्वाण
५.	५६३-४८३	गौतम बुद्ध का जन्म और निर्वाण
६.	३२७-३२५	भारत पर सिकन्दर का आक्रमण
७.	३२२-२९८	चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन
८.	२७३-२३२	अशोक का शासन

ईस्वी सन्—

९.	७८-१२३	कनिष्क का शासन[1]

---

१ सम्राट कनिष्क कुषाणवंशीय था। इस वंश के लोग आक्रमणकारी के रूप में चीन के उत्तर-पश्चिम से भारत आये और उन्होंने पेशावर को अपनी राजधानी बनाया। कनिष्क कश्मीर, मगध, बंगाल, काबुल, चीन आदि देशों को जीतकर सम्राट बना एवं बौद्धधर्म स्वीकार करके भारतीय कहलाने लगा। इसके राज्य में अश्वघोष (जिनसे इसने बौद्धधर्म स्वीकार किया था), वसुमित्र एवं नागार्जुन जैसे अनेक प्रसिद्ध बौद्ध-दार्शनिक और लेखक थे। बौद्ध बनने के बाद कनिष्क ने अनेक विहारों तथा स्तूपों का निर्माण करवाया। सुप्रसिद्ध चतुर्थ बौद्ध संगीति (सम्मेलन) की योजना भी इसी ने की। इस संगीति में बौद्धधर्म पर नये भाष्य लिखे गये और बौद्धधर्म को एक नया रूप दिया गया, जो 'महायान' कहलाया।

१०.	३२०-४७५	गुप्तवंश का शासन, भारतीय कला और साहित्य का स्वर्ण-युग
११.	३३५-३७५	समुद्रगुप्त का शासन
१२.	३७६-४१३	चंद्रगुप्त विक्रमादित्य का शासन
१३.	४०५-४११	फाहियान की भारत-यात्रा
१४.	६०६-६४७	हर्षवर्द्धन का शासन[1]
१५.	१०००-१०२६	भारत पर महमूद गजनवी के आक्रमण
१६.	११९२	पृथ्वीराज की पराजय और मृत्यु
१७.	१२०६	उत्तर भारत में मुस्लिम शासन आरम्भ
१८.	१२२१	भारत पर चंगेजखां का आक्रमण
१९.	१३९८	भारत पर तैमूरलंग का आक्रमण
२०.	१५५६-१६०५	अकबर का शासन
२१.	१५७६	हल्दीघाटी की लड़ाई
२२.	१५९७	महाराणा प्रताप की मृत्यु
२३.	१६००-१८५८	भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन
२४.	१६०५-१६२७	जहांगीर का शासन
२५.	१६१२	सूरत में अंग्रेजों की पहली कोठी की स्थापना
२६.	१६२८-१६५८	शाहजहां का शासन

१ हर्षवर्धन अन्तिम हिन्दू सम्राट था। इसकी राजधानी कन्नौज थी। सम्राट स्वयं कवि था और कवियों का सम्मान भी बहुत करता था। बाणभट्ट (कादम्बरी के निर्माता) इसी के राज्य दरबार के रत्न थे।

२७.	१६५८-१७०७	औरंगजेब का शासन
२८.	१७३९	भारत पर नादिरशाह का आक्रमण[2]
२९.	१७८०	महाराजा रणजीतसिंह द्वारा सिक्ख राज्य की स्थापना
३०.	१८५८	ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त और ब्रिटिश सरकार का सीधा शासन प्रारम्भ
३१.	१८७४	बंगाल में भयंकर अकाल
३२.	१८८५	बम्बई में इण्डियन नेशनल कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन
३३.	१९२०	लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की मृत्यु
३४.	१९२१	महात्मा गांधी द्वारा असहयोग आन्दोलन आरम्भ
३५.	१९२७-२८	साइमन कमीशन का बहिष्कार, लाला लाजपतराय की मृत्यु

---

२ नादिरशाह का आक्रमण—निरंकुश क्रूर और अत्याचारी शासन के लिए प्रायः 'नादिरशाही' शब्द का प्रयोग होता है। नादिरशाह फारस का शासक था और १७३९ ई० में उसने दिल्ली पर आक्रमण करके वहाँ कत्लेआम करवाया था। दिल्ली से वह पन्द्रह करोड़ रुपये नकद तथा पचास करोड़ रुपये से भी अधिक के रत्न-आभूषण आदि लूटकर ले गया था जिनमें विश्व-विख्यात हीरा 'कोहेनूर' और शाहजहाँ का रत्न-जटित सिंहासन 'तख्ते-ताऊस' भी था।

—सचित्र-विश्वकोष ६, पृष्ठ ४६

३६.	१९२९	कांग्रेस द्वारा लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य की घोषणा
३७.	१९४२	"भारत छोड़ो" आंदोलन
३८.	१९४३	सुभाषचन्द्र बोस द्वारा सिंगापुर में आजाद हिन्द फौज की स्थापना
३९.	१९४७	भारत स्वाधीन हुआ तथा देश का विभाजन और पाकिस्तान की स्थापना काश्मीर पर पाकिस्तान का आक्रमण
४०.	१९४८	महात्मा गांधी की हत्या
४१.	१९५०	भारत नये संविधान के अनुसार गणतन्त्र बन गया। सरदार पटेल की मृत्यु
४२.	१९५२	भारत में पहला आम चुनाव
४३.	१९५४	भारत की फ्रांसीसी बस्तियों का भारत में विलय
४४.	१९५६	भाषा के आधार पर भारतीय राज्यों का पुनर्गठन
४५.	१९६१	गोआ पर भारत का अधिकार
४६.	१९६२	भारत पर चीन का आक्रमण
४७.	१९६४	प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु लालबहादुर शास्त्री प्रधानमन्त्री बने
४८.	१९६५	भारत-पाक युद्ध

४९. १९६६ ताशकंद में प्रधान मंत्री लालबहादुर शास्त्रीकी मृत्यु। श्रीमती इन्दिरा गांधी प्रधान मंत्री बनीं

—संक्षिप्त विश्वकोष भा. ९, पृ. ३०

(६) भारत में साक्षरता—

१. स्कूल जानेवाले बच्चों की संख्या २ करोड़ ३५ लाख से बढ़कर ६ करोड़ ८० लाख हो गई और १९७०-७१ तक वह (योजना के मसविदे के अनुसार) ९ करोड़ ७५ लाख हो जायगी। कालेज जानेवाले छात्रों की संख्या ३ लाख से बढ़कर १ लाख हो गई।

—हिन्दुस्तान २१ अगस्त, १९६६

वर्तमान भारत में ५४,७९,५५,९४५ मनुष्य निवास करते हैं। उनमें से १६,०५,३१,५७० व्यक्ति साक्षर और ३८,६४,२४,३७५ व्यक्ति निरक्षर हैं। पुरुष २९॥ प्रतिशत से कुछ कम शिक्षित हैं और ७०॥ से कुछ अधिक अशिक्षित हैं। स्त्रियाँ २४ प्र. श. पढ़ी हुई हैं और ७६ प्र. श. अपढ़ हैं। विगत दस वर्षों में यहाँ २२ प्र. श. साक्षरता बढ़ी है।

२. सम्पूर्ण भारत और विविध राज्यों में १९६१ और १९७१ में प्रतिशत साक्षरता के आँकड़े इस प्रकार हैं—

राज्य	सन् १९६१	सन् १९७१
भारत	२४·०३	२९·३५
चंडीगढ़	५१·६	६१·२४

केरल	४६·८५	६०·१६
दिल्ली	५२·७५	५६·६५
गोआ-दमन-दीव	३०·७५	४४·५३
अंडमान-निकोबार	३३·६३	४३·४८
लक्षद्वीप मिनिकाय अमीन द्वीप	२३·२७	४३·४४
पांडिचेरी	३७·४३	४३·३६
तमिलनाडु	३१·४१	३९·३९
महाराष्ट्र	२९·८२	३९·१८
गुजरात	३०·४५	३५·७
पंजाब	२६·७४	३३·३९
प. बंगाल	२९·२८	३३·०५
मणिपुर	३०·४२	३२·९०
मैसूर	२५·४०	३१·४७
हिमाचल प्रदेश	२१·२६	३१·३२
त्रिपुरा	२०·२४	३०·८७
असम	२९·२९	२८·७४
मेघालय	१८·४७	२८·४९
नागालैंड	१७·९१	२७·३३
हरियाणा	१९·९३	२६·६९
उड़ीसा	२१·६६	२६·१८
आन्ध्र	२१·१९	२४·५६
मध्य प्रदेश	१७·१३	२२·०३
उत्तर प्रदेश	१७·६५	२१·६४

बिहार	१८·४८	१६·६७
राजस्थान	१५·२१	१८·७६
जम्मू-कश्मीर	११·०३	१८·३०
दादरा और नगर हवेली	६·४८	१४·८६
नेफा	७·१३	६·३४

—हिन्दुस्तान, १४ अप्रैल, १६७१

(१०) **भारत की बड़ी चीजें—**

अधिक क्षेत्रफलवाला राज्य	मध्य प्रदेश
अधिक जनसंख्यावाला राज्य	उत्तर प्रदेश
अधिक घनत्व (जनसंख्या) वाला राज्य	दिल्ली
अधिक जनसंख्यावाला नगर	कलकत्ता
बड़ा बंदरगाह	बम्बई
बड़ी सड़क	ग्रांड ट्रंक रोड
अधिक शिक्षित	केरल
लम्बा पुल	सोन नदी
लम्बा प्लेटफार्म	सोनपुर (विश्व में)
बड़ी झील	बुलर झील (कश्मीर)
बड़ी खारी झील	सांभर (राजस्थान)
बड़ा डेल्टा	सुन्दरबन
बड़ा इस्पात का कारखाना	टाटा का कारखाना (जमशेदपुर)

सुन्दर भवन	ताजमहल
बड़ी मूर्ति	गोमतेश्वर की मूर्ति (मैसूर)
ऊँची मीनार	कुतुब मीनार (दिल्ली)
बड़ी गुम्बद	गोलगुम्बद (बीजापुर)
बड़ा पुस्तकालय	राष्ट्रीय पुस्तकालय (कलकत्ता)
बड़ा चिड़ियाघर	अलीपुर (कलकत्ता)
बड़ा अजायबघर	इंडियन म्यूजियम (कलकत्ता)
सबसे ऊँचा पर्वत शिखर	माउंट एवरेस्ट
लम्बा बाँध	हीराकुण्ड बाँध
सबसे अधिक वर्षा वाला क्षेत्र	चेरापूँजी (आसाम)

—आर्थिक व व्यापारिक भूगोल पृष्ठ ३२, द्वारा टुक्कू, सक्सेना

२३. भारत की कतिपय विशेष ज्ञातव्य बातें

१. (क) औसत आयु : ५२ वर्ष।

(ख) प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय: चालू मूल्यों पर ५५२ रुपये और १९४८-४९ के मूल्यों पर ३२४.४ रुपये।

(ग) खाद्यान्नों की उत्पत्ति : लगभग १० करोड़ टन (१९६९-७०)

(घ) प्रति व्यक्ति खाद्यान्नों की खपत : १५.४ औंस प्रतिदिन (१९६९-७०)

(च) प्रति व्यक्ति के लिए उपलब्ध कैलोरी (Calories) २१४५ प्रतिदिन।

(छ) प्रति व्यक्ति वस्त्र की उपलब्धि १३ मीटर वार्षिक।

(ज) प्रति सहस्र वार्षिक जन्मदर ४२ व प्रति सहस्र मृत्यु दर १७.२।

—भारतीय अर्थशास्त्र खण्ड २, पृष्ठ २६ और ४३

२. भारतवर्ष में लगभग ५२ लाख कुएं हैं, ७५ हजार तालाब हैं और नहरों की लम्बाई लगभग १ लाख ४९ हजार किलोमीटर है।

३. भारतवर्ष में नदियों का पानी केवल ५६ प्रतिशत भाग सिंचाई आदि के उपयोग में आता है, शेष यों ही समुद्र में चला जाता है।

४. भारत में केवल ३६ करोड़ ६० लाख एकड़ जमीन में खेती होती है जबकि अमेरिका में ४७ करोड़ ७० लाख और रूस में ५५ करोड़ ६० लाख एकड़ जमीन खेती के उपयोग में आती है।

५. भारत में (सन् ६६ से ६६ के आंकड़ों के अनुसार) प्रति वर्ष गेहूं लगभग ११५, ३ लाख टन, चावल ३ करोड़ ७६ लाख टन, मक्का ५० लाख टन, बाजरा ३८ लाख टन, चना ४५० पौंड प्रति एकड़, गन्ना ६८ लाख ८ हजार टन, कपास की ६७ लाख गांठें (३६२ पौंड की एक गांठ), जूट भी ८४ लाख ७ हजार गांठें (४०० पौंड की गांठ), चाय ३७.५४ करोड़ किलोग्राम, कहवा ६८ हजार मीट्रिक टन, मूंगफली ५६.७ लाख टन, तम्बाकू ३॥ लाख टन, शक्कर (चीनी) ४३ लाख टन, रबर ६४.४५ हजार टन, लोहा १४८ लाख मीट्रिक टन, अभ्रक २५ हजार टन, सोना ३७४० किलोग्राम हीरा पांच लाख कैरट, मैंगनीज (भूरे रंग की धातु) १६ लाख टन, कोयला ७१ करोड़ टन, पेट्रोलियम (चट्टान से निकाला हुआ तेल) ३० लाख टन, इस्पात ४४.६८ लाख टन, सीमेंट ११० लाख टन और कागज ५.५ लाख टन पैदा हुए।

६. भारत में सूती कपड़े की ६०० मिलें हैं (अमरीका में १२०० हैं) उनमें ७२५ करोड़ के मूल्य का ६.०६ अरब गज कपड़ा प्रतिवर्ष बनता है, उसमें ६२ करोड़ का विदेश जाता है। उनके चार कारखाने हैं। रेशम के छोटे छोटे

अनेक कारखाने हैं और बड़े चार हैं। प्रतिवर्ष १८.७१ लाख किलोग्राम (२ करोड़ गज) नकली रेशम बनता है। १३ लाख टन जूट प्रतिवर्ष उत्पन्न होता है। ७.५ लाख टन जूट का सामान विदेश जाता है, उससे भारत को १५० करोड़ की आमदनी होती है।

६. भारत में रेल-इंजिन के दो कारखाने हैं—एक तो चितरंजन नगर में और दूसरा जमशेदपुर में। दोनों कारखानों में सन् १९६०-६१ तक एक हजार से भी अधिक इंजिन तैयार हो चुके थे।

आधुनिक इंजन में लगभग ५३५० पुर्जे लगते हैं। उनमें ८० प्रतिशत पुर्जे तो चितरंजन नगर के कारखाने में ही बनते हैं और दस प्रतिशत बाहर से मंगवाये जाते हैं। एक इंजिन पर लगभग चार लाख रुपये लगते हैं।

८. सन् ६०-६१ में यहां (भारत में) चार लाख टेलीफोन बनते थे। एक टेलीफोन में ५३८ पुर्जे लगते हैं। उनमें तो २६ पुर्जे तो अन्य उत्पादकों से प्राप्त किये जाते हैं और तीन पुर्जे विदेशों से मंगवाये जाते हैं।

—व्यापारिक व आर्थिक भूगोल, सन् ६९ के आधार से

सूर्योदय और सूर्यास्त सारणी

भारत के विभिन्न प्रांतों में समय का अंतर

महीना	दिनांक	दिल्ली		बम्बई		मद्रास		कलकत्ता	
		उदय	अस्त	उदय	अस्त	उदय	अस्त	उदय	अस्त
जनवरी	१	७·१४	१७·२५	७·१२	१८·१२	६·३१	१७·५३	६·१७	१७·०३
	१५	७·१६	१७·४५	७·१५	१८·२१	६·२५	१८·०१	६·१९	१७·१२
फरवरी	१	७·१०	१७·५९	७·१३	१८·३१	६·३६	१८·०९	६·१६	१७·२४
	१५	७·०१	१८·१०	७·०८	१८·३८	६·३२	१८·१४	६·०९	१७·३२
मार्च	१	६·४७	१८·२१	६·५८	१८·४४	६·२५	१८·१८	५·५८	१७·४०
	१५	६·३२	१८·२९	६·४८	१८·४८	६·१७	१८·१९	५·४६	१७·४६
अप्रैल	१	६·१२	१८·३९	६·३३	१८·५२	६·०६	१८·२१	५·३०	१७·५२
	१५	५·५६	१८·४७	६·२२	१८·५६	५·५७	१८·२२	५·१७	१७·५७
मई	१	५·४१	१८·५६	६·११	१९·०२	५·४९	१८·२४	५·०४	१८·०३
	१५	५·३१	१९·०४	६·०५	१९·०६	५·४४	१८·२७	४·५७	१८·०९
जून	१	५·२४	१९·१४	६·०१	१९·१४	५·४२	१८·३२	४·५२	१८·१७
	१५	५·२३	१९·२०	६·०१	१९·१९	५·४३	१८·३६	४·५२	१८·२२

जुलाई	१	५·२७	१९·२३	६·०५	१९·२०	५·४६	१८·३६	४·५५	१८·२५
	१५	५·३३	१९·२१	६·१०	१९·१९	५·५०	१८·३९	५·०१	१८·२४
अगस्त	१	५·४३	१९·१२	६·१६	१९·१४	५·५५	१८·३६	५·०८	१८·१७
	१५	५·५०	१९·०१	६·२०	१९·०५	५·५७	१८·३०	५·१३	१८·०८
सितम्बर	१	५·५९	१८·४३	६·२४	१८·५३	५·५८	१८·२०	५·१९	१७·५४
	१५	६·०६	१८·२६	६·२६	१८·४१	५·५८	१८·१०	५·२३	१७·४०
अक्तूबर	१	६·१४	१८·०७	६·२९	१८·२७	५·५९	१७·५९	५·२८	१७·२४
	१५	६·२२	१७·५२	६·३३	१८·१६	५·५९	१७·५०	५·३३	१७·१२
नवम्बर	१	६·३२	१७·३६	६·३९	१८·०५	६·०३	१७·४२	५·४२	१६·५९
	१५	६·४४	१७·२७	६·४६	१८·००	६·०८	१७·३९	५·४९	१६·५३
दिसम्बर	१	६·५७	१७·२४	६·५६	१८·००	६·१६	१७·४०	६·००	१६·५१
	१५	७·०७	१७·२६	७·०४	१८·०४	६·२३	१७·४५	६·०९	१६·५४

टिप्पणी—(१) समय लौंद वर्ष के हैं तथा अन्य वर्षों में लगभग १ मिनट का अन्तर पड़ सकता है।

(२) क्षितिज पर सूर्य की ऊपरी कोर के दिखाई देने का समय भारतीय प्रामाणिक समयानुसार दिया गया है।

—भारत-भारती मान चित्रावली, १९६१

संसार के प्रमुख नगरों के समय और दूरियाँ

संख्या	नगरों के नाम	देशों के नाम	नगरों का वह समय जब दिल्ली में दोपहर के बारह बजे हों — घन्टा	मिनट	नगरों की दूरियाँ किलोमीटर में दिल्ली से
१	अक्करा	घाना	६	३०	८,४८०
२	अदन	अदन	९	३०	३,७६०
३	अथेंस	यूनान	८	३०	५,०१०
४	अदिस अबाबा	इथोपिया	९	३०	४,५६०
५	अंकारा	टर्की	८	३०	४,२१०
६	एम्सटरडम	नीदरलैंड्स	७	३०	६,३६०
७	ओटावा	कनाडा	१	३०	११,२४०
८	ओस्लो	नार्वे	७	३०	५,९९०
९	कराची	पाकिस्तान	११	३०	१,०९०
१०	काठमांडू	नेपाल	१२	००	७९०
११	काबुल	अफगानिस्तान	११	००	९९०
१२	काहिरा	सं. अरब गणराज्य (मिश्र)	८	३०	४,४२०

१३	कुआलालुमपुर	मलाया	१४	००	३,८३०
१४	केनबेरा	आस्ट्रेलिया	१६	३०	१०,३२०
१५	केपटाउन	दक्षिण अफ्रीका संघ	८	३०	६,२८०
१६	कोपेनहेगेन	डेनमार्क	७	३०	५,८५०
१७	कोलम्बो	श्रीलंका	१२	००	२,४३०
१८	खारतुम	सूडान	८	३०	४,७८०
१९	जकार्ता	हिन्देशिया	१४	००	५,०१०
२०	जेनेवा	स्विटजरलैंड	७	३०	६,३५०
२१	टोकियो	जापान	१५	३०	५,८२०
२२	ढाका	पूर्व बंगाल	१२	३०	१,४३०
२३	तेहरान	ईरान	१०	००	२,५४०
२४	दमिश्क	सीरिया	८	३०	३,९२०
२५	दी हेग	नीदरलैंड्स	७	३०	६,४००
२६	न्यूयार्क	सं. रा. अमेरिका	१	३०	११,७४०
२७	प्राग	जैकोस्लोवाकिया	७	३०	५,७१०
२८	पेकिंग	चीन	१४	३०	३,७८०
२९	पेरिस	फ्रांस	७	३०	६,५९०

३०	बगदाद	इराक	६	३०	३,१५०
३१	बर्लिन	पूर्वी जर्मनी	७	३०	५,८००
३२	बुकारेस्ट	रोमानिया	८	३०	४,८००
३३	बुडापेस्ट	हंगरी	७	३०	५,३७०
३४	बेंकाक	थाइलैंड	१३	३०	२,६२०
३५	बेरुत	लेबनान	८	३०	३,६८०
३६	बेलग्रेड	यूगोस्लाविया	७	३०	५,२५०
३७	बोन	पश्चिमी जर्मनी	८	३०	६,२२०
३८	ब्रुसेल्स	बेल्जियम	[illegible]	३०	६,४१०
३९	ब्यूनस आयर्स	आरजंटाइना	३	३०	१५,७५०
४०	मनीला	फिलीपाइन	१४	३०	४,८००
४१	मास्को	सोवियत संघ	८	३०	४,२६०
४२	मेडरिड	स्पेन	७	३०	७,२७०
४३	रायोडिजेनीरो	ब्राजील	६	३०	१४,०४०
४४	इस्लामाबाद	पाकिस्तान	११	३०	६८०
४५	रियाध	सऊदी अरब	६	३०	३,०५०
४६	रोम	इटली	७	३०	५,६२०

४७	रंगून	ब्रह्मा	१३	००	२,२४०
४८	लिस्बन	पुर्तगाल	६	३०	७,७७०
४९	लंदन	ब्रिटेन	६	३०	६,७१०
५०	वारसा	पोलैंड	७	३०	५,२६०
५१	वाशिंगटन	सं. रा. अमेरिका	१	३०	१२,०४०
५२	वियना	आस्ट्रिया	७	३०	५,५७०
५३	वेलिंगटन	न्यूजीलैंड	१८	३०	१२,६२०
५४	सिओल	कोरिया	१५	००	४,७००
५५	सिंगापुर	मलेशिया संघ	१४	००	४,१४०
५६	सैगांव	दक्षिणी वियतनाम	१३	३०	३,६४०
५७	स्टॉकहोम	स्वीडन	७	३०	५,५७०
५८	हनोई	उत्तरी वियतनाम	१३	३०	५,०४०
५९	हेलसिंकी	फिनलैंड	८	३०	५,२२०
६०	हांगकांग	हांगकांग द्वीप	१४	३०	३,७६०

—ओरल भारती मान चित्रावली, १९७१

परिशिष्ट

वक्तृत्वकला के बीज

भाग १ से ५ तक में

उद्धृत ग्रन्थों व व्यक्तियों की नामावली

१ ग्रन्थ सूची

अङ्गुत्तर निकाय
अंगिरास्मृति
अग्निपुराण
अथर्ववेद
अर्थशास्त्र
अध्यात्मसार
अध्यात्मोपनिषद्
अन्ययोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशिका
अनुयोग द्वार
अपरोक्षानुभूति
अभिधम्मपिटक
अभिधानराजेन्द्र
अभिधानचिन्तामणि
अभिज्ञान शाकुन्तल
अमितिगति श्रावकाचार
अमृतध्वनि
अमर भारती (मासिक)
अवेस्ता
अत्रिस्मृति
अष्टांग हृदय-निदान
आगम और त्रिपिटक:एक अनुशीलन
आचाराङ्गसूत्र
आर्थिक व व्यापारिक भूगोल
आप्त-मीमांसा
आत्मानुशासन
आवश्यकनियुक्ति
आवश्यक मलयगिरि
आवश्यक सूत्र
आत्म-पुराण
आत्मविकास
आतुर प्रत्याख्यान
आपस्तम्बस्मृति
आवां अद्धी सुर्यस्त
औपपातिक सूत्र
इतिहास समुच्चय
ईशोपनिषद्
इस्लामधर्म
इष्टोपदेश
ईश्वरगीता
उत्तरराम चरित्र

उत्तराध्ययन सूत्र
उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति
उदान
उपदेश तरङ्गिणी
उपदेशप्रासाद
उपदेशमाला
उपदेशसुमनमाला
उपासक दशा
ऋग्वेद
ऋषिभासित
ऐतरेय ब्राह्मण
कठोपनिषद्
कथासरित्सागर
कल्याण (मासिक)
कवितावली
कात्यायन स्मृति
किशन बावनी
किरातार्जुनीय
कीर्तिकेयानुप्रेक्षा
कुमारपालचरित्र
कुमार सम्भव
कुरानशरीफ
कुरुक्षेत्र
कुवलयानन्द
कूटवेद
केनोपनिषद्
कौटिलीय अर्थशास्त्र
खुले आकाश में
गच्छाचार प्रकीर्णक
गरुड़ पुराण
गृहस्थधर्म
गीता
गीता भाष्य
गुर्जरभजनपुष्पावली
गुरुग्रन्थ साहिब
गोम्मटसार
गौतमस्मृति
गोरक्षा-शतक
चर्पटपंजरिका
चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र
चन्द-चरित्र
चरक संहिता
चरित्र रक्षा
चरकसूत्र
चाणक्यनीति
चाणक्यसूत्र
चित्राम की चोपी
चीनी सुभाषित
छान्दोग्य उपनिषद्
जपुजी साहिब

जागृति (मासिक)
जातक
जाबालश्रुति
जाह्नवी
जीतकल्प
जीवन-लक्ष्य
जीवन सौरभ
जीवाभिगम सूत्र
जैनभारती
जैनसिद्धान्त दीपिका
जैनसिद्धान्त बोलसंग्रह
टॉड राजस्थान इतिहास
टी. बी. हैण्डबुक
डिकेन्स
डेलीमिरर
तत्त्वामृत
तत्त्वार्थ-सूत्र
तन्दुलवैचारिकगाथा
तत्त्वानुशासन
ताओ-उपनिषद्
ताओ-तेह्-किंग
तात्त्विक त्रिशती
तिरुकुरल
तीन बात
तैत्तरीय उपनिषद्
दशाश्रुत-स्कन्ध
दशाश्रुत-स्कन्धवृत्ति
दक्षसंहिता
दर्शनपाहुड
दान-चन्द्रिका
दिगम्बर प्रतिक्रमण त्रयी
दीर्घनिकाय
दोहा-संदोह
द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका
द्रव्य-संग्रह
धन-बावनी
ध्यानाष्टक
धम्मपद
धर्मबिन्दु
धर्मयुग
धर्मसंग्रह
धर्मरत्न प्रकरण
धर्मशास्त्र का इतिहास
धर्मों की फुलवारी
तैत्तिरीय ताण्ड्य महाब्राह्मण
तोरा
थेरगाथा
दशवैकालिक सूत्र
दर्शन-शुद्धि
धर्म-सूत्र

न्याय दीप
नन्दी सूत्र
नबी
नविश्ते
नवभारत टाइम्स (दैनिक)
नवनीत (मासिक)
नवीन राष्ट्र एटलस
नारद पुराण
नारद नीति
नारद परिव्राजकोपनिषद्
निर्णयसिन्धु
नियमसार
निरुक्त
निशीथ चूर्णि
निशीथ भाष्य
निरालम्बोपनिषद्
नीतिवाक्यामृत
नैषधीय चरित्र
पंचतंत्र
पंचास्तिकाय
पंजाबकेशरी
पद्मपुराण
पहेलवी टेक्सट्स्
पब्लियस साइरस
पद्मानन्द पंचविंशति
प्रवचन सार
प्रवचन सारोद्धार
प्रवचन डायरी
प्रश्नव्याकरण सूत्र
प्रशमरति
प्रज्ञापना सूत्र
पातंजल योगदर्शन
पारस्कर स्मृति
प्रास्ताविक श्लोकशतकम्
पुरानी बाइबिल
पुरुषार्थ सिद्धयुपाय
पुराण
पूर्व मीमांसा
बृहत्कल्प भाष्य
ब्रह्मग्रन्थावली
ब्रह्मानन्द गीता
बृहदारण्यकोपनिषद्
बृहस्पतिस्मृति
बाइबिल
बुखारी
बौरपण्त्
बुद्ध-चरित्र
बेंदीदाद
बौद्ध-साधक
बंगश्री

भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक
भक्ति-सूत्र
भगवती-सूत्र
भर्तृहरि नीतिशतक
,, वैराग्य शतक
,, शृंगार शतक
भविष्य-पुराण
भावप्रकाश
भाषा श्लोकसागर
भामिनीविलास
भाल्लवीय श्रुति
भूदान पत्रिका
भोजप्रबन्ध
मज्झिमनिकाय
मन्थन
महाभारत
महानिद्देस पालि
महानिशीथ भाष्य
महानिर्वाण तन्त्र
मनुस्मृति
मनोनुशासनम्
मत्स्यपुराण
महाप्रत्याख्यान
मरकूस
मिलाप
मुण्डकोपनिषद्
मुस्लिम
मेडम द स्नाल
मेगजीन डाइजेस्ट
मोहमुद्गर
यजन्
यशत्
यशस्तिलकचम्पू
यजुर्वेद
याज्ञवल्क्य स्मृति
यूहन्ना
योगवाशिष्ठ
योगदृष्टि समुच्चय
योगशास्त्र
योगबिन्दु
रघुवंश
रश्मिमाला
राजप्रश्नीय सूत्र
रामचरित मानस
रामसतसई
रामायण
रीड मेगजीन
लूका
व्यवहार चूलिका
व्यवहार-भाष्य

व्यवहार-सूत्र
व्यासस्मृति
व्यास-संहिता
बृहत्पाराशर संहिता
बृहद् द्रव्यसंग्रह
वाल्मीकि रामायण
वशिष्ठ-स्मृति
विचित्रा (मासिक)
विवेकचूड़ामणि
विदुर नीति
विनयपिटक
विवेक विलास
विशेषावश्यक भाष्य
विशेषावश्यक चूर्णि
विश्वकोष
विज्ञान के नए आविष्कार
विसुद्धिमग्गो
विष्णुस्मृति
विश्वमित्र (दैनिक)
वीतराग स्तोत्र
वैद्यक ग्रंथ
वैद्यक-शास्त्र
वैद्य रसराजसमुच्चय
वैशेषिक दर्शन
वैदिक धर्म क्या कहता है ?
वैदिक-विचार विमर्शन
शतपथ ब्राह्मण
श्वेताश्वेतारोपनिषद्
शंकरप्रश्नोत्तरी
शंख स्मृति
शार्ङ्गधर
शान्त सुधारस
शान्तिगीता
श्राद्ध विधि
शास्त्रवार्तासमुच्चय
श्रावकप्रतिक्रमण
शिशुपालवध
शिवपुराण
शिव-संहिता
श्रीमद्भागवत
शील की नववाड़
शुकबोध
शुक्ल यजुर्वेद
षट्प्राभृत
स्कन्ध पुराण
स्थानांग सूत्र
सभा तरंग
सचित्र-विश्व कोष
सत्यार्थप्रकाश
समयसार

समवायांग सूत्र
सम्बोधसत्तरि
सप्तव्यसन सन्धान काव्य
सरिता
सर्जना
सवैया शतक
स्वप्न शास्त्र
स्वर-साधना
समाधिशतक
सन्मति तर्कप्रकरण
स्टडीज इन डिसीट
सरल मनोविज्ञान
संयुत्तनिकाय
सामायिक सूत्र
सामवेद
सावधानी रो समुद्र
सिद्धान्त कौमुदी
सिन्दूर प्रकरण
सुखमणि संहिता
सुत्तनिपात
सुभाषितावलि
सुभाषितरत्न खण्ड-मंजूषा
सुभाषित रत्नभाण्डागार
सुभाषित संचय
सुत्तपाहुड
सुबोध पद्माकर
सुभाषित रत्न सन्दोह
सुश्रुत शरीर-स्थान
सूत्रकृतांग सूत्र
सूक्तरत्नावलि
सूक्तमुक्तावलि
सौर परिवार
हजरत मज्दा
हदीश शरीफ
हरिभद्रीयआवश्यक
हनुमान नाटक
हृदय प्रदीप
हृषिकेश
हितोपदेश
हिंगुलप्रकरण
हिन्दुस्तान (दैनिक व साप्ताहिक)
हिन्दसमाचार
क्षेमेन्द्र
त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र
ज्ञाता-सूत्र
ज्ञानार्णव
ज्ञान-सार
ज्ञानप्रकाश

□□

व्यक्ति-नामावली २

अफलातून
अबुमुर्तजि
अबीदाउद
अबूबकर केलानी
अल्फान्सीकर
अरविन्द घोष
अरस्तू
आचार्य उमाशंकर
आचार्य श्रीतुलसी
आचार्य रजनीश
आरकिंग
आरजू
आस्निओमले
ओडोर पारकर
इपिक्टेटस
इब्राहिम लिंकन
उमास्वाति
एच, मोर
एञ्जिलो
एनीबिसेन्ट

एमर्सन
एडीसन
एविड
एलाव्हीलर
एलोसियस
कविराज हरनामदास
कबीर
कन्फ्युसियस
कपडोर सेट
कांगफ्युत्सी
कार्लाइल
कार्लमार्क्स
कामवेल
विबकक्
कालूगणी
कुन्दकुन्दाचार्य
कूपर
केटो
कैनेथवालसर
कंफ्सि

कैथराल
कोल्टन
खलील जिब्रान
ग्वाल कवि
गांधी
गिब्बन
गुरु गोरखनाथ
गुरु नानक
गेटे
ग्रे बिल
ग्रे नविल
गोल्डस्मिथ
गोल्डो जी
गौतम बुद्ध
जगन्नाथ कवि
जयचन्द
जयशंकर प्रसाद
जयाचार्य
जवाहरलाल नेहरु
जार्ज चेपमैन

जान मिल्टन
जामी
जॉनसन
जाविदान ए. खिरद
जीनपाली
जुगल कवि
जुर्न्नेद
जुन्नून
जुबंट
जेंगविल
जे. फरीश
जे. नोफेन
जे. पी. सी. बर्नार्ड
जे. पी. हालेण्ड
जौक
टप्पर
टालस्टाय
टामस केम्पिस
टालमेज
टी. एल. वास्वानी
ड. ल. जार्ज
डाइट रॉट
डॉ. हरदयालमाथुर
डॉ. एलेग्जी केरेल
डॉ. ग्यास जे रोल्ड

डार्विन
डिकेन्स
डिजरायली
डी० जेरोल्ड
डी० एल० मूडी
डेलकार्नेगी
तिरमजी
तुलसीदास
थामस केम्पी
थामस फूलर
थेल्स
थेंकरे
थोरो
दादू
दीपकवि
धनमुनि
धूमकेतु
नकुलेश्वर
नजिन
नलिन
नाथजी
निकोलस
निपट निरंजन
निर्मला हरवंशसिंह
नीत्से

पेरी लिंगन
प्लुटार्क
प्लेटो
पटोरिया
पद्माकर
परसराम
पीटर बेरो
पीपाकवि
पेस्क
प्रेमचन्द
पेरोसेल्स
पोप
फुलर
फ्रेंकलिन
बर्टन
बनारसीदास
बर्नाडशा
बलबर
ब्रह्मदत्त कवि
ब्रह्मानन्द
बालजक
बावरी साहिब
बिल्हण कवि
बीचर
बुल्लेशाह

बूलकोट
बेकन
बेताल कवि
बेल
बी. बी.
बोधा
भगवतीचरण वर्मा
भिक्षुगणी
भूधर दास
महात्मा भगवानदीन
मदन द० रियू
महर्षि रमण
मार्कटेन
माण्टेन
माघकवि
मिल्टन
मेरीकोरा ए-डी
मुहम्मद-बिन-बशीर
मेरी ब्राउन
मेसेंजर
मैकिन्तोस
मैथिलीशरण गुप्त
मोलियर
यशोविजय जी
यूसूफ असुबात

रज्जबदास
रुडयार्ड किपलिंग
रहीम
रविशर
रवि दिवाकर
रस्किन
रवीन्द्रनाथ टैगोर
रामकृष्ण परमहंस
रामचरण कवि
रामतीर्थ
रामरतन शर्मा
रिस्टर
रिशर
रूसो
रोम्यांरोला
रोशे
रोशफूको
लाफान्टेन
लावेल
लांगफेलो
लीटन
लीनलिज
लुकमान हकीम
लूथर
लेनिन

लोकमान्य तिलक
क्लेर
व्यावली
वृन्द कवि
वायरन
वायर्स
वारटल
वाल्टेयर
वाशिंगटन इविंग
विजयधर्मसूरि
विनोबा भावे
विगअवरा
विलियमपिट
विलियमपेन
विवेकानन्द
शंकराचार्य
शापेनहावर
शिलर
शिवानन्द
शुभचन्द्राचार्य
शेक्सपियर
शेखसादी
स्टेनिलस
स्टील
स्पेंसर

सत्यदेवनारायण सिन्हा
सन्त आगस्तीन
संत ज्ञानेश्वर
संत तुकाराम
सन्त निहालसिंह
सद्गुरुचरण अवस्थी
समर्थगुरु रामदास
सायरस
सिगुरिनी
स्विट
सिसरो
सुकरात
सुन्दरदास
सूरत कवि
सूरदास
सेलहार्स्ट
सैनेका
सैमुअल जानसन
सोमदेव सूरि
हजरत अली
हजरत मुहम्मद
हरिभद्र सूरि
हलबर्ट
हयहया
ह्यूम
हाफिज
हाथैल
हालीबर्टन
हार्टले
हे एन. भांग
हेनरी वार्ड बीचर
हैजलिट
हैली वर्टन
होमर
होरेस वाल पोल
ब्रायण्ट

□ □

लेखक की महत्वपूर्ण रचनाएं

प्रकाशित

१. एक आदर्श आत्मा	०-४०	हरकचन्द इन्द्रचन्द नौलखा माधोगंज, लश्कर ग्वालियर (म० प्र०)
२. चमकते चांद	०-४०	रतीराम रामस्वरूप जैन पो० कैथलमण्डी (हरियाणा)
३. चरित्र-प्रकाश	२-५०	श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सभा बालोतरा (राजस्थान)
४. भजनों की भेंट	०-६०	,, ,,
५. लोक प्रकाश	१-२५	,, ,,
६. चौदह नियम	०-२०	आदर्श साहित्य संघ पो० चूरु (राजस्थान)
७. मोक्ष प्रकाश		,, ,,
८. जैन-जीवन	०-६५	श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सभा टोहाना (हरियाणा)

९. प्रश्न प्रकाश	०-८०	श्री जैन श्वे० तेरापन्थी महासभा ३, पोर्चगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता-१
१०. मनोनिग्रह के दो मार्ग	१-२५	मदनचन्द सम्पतराय बोरड़ दुकान नं० ४०, धानमण्डी, श्रीगंगानगर (राजस्थान)
११. सच्चा धन	०-३०	श्री दलीपचन्द द्वारा : ला० दयाराम बुजलाल जैन
१२. सोलह सतियां (द्वि. सं.)	२-००	टोहाना मण्डी (हरियाणा)
सोलह सतियां (तृ. सं.)		श्री चांदमल मानिकचन्द चोरड़िया पो० छापर, (चूरू, राजस्थान)
१३. ज्ञान के गीत (चौथा संस्करण)	१-००	लाला दयाराम मंगलराम जैन टोहानामण्डी (हरियाणा)
१४. ज्ञान-प्रकाश	१-००	श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सभा पो० भीनासर (राजस्थान)
१५. जीवन प्रकाश (उर्दू)		श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सभा नाभा (पंजाब)
१६. सच्चा धन (उर्दू)	०-३०	,, ,,
१७. तेरापन्थ एटले शुं ?	०-६२	नेमीचन्द नगीनचन्द जवेरी 'चन्द्र महल' १३०,शेखमैमन स्ट्रीट, बम्बई-२
१८. धर्म एटले शुं ?	०-३५	
१९. परीक्षक बनो !	०-३५	

२०. वक्तृत्वकला के बीज (भाग १ से १० तक) प्रत्येक भाग	५-५०	**समन्वय प्रकाशन** **द्वारा : मोतीलाल पारख** पो० बाक्स नं० ४२, अहमदाबाद-२२
प्रकाशित ५ भाग प्रेस में ५ भाग		एवं **संजय साहित्य संगम** दासबिल्डिंग नं० ५, बिलोचपुरा, आगरा-२

लेखक की अप्रकाशित रचनाएं

हिन्दी :

अवधान-विधि

उपदेश-द्विपञ्चाशिका

उपदेश सुमनमाला

जैनमहाभारत :

जैन रामायण

दोहा-संदोह

व्याख्यान मणिमाला

व्याख्यान रत्नमञ्जूषा

वैदिक विचार विमर्शन (बड़ा)

संक्षिप्त वैदिक विचार विमर्शन

संस्कृत बोलने का सरल तरीका

संस्कृत :

ऐक्यम्

एकाह्निक कालूशतकम्

देवगुरु धर्म द्वात्रिंशिका

प्रास्ताविकश्लोक शतकम्

भाविनी

श्रीकालू कल्याणमन्दिरम्

श्रीभिक्षु शब्दानुशासन वृत्तिद्वि-

तयप्रकरणम्

गुजराती :

गुर्जर व्याख्यान रत्नावलि

गुर्जर भजन पुष्पावलि

राजस्थानी :

औपदेशिक ढालें

कथा प्रबन्ध

ग्यारह छोटे व्याख्यान

छः बड़े व्याख्यान

छन्द ढावली

प्रास्ताविक ढालें

सवैया-शतक

सावधानी रो समुद्र

पंजाबी :

पंजाब पच्चीसी

६

वक्तृत्व-कला के बीज

श्री धनमुनि "प्रथम"

[सर्वाधिकार सुरक्षित—प्रबन्ध-संपादक के लिए]

वक्तृत्वकला के बीज

भाग ६

समन्वय-प्रकाशन

सम्पादन-सहयोग :

स्व० श्री लालचंदजी बैद (भादरा)

प्रबन्ध-सम्पादक :

मोतीलाल पारख

प्रकाशक :

बेगराज भंवरलाल चोरड़िया-- चेरिटेबल ट्रस्ट,

५, सीनागोग स्ट्रीट, कलकत्ता १

संस्करण :

वि० सं० २०३० चैत्र सुदि १३

महावीर जयंती

अप्रेल १९७३

२१०० प्रतियां

मूल्य :

चार रुपया पचास पैसे

मुद्रक :

संजय साहित्य संगम, आगरा-२ के लिए—

रामनारायन मेड़तवाल

श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस

राजा की मंडी, आगरा-२ ।

उन जिज्ञासुओं को
जिनकी उर्वर-मनोभूमि में
ये बीज
अंकुरित
पुष्पित
फलित हों
अपना विराट्‌रूप प्राप्त कर सकें !

प्राप्तिकेन्द्र :

- श्री बेगराज भंवरलाल चोरड़िया—
  चेरिटेबल ट्रस्ट,
  ५, सीनागोग स्ट्रीट
  कलकत्ता-१

●

- श्री मोतीलाल पारख
  C/o दि अहमदाबाद लक्ष्मी काटन मिल्स, कं० लि०
  पो० बा० नं० ४२
  अहमदाबाद—२२

●

- श्री सम्पतराय बोरड़
  C/o मदनचंद संपतराय बोरड़
  ४०, धानमंडी,
  श्रीगंगानगर (राजस्थान)

प्राक्कथन

मानव-जीवन में वाचा की उपलब्धि एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। हमारे प्राचीन आचार्यों की दृष्टि में वाचा ही सरस्वती का अधिष्ठान है, **वाचा सरस्वती भिषग्**[1]—वाचा ज्ञान की अधिष्ठात्री होने से स्वयं सरस्वती-रूप है, और समाज के विकृत आचार-विचाररूप रोगों को दूर करने के कारण यह कुशल वैद्य भी है।

अन्तर के भावों को एक दूसरे तक पहुँचाने का एक बहुत बड़ा माध्यम वाचा ही है। यदि मानव के पास वाचा न होती तो, उसकी क्या दशा होती? क्या वह भी मूकपशुओं की तरह भीतर-ही-भीतर घुटकर समाप्त नहीं हो जाता? मनुष्य जो गूँगा होता है, वह अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए कितने हाथ-पैर मारता है, कितना छटपटाता है, फिर भी अपना सही आशय कहाँ समझा पाता है दूसरों को?

बोलना वाचा का एक गुण है, किंतु बोलना एक अलग चीज है, और वक्ता होना वस्तुतः एक अलग चीज है। बोलने को हर कोई बोलता है, पर वह कोई कला नहीं है, किंतु वक्तृत्व एक कला है। वक्ता साधारण से विषय को भी कितने सुन्दर और मनोहारी रूप से प्रस्तुत करता है कि श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। वक्ता के बोल श्रोता के हृदय में ऐसे उतर जाते हैं कि वह उन्हें जीवन भर नहीं भूलता।

कर्मयोगी श्रीकृष्ण, भगवान्महावीर, तथागतबुद्ध, व्यास और भद्रबाहु आदि भारतीय प्रवचन-परम्परा के ऐसे महान प्रवक्ता थे, जिनकी वाणी का

---

१ यजुर्वेद १९।१२

नाद आज भी हजारों-लाखों लोगों के हृदयों को आप्यायित कर रहा है। महाकाल की तूफानी हवाओं में भी उनकी वाणी की दिव्य ज्योति न बुझी है और न बुझेगी।

हर कोई वाचा का धारक, वाचा का स्वामी नहीं बन सकता। वाचा का स्वामी ही वाग्मी या वक्ता कहलाता है। वक्ता होने के लिए ज्ञान एवं अनुभव का आयाम बहुत ही विस्तृत होना चाहिए। विशाल अध्ययन, मनन-चिंतन एवं अनुभव का परिपाक वाणी को तेजस्वी एवं चिरस्थाई बनाता है। बिना अध्ययन और विषय की व्यापक जानकारी के भाषण केवल भषण (भौंकना) मात्र रह जाता है, वक्ता कितना ही चीखे-चिल्लाये, उछले-कूदे; यदि प्रस्तावित विषय पर उसका सक्षम अधिकार नहीं है, तो वह सभा में हास्यास्पद हो जाता है, उसके व्यक्तित्व की गरिमा लुप्त हो जाती है। इसलिए बहुत प्राचीनयुग में एक ऋषि ने कहा था—'वक्ता शतसहस्रेषु', अर्थात् लाखों में कोई एक वक्ता होता है।

शतावधानी मुनिश्री धनराजजी जैनजगत् के यशस्वी प्रवक्ता हैं। उनका प्रवचन, वस्तुतः प्रवचन होता है। श्रोताओं को अपने प्रस्तावित विषय पर केन्द्रित एवं मन्त्रमुग्ध कर देना उनका सहज कर्म है। और यह उनका वक्तृत्व—एक बहुत बड़े व्यापक एवं गंभीर अध्ययन पर आधारित है। उनका संस्कृत-प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओं का ज्ञान विस्तृत है, साथ ही तलस्पर्शी भी! मालूम होता है, उन्होंने पांडित्य को केवल छुआ भर नहीं है, किन्तु समग्रशक्ति के साथ उसे गहराई से अधिग्रहण किया है। उनकी प्रस्तुत पुस्तक '**वक्तृत्वकला के बीज**' में यह स्पष्ट परिलक्षित होता है।

प्रस्तुत कृति में जैन आगम, बौद्धवाङ्मय, वेदों से लेकर उपनिषद् ब्राह्मण, पुराण, स्मृति आदि वैदिक साहित्य तथा लोककथानक, कहावतें, रूपक, ऐतिहासिक घटनाएं, ज्ञान-विज्ञान की उपयोगी चर्चाएं—इस प्रकार शृंखला-बद्धरूप में संकलित हैं कि किसी भी विषय पर हम बहुत कुछ विचार-सामग्री प्राप्त कर सकते हैं। सचमुच वक्तृत्वकला के अगणित बीज इसमें सन्निहित हैं। सूक्तियों का तो एक प्रकार से यह रत्नाकर ही है। अंग्रेजी

साहित्य व अन्य धर्मग्रंथों के उद्धरण भी काफी महत्वपूर्ण हैं। कुछ प्रसंग और स्थल तो ऐसे हैं, जो केवल सूक्ति और सुभाषित ही नहीं है, उनमें विषय की तलस्पर्शी गहराई भी है और उसपर से कोई भी अध्येता अपने ज्ञान के आयाम को और अधिक व्यापक बना सकता है। लगता है- जैसे मुनिश्री जी वाङ्मय के रूप में विराट् पुरुष हो गए हैं। जहां पर भी दृष्टि पड़ती है कोई-न-कोई वचन ऐसा मिल ही जाता है, जो हृदय को छू जाता है और यदि प्रवक्ता प्रसंगतः अपने भाषण में उपयोग करे, तो अवश्य ही श्रोताओं के मस्तक झूम उठेंगे।

प्रश्न हो सकता है—'वक्तृत्वकला के बीज' में मुनिश्री का अपना क्या है? यह एक संग्रह है और संग्रह केवल पुरानी निधि होती है; परन्तु मैं कहूंगा—कि फूलों की माला का निर्माता माली जब विभिन्न जाति एवं विभिन्न रंगों के मोहक पुष्पों की माला बनाता है तो उसमें उसका अपना क्या है? बिखरे फूल, फूल हैं, माला नहीं। माला का अपना एक अलग ही विलक्षण सौन्दर्य है। रंग-बिरंगे फूलों का उपयुक्त चुनाव करना और उनका कलात्मक रूप में संयोजन करना -- यही तो मालाकार का काम है, जो स्वयं में एक विलक्षण एवं विशिष्ट कलाकर्म है। मुनिश्री जी वक्तृत्वकला के बीज में ऐसे ही विलक्षण मालाकार हैं। विषयों का उपयुक्त चयन एवं तत्सम्बन्धित सूक्तियों आदि का संकलन इतना शानदार हुआ है कि इस प्रकार का संकलन अन्यत्र इस रूप में नहीं देखा गया।

एक बात और—श्री चन्दनमुनिजी की संस्कृत-प्राकृत रचनाओं ने मुझे यथावसर काफी प्रभावित किया है। मैं उनकी विद्वत्ता का प्रशंसक रहा हूं। श्री धनमुनि जी उनके बड़े भाई हैं—जब यह मुझे ज्ञात हुआ तो मेरे हर्ष की सीमाओं का और भी अधिक विस्तार हो गया। अब कैसे कहूं कि इन दोनों में कौन बड़ा है और कौन छोटा? अच्छा, यही होगा कि एक को दूसरे से उपमित कर दूं। उनकी बहुश्रुतता एवं इनकी संग्रह-कुशलता से मेरा मन मुग्ध हो गया है।

मैं मुनिश्री जी, और उनकी इस महत्वपूर्णकृति का हृदय से अभिनन्दन करता हूं। विभिन्न भागों में प्रकाशित होनेवाली इस विराट् कृति से प्रवचन-कार, लेखक एवं स्वाध्यायप्रेमीजन मुनि श्री के लिए ऋणी रहेंगे। वे जब भी चाहेंगे, वक्तृत्वकला के बीज में से उन्हें कुछ मिलेगा ही, वे रिक्तहस्त नहीं रहेंगे—ऐसा मेरा विश्वास है।

प्रवक्तृ-समाज—मुनिश्रीजी का एतदर्थ आभारी है और आभारी रहेगा।

जैन भवन
आश्विन शुक्ला-२ —उपाध्याय अमरमुनि
आगरा

●●

मंगल-संदेश

मनुष्य विभिन्न शक्तियों का स्रोत है। नहीं, वह अनन्तशक्तियों का स्रोत है।

पर, जिन-जिन शक्तियों को अभिव्यक्त होने का समय और साधन मिल पाता है वही हमारे सामने विकसित रूप से प्रगट होती है, शेष अनभिव्यक्त रूप में अपना काम करती रहती हैं।

संग्राहक शक्ति भी उन्हीं में से एक है, जो अन्वेषण-प्रधान है और दूसरों के लिए बहुत उपयोगी बन जाती है।

मक्खन का आस्वादन करना एक बात है, पर उसे दही में से मथकर निकालकर संग्रहीत करना एक विशिष्ट शक्ति है।

मुनि श्री धनराजजी (सिरसा) में यह शक्ति अच्छी विकसित हुई है। शुरु से ही उनकी यह धुन रही है, आदत रही है, वे बराबर किसी न किसी रूप में खोज करते रहते हैं और फिर उसको संग्रहीत कर एक आकार दे देते हैं। वह साहित्य बन जाता है, जन-जन की खुराक बन जाता है।

"वक्तृत्वकला के बीज" एक ऐसी ही कृति हमारे समक्ष प्रस्तुत है जो मुनि धनराजजी की संग्राहकशक्ति का एक विशिष्ट उदाहरण है। उसमें प्राचीन, अर्वाचीन अनेक ग्रन्थों का मन्थन है, अनेक भाषाओं का प्रयोग है। मूल उद्धरण के साथ हिन्दी अनुवाद देकर और सरसता उसमें लाई गई है। बड़ा सुन्दर प्रयास है। अपनी वक्तृत्वकला का विकास चाहनेवाले वक्ता के लिए बहुत उपयोगी है यह ग्रन्थ, जो अनेक भागों में विभक्त है। मेरा विश्वास है—यह प्रयत्न बहुजन हिताय—बहुजन सुखाय सिद्ध होगा।

चूरू

—आचार्य तुलसी

सम्पादकीय

वक्तृत्वगुण एक कला है, और वह बहुत बड़ी साधना की अपेक्षा करता है। आगम का ज्ञान, लोकव्यवहार का ज्ञान, लोकमानस का ज्ञान और समय एवं परिस्थितियों का ज्ञान तथा इन सबके साथ निस्पृहता, निर्भयता, स्वर की मधुरता, ओजस्विता आदि गुणों की साधना एवं विकास से ही वक्तृत्वकला का विकास हो सकता है, और ऐसे वक्ता वस्तुतः हजारों लाखों में कोई एकाध ही मिलते हैं।

तेरापंथ के अधिशास्ता युगप्रधान आचार्य श्रीतुलसी में वक्तृत्वकला के ये विशिष्ट गुण चमत्कारी ढंग से विकसित हुए हैं। उनकी वाणी का जादू श्रोताओं के मन-मस्तिष्क को आन्दोलित कर देता है। भारतवर्ष की सुदीर्घ पदयात्राओं के मध्य लाखों नर-नारियों ने उनकी ओजस्विनी वाणी सुनी है और उसके मधुर प्रभाव को जीवन में अनुभव किया है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक मुनिश्री धनराजजी भी वास्तव में वक्तृत्वकला के महान गुणों के धनी एक कुशल प्रवक्ता संत हैं। वे कवि भी हैं, गायक भी हैं, और तेरापंथ शासन में सर्वप्रथम अवधानकार भी हैं; इन सबके साथ-साथ बहुत बड़े विद्वान् तो हैं ही। उनके प्रवचन जहां भी होते हैं, श्रोताओं की अपार भीड़ उमड़ आती है। आपके विहार करने के बाद भी श्रोता आपको याद करते रहते हैं।

आपकी भावना है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी वक्तृत्वकला का विकास करे और उसका सदुपयोग करे, अतः जनसमाज के लाभार्थ आपने वक्तृत्व के योग्य विविध सामग्रियों का यह विशाल संग्रह प्रस्तुत किया है।

बहुत समय से जनता की विद्वानों की और वक्तृत्वकला के अभ्यासियों की मांग थी कि इस दुर्लभ सामग्री का जनहितार्थ प्रकाशन किया जाय तो बहुत लोगों को लाभ मिलेगा। जनता की भावना के अनुसार हमने मुनिश्री की इस सामग्री को छापना प्रारंभ किया। इस कार्य को सम्पन्न करने में श्री डूंगरगढ़, मोमासर, भादरा, हिसार, टोहाना, उकलाना, कैथल, हांसी, भिवानी, तोसाम, ऊमरा, सिसाय, जमालपुर, सिरसा और भटिंडा आदि के विद्यार्थियों एवं युवकों ने अथक परिश्रम किया है। फलस्वरूप लगभग सौ कापियों में यह सामग्री संकलित हुई है। हम इस विशाल संग्रह को विभिन्न भागों में प्रकाशित करने का संकल्प लेकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हुए है।

परमश्रद्धेय आचार्य प्रवर ने पुस्तक के लिए अपना मंगल-संदेश देकर इस प्रयत्न को प्रोत्साहित किया—उनके प्रति मैं हृदय की असीम श्रद्धा व्यक्त करता हूं। तथा पुस्तक की महत्ता और उपयोगिता के अनुसार ही इसकी भूमिका लिखी है जैनसमाज के बहुश्रुत विद्वान् तटस्थ विचारक उपाध्याय श्री अमर-मुनि जी ने। उनके इस अनुग्रह का मैं हृदय से आभारी हूं।

इसके प्रकाशन का समस्त भार श्री नेमराज भंवरलाल जी चोरड़िया, चेरिटेबल ट्रस्ट, कलकत्ता ने वहन किया है, इस अनुकरणीय उदारता के लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं। इसके प्रकाशन एवं प्रूफ संशोधन-मुद्रण आदि की समस्त व्यवस्था 'संजय-साहित्य-संगम' के संचालक श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' ने की है, तथा अन्य सहयोगियों का जो हार्दिक सहयोग प्राप्त हुआ है—उसके लिए भी हम हृदय से कृतज्ञता-ज्ञापित करते हैं। आशा है यह पुस्तक जन-जन के लिए, वक्ताओं और लेखकों के लिए एक संदर्भग्रंथ (बिब्लोग्राफी) का काम देगी और युग-युग तक इसका लाभ मिलता रहेगा।....

●●

आत्म निवेदन

'मनुष्य की प्रकृति का बदलना अत्यन्त कठिन है'—यह सूक्ति मेरे लिए सवा सोलह आना ठीक साबित हुई। बचपन में जब मैं कलकत्ता—श्री जैनश्वेताम्बर-तेरापंथी-विद्यालय में पढ़ता था जहाँ तक याद है, मुझे जलपान के लिए प्रायः प्रति-दिन एक आना मिलता था। प्रकृति में संग्रह करने की भावना अधिक थी, अतः मैं खर्च करके भी उसमें से कुछ न कुछ बचा ही लेता था। इस प्रकार मेरे पास कई रुपये इकट्ठे हो गये थे और मैं उनको एक डिब्बी में रखा करता था।

विक्रम संवत् १९७६ में अचानक माताजी की मृत्यु होने से विरक्त होकर हम (पिता श्री केवलचन्द जी मैं, छोटी बहन दीपांजी और छोटे भाई चन्दनमल जी) परमकृपालु श्रीकालुगणीजी के पास दीक्षित हो गए। यद्यपि दीक्षित होकर रुपयों-पैसों का संग्रह छोड़ दिया, फिर भी संग्रहवृत्ति नहीं छूट सकी। वह धनसंग्रह से हटकर ज्ञानसंग्रह की ओर झुक गई। श्री कालुगणी के चरणों में हम अनेक बालक मुनि आगम-व्याकरण-काव्य-कोष आदि पढ़ रहे थे। लेकिन मेरी प्रकृति इस प्रकार की बन गई थी कि जो भी दोहा-छन्द-श्लोक-ढाल-व्याख्यान-कथा आदि सुनने या पढ़ने में अच्छे लगते, मैं तत्काल उन्हें लिख लेता या संसार-पक्षीय पिताजी से लिखवा लेता। फलस्वरूप उपरोक्त सामग्री का काफी अच्छा संग्रह हो गया। उसे देखकर अनेक मुनि विनोद की भाषा में कह दिया करते थे कि "यह तो न्यारा में जाने की [अलग विहार करने की] तैयारी कर रहा है।" उत्तर में मैं कहा करता—क्या आप गारंटी दे सकते हैं कि इतने (१० या १५) साल तक आचार्य श्री हमें अपने साथ ही

रखेंगे ? क्या पता, कल ही अलग विहार करने का फरमान करदें ! व्याख्यानादि का संग्रह होगा तो धर्मोपदेश या धर्म-प्रचार करने में सहायता मिलेगी।

समय-समय पर उपरोक्त साथी मुनियों का हास्य-विनोद चल ही रहा था कि वि० सं० १९८६ में श्री कालुगणी ने अचानक ही श्रीकेवलमुनि को अग्रगण्य बनाकर रतननगर (थेलासर) चातुर्मास करने का हुक्म दे दिया। हम दोनों भाई (मैं और चन्दन मुनि) उनके साथ थे। व्याख्यान आदि का किया हुआ संग्रह उस चातुर्मास में बहुत काम आया एवं भविष्य के लिए उत्तमोत्तम ज्ञानसंग्रह करने की भावना बलवती बनी। हम कुछ वर्ष तक पिताजी के साथ विचरते रहे। उनके दिवंगत होने के पश्चात् दोनों भाई अग्रगण्य के रूप में पृथक्-पृथक् विहार करने लगे।

विशेष प्रेरणा—एक बार मैंने 'वक्ता बनो' नाम की पुस्तक पढ़ी। उसमें वक्ता बनने के विषय में काफी अच्छी बातें बताई हुई थीं। पढ़ते-पढ़ते यह पंक्ति दृष्टिगोचर हुई कि "कोई भी ग्रन्थ या शास्त्र पढ़ो, उसमें जो भी बात अपने काम की लगे, उसे तत्काल लिख लो।" इस पंक्ति ने मेरी संग्रह करने की प्रवृत्ति को पूर्वापेक्षया अत्यधिक तेज बना दिया। मुझे कोई भी नई युक्ति, सूक्ति या कहानी मिलती, उसे तुरन्त लिख लेता। फिर जो उनमें विशेष उपयोगी लगती, उसे औपदेशिक भजन, स्तवन या व्याख्यान के रूप में गूंथ लेता। इस प्रवृत्ति के कारण मेरे पास अनेक भाषाओं में निबद्ध स्वरचित सैकड़ों भजन और सैकड़ों व्याख्यान इकट्ठे हो गए। फिर जैन-कथा साहित्य एवं तात्त्विकसाहित्य की ओर रुचि बढ़ी। फलस्वरूप दोनों ही विषयों पर अनेक पुस्तकों की रचना हुई। उनमें छोटी-बड़ी लगभग २० पुस्तकें तो प्रकाश में आ चुकीं, शेष ३०-३२ अप्रकाशित ही हैं।

एक बार संगृहीत-सामग्री के विषय में यह सुझाव आया कि यदि प्राचीन संग्रह को व्यवस्थित करके एक ग्रन्थ का रूप दे दिया जाए, तो यह उत्कृष्ट उपयोगी चीज बन जाए। मैंने इस सुझाव को स्वीकार किया और अपने प्राचीन-संग्रह को व्यवस्थित करने में जुट गया। लेकिन पुराने संग्रह में कौन-सी सूक्ति, श्लोक या हेतु किस ग्रन्थ या शास्त्र के हैं अथवा किस कवि,

वक्ता या लेखक के हैं—यह प्रायः लिखा हुआ नहीं था। अतः ग्रन्थों या शास्त्रों आदि की साक्षियां प्राप्त करने के लिए—इन आठ-नौ वर्षों में वेद, उपनिषद्, इतिहास, स्मृति, पुराण, कुरान, बाइबिल, जैनशास्त्र, बौद्धशास्त्र, नीतिशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, स्वप्नशास्त्र, शकुनशास्त्र, दर्शन-शास्त्र, संगीत शास्त्र तथा अनेक हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, राजस्थानी, गुजराती, मराठी एवं पंजाबी सूक्तिसंग्रहों का ध्यानपूर्वक यथासम्भव अध्ययन किया। उससे काफी नया संग्रह बना और प्राचीन संग्रह को साक्षी सम्पन्न बनाने में सहायता मिली। फिर भी खेद है कि अनेक सूक्तियां एवं श्लोक आदि बिना साक्षी के ही रह गए। प्रयत्न करने पर भी उनकी साक्षियां नहीं मिल सकीं। जिन-जिन की साक्षियां मिली हैं, उन-उनके आगे वे लगा दी गई हैं। जिनकी साक्षियां उपलब्ध नहीं हो सकीं, उनके आगे स्थान रिक्त छोड़ दिया गया है। कई जगह प्राचीन-संग्रह के आधार पर केवल महाभारत, वाल्मीकिरामायण, योग-शास्त्र आदि महान् ग्रन्थों के नाममात्र लगाए हैं, अस्तु !

इस ग्रन्थ के संकलन में किसी भी मत या सम्प्रदाय विशेष का खण्डन-मण्डन करने की दृष्टि नहीं है, केवल यही दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि कौन क्या कहता है या क्या मानता है ? यद्यपि विश्व के विभिन्न देशनिवासी मनीषियों के मतों का संकलन होने से ग्रन्थ में भाषा की एकरूपता नहीं रह सकी है। कहीं प्राकृत-संस्कृत, पारसी, उर्दू एवं अंग्रेजी भाषा है तो कहीं हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, पंजाबी और बंगाली भाषा के प्रयोग हैं, फिर भी कठिन भाषाओं के श्लोक, वाक्य आदि का अर्थ हिन्दी भाषा में कर दिया गया है। दूसरे प्रकार से भी इस ग्रन्थ में भाषा की विविधता है। कई ग्रन्थों, कवियों, लेखकों एवं विचारकों ने अपने सिद्धान्त निरवद्यभाषा में व्यक्त किए हैं तो कई साफ-साफ सावद्यभाषा में ही बोले हैं। मुझे जिस रूप में जिसके जो विचार मिले हैं, उन्हें मैंने उसी रूप में अंकित किया है लेकिन मेरा अनुमोदन केवल निरवद्य-सिद्धान्तों के साथ है।

ग्रन्थ की सर्वोपयोगिता—इस ग्रन्थ में उच्चस्तरीय विद्वानों के लिए जहाँ जैन-बौद्ध आगमों के गम्भीर पद्य हैं, वेदों, उपनिषदों के अद्भुत मंत्र हैं,

स्मृति एवं नीति के हृदयग्राही श्लोक हैं, वहां सर्वसाधारण के लिए सीधी-सादी भाषा के दोहे, छन्द, सूक्तियां, लोकोक्तियां, हेतु, दृष्टान्त एवं छोटी-छोटी कहानियां भी हैं। अतः यह ग्रन्थ निःसंदेह हर एक व्यक्ति के लिए उपयोगी सिद्ध होगा ऐसी मेरी मान्यता है। वक्ता, कवि और लेखक इस ग्रन्थ से विशेष लाभ उठा सकेंगे, क्योंकि इसके सहारे वे अपने भाषण, काव्य और लेख को ठोस, सजीव, एवं हृदयग्राही बना सकेंगे एवं अद्भुत विचारों का विचित्र चित्रण करके उनमें निखार ला सकेंगे, अस्तु !

ग्रन्थ का नामकरण—इस ग्रन्थ का नाम 'वक्तृत्वकला के बीज' रखा गया है। वक्तृत्वकला की उपज के निमित्त यहां केवल बीज इकट्ठे किए गए हैं। बीजों का वपन किसलिए, कैसे, कब और कहां करना—यह वक्ता [बीज बोनेवालों] की भावना एवं बुद्धिमत्ता पर निर्भर करेगा। फिर भी मेरी मनोकामना तो यही है कि वक्ता परमात्मपदप्राप्तिरूप फलों के लिए शास्त्रोक्तविधि से अच्छे अवसर पर उत्तम क्षेत्रों में इन बीजों का वपन करेंगे। अस्तु !

यहां मैं इस बात को भी कहे बिना नहीं रह सकता कि जिन ग्रन्थों, लेखों, समाचार पत्रों एवं व्यक्तियों से इस ग्रन्थ के संकलन में सहयोग मिला है—वे सभी सहायकरूप से मेरे लिए चिरस्मरणीय रहेंगे।

यह ग्रन्थ कई भागों में विभक्त है एवं उनमें सैकड़ों विषयों का संकलन है। उक्त संग्रह बालोतरा मर्यादा-महोत्सव के समय मैंने आचार्यश्री तुलसी को भेंट किया। उन्होंने देखकर बहुत प्रसन्नता व्यक्त की एवं फरमाया कि इसमें छोटी-छोटी कहानियां एवं घटनाएं भी लगा देनी चाहिये ताकि विशेष उपयोगी बन जाएं। आचार्यश्री का आदेश स्वीकार करके इसे संक्षिप्त कहानियों तथा घटनाओं से सम्पन्न किया गया।

मुनि श्री चन्दनमलजी, डूंगरमलजी, नथमलजी, नगराज जी, मधुकरजी, राकेशजी, रूपचन्दजी आदि अनेक साधु एवं साध्वियों ने भी इस ग्रन्थ को विशेष उपयोगी माना। बीदासर महोत्सव पर कई संतों का यह अनुरोध रहा कि इस संग्रह को अवश्य छपा दिया जाए !

सर्व प्रथम वि० स० [illegible]२३ में श्री डूँगरगढ़ के श्रावकों ने इसे धारना शुरू किया। फिर थली, हरियाणा एवं पंजाब के अनेक ग्रामों-नगरों के उत्साही युवकों के तीन वर्षों के अथकपरिश्रम से धारकर इसे प्रकाशन के योग्य बनाया।

मुझे दृढ़ विश्वास है कि पाठकगण इसके अध्ययन, चिन्तन एवं मनन से अपने बुद्धि वैभव को क्रमशः बढ़ाते जायेंगे--

वि० सं० २०२७, मृगसर बदी ४
मङ्गलवार, रामामंडी, (पंजाब)

--श्रममुनि 'प्रथम'

अनुक्रमणिका

पहला कोष्ठक : पृष्ठ १ से ९३ तक

१ सज्जन (सत्पुरुष), २ सज्जनों का स्वभाव, ३ सज्जनों के स्वभाव की निश्चलता, ४ सत्संगति, ५ सत्संगति का प्रभाव, ६ दुर्जन (दुष्ट), ७ दुर्जनों का स्वभाव, ८ दुर्जनसंग-परित्याग, ९ कुसंगति का असर, १० कुसंगति से हानि, ११ दुष्टों का सुधार कठिन, १२ दुर्जनों के साथ व्यवहार, १३ धूर्त-दगाबाज, १४ ढोंग और ढोंगी, १५ सज्जन-दुर्जन का अन्तर, १६ भलाई-सज्जनता, १७ बुराई-दुर्जनता, १८ भलाई बुराई की अमरता, १९ संगति के अनुसार गुण-दोष, २० महानपुरुष-महात्मा, २१ महापुरुषों का पराक्रम, २२ महान् पुरुषों के विषय में विविध, २३ महापुरुषों का सम्पर्क, २४ बड़ा आदमी और बड़प्पन, २५ उत्तमपुरुष, २६ उत्तमपुरुषों का स्वभाव, २७ अधम (नीच) पुरुष, २८ शारीरिक दोष पर आधारित अधमता, २९ धीर-पुरुष, ३० धैर्य, ३१ उत्तावल, ३२ तेजस्वीपुरुष, ३३ समर्थपुरुष, ३४ शूरवीर पुरुष, ३५ कायर, ३६ शूरता और कायरता, ३७ बलवान व्यक्ति, ३८ अद्भुत बलिष्ठ व्यक्ति, ३९ निर्बल, ४० बल-पराक्रम, ४१ कुलीन पुरुष।

दूसरा कोष्ठक : पृष्ठ ९४ से १७४ तक

१ गुण, २ गुणों का महत्व, ३ विभिन्न प्रकार के गुण, ४ गुणों का नाश एवं प्रकाश, ५ गुणज्ञ, ६ गुणी, ७ गुणग्राहक बनो ! ८ गुणग्राही के अभाव में, ९ गुणहीन, १० गुणहीन नाम, ११ दोष, १२ स्वदोष, १३ पर-दोष, १४ गुणों में दोष १५ दृष्टि-दोष एवं उसके आश्चर्य, १६ उपकार (अहसान), १७ परोपकार, १८ प्रत्युपकार (उपकार का बदला), १९ कृतज्ञता और कृतज्ञ, २० परोपकारी, २१ निरुपकारी, २२ कृतघ्न, २३ उदार और उदारता, २४ दाता,

२५ दाता के उदाहरण, २६ दान, २७ दान की महिमा, २८ दान की प्रेरणा, २९ दान में विवेक, ३० दान के भेद, ३१ अभयदान, ३२ सुपात्रदान, ३३ कुपात्रदान, ३४ पात्र-कुपात्र, ३५ ज्ञानदान, ३६ कृपण, ३७ याचक, ३८ याचना।

तीसरा कोष्ठक : पृष्ठ १७५ से २३४

१ धन, २ धन की भूख, ३ धन का प्रभाव, ४ धन का उत्पादन, ५ धन का उपयोग, ६ धन का खजाना अमेरिका में, ७ धन के विविधरूप, ८ धन की निंदनीयता, ९ अन्याय का धन, १० न्यायार्जित धन, ११ वास्तविक धन, १२ लक्ष्मी, १३ लक्ष्मी का मूल आदि, १४ लक्ष्मी की नश्वरता एवं अस्थिरता, १५ लक्ष्मी का निवास, १६ लक्ष्मी के अप्रिय स्थान, १७ लक्ष्मी के विकार, १८ धनवान, १९ दुनिया के बड़े धनी, २० धनिकों की स्थिति, २१ निर्धन और निर्धनता, २२ गरीब और गरीबी, २३ गरीबी के चित्र, २४ दरिद्र, २५ दरिद्रता, २६ आय, २७ व्यय, २८ अपव्यय निषेध, २९ ऋण (कर्ज), ३० उधार, ३१ संग्रह, ३२ ब्याज।

चौथा कोष्ठक : पृष्ठ २३५ से ३१६ तक

१ आत्मा, २ आत्मा का स्वरूप, ३ आत्मा की शाश्वतता आदि, ४ आत्मा का कर्तृत्व, ५ आत्मा का दर्शन, ६ आत्मा का ज्ञान, ७ आत्मज्ञ, ८ आत्मरक्षा, ९ आत्मसंरक्षक, १० आत्मसम्मान, ११ आत्मविश्वास, १२ आत्मप्राप्ति, १३ आत्मशुद्धि, १४ आत्मदमन, १५ आत्मविजय, १६ आत्मचिन्तन, १७ आत्मा की महिमा, १८ आत्मा के भेद, १९ इन्द्रिय, २० इन्द्रियों की शक्ति, २१ इन्द्रियदमन, २२ जितेन्द्रिय, २३ कान और बधिरता, २४ आँख, २५ अन्धा, २६ जिह्वा, २७ मन, २८ मन का स्वभाव, २९ मन के आश्रित बन्ध-मोक्षादि, ३० मन की मुख्यता, ३१ मन के बिना कुछ नहीं, ३२ मनःशुद्धि, ३३ मनःशुद्धि दुष्कर, ३४ मनःशुद्धि के अभाव में, ३५ मन की शिक्षा, ३६ मनोनिग्रह, ३७ मनोनिग्रह के मार्ग, ३८ मनोनिग्रह से लाभ, ३९ मन का तार, ४० विलपावर-दृढ़संकल्प, ४१ मन की उपमाएँ, ४२ मन के विषय में विविध।

चारों कोष्ठकों में कुल १५३ विषय तथा दस भागों में लगभग १५०० विषय एवं उपविषय हैं।

वक्तृत्वकला के बीज

[भाग ६]

अकारादि क्रम-विषयानुक्रमणिका

अद्भुतबलिष्ठ व्यक्ति	८६
अधम (नीच) पुरुष	६५
अन्धा	२८३
अन्याय का धन	१६४
अपव्यय-निषेध	२२७
अभयदान	१५४
आत्मचिन्तन	२६४
आत्मदमन	[illegible]
आत्मप्राप्ति	२५६
आत्मरक्षक	२५२
आत्मरक्षा	२५०
आत्मविजय	२६२
आत्मविश्वास	२५४
आत्मसम्मान	२५३
आत्मशुद्धि	२५८
आत्मज्ञ	२४८
आत्म	२८१
आत्मा	२३५
आत्मा का कर्तृत्व	२४१
आत्मा का दर्शन	२४३
आत्मा का स्वरूप	२३७
आत्मा के भेद	२७०
आत्मा का ज्ञान	२४५
आत्मा की महिमा	२६९
आत्मा की शाश्वतता	
आदि	२३९
आय	२२३
इन्द्रिय	२७२
इन्द्रिय-दमन	२७६
इन्द्रियों की शक्ति	२७४
उत्तम-पुरुष	६२
उत्तम पुरुषों का स्वभाव	६३
उतावला	७३
उदार और उदारता	१३८
उधार	२३०
उपकार (अहसान)	१२६
कान और बधिरता	२७९
कायर	८१
कृतघ्न	१३६
कृतज्ञता और कृतज्ञ	१३२
कृपण	१६३
कृपाप्रदान	१५८
कुलीन-पुरुष	९२
कुसंगति का असर	२४
कुसंगति से हानि	२५
गरीब और गरीबी	२१५

गरीबी के चित्र २१७
गुण ९४
गुणग्राहक बनो ! १०६
गुणग्राही के अभाव में १११
गुणहीन ११२
गुणशून्य नाम ११४
गुणज्ञ १०३
गुणी १०४
गुणों का नाश एवं प्रकाश १०२
गुणों का महत्व ९६
गुणों में दोष १२३
जितेन्द्रिय २७८
जिह्वा २८५
ढोंग और ढोंगी ३३
तेजस्वी पुरुष ७५
दरिद्र २१९
दरिद्रता २२१
दाता १३६
दाता के उदाहरण १४२
दान १४३
दान की प्रेरणा १४६
दान की महिमा १४४
दान के भेद १५२
दान में विवेक १४९
दृष्टिदोष एवं उसके आश्चर्य १२४
दुर्जन (दुष्ट) १५
दुर्जनों का स्वभाव १८
दुर्जनों के साथ व्यवहार २६
दुर्जन संग परित्याग २२
दुनियां के बड़े धनी २१०
दुष्टों का सुधार कठिन २७
दोष ११६
धन १७५
धन का खजाना (अमेरिका में) १८३
धन का उत्पादन १८०
धन का उपयोग १८१
धन की निन्दनीयता १९१
धन का प्रभाव १७८
धन की भूख १७६
धनवान २०८
धन के विविधरूप १८४
धनिकों की स्थिति २१२
धीरपुरुष ६८
धूर्त-दगाबाज ३१
धैर्य ७०
न्यायार्जित धन १९५
निर्धन और निर्धनता २१३
निर्बल ८८
निरुपकारी १३५
प्रत्युपकार-उपकार का बदला १३०
परदोष १२१

परोपकार १२८
परोपकारी १३३
पात्र-कुपात्र १६०
ब्याज १३४
बड़ा आदमी और बड़प्पन ६०
बलवान व्यक्ति ८४
बल-पराक्रम ६०
बुराई-दुर्जनता ४१
भलाई (सज्जनता) ३८
भलाई और बुराई की अमरता ४४
मन २८७
मनका तार ३१०
मनका स्वभाव २९१
मनके आश्रित बन्ध-मोक्षादि २९६
मन के बिना कुछ नहीं २९७
मन के विषय में विविध ३१६
मन की उपमाएँ ३१३
मन की मुख्यता २९४
मन की शिक्षा ३०३
मनोनिग्रह ३०४
मनोनिग्रह के मार्ग ३०६
मनोनिग्रह से लाभ ३०८
मनःशुद्धि २९९
मनःशुद्धि के अभाव में ३०२
मनःशुद्धि दुष्कर ३०१
महापुरुषों का पराक्रम ५३
महापुरुषों का सम्पर्क ५८
महान्पुरुषोंके विषयमें विविध ५५
महान्पुरुष-महात्मा ४९
याचक १६८
याचना १७१
ऋण (कर्ज) २२८
लक्ष्मी १९७
लक्ष्मी का निवास २०२
लक्ष्मी का मूल आदि १९८
लक्ष्मी की नश्वरता एवं अस्थिरता २००
लक्ष्मी के अप्रियस्थान २०३
लक्ष्मी के विचार २०५
व्यय २२५
वास्तविक धन १९६
विभिन्न प्रकार के गुण ६८
विलपावर-दृढ़संकल्प ३१२
शारीरिकदोष पर आधारित अधमता ६७
शूरता और कायरता ८३
शूरवीर पुरुष ७८
स्वदोष ११९
सज्जन (सत्पुरुष) १
सज्जन-दुर्जन का अन्तर ३४
सज्जनों का स्वभाव ५
सत्संगति १०
सज्जनोंके स्वभावकी निश्चलता ८
सत्संगति का प्रभाव ११
समर्थपुरुष ५७
संग्रह २३२
संगति के अनुसार गुण-दोष ४५
सुपात्रदान १५६
ज्ञानदान १६२

भाग छठा

वक्तृत्वकला के बीज

२८ महान्पुरुष-महात्मा

१. अक्षोभ्यतैव महतां, महत्त्वस्य हि लक्षणम् ।

—कथासरित्सागर

प्रतिकूल परिस्थिति में क्षुब्ध न होना, महापुरुषों की महत्ता का लक्षण है।

२. निर्दम्भता सदाचारे, स्वभावो हि महात्मनाम् ।

महापुरुषों का यह स्वभाव है कि वे अपने सदाचरणों पर बनावटीपन नहीं आने देते।

३. विवेकः सह संपत्त्या, विनयो विद्यया सह ।
प्रभुत्वं प्रश्रयोपेतं, चिह्नमेतन्महात्मनाम् ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ ४७

संपत्ति के साथ विवेक का होना, विद्या के साथ विनय का होना और प्रभुत्व के साथ प्रश्रय-विनय का होना—ये महात्माओं के लक्षण हैं।

४. विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,
सदसि वाक्पटुता युधिविक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक ६२

विपत्ति में धैर्य, ऐश्वर्य में सहिष्णुता, सभा में वचन की चतुराई, संग्राम में पराक्रम, सुयश में रुचि, शास्त्रपठन में व्यसन—ये बातें महात्माओं में स्वाभाविक होती हैं।

५. करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणमनं,
मुखे सत्या वाणी विजयिभुजयोर्वीर्यमतुलम्।
हृदि स्वच्छावृत्तिः श्रुतमधिगतैकव्रतफलं,
विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम्॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक ६५

हाथों में सुपात्रदान, मस्तक पर गुरुजनों के चरणों का अभिवादन, मुख में सत्यवचन, विजयी भुजाओं में अतुल पराक्रम, हृदय में स्वच्छ भावना और कानों में शास्त्रों का श्रवण। जो प्रकृति से महापुरुष होते हैं, उनके ये सब गुण बिना ऐश्वर्य के आभूषण हैं।

६. पाषाणरेखेव प्रतिपन्नं महात्मनाम्।

महात्माओं द्वारा लिया हुआ प्रण पत्थर की रेखा की तरह अमिट होता है।

७. न कालमतिवर्तन्ते, महान्तः स्वेषु कर्मसु।

—योगवाशिष्ठ ५।१०।६

महापुरुष अपने कार्यों में कलातिक्रम नहीं होने देते अर्थात् समय के पाबन्द होते हैं।

८. मनस्वी म्रियते कामं, कार्पण्यं न तु गच्छति।
अपि निर्वाणमायाति, नानलो याति शीतताम्॥

—हितोपदेश १।१३३

महापुरुष मर जाते हैं, किन्तु कृपणता कभी नहीं करते। आग बुझ जाती है परन्तु शीतल कभी नहीं होती।

९. संपत्तौ च विपत्तौ च, महतामेकरूपता।
उदये सविता रक्तो, रक्तोऽस्तसमये तथा॥

—पञ्चतन्त्र २१७

महापुरुष संपत्ति और विपत्ति में एकरूप रहते हैं। देखो ! सूर्य उदय होने के समय भी लाल रहता है और अस्त होने के समय भी लाल रहता है।

१०. अहो किमपि चित्राणि, विचित्राणि महात्मनाम्।
लक्ष्मीं तृणाय मन्यन्ते, तद्भारेण नमन्त्यपि॥

—वेदेश्वर

महापुरुषों के चित्र कुछ विचित्र ही होते हैं। वे लक्ष्मी को तृण के समान समझते हैं, पर लक्ष्मी के भार से नम भी जाते हैं।

११. हिताय नाहिताय स्याद्, महान् संतापितोऽपि हि।
पश्य ! रोगापहाराय, भवेदुष्णीकृतं पयः॥

महान्पुरुष संतापित होकर भी हितकारी ही होता है, अहितकारी नहीं होता। देखो ! अग्नि में गर्म कर लेने पर भी दूध रोगनाशक होता है।

१२. दुर्जनवचनाङ्गारै-र्दग्धोऽपि न विप्रियं वदत्यार्यः।
नहि दह्यमानोऽप्यगुरुः, स्वभावगन्धं परित्यजति॥

—प्रसङ्गरत्नावली

दुष्टों के वचनरूप अंगारों से जला हुआ भी आर्यपुरुष कभी अप्रिय नहीं बोलता। जैसे—जलता हुआ भी अगर-धूप अपनी सुगन्धि नहीं छोड़ता।

१३. संपत्सु महतां चित्तं, भवत्युत्पलकोमलम्।
आपत्सु च महाशैल-शिला-संघातकर्कशम्॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक ६६

संपत्ति के समय महात्माओं का चित्त कमलवत् कोमल रहता है और आपत्ति के समय महान् पर्वत की शिलाओं के समूहवत् कठोर हो जाता है। तथ्य यह है कि संपत्ति में वे अभिमान नहीं करते और आपत्ति में घबड़ाते नहीं।

१४. गवादीनां पयोऽन्येद्यु:, सद्योवा जायते दधि ।
क्षीरोदधेस्तु नाद्यापि, महतां विकृतिः कुतः ॥
—देवेश्वर

गाय आदि का दूध दूसरे ही दिन दही बन जाता है, किन्तु क्षीर-समुद्र का जल आज तक दही नहीं बन सका ; क्योंकि बड़ों में विकार नहीं आता ।

१५. महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः ।
—शिशुपालवध २।१३

महापुरुष स्वभाव से ही मितभाषी (कम बोलनेवाले) होते हैं ।

१६. महापुमांसो गर्भस्था, अपि लोकोपकारिणः ।
—त्रिषष्ठि-शलाकापुरुषचरित्र २।२

महापुरुष गर्भ में होते हुए भी लोकोपकारी होते हैं ।

१७. बड़े सनेह लघुन पर करहीं, गिर निज सिरन सदा तृन धरहीं ।
निजगुन श्रवन सुनत सकुचाहीं, परगुन सुनत अधिक हरषाहीं ॥
—रामचरितमानस

१८. दोषाकरोपि, कुटिलोपि कलङ्कितोपि,
मित्रावसानसमये विहितोदयोपि ।
चन्द्रस्तथापि हरवल्लभतामुपैति
न ह्याश्रितेषु महतां गुण-दोषचिन्ता ॥
—चन्द्रचरित्र, पृष्ठ ७५

चन्द्रमा दोषा-रात्रि का करनेवाला है, कुटिल है, कलङ्कसहित है, मित्र-सूर्य के अस्त होने पर उदय होनेवाला है । फिर भी महादेव को प्रिय लगता है ; क्योंकि महापुरुष आश्रितों के गुण-दोषों का विचार नहीं करते ।

२१ महापुरुषों का पराक्रम

१. विजेतव्या लङ्का चरणतरणीयो जलनिधि—
विपक्षो लङ्केशो रणभुवि सहायाश्च कपयः।
तथाप्येको रामः सकलमवधीद् राक्षसकुलं,
क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५४

लंका पर विजय पानी थी, समुद्र पैरों से तैरना था, रावण जैसा दुश्मन था, रणभूमि के सहायक केवल वानर थे। इतने पर भी अकेले राम ने राक्षसकुल को नष्ट कर दिया। क्योंकि महापुरुषों के पराक्रम में ही उनकी कार्यसिद्धि रहती है, सहायक उपकरणों में नहीं।

२. रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिता सप्ततुरगा,
निरालम्बो मार्गश्चरणरहितः सारथिरपि।
रविर्यात्यन्तं सूर्यः प्रतिदिनमपारस्य नभसः,
क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५४

रथ के पहिया एक है, घोड़े सात हैं, जिनके पैरों में सांप लिपटे हुए हैं, मार्ग निरालम्ब आकाश है एवं सारथी पांगला है। इतने पर भी सूर्य प्रतिदिन अपार आकाश को पार कर देता है। कारण यही है कि महापुरुषों के पराक्रम में ही उनकी कार्यसिद्धि रहती है, सहायक उपकरणों में नहीं।

३. अनुहुंकुरुते घनध्वनिं, नहि गोमायु-रुतानि केसरी।

—शिशुपालवध

सिंह मेघ के पीछे गर्जा करता है, किन्तु गीदड़ के पीछे नहीं। ऐसे ही बड़े आदमी छोटों के साथ नहीं उलझते।

४. तृणानि नोन्मूलयति प्रभञ्जनो, मृदूनि नीचैः प्रणतानि सर्वतः।
समुच्छ्रितानेव तरून् प्रबाधते, महान् महत्येव करोति विक्रमम्॥
—हितोपदेश ३।३८

नीचे की ओर झुके हुए कोमल तृणों को वायु नहीं उखाड़ती, वह तो उच्छृंखलता से खड़े हुए वृक्षों का ही उन्मूलन करती है, क्योंकि बड़ा—बड़े के सामने ही अपना पराक्रम दिखाता है।

५. ग्राम्यशूकर ने सिंह से कहा—मेरे साथ युद्ध कर, अन्यथा मैं सबसे कह दूंगा कि मैंने सिंह को जीत लिया। सिंह ने उत्तर दिया—

गच्छ शूकर ! भद्रं ते, वद सिंहो जितो मया।
पण्डिता एव जानन्ति, सिंह-शूकरयोर्बलम्॥
—दृष्टान्तशतक

शूकर ! तेरा कल्याण हो। जा, भले ही कह दे कि मैंने सिंह को जीत लिया। विद्वान्, सिंह और सूअर के बल को जानते हैं।

६. सूर-मिल्टन अंधे थे, कर्ण-ईसा में वंश की कमी थी, अष्टावक्र, चाणक्य, सुकरात व बर्नार्डशा में रूप की कमी थी, नेपोलियन और हिटलर में धन एवं प्रतिष्ठा की कमी थी; किन्तु इन महापुरुषों ने कभी अपने में कमी महसूस नहीं की।

२२ महान्पुरुषों के विषय में विविध

१. कुछ व्यक्ति जन्मजात महान् है, कुछ महानता प्राप्त करते हैं और कुछ पर महानता लाद दी जाती है।

—शेक्सपियर

२. ऐसा कोई वास्तव में महान् व्यक्ति नहीं हुआ, जो वास्तव में सदाचारी न रहा हो।

—फ्रैंकलिन

३. संसार के इतिहास में कभी भी काफी सुलझे हुए आदमी सभी जगह नहीं हुए।

—बिज्म

४. न खलु परमाणोरल्पत्वेन महान् मेरुः किन्तु स्वगुणेन।

—नीतिवाक्यामृत २२।१९

मेरु पर्वत अपने गुण से महान् है, परमाणु के छोटापन से नहीं।

५. कोई भी व्यक्ति अनुकरण-मात्र से आज तक महान् नहीं हुआ।

—सेमुएल जॉनसन

६. पानी जैसा चंचल व्यक्ति, कभी महान् नहीं होता।

—बर्क

७. निकट जाने से पता लगता है कि महान्पुरुष केवल मानव ही हैं अतएव निकटवर्ती व्यक्तियों को वे कभी महान् प्रतीत नहीं होते।

—लाब्रेयेर

८. महान् व्यक्ति हमें महान् इसलिए लगते हैं कि हम घुटनों पर टिके हुए हैं।

—स्टर्नर

९. परिमाण किसी भी व्यक्ति एवं राष्ट्र की महानता की निकृष्टतम कसौटी है।

—जवाहरलाल नेहरू

१०. महान् दोषों से संपन्न होना भी महान्पुरुषों का ही अधिकार है।

—रोशफूको

११. विश्व को महान्पुरुषों की आवश्यकता है, किन्तु उनके पुजारियों एवं खुशामदियों की नहीं।

—वीरजी

१२. महान्पुरुष वही है, जो कहने से पहले करके दिखाता है।

—कन्फ्यूसियस

१३. मनुष्य को तुच्छ (छोटी) बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए; यदि वह उन्हीं में फंसा रहेगा तो बड़े काम कब करेगा एवं महान् कब बनेगा।

—कन्फ्यूसियस

१४. किसी महापुरुष को तब तक महान् नहीं समझना चाहिये, जब तक उसकी मृत्यु नहीं हो जाती।

१५. स्वामी रामतीर्थ (जब कालेज में प्रोफेसर थे) ने काले पट्टे (ब्लैक बोर्ड) पर लकीर खींच कर कहा—इसे छोटी बनाओ। तब एक लड़का उसे मिटाने लगा, स्वामी जी ने कहा—मिटाओ मत! सभी छात्र स्तब्ध थे। इतने में एक बुद्धिमान छात्र ने उस लकीर के नीचे बड़ी लकीर खींच दी एवं वह छोटी बन गई। तत्त्व यह है कि दूसरों को मिटाओ मत, अपने गुणों को बढ़ाकर महान् बनो।

१६. गजानां पङ्कमग्नानां गजा एव धुरंधराः ।

पंकनिमग्न हाथियों का उद्धार हाथी ही कर सकते हैं, इसी प्रकार महापुरुषों की सहायता महापुरुष ही कर सकते हैं।

१७. **महानता के विघातक दोष—**

आलस्यं स्त्री-सेवा, सरोगता जन्मभूमिवात्सल्यम् !
सन्तोषो भीरुत्वं, षड् व्याघाता महत्त्वस्य ॥

—हितोपदेश १।५

आलस्य, स्त्री-सेवा, अस्वस्थता, जन्मभूमि से प्रेम, सन्तोष और भय—ये छह दोष महानता का नाश करनेवाले हैं।

२३ महापुरुषों का सम्पर्क

१. महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ।

—भक्तिसूत्र ३९

महात्माओं का सङ्ग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है।

२. महाजनस्य संसर्गः, कस्य नोन्नतिकारकः ?
पद्मपत्रस्थितं वारि, धत्ते मारकतिं द्युतिम् ।

—पञ्चतन्त्र ३।५९

महापुरुषों का संसर्ग किसे उन्नत नहीं करता ? देखो कमलपत्र पर ठहरा हुआ जलबिन्दु मरकतमणिवत् चमकने लगता है।

३. कीटोऽपि सुमनःसंगा-दारोहति सतां शिरः ।
अश्मापि याति देवत्वं, महद्भिः सुप्रतिष्ठितः ।।

—हितोपदेश-प्रास्ताविका ४५

कीड़ा भी फूलों की संगति से सज्जनों के सिर पर पहुंच जाता है तथा महापुरुषों द्वारा स्थापित किया हुआ पत्थर भी देवता कहलाने लगता है।

४. काचः काञ्चनसंसर्गाद्, धत्ते मारकतीं द्युतिम् ।

—हितोपदेश-प्रास्ताविका ४१

सोने के संसर्ग से कांच भी मरकतमणिवत् प्रभा धारण करने लगता है।

५. मलयाचल गन्धेन, त्विन्धनं चन्दनायते ।

मलयाचल पर रहे हुए चन्दन की सुगन्धि से साधारण वृक्ष भी चन्दन बन जाते हैं।

६. रथ्याम्बु जाह्नवी संगात्, त्रिदशैरपि पूज्यते।

—प्रसंगरत्नावली

गलियों का गंदा पानी भी गंगा में मिलने से गंगाजल कहलाकर देवों द्वारा वन्दनीय बन जाता है।

७. स्वर्णीस्यातां सिद्धरसे, शीशक-त्रपुणी अपि।

—त्रिषष्ठिशलाका-पुरुषचरित्र २।३

रस के संयोग से शीशा और त्रपु भी सोना बन जाते हैं।

२४ बड़ा आदमी और बड़प्पन

१. He who humbles shall be exalted

—अंग्रेजी कहावत

हि हू हम्बल्स शैल बि एक्जाल्टैड ।

बड़ा बनना हो तो छोटा बनो ।

२. गांधीजी थर्डक्लास में मुसाफिरी कर रहे थे । किसी के पूछने पर बोले—"भारत की जनता गरीब है और मैं जनता का सेवक हूं । फोर्थ क्लास तो है नहीं, अन्यथा उसी में बैठता ।"

३. प्रभुता मेरुसमान, आप रहै रजकण जिसा ।
तिके पुरुष धन जाण, रविमण्डल में राजिया !

—सोरठा संग्रह

४. हाथी हींडत देख, खर कूकर लव-लव करै ।
बड़पण तणों विवेक, क्रोध न आणें किसनिया !

—सोरठा संग्रह

५. छोटे आदमियों से सद्व्यवहार करके बड़े आदमी अपना बड़प्पन प्रकट करते हैं । —कार्लाइल

६. तीन बड़प्पन पाते हैं—(१) दूसरों को थोड़ा भरोसा देकर अधिक काम करनेवाले (२) काम कर देने के बाद अहंकार न करनेवाले (३) दूसरे को सफल होते देखकर रंज न करनेवाले ।

७. बातांस्यू बड़ा को हुवैनी ।

—राजस्थानी कहावत

८. पहले थे हम मर्द, पीछे नारी कहाये।
कर गंगा में स्नान, पाप सब धोय गमाये।।
कर शिल्ला से युद्ध, घाव बरछिन के खाये।
उछल पड़े अग्निकुंड में, तब हम बड़े कहाये।।

—भाषाश्लोकसागर

९. सुमेर की बंठ्या में दो डोरा हुवे।
- बड़ा लाज री खातर मरे।

—राजस्थानी कहावतें

१०. High winds blow on high hills.

—अंग्रेजी कहावतें

हाई विंड्स ब्लो ओन हाई हिल्स।
बड़ों की बड़ी बात।

११. बड़ी रात रा बड़ा तड़का।
- बड़ां रा बड़ा काम।
- मोटां री पंसेरी ही भारी।
- बड़ा कहे ज्यूं करणो, करे ज्यूं नहीं करणो।
- मोटां री बात करे सो बिना मौत मरे।
- मोटांरे मांयने बड़नो सोहरो, पण निकलणो दोहरो।
- बड़ां रे काम हुवे, ओछ्यां को हुवेनी।
- राम जठे अयोध्या,
- राणाजी थरे जठेई उदयपुर।

—राजस्थानी कहावतें

२५ उत्तमपुरुष

१. गुणैरुत्तमतां यान्ति, नोच्चैरासनसंस्थिताः।
प्रासादशिखरारूढः, काकः किं गरुडायते॥

—चाणक्यनीति १६।६

ऊँचे आसन पर बैठने-मात्र से मनुष्य उत्तम नहीं बन जाता, गुणों से बनता है। क्या महल के शिखर पर बैठने से काग गरुड़ बन जाता है? कभी नहीं।

२. सर्वोत्तम मनुष्य वे ही हैं, जो अवसरों की बाट न देखकर उनको अपने दास बना लेते हैं।

—ई. एच. चैपिन

३. भणेल करतां गणेल सरस, गणेल करतां फरेल सरस अने फरेल करतां कथायेल सरस।

—गुजराती कहावत

४. जलेर् मध्ये गंगाजल, फलेर् मध्ये आम।
नारीर् मध्ये सीता सती, पुरुषेर् मध्ये राम॥

—बंगला कहावत

५. झाड़ी-बंको झाबुवो, रणबंको कुशलेश।
नारी-बंकी पुग्गल तणीं, नर बंको मरुधर देश॥

६. उत्तमपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—धम्मपुरिसा, भोगपुरिसा, कम्मपुरिसा—१. धम्मपुरिसा—अरिहंता, २. भोगपुरिसा—चक्कवट्टी, ३. कम्मपुरिसा—वासुदेवा।

—स्थानांग ३।१।१२८

उत्तम पुरुष तीन प्रकार होते हैं—(१) धर्मपुरुष (२) भोगपुरुष (३) कर्मपुरुष। धर्मपुरुष—तीर्थङ्कर, भोगपुरुष—चक्रवर्ती और कर्मपुरुष—वासुदेव माने जाते हैं।

२६ उत्तमपुरुषों का स्वभाव

१. दग्धं-दग्धं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तिवर्णं,
घृष्टं-घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगन्धम् ।
छिन्नं-छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादुं चेक्षुखण्डं,
प्राणान्तेऽपि प्रकृति-विकृतिर्जायते नोत्तमानाम् ॥

बार-बार जलाने पर सोना अधिक चमकीला बनता है, बार-बार घिसने पर चन्दन अधिक सुगन्ध फैलाता है। बार-बार काटने पर इक्षुखण्ड अधिक मीठा स्वाद देता है—तत्त्व यह है कि प्राणान्त कष्ट में भी उत्तम-पुरुषों की प्रकृति में विकार नहीं आता।

२. गव्हां चा आटा आणी कुणब्या चा बेटा।

—मराठी कहावत

सताने पर भी उत्तम-उत्तम ही फल देता है।

३. आपन्नार्ति-प्रशमनफलाः संपदो ह्युत्तमानाम्।

—मेघदूत १।५३

उत्तमपुरुषों की संपत्तियाँ, दुःखितों के दुःखों को शान्त करने के लिए ही होती हैं।

४. त्यजन्त्युत्तमसत्त्वा हि, प्राणानपि न सत्पथम्।

—कथासरित्सागर

उत्तमपुरुष प्राणों का त्याग कर देते हैं, लेकिन सच्चेमार्ग का नहीं।

५. प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः,
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति ॥

—भर्तृहरि नीतिशतक २७

नीच-मनुष्य विघ्नों के होने के भय से काम का आरम्भ ही नहीं करते। मध्यम-मनुष्य काम का आरम्भ तो कर देते हैं, किन्तु विघ्न होते ही उसे बीच में छोड़ देते हैं। परन्तु उत्तमपुरुष जिस काम का आरम्भ कर देते हैं, उसे बार-बार विघ्न आने पर भी पूरा करके ही छोड़ते हैं।

६. कैषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु ॥

—मेघदूत

उत्तमपुरुषों की संपत्तियाँ, दुःखितों के दुःखों को शान्त करने के लिए ही होती है।

७. शास्त्रं बोधाय दानाय, धनं धर्माय जीवितम् ।
वपुः परोपकाराय, धारयन्ति मनीषिणः ॥

—चन्द्रचरित्र, पृष्ठ ७०

उत्तमपुरुष शास्त्रपठन ज्ञान के लिए, धन दान के लिये, जीवन धर्म के लिए और शरीर परोपकार के लिए धारण करते हैं।

२७ अधम (नीच) पुरुष

१. परवादे दशवदनः, पररन्ध्रनिरीक्षणे सहस्राक्षः।
सद्वृत्तवित्तहरणे, बाहुसहस्रार्जुनो नीचः॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५६

नीच व्यक्ति परनिन्दा करने के लिए दशवदन (दस मुंहवाला-रावण) है, पर-छिद्र देखने के लिए सहस्राक्ष (हजार नेत्रोंवाला-इन्द्र), और दूसरों का सदाचाररूपी धन हरने के लिए सहस्रबाहु (हजार भुजाओं-वाला अर्जुन) है।

२. यस्मिन् देशे समुत्पन्नास्तमेव निज-चेष्टितैः।
दूषयत्यचिरेणैव, घुणकीट इवाधमः॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार पृष्ठ ५६

घुण (कीट) जिस लकड़ी में पैदा होता है, उसी को खराब करता है। ऐसे ही नीच व्यक्ति दुराचरणों द्वारा अपने ही वंश को दूषित करता है।

३. चणका इव नीचा, नोदरस्थापिता अपि नाविःकुर्वाणास्तिष्ठन्ति।

—नीतिवाक्यामृत २७।३०

नीच मनुष्य चनों के समान हैं, जो पेट में रखने पर भी आवाज किए बिना नहीं टिकते।

४. बहुत किये हू नीच को, नीच सुभाव न जात।
छांडि ताल जलकुम्भ में कौआ चोंच भरात॥

—वृंदकवि

५. नीचः श्लाघ्यपदं प्राप्य, स्वामिनं हन्तुमिच्छति ।
मूषिको व्याघ्रतां प्राप्य, मुनिं हन्तुं गतो यथा ॥

—हितोपदेश

नीच अच्छे पद को पाकर अपने स्वामी को ही मारना चाहता है। जैसे–चूहा बाघ बनकर मुनि को मारने चला।

● एक योगी की झोंपड़ी में चूहा फिर रहा था। उसे पकड़ने बिल्ली दौड़ी। योगी को दया आई और मंत्रशक्ति से चूहे को बिलाव बना दिया। बिल्ली तो भाग गई, लेकिन उस पर कुत्ता दौड़ा। योगी ने बिलाव को बाघ का रूप दे दिया। उसे भूख लगी और कृतघ्न योगी को ही खाने के लिए तैयार हुआ। योगी ने कहा—'पुनर्मूषको भव' वह बाघ तत्काल चूहा बन गया और बिल्ली आकर उसे खा गई।

६. कुजात मनायां बांथां पड़े।
सुजात मनायां, पगां पड़े ॥

● हाथी रा दांत, कुत्ते री पूंछ और कुमाणस री जीभ सदा आंटी ही रेवे।

—राजस्थानी कहावत

७. वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः।
मर जाना भला, पर नीच का सङ्ग अच्छा नहीं।

८. नीच चंग सम जानिबो, सुनि लखि "तुलसीदास"।
ढील देत महि गिर परत, खैंचत चढ़त अकास ॥

२८ शारीरिकदोष पर आधारित अधमता

१. सौ नीच र एक आंख मींच ।

—राजस्थानी कहावत

२. सौ में फूल सहँस में काणों, लाखां मांही ऐंचाताणों ।
ऐंचाताणें करी पुकार, मुझसे अधिको है मंजार ॥

३. खाटरा खड्दोषेण, अष्टदोषेण मंजरा ।
आंख वहत्तर दोषेण, काणे संख्या न विद्यते ॥

४. काणियो, काणियो ने स्वामीनाराणियो ।

—गुजराती कहावत

५. भस्माङ्गुलिर्बकोड्डायी, बालशौची च हीही ।
धारावर्ती चक्रवर्ती षडेते पुरुषाधमाः ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३८०

स्त्री की गुलामी करनेवाले पुरुषों की अपेक्षा से छः प्रकार के अधम-पुरुष कहे हैं---

(१) **भस्माङ्गुली**—प्रातः उठते ही स्त्री के आदेशानुसार प्रतिदिन चूल्हा जलानेवाला ।

(२) **बकोड्डायी**—प्रातः उठते ही स्त्री के आदेशानुसार पानी भरने के लिए तालाब पर जानेवाला एवं वहां बगुलों को उड़ानेवाला ।

(३) **बालशौची**---प्रातः उठते ही स्त्री के आदेशानुसार प्रतिदिन बालकों को टट्टी बिठानेवाला ।

(४) **हीही**—स्त्री की हर बात पर हीही करके दांत दिखानेवाला ।

(५) **धारावर्ती**—स्त्री के बनाए हुए कानूनों को पूरी तरह से पालनेवाला ।

(६) **चक्रवर्ती**—स्त्री के कुचक्र में बुरी तरह से फंसा रहनेवाला ।

धीरपुरुष

१ विकारहेतौ सति विक्रियन्ते, येषां न चेतांसि त एव धीराः।

—कुमारसम्भव १।५९

विकार उत्पन्न होनेवाली वस्तु प्राप्त होने पर भी जिनका मन विकृत नहीं होता, वास्तव में वे ही धीर पुरुष हैं।

२. चलन्ति गिरयः कामं, युगान्तपवनाहताः।
कृच्छ्रेऽपि न चलत्येव, धीराणां निश्चलं मनः॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ८१

प्रलयकाल के पवन से चलकर पर्वत भले ही अपने स्थान से हट जाएँ परन्तु धीरपुरुषों का निश्चल मन घोर कष्टों में भी विचलित नहीं होता।

३. निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक—८४

नीतिज्ञपुरुष चाहे निन्दा करें, चाहे प्रशंसा करें। लक्ष्मी चाहे आए चाहे जाए तथा चाहे आज ही मरना पड़े, चाहे युगान्तर में, लेकिन धीरपुरुष न्यायमार्ग से एक कदम भी पीछे नहीं हटते।

४. काच कथीर अधीर नर, कस्यां न उपजै प्रेम।
कसणी तो धीरा सहै, के हीरा के हेम॥

५. क्वचिद् भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनं,
क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः।

किं केतकी फलति किं पनसः सुपुष्पः,
किं नागवल्ल्यपि कुसुम-फलैरुपेता !!

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ १८३

किसी में कोई एक विशेषता होती है, उसी से वह जगत में प्रसिद्ध हो जाता है। सर्वज्ञ तथा सर्वगुणसम्पन्न कोई नहीं हुआ करता। क्या केवड़े पर फल, पनस (कटहल) पर फूल एवं नागवल्ली-पान की बेल पर फल-फूल आते हैं ? नहीं आते। फिर भी ये एक-एक विशेषगुण से प्रसिद्धि पा रहे हैं।

७. गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते, पितृवंशो निरर्थकः।
वसुदेवं परित्यज्य, वासुदेवं नमेज्जनः ॥

— प्रसंगरत्नावली

सब जगह गुणों की पूजा होती है, पिता के वंश की नहीं। देखो लोग वसुदेव को छोड़कर वासुदेव को नमस्कार करते हैं।

८. धन से सद्गुण नहीं मिलते, अपितु सद्गुणों से ही धन व अन्यान्य वस्तुएँ मिलती हैं। —कन्फ्यूसियस

९. हमारे सद्गुण प्रायः वेष बदले हुए दुर्व्यसन होते हैं। —लार्ड रोशफूको

१०. बहुत से व्यक्ति सद्गुणों की प्रशंसा करते हैं, किन्तु पालन नहीं करते। —मिल्टन

११. सम्मान ही सद्गुण का पुरस्कार है। —सिसरो

१२. आकृतिर्गुणान् कथयति।
मनुष्य की आकृति गुणों को प्रकट कर देती है।

१३. जे नर रूपे रूवड़ा, ते नर निगुण न होय।
कनक तणो कर पींजरो, काग न घत्तहि कोय ॥

—राजस्थानी-दोहा

२ गुणों का महत्त्व

१. पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते ।

—रघुवंश ३।६२

गुण सर्वत्र अपना प्रभाव जमा लेते हैं ।

२. गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः ।

—किरातार्जुनीय

गुणों से आकृष्ट संपदायें, गुणी के पास अपने-आप आ जाती हैं ।

३. गुणाः खल्वनुरागस्य कारणं, न बलात्कारः ।

—मृच्छकटिक

अनुराग का कारण गुण ही होता है, बलात्कार नहीं होता ।

४. गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः ।

—किरातार्जुनीय

गुण ही मनुष्य को गुरुता देते हैं, समूह नहीं ।

५. गुणाः कुर्वन्ति दूतत्वं, दूरेऽपि वसतां सताम् ।
केतकी गन्धमाघ्राय, स्वयं गच्छन्ति षट्पदाः ॥

प्रसंगरत्नावली

सज्जनों के दूर बसने पर भी उनके गुण जीवननिर्माण में दूत का काम करते हैं । केतकी की सुगन्धि पाकर भ्रमर उसके पास स्वयं चले जाते हैं ।

६. न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ।

—कुमारसंभव ५।४५

रत्न किसी की तलाश नहीं किया करता, उसी की तलाश की जाती है।

७. गुणो भूषयते रूपम् ।

—चाणक्यनीति ५।१५

गुण से ही रूप शोभा पाता है।

८. गुणेन ज्ञायते त्वार्यः ।

—चाणक्यनीति ५।८

गुण से आर्य जाना जाता है।

९. एको गुणः खलु निहन्ति समस्तदोषम् ।
एक ही गुण सब दोषों को नाश कर देता है।

१०. छोटा-सा अंकुश हाथी पर नियन्त्रण कर लेता है, छोटा-सा दीपक अन्धकार को दूर कर देता है, छोटा-सा वज्र पर्वत को चूर-चूर कर डालता है। छोटा-सा रत्न लाखोंपति बना देता है। छोटा-सा मन्त्र देवता को खींच लाता है। छोटा-सा यन्त्र (घड़ी) समय बतला देता है, छोटी-सी सुई दो को एक बना देती है, छोटी-सी अमृत की बूंद बेहोशी दूर कर देती है, छोटी-सी कविता सभा में रंग ला देती है, इसी प्रकार छोटा-सा एक सद्‌गुण बेड़ापार कर देता है।

—संकलित

११. सद्‌गुण स्वास्थ्य है और दुर्व्यसन रोग।

—पेट्रार्क

१२. सद्‌गुण चिथड़ों में भी उतना ही चमकता है, जितना भव्य-वेशभूषा में।

—डिकेन्स

३ विभिन्न प्रकार के गुण

१. आठ प्रकार के गुण—

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति,
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च,
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च॥

—विदुरनीति १।१०४

(१) बुद्धि, (२) कुलीनता (३) इन्द्रियसंयम, (४) ज्ञान, (५) शूरता, (६) मितभाषण, (७) यथाशक्ति दान (८) कृतज्ञता—ये आठ गुण मनुष्य की शोभा को बढ़ानेवाले हैं।

२. चार सहजगुण—

दातृत्वं प्रियवक्तृत्वं, धीरत्वमुचितज्ञता।
अभ्यासेन न लभ्यन्ते, चत्वारः सहजा गुणाः॥

—चाणक्यनीति ११।१

उदारता, मिष्टवादिता, धीरता और उचित की जानकारी—ये चार गुण स्वभाविक होते हैं, किन्तु अभ्यास से नहीं मिल सकते।

३. तेरह मानसिकगुण—

१. **उदारता**—इस गुण से मनुष्य दूसरे मनुष्य की भूल होने पर सहनशील बना रहता है।

२. **अनुकरणप्रियता**—इससे मनुष्य महापुरुषों के सद्गुणों को ग्रहण कर सकता है।

३. प्रभावगुण—इससे मनुष्य दूसरे को सुगमता से सुधार सकता है।

४. आकृतिज्ञान—इससे मनुष्य चाहे जिसको पहचान सकता है।

५. व्यवस्थाज्ञान—इससे मनुष्य अपनी या दूसरों की सुव्यवस्था कर सकता है।

६. अवलोकनगुण—इससे मनुष्य नई-नई चीजों का ज्ञान प्राप्त करता है।

७. गणितज्ञान—इससे एकाग्रता बढ़ती है।

८. इतिहासज्ञान—इससे प्राचीन वस्तुएं ध्यान में रहती हैं।

९. समयज्ञान—इससे समय का उपयोग कैसे करना, यह जाना जाता है।

१०. वस्तुरचज्ञान—इससे आकर्षणशक्ति मिलती है।

११. स्वरज्ञान—इससे निकट-भविष्य की बहुत-कुछ बातें जानी जा सकती हैं।

१२. तुलनाशक्ति—इससे विवेचना, वर्गीकरण एवं समालोचना करने की योग्यता प्राप्त की जा सकती है।

१३. सौजन्यगुण—इससे विनय, विवेक, सभ्यता एवं समझाने की योग्यता मिलती है।

४. कन्फ्यूशियस के कहे हुए पांच सद्गुण—

(१) जेन, (२) चुन जू, (३) ली, (४) ते, (५) वेन।

(१) जेन—सदाचारी होना।

(२) चुन जू—अच्छा व्यवहार, दिल में दया, करुणा एवं प्रेम होना।

(३) ली—तत्त्वज्ञान और विवेक होना, आत्मविश्वास से जो ठीक जचे वह कार्य करना।

(४) ते—नैतिक साहस—ईमानदारी, सच्चाई एवं उदारता होना।

(५) वेन—गुणों पर डटे रहना।

५. तीन गुण एवं उनके कार्य आदि—

(क) सत्त्वं रजस्तम इति, गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो ! देहे देहिनमव्ययम् ॥

—गीता १४।५

हे अर्जुन ! प्रकृति से उत्पन्न होनेवाले सत्त्व, रज और तम ये तीनों गुण अविनाशी-आत्मा को देह में बांध लेते हैं।

(ख) सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं, राग-द्वेषो रजःस्मृतम् ।
एतद्व्याप्तिमदेतेषां, सर्वभूताश्रितं वपुः ॥

—मनुस्मृति १२।२६

यथार्थज्ञान होना सत्त्वगुण का लक्षण है, ज्ञान का न होना तमोगुण का लक्षण है और राग-द्वेष का होना रजोगुण का लक्षण है। सबके शरीरों में इन सब गुणों का स्वरूप व्याप्त रहता है।

(ग) सत्त्वं सुखे संजयति, रजः कर्मणि भारत !
ज्ञानमावृत्य तु तमः, प्रमादे संजयत्युत ॥

—गीता १४।६

अर्जुन ! सत्त्वगुण सुख में एवं रजोगुण कर्म में लगाता है, किन्तु तमोगुण ज्ञान को ढंक कर प्रमाद में लगाता है।

(घ) देवत्वं सात्त्विका यान्ति, मानुषत्वं च राजसाः ।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्य-मित्येषा त्रिविधा गतिः ॥

—मनुस्मृति १२।४०

सात्त्विक-वृत्तिवाले देवयोनी में, रजोगुणी मनुष्यगति में और तमोगुणी तिर्यञ्चगति में जाते हैं।

(ङ) गुणानेतानतीत्य त्रीन्, देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखै - विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥

—गीता १४।२०

शरीर के कारणभूत इन तीनों गुणों को लांघकर (निर्गुण होकर) आत्मा जन्म-जरा-मृत्यु के दुःखों से छूट जाता है एवं अमृतपद-मुक्ति को प्राप्त होता है।

(च) त्रैगुण्यविषया वेदा, निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन!
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो, निर्योग-क्षेम आत्मवान्॥

—गीता २।४५

हे अर्जुन! सब वेद तीनों गुणों के कार्यरूप संसार को विषय करनेवाले हैं। इसलिए तू असंसारी अर्थात् निष्कामी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वों से रहित, नित्यवस्तु में स्थित तथा योग-क्षेम को न चाहनेवाला और आत्मपरायण बन।

६. गुणातीत—

समदुःखसुखः स्वस्थः, समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीर-स्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥
मानापमानयोस्तुल्य-स्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी, गुणातीतः स उच्यते॥

—गीता १४।२४-२५

जो दुःख-सुख में समान है, आत्मभाव में स्थित है, जिसकी मिट्टी, पत्थर और सोने में समान बुद्धि है, जो प्रिय-अप्रिय को तुल्य समझता है, धैर्यवान है, निन्दा-स्तुति में समान भाववाला है। मान-अपमान में तुल्य है, मित्र-शत्रु में समान पक्षवाला है और सब प्रकार के आरम्भ का परित्याग करनेवाला है, वह पुरुष गुणातीत कहलाता है।

४ गुणों का नाश एवं प्रकाश

१. चउहिं ठाणेहिं संते गुणे नासेज्जा, तं जहा—कोहेणं, पडिनिवेसेणं, अकयण्णुयाए, मिच्छत्ताभिणिवेसेणं।

—स्थानांग ४।४।२८४

चार कारणों से जीव विद्यमान गुणों का नाश कर देता है (१) क्रोध से, (२) गुण सहन न होने से, (३) अकृतज्ञता से, (४) मिथ्याधारणा के कारण।

२. चउहिं ठाणेहिं संते गुणे दीवेज्जा, तं जहा—अब्भासवत्तियं, परछंदाणुवत्तियं, कज्जहेउं, कयपडिकइए इ वा।

—स्थानांग ४।४।२८४

चार कारणों से जीव विद्यमान गुणों को प्रकाशित करता है—
(१) विद्याभ्यास के लिए, (२) दूसरे को अनुकूल बनाने के लिए, (३) अपना काम सिद्ध करने के लिए, (४) कृतज्ञता प्रकट करने के लिए।

३. इक्षु दण्डास्तिलाः शूराः, कान्ता हेमं च मेदिनी,
चन्दनं दधि-ताम्बूले, मर्दनं गुणवर्धनम्।

—चाणक्यनीति ९।१३

इक्षुदण्ड, तिल, शूर, स्त्री, हेम, पृथ्वी, चन्दन, दही और तांबूल, मर्दन होने से, इन ९ चीजों के गुणों में वृद्धि होती है।

५ गुणज्ञ

१. विरला जानन्ति गुणान् ।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १७७

गुणों को जाननेवाले विरले हैं ।

२. गुणी सैंकड़ों में कहीं, मिल जाते दो एक ।
लाखों में मिलना कठिन, गुणद्रष्टा सुविवेक ।

—तात्त्विकत्रिशती १६५

३. गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणः ।
गुण को गुणी ही जानता है ।

४. गुणिनि गुणज्ञो रमते, नागुणशीलस्य गुणिनि परितोषः ।
अलिरेति वनात् पद्मं, न दर्दुरस्त्वेकवासोऽपि ।

—शाकुंतल

गुणज्ञ ही गुणीजनों से प्रेम करता है । गुणहीन गुणियों में सन्तुष्ट नहीं होता । भौंरा वन से चलकर कमल के पास जाता है, किन्तु मेंढ़क पानी में रहता हुआ भी कमल के निकट नहीं जाता ।

५. जितनी चेष्टा दूसरों के दोषों को जानने की करते हो, उससे आधी भी यदि उनके गुणों को जानने की करो तो तुम अजातशत्रु बन सकते हो ।

६. न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं, स तं सदा निन्दति नाऽत्र चित्रम् ।
यथा किराती करिकुम्भलब्धां,मुक्तां परित्यज्य बिभर्ति गुञ्जाम् ॥

—चाणक्यनीति ११।८

जो व्यक्ति जिसके गुणों को नहीं जानता, वह सदा ही उसकी निन्दा किया करता है । जैसे—भीलनी हाथी के मस्तक से प्राप्त मोती को छोड़कर गुञ्जा को ही पहनती है ।

६ गुणी

१. गुणी च गुणरागी च, विरलः सरलोजनः।
गुणी एवं गुण के प्रेमी विरले ही सरलपुरुष हैं।

२. गुणवन्तः क्लिश्यन्ते, प्रायेण भवन्ति निर्गुणाः सुखिनः।
बन्धनमायान्ति शुका, यथेष्टसंचारिणः काकाः॥

— सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ८५

गुणीजन प्रायः दुःख पाते हैं और निर्गुण सुखी होते हैं। शुक बन्धन को प्राप्त होते हैं और काक इच्छानुसार घूमते हैं।

३. कौशेयं कृमिजं सुवर्णमुपलादिन्दीवरं गोमयात्,
पङ्कात्तामरसं शशाङ्कमुदधे-र्गोपित्ततो रोचना।
काष्ठादग्नि रहेः फणादपि मणिर्दूर्वापि गोरोमतः,
प्राकाश्यं स्वगुणोदयेन गुणिनोयास्यन्ति किं जन्मना॥

---पञ्चतन्त्र १।७६

रेशमी वस्त्र कीड़ों से, सोना पत्थर से, नील-कमल गोबर से, कमल कर्दम से, चन्द्रमा समुद्र से, गोरोचन गाय के पित्त से, अग्नि काष्ठ से, मणि साँप के फण से और दूब गाय के रोमों से उत्पन्न होती है। अर्थात् स्थान निम्नकोटि के होने पर भी पूर्वोक्त वस्तुएं जगत्प्रसिद्ध हो रही हैं, क्यों न हों! गुणी व्यक्ति अपने गुणों के उदय से ही जगत में प्रसिद्धि को प्राप्त होते हैं, जन्म से नहीं।

४. गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।

—उत्तररामचरित ४।११

गुणिजनों का सम्मान गुणों से ही होता है, स्त्री-पुरुष के भेद से या आयु के कारण से नहीं होता।

५. हंसां नैं सरवर घणां, देश-विदेश गयांह।
कुसुमां नैं सज्जन घणां, कुसुम नणा भंवरांह ॥

६. गुणैः सर्वज्ञतुल्योऽपि, सीदत्येको निराश्रयः।
अनर्घ्यमपि माणिक्यं, हेमाश्रयमपेक्षते ॥

—चाणक्यनीति १६।१०

गुणों से युक्त ईश्वर के समान पुरुष भी निराश्रय एवं अकेला दुःख ही पाता है। जैसे—अनमोल माणिक्य भी सोने में जड़े जाने की अपेक्षा रखता है।

७. गुणिजनसंगति—

(क) जनयति नृणां किं नाभीष्टं गुणोत्तम संगमः ?

—सिन्दूरप्रकरण ६६

गुणिजनों का सम्पर्क क्या इच्छित काम नहीं करता ?

(ख) स्तोकोऽपि गुणिसंसर्गः, श्रेयसे भूयसे भवेत्।

—सूक्तरत्नावली

गुणिजनों का थोड़ा-सा संसर्ग भी महान् कल्याणकारी हो जाता है।

७ # गुणग्राहक बनो !

१. कंखे गुणे जाव शरीरभेउ ।

—उत्तराध्ययन ४।१३

अन्त समय तक गुणों की आकांक्षा करते रहो ।

२. गुणेषु क्रियतां यत्नः, किमाटोपैः प्रयोजनम् ।
विक्रीयन्ते न घण्टाभि - र्गावः क्षीरविवर्जिताः ॥

—प्रसङ्गरत्नावली

गुणों के लिए प्रयत्न करो । आडम्बर में क्या है ? दूध न देनेवाली गायें केवल घंटियां बांधने से नहीं बिका करतीं ।

३. गुणेष्वनादरं भ्रातः, पूर्णश्रीरपि मा कृथाः ।
संपूर्णोऽपि घटः कूपे, गुणच्छेदात् पतत्यधः ॥

अरे भाई ! पूर्ण श्रीमान् होकर भी गुणों का अनादर मत कर । देख ! भरा हुआ घड़ा भी गुण (डोरी) के कट जाने से कुंए में गिर जाता है ।

४. सन्धयेत् सरला सूचि-र्वका छेदाय कर्तरी ।
अतो विमुच्य वक्रत्वं, गुणानेव समाश्रय ॥

सीधी-सरल सूई फटे-टूटे को जोड़ती है और वक्र-कैंची अखण्ड को काटती है । अतः वक्रता को छोड़कर गुणों को धारण कर ! (सूई गुण अर्थात् धागे) को धारण करके ही वस्त्र आदि को सीती है) ।

५. ज्ञान गरीबी गुण धरम, नरम वचन निरदोष ।
तुलसी कबहुं न छांड़िये, शील सत्य सन्तोष ॥

६. गुण जब मिले, जहां से मिले, जिस कदर मिले, ले लो !

७. अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च, शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः।
सर्वतः सारमादद्यात्, पुष्पेभ्य इव षट्पदः ॥

—भागवत ११।८।१०

जैसे—भौंरा छोटे-बड़े सभी फूलों से रस लेता है, उसी प्रकार कुशल (गुणी) मनुष्य को चाहिए कि वह छोटे-बड़े सभी शास्त्रों से सार ग्रहण करे।

८. अनन्तशास्त्रं बहुला च विद्या:, अल्पश्च कालो बहुविघ्नता च।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं, हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥

—चाणक्यनीति १५।१०

शास्त्रों का ज्ञान अनन्त है, विद्यायें अनेक हैं, समय अल्प है एवं विघ्न-बाधायें बहुत हैं। अतः जैसे हंस जलमिश्रित दूध में से दूध-दूध पी लेता है, वैसे ही जो पदार्थ सारभूत लगे, उसे तत्काल ग्रहण करलो।

९. Art is long and time is short.

आर्ट इज लोंग एन्ड टाइम इज शोर्ट।

—अंग्रेजी कहावत

● स्वल्पश्च कालो बहुला च विद्या।

—संस्कृत कहावत

समय थोड़ा है और विद्याएँ बहुत हैं।

१०. दृष्टं किमपि लोकेऽस्मिन्, न निर्दोषं न निर्गुणम्।
आवृणुध्वमतो दोषान्, विवृणुध्वं गुणान्बुधाः ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ ३६४

इस संसार में ऐसी कोई भी चीज नहीं देखी गयी, जिसमें कोई न कोई दोष अथवा गुण न हो। अतः बुधजनों को चाहिए कि वे दोषों को छोड़ कर गुणों को ले लें।

११. क्षारभावमपहाय वारिधेः, गृह्णन्ति सलिलमेव वारिदाः ।

—उपदेशप्रासाद

मेघ समुद्र के खारेपन को छोड़कर केवल जल को ही ग्रहण करते हैं ।

१२. म्लेच्छानामपि सुवृत्तं ग्राह्यम् ।

—कौटिलीय-अर्थशास्त्र

म्लेच्छों के भी सदाचरण ले लेने चाहिए ।

१३. शत्रोरपि गुणा ग्राह्या ।

—कौटिलीय-अर्थशास्त्र

शत्रु से भी गुण ले लेना चाहिए ।

१४. विषादप्यमृतं ग्राह्य-ममेध्यादपि काञ्चनम् ।
नीचादप्युत्तमां विद्यां, स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥

—चाणक्यनीति १।१६

मिल सकता हो तो विष से अमृत, गन्दगी से सोना, नीच से उत्तम विद्या और दुष्कुल से भी स्त्रीरत्न ले लेना चाहिए ।

१५. स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या, धर्मः शौचं सुभाषितम् ।
विविधानि च शिल्पानि, समादेयानि सर्वतः ॥

—मनुस्मृति २।२४०

गुणवती स्त्रियाँ, रत्न, विद्या, धर्म, पवित्रता, सुभाषित और नाना प्रकार की कलायें—ये चीजें हर एक से ले लेनी चाहिए ।

१६. युक्तियुक्तं उपादेयं, वचनं बालकादपि ।
अन्यत् तृणमिव त्याज्य-मप्युक्तं पद्मजन्मना ॥

—योगवाशिष्ठ २।१८।३

युक्तियुक्त वचन को बालक से भी ले लेना चाहिए और युक्तिहीन वचन चाहे ब्रह्मा का भी क्यों न हो, वह तृणवत् त्याज्य है ।

१७. ननु वक्तृविशेषनिःस्पृहा, गुणगृह्या वचने विपश्चितः ।

—किरातार्जुनीय २।५

विद्वान् लोग किसी वचन के विषय में यह नहीं देखते कि उसका कहने-वाला कौन है। वे तो केवल गुण के पक्षपाती होते हैं।

१८. गुणी बन गुण को लेना है, हमें दुर्गुण से क्या मतलब ?[1]
कुएँ से नीर पीना है, हमें कचरे से क्या मतलब ? ॥ध्रुव॥

हम तो ग्राहक हैं चन्दन के, भले ही साँप लिपटे हों !
मुग्ध है पुष्प-सुरभी पर, हमें काँटों से क्या मतलब ? गुणी॥१॥

छाछ खट्टी भले ही हो, हम तो मक्खन के भूखे हैं।
इक्षु-रस के पिपासु हैं, हमें छिलकों से क्या मतलब ? गुणी॥२॥

न खल से काम है बिल्कुल, हमें तो तेल लेना है।
आम खाने के इच्छुक हैं, हमें गुठली से क्या मतलब ? गुणी॥३॥

मणी के हम तो ग्राहक हैं, साँप जहरी भले ही हों।
गोल मोती के गर्जी हैं, सीप बाँकी से क्या मतलब ? गुणी॥४॥

रूप कोयल का काला है, तो भी मिठास ले लेंगे।
काम तकिये की रू से है, हमें खोली से क्या मतलब ? गुणी॥५॥

मिले गुण जिस कदर जिससे, हम तो तैयार हैं लेने।
चाहे किसही मजब का हो, हमें मजहब से क्या मतलब ? गुणी॥६॥

ऐब बिन आज दुनियाँ में, नजर कोई नहीं आता।
सभी अन्दर से नंगे हैं, कहे 'धन' हमको क्या मतलब ? गुणी॥७॥

—उपदेश-सुमनमाला

१९. गुणिगणगणनारम्भे, नापतति कठिनी सुसंभ्रमाद् यस्य।
तेनाम्बा यदि सुतिनी, वद ! वन्ध्या कीदृशी नाम ॥

—हितोपदेश-प्रास्ताविका १६

---

१. तर्ज-कव्वाली

गुणीजनों की गणना करते समय जिसकी लेखनी शीघ्रता से नहीं चलती, उस पुत्र से यदि माता पुत्रवती कही जाय तो कहो! फिर वन्ध्यास्त्री कैसी होगी ?

२०. आरोप्यते शिला शैले, यत्नेन महता यथा ।
निपात्यते क्षणेनाध-स्तथात्मा गुण-दोषयोः ।

—हितोपदेश २।४७

जैसे—किसी ऊँचे स्थान पर शिला बड़े यत्न से चढ़ाई जाती है और नीचे क्षणभर में गिरा दी जाती है, गुण और दोष के विषय में आत्मा की भी ऐसी ही स्थिति है, यानी गुणों का ग्रहण कठिन है एवं दोषों का ग्रहण सरल है ।

८

गुणग्राही के अभाव में

१. गुणिनोऽपि हि सीदन्ति, गुणग्राही न चेदिह।
सगुणः पूर्णकुम्भोऽपि, कूपएव निमज्जति ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ ८५

यदि गुणग्राही न हो तो गुणीजन भी खिन्नता को प्राप्त हो जाते हैं। देखो! भरा घड़ा कुएँ में गिर जाता है, यदि उसकी रस्सी (गुण) को कोई पकड़नेवाला न हो।

२. जब गुन के गाहक मिलें, तब गुण लाख बिकाय।
जब गुन का गाहक नहीं, कौड़ी बदले जाय ॥

—कबीर

३. सुयोग्य व्यक्ति के अभाव में योग्यता का मूल्य बहुत कम रह जाता है।

—नेपोलियन

९

गुणहीन

१. निर्गुणस्य हतं रूपम् ।

—चाणक्यनीति ८।१६

गुणहीन के रूप-सौन्दर्य को धिक्कार है।

२. सीरत नहीं जो अच्छी, सूरत फिजूल है।
जिस गुल में बू नहीं, वह कागज का फूल है॥
सीरत के हम गुलाम हैं, सूरत हुई तो क्या ?
सुर्खो-सफेद मिट्टी की, मूरत हुई तो क्या ?

—उर्दू शेर

३. स्वयमगुणं वस्तु न खलु पक्षपाताद् गुणवद् भवति।
न गोपालस्नेहाद् उक्षा क्षरति क्षीरम्॥

नीतिवाक्यामृत १६।५-६

निर्गुणवस्तु किसी के पक्षपात से गुणयुक्त नहीं होती, ग्वाले के स्नेह से बैल दूध नहीं दे सकता।

४. पुरुषा अपि बाणा अपि गुणच्युताः कस्य न भयाय ?

—सुभाषितरत्न-खण्डमंजूषा

गुण से च्युत-पतितपुरुष और बाण किसको भय उत्पन्न नहीं करता ? (यहाँ गुण शब्द के दो अर्थ हैं—सद्‌गुण और धनुष की डोरी)।

५. गुणैर्विहीना बहुजल्पयन्ति।

—सुभाषितरत्न-खण्डमंजूषा

गुणहीन व्यक्ति अधिक बोला करते हैं।

६. नहीं चम्पा नहीं केतकी, भंवर ! देख मत भूल।
रूपरूड़ो गुणबाहिरो, रोहीड़ा रो फूल।

७. डूंगर दूरासूं रलियामणा, दीसं ईसरदास।
नेड़ा जाकर देखिए, (तो) पत्थर पाणी घास॥

८. पाषाणैः परिपूरिता वसुमती वज्रो मणिर्दुर्लभः।

पत्थरों से पृथ्वी भरी पड़ी है, किन्तु वज्रमणि मिलना कठिन है। ऐसे ही निर्गुण-व्यक्ति बहुत हैं, किन्तु गुणी दुर्लभ हैं।

९. गुणहीन मृतकतुल्य।

शालिवाहन राजा एवं कालिकाचार्य का संवाद—

राजा—कौन जीवित है ?

आचार्य—जो गुणी एवं चारित्रशील है, वही जीवित है।

राजा—क्यों ?

आचार्य—मैंने एक दिन शिष्यों से कहा—निर्गुण एवं चारित्रहीन पुरुष पशु-मृग आदि के समान है। तब मृग आदि सभी ने इस मंतव्य का विरोध करते हुए इस प्रकार कहा—

मृगादि पशु—हम मरने के बाद भी चर्म आदि के रूप में लोगों के काम आते हैं।

गउएँ—हम घास खाकर दूध देती हैं।

कुत्ते—हम नमकहलाल हैं।

वृक्ष—हम छाया फल-फूल आदि देते हैं।

घास—मैं पशुओं का जीवन टिकाता हूँ।

राख—मैं बर्तन साफ करती हूँ।

राजन् ! उसी दिन से यह निर्णय किया गया कि निर्गुण-चारित्रहीन-व्यक्ति मृतक के तुल्य है।

१० गुणशून्य नाम

१. आख्यां रो आंधो, नाम नैणसुख।
जन्म रो मंगतो, नाम दाताराम।
जन्म रो दुखियारी, नाम सदासुख।
बांधे लंगोटी, नाम पीताम्बरदास।
मांगै भीख, नाम लखपतराम।
कनै कोड़ी कोनी र नाम किरोड़ीमल।
पढ्यो न लिख्यो नाम विद्याधर।
झोंटमान झूंपड़ी र नाम तारागढ़।

—राजस्थानी कहावतें

२. नाम दियो सूरो रणधीर, भाग्यो जावै दीठां तीर।
नाम दियो छे धर्मशाह, पाप करण री नहीं परवाह॥
नाम दियो बाई रो लाछ, मांगी न मिले कुल्हड़ी छाछ।
नाम दियो बाई रो चंपकली, गोबर बीणे गली-गली॥

—राजस्थानी-पद्य

३. हीरालाल नाम सो तो कंकर को करै कार,
बुद्धिचंद नाम पूंजी गांठ की गमावै है।
नाम तो संतोषदास पल में भलक उठै,
गंभीरमल नाम सो तो लोकानै लड़ावै है॥
शोभाचंद नाम सो तो कुशोभा करत नित,
प्यारचंद नाम खार जग में बसावै है।

१४ गुणों में दोष

१. गुण पूरी रूरी सुरभि, कस्तूरी कमनीय।
एकहि अवगुण मलिनता, हरै जनक को जीय॥

२. फूल हुवै जठै कांटा भी हुवै।

- गाम हुवै जठै (ढेढवाड़ो) अकुरड़ी भी हुवै।
- हवेली हुवै जठै सारतखानो भी हुवै।
- लंका में दलदरी भी हुवै।

—राजस्थानी कहावतें

३. No garden without weeds.
नो गार्डन विदाउट वीड्स।

—अंग्रेजी कहावत

कोई उद्यान ऐसा नहीं है, जिसमें घास-फूस बिल्कुल न हो।

१५ दृष्टिदोष एवं उसके आश्चर्य

१. किसी वस्तु को देखकर सहर्ष आश्चर्य प्रकट करने से जो विकार होता है, उसे दृष्टिदोष या नजर कहते हैं। थुथकारा डालने से इसका विकार शान्त हो जाता है। ऐसी भी दन्तकथा है कि जिसकी अनामिका और कनिष्ठा—ये दो अंगुलियाँ सहजरूप में मिलती हों, उसका थुथकारा चलता है।

२. ग्वाले की माता खीर बनाकर पानी भरने गयी। पीछे से मासोपवासी मुनि पधारे। ग्वालबाल ने सारी खीर बहरा दी। मुनि चले गये, बालक थाली चाट रहा था। माता पानी भरके आयी और देखकर मन में कहने लगी—अहो! पुत्र सारी खीर खा गया। बस, नजर लगी एवं बालक बीमार होकर थोड़ी ही देर में मर गया। भावना पवित्र थी अतः वह मरकर सेठ शालिभद्र बना। (अचानक मरना नजर के दोष से माना जाता है।)

३. वि० सं० १९८४ छापर में मुनि जयकरणजी आदि की दीक्षा हुई। सेठ गोविन्दरामजी नाहटा नवदीक्षितमुनि का सुन्दर चेहरा और गौरवर्ण देखकर मन में कहने लगे—साधु तो बहुत फूटरो बण्यो है। बस, कहने की ही देरी थी। दीक्षा लेकर स्थान पर आते ही मुनिजी के भयंकर उदरपीड़ा होने लगी। दिनभर अनेक उपचार किये पर कोई लाभ नहीं हुआ। रात पड़ गयी, क्रमशः जीने की आशा कम होने लगी। सेठजी को पता लगा, दौड़कर आये एवं थुथकारा डाला। थुथकारा क्या डाला, बुझते दीपक में तेल ही डाल दिया। नवदीक्षितमुनि तत्काल स्वस्थ हो गये। देखनेवाले सभी आश्चर्यमुग्ध थे।

सुना जाता है कि एक बार उन्हें किसी ने नई हवेली देखने को बुलाया। देखकर उन्होंने कहा—हवेली तो चोखी बणी है। बस, रात-रात में सारी हवेली फट गयी।

४. मोमासर में एक बार छापर की बरात आयी। बरातियों में छापर के नाहटा सरदार भी काफी थे। एक चूना पीसने का घरट्ट पड़ा था। बरातियों ने कहा—अहा! कितना गोल है। कहते हैं कि कुछ ही क्षणों के बाद उसके दो टुकड़े हो गये।

५. वि० सं० २००५ की बात है—आचार्य श्री तुलसी [illegible] व्याख्यान में पधारे। मुखमुद्रा से प्रभावित होकर मोतीलाल नाहटा ने कुछ विशेष गुणग्राम किये। आचार्यश्री को नजर लगी और १०४ डिग्री बुखार हो गया। पता लगते ही मोतीलालजी ने आकर थुथकारा डाला, आचार्य श्री ठीक हो गये।

इनके कथनानुसार इनकी नजर इतनी लगती है कि यदि ये टोकरी में से एक आम खाकर प्रशंसा कर देते हैं तो शेष आम फौरन बिगड़ जाते हैं। इससे भी अधिक आश्चर्य यह है कि ये टेलीफोन पर भी थुथकारा डालकर दृष्टि-दोष का इलाज किया करते हैं।

६. अपनी नजर अपने-आप को भी लग जाती है। जैसे—मेरा शरीर अब बिल्कुल ठीक है, ऐसे सोचते ही कोई न कोई बीमारी आ जाती है। इस साल हमारी खेती बहुत बढ़िया है, ऐसा विचार करने से टीड़ी, सर्दी-आंधी-तूफान आदि के उपद्रव होकर नुकसान हो जाता है। मोटर कितनी तेज चल रही है, ऐसा कहते ही उसमें खराबी हो जाती है। मेरी यात्रा कितने अच्छे ढंग से सम्पन्न हो गयी, ऐसा चिन्तन करते ही यात्रा में कुछ न कुछ विघ्न आ जाता है। लिखना कितना अच्छा हो रहा है—ऐसा दिल में आते ही स्याही ढुलकर या कलम टूट कर उसमें बाधा आ जाती है। वास्तव में नजर लगाने से नहीं लगती। मन में खुश होकर आश्चर्य प्रकट करने से लगती है।

१६ उपकार (अहसान)

१. सहयोगदानमुपकारः, लौकिको लोकोत्तरश्च ।

—जैनसिद्धान्तदीपिका ६।१९-२०

किसी को सहयोग देने का नाम उपकार है, वह दो प्रकार का है—लौकिक और लोकोत्तर। भौतिकसहायता देना लौकिकउपकार है और आत्मिकसहायता अर्थात् धर्मोपदेश एवं निरवद्यदानादि द्वारा सहायता देना लोकोत्तरउपकार है।

२. नीचेषूपकृतं उदके विशीर्णं लवणमिव ।

—नीतिवाक्यामृत ११।४३

नीचों का उपकार करना जल में लवण डालने के तुल्य है।

३. उपकृत्योद्घाटनं वैरकरणमिव ।

—नीतिवाक्यामृत ११।४७

उपकार करके कहना, वैर करने के बराबर है।

४. जिसने कुछ अहसां किया, एक बोझ हम पर रख दिया।
सिर से तिनका क्या उतारा, सर पे छप्पर रख दिया ॥

—चकबस्त

५. तलवार मारे एक बार, अहसान मारे बार-बार।

—हिन्दी कहावत

६. अगर किसी को मारना, अहसान करके छोड़ दो।
खुद-बखुद मर जाएगा, वह अगचें इन्सान है॥

—उर्दू शेर

७. दल्यानुं दलामण आवे तेमां पाड़ शानो ! माग्यु आपे तेमां शानो पाड़। नातनुं नोतरुं ने परबनुं पाणी तेमां पाड़माण शुं !

—गुजराती कहावत

१७ परोपकार

१. अष्टादशपुराणेषु, व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम् ॥

अठारहपुराणों में व्यासजी के दो ही वचन मुख्य हैं—दूसरों का उपकार करना पुण्य है और दूसरों को दुःख देना पाप है ।

२. परहित सरिस धरम नहिं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई

—रामचरितमानस

३. संसारे न परोपकार सदृशं, पश्यामि पुण्यं सताम् ।

—क्षेमेन्द्रकवि

मेरी दृष्टि में सत्पुरुषों के लिए परोपकार जैसा पुण्य संसार में दूसरा कोई नहीं है ।

४. परोपकृति-कैवल्ये, तोलयित्वा जनार्दनः ।
गुर्वीमुपकृतिं मत्वा, ह्यवतारान् दशाऽग्रहीत् ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७८

परोपकार और मोक्ष—इन दोनों को तोलने पर उपकार भारी निकला, अतएव विष्णु भगवान ने परोपकार करने के लिए दस अवतार लिए ।

५. नोपकारं विना प्रीतिः, कथंचित् कस्यचिद् भवेत् ।
उपयाचित-दानेन, यतो देवाः फलप्रदाः ॥

—पंचतंत्र २।५२

उपकार किए बिना किसी को किसी के साथ प्रेम नहीं होता । मनौती करने पर ही देवता मनोरथ पूरा करते हैं ।

६. घड़ी-घड़ी घड़ियाल, प्रकट सद एम पुकारे !
अवर भवे ऊंघतां, जागले मिनख-जमारे !
दुनियां रे सिर दंड, घड़ी-घड़ी आयु घटंतां।
काठ सिरे करवत्त, बार कितियेक कटंतां।
तिण हेत चेत चेतन चतुर ! धर्मसील दिलमांहि धर !
सहु बात सार संसार में, कर्यूहिक पर-उपकार कर !

—भाषाश्लोकसागर

७. **लोकोपकारी जीवन के तीन सूत्र—**
सत्य, संयम और सेवा।

—विनोबा

परोपकार का अर्थ है—दूसरों का भला चाहना, दूसरों का भला करना और सेवा करना।

—गांधी

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन, दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन।
विभाति कायः करुणापराणां, परोपकारैर्न तु चन्दनेन ॥

—भर्तृहरिनीतिशतक ७२

दयालु सत्पुरुषों के कान शास्त्रश्रवण से, हाथ दान से, और शरीर परोपकार से शोभित होते हैं, लेकिन कुण्डल, कङ्कण और चन्दन से नहीं।

१८ प्रत्युपकार [उपकार का बदला]

१. उपकार करना मनुष्यता का उच्चगुण है और उपकार चाहना पामरता है।

२. महान्, मेघराज की तरह उपकार का बदला नहीं चाहते।

—तिरुवल्लुवर

३. ईसा ने दस कोढ़ियों के घाव साफ किए। एक ने आभार प्रकट किया, शेष यों ही गए।

४. मय्येव जीर्णतां यातु, यत् त्वयोपकृतं हरे!
जनः प्रत्युपकारार्थी, विपदामभिकाङ्क्षते।

—वाल्मीकि रामायण

लंकाविजय के बाद हनूमान विदा होने लगे, तब राम ने कहा—हनूमान! तुमने जो हमारा उपकार किया है, उसे हम हजम करना चाहते हैं अर्थात् उसका बदला देना नहीं चाहते, क्योंकि प्रत्युपकार करने का इच्छुक व्यक्ति उपकारी के लिए वास्तव में विपत्ति की इच्छा करनेवाला होता है।

५. प्रत्युपकुर्वन् बह्वपि, न भवति पूर्वोपकारिणस्तुल्यः।

—श्राद्धविधि

प्रत्युपकारी—उपकार का बदला चुकानेवाला पूर्वोपकारी के बराबर कभी नहीं होता।

६. तिण्हं दुप्पडियारं समणाउसो ! तं जहा—
अम्मापिउणो, भट्टिस्स, धम्मायरियस्स ।

—स्थानांग ३।१।१३५

हे आयुष्मन् श्रमण ! तीनों के उपकार का बदला चुकाना कठिन है—माता-पिता का, स्वामी का और धर्माचार्य का।

७. स पुमान् वन्द्यचरितो यः प्रत्युपकारमनपेक्ष्य परोपकारं करोति।

—नीतिवाक्यामृत २७।३१

प्रत्युपकार की आशा न करके दूसरों का उपकार करनेवाले का चरित्र स्तुति करने योग्य है।

१९ कृतज्ञता और कृतज्ञ

१. उपकारी का अपराध हो जाने पर उसे क्षमा कर देना कृतज्ञता है।

२. कृतज्ञता शाब्दिक धन्यवाद से कहीं बढ़कर है और कार्य, शब्दों से अधिक प्रकट करता है।

—लावेल

३. कृतघ्नता के बाद सहने में सबसे ज्यादा कष्टप्रद कृतज्ञता है।

—एच. डब्ल्यू. बीचर

४. किसी दार्शनिक को शब्दों की इतनी कमी महसूस नहीं हुई, जितनी कृतज्ञ को।

—कोल्टन

५. प्रथमवयसि पीतं तोयमल्पं स्मरन्तः,
शिरसि निहितभारा नालिकेरा नराणाम्।
उदकममृततुल्यं दद्यु - राजीवनान्तं,
नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति॥

—शाकुन्तल

बचपन में पिये हुए थोड़े-से पानी का स्मरण करते हुए नारियल के वृक्ष जीवनभर अपने सिर पर फलों का बोझा धारण करते हैं एवं मनुष्यों को अमृततुल्य जल देते रहते हैं, क्योंकि सत्पुरुष किए हुए उपकार को कभी नहीं भूला करते।

६. कृतज्ञ शेर—अपराधी गुलाम निकल भागा। उसने गुफा में कराहते हुए शेर का काँटा निकाला। सिपाहियों ने गुलाम और शेर दोनों को पकड़कर हाजिर किया। बादशाह ने गुलाम को मारने के लिए शेर के पिंजरे में डाला। कृतज्ञ शेर ने अपने उपकारी को नहीं मारा।

२० परोपकारी

१. परहितनिरतानामादरो नात्मकार्ये।

—सुभाषितरत्न-खण्डमञ्जूषा

परोपकार में लगे हुए पुरुषों को अपने काम का ध्यान नहीं रहता।

२. पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः, स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
नादन्ति सस्यं खलु वारिवाहाः, परोपकाराय सतां विभूतयः॥
रत्नाकरः किं कुरुते स्वरत्नैर्विन्ध्याचलः किं करिभिः करोति।
श्रीखण्डखण्डैर्मलयाचलः किं, परोपकाराय सतां विभूतयः॥

—उद्भटसागर

नदियाँ स्वयं पानी नहीं पीतीं, वृक्ष फल नहीं खाते और मेघ धान्य का भक्षण नहीं करते, क्योंकि सत्पुरुषों की विभूतियाँ परोपकार के लिए ही होती हैं।

रत्नाकर (समुद्र) को रत्नों से क्या लाभ ? विन्ध्याचल को हाथियों से क्या लाभ ? और मलयाचल को चन्दन के खण्डों से क्या लाभ ? लाभ कुछ भी नहीं है, केवल परोपकार के लिए ही ये सब रत्नादि द्रव्यों को धारण करते हैं।

३. यद्यपि चन्दनविटपी, फल-पुष्पविवर्जितः कृतो विधिना।
निजवपुषैव तथापि हि, संहरति संतापमपरेषाम्॥

—गोवर्धनाचार्य

विधाता ने चन्दन के वृक्ष को फल-फूल से हीन बना दिया, तो

तो क्या हुआ ? वह अपने शरीर से भी दुनियां के संताप का नाश कर रहा है।

४. पत्र-पुष्प-फल-च्छाया, मूल-वल्कल-दारुभिः।
गन्ध-निर्यास-भस्मास्थि-तोक्मैः कामान् वितन्वते॥
—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ २४७

वृक्ष अपने पत्ते, फूल, फल, छाया, मूल, वल्कल, काष्ठ, गन्ध, दूध, रस, भस्म, गुठली और कोमलअंकुर से प्राणियों को सुख पहुंचाते हैं।
[हरा-भरा वृक्ष फल, फूल एवं छाया देता है. सूखने पर टेबल-कुर्सी, पट्टे, किवाड़ आदि बनकर जगत की सेवा करता है, ईंधन बनकर रसोई आदि बनाता है तथा मनुष्यों के मुर्दे को जलाता है। आखिर राख बनकर भी बर्तन आदि को साफ करता है।]

५. दीपक जलकर भी प्रकाश देता है, पंखा स्वयं घूमकर भी लोगों को हवा देता है तथा केश काले होकर भी मनुष्यों की शोभा बढ़ाते हैं। मनुष्यों! तुम भी इनसे कुछ सीखो एवं परोपकारी बनो!

२१ निरुपकारी

१. परोपकारशून्यस्य, धिग् मनुष्यस्य जीवितम् ।
धन्यास्ते पशवो येषां, चर्माप्युपकरोति हि ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७८

परोपकारहीन मनुष्य का जीना धिक्कार है। वे पशु धन्य हैं, जिनके चाम भी लोगों का उपकार करते हैं।

२. स लोहकारभस्त्रेव, श्वसन्नपि न जीवति ।

—योगशास्त्र

उपकारहीन व्यक्ति लोहार की धौंकणी की तरह श्वास लेता हुआ भी मुर्दा है।

३. तृणं चाहं वरं मन्ये, नरादनुपकारिणः ।
घासो भूत्वा पशून् पाति, भीरून् पाति रणाङ्गणे ॥

—शाकुन्तल

उपकारहीन व्यक्ति से तो मैं तृण को भी अच्छा मानता हूं, क्योंकि वह घासरूप से पशुओं की रक्षा करता है और संग्राम में कायरपुरुषों की रक्षा करता है।

४. जो नृप से अधिकार ले, करै न परउपकार ।
पुनि ताके अधिकार में, आदि न रहत अकार ॥

५. बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर ।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर ॥

—कबीर

२२ कृतघ्न

१. कृतमुपकारं हन्तीति कृतघ्नः ।

किए हुए उपकार को जो घात करता है वह कृतघ्न है ।

२. कृतमपि महोपकारं, पय इव पीत्वा निरातङ्कः ।
प्रत्युत हंतुं यतते काकोदरसोदरः खलो जयति ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५६

दुष्ट कृतघ्न किए हुए महान् उपकार को दूध की तरह पीकर सर्पवत् उल्टा दूध पिलानेवाले को ही काटने की चेष्टा करता है ।

३. खावे जिकी ही थाली में हगे ।

- खावे जिकी ही थाली नें फोड़े ।
- खावे खसम रो र गीत गावे वीरे रा ।

—राजस्थानी कहावतें

४. मेरी बिल्ली और मेरे से ही म्याऊं !

—हिन्दी कहावत

५. कृतघ्ना धनलोभान्धा नोपकारेक्षणक्षमाः ।

— कथासरित्सागर

धन के लोभ में अन्धे कृतघ्न व्यक्ति उपकार की दृष्टि से देखने योग्य नहीं होते ।

६. कृतघ्नानां शिवं कुतः !

कथासरित्सागर

कृतघ्नों का कल्याण कहां !

७. गोघ्ने चैव सुरापे च, चौरे भग्नव्रते तथा ।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः, कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥

—वाल्मीकिरामायण ४।३४।१२

गोघाती, शराबी, चोर और व्रतभ्रष्ट—इन सबके लिए तो सत्पुरुषों ने प्रायश्चित्त का विधान किया है, किन्तु कृतघ्न के विषय में कोई प्रायश्चित्त नहीं है ।

८. **ऋषि और चाण्डालिनी का संवाद—**

ऋषि—

कर खप्पर शिर श्वान है, लोहू जु खरड़े हत्थ ।
छटकत मग चंडालिनी, ऋषि पूछत है बत्त ?

चाण्डालिनी—

तुम तो ऋषि भोरे भए, नहिं जानत हो भेव ।
कृतघ्नी की चरणरज, छटकत हूँ गुरुदेव !

२३ उदार और उदारता

१. अयं निजः परो वेति, गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

—पञ्चतन्त्र ५।३८

यह अपना है और यह पराया है—ऐसा विचार छोटी समझवाले ही करते हैं, उदारचरितों के लिए तो सारी पृथ्वी ही उनका कुटुम्ब है।

२. उदारमनवाले विभिन्नधर्मों में अनुदार फर्क देखते हैं।

—चीनी कहावत

३. उदार आदमी का वैभव गांव के बीचोंबीच उगे हुए फलों से लदे हुए वृक्ष के समान है।

—तिरुवल्लुवर

४. परगृहे सर्वोऽपि विक्रमादित्यायते ॥

—नीतिवाक्यामृत ११।३१

सभी मनुष्य दूसरों के घर में जाकर उसके धनादि को व्यय कराने के लिए राजा विक्रमादित्य की तरह उदार हो जाते हैं।

५. उदारता अधिक देने में नहीं, किन्तु समझदारी से देने में है।

—फ्रैंकलिन

६. उदारता के बिना मीठी-वाणी पीतल की झनझनाहट एवं करताल की खनखनाहट है।

—ईसाईसंत पाल

जहाँ तक गुणियों के गुण हैं और वहीं तक गुरुओं का गौरव है, जहाँ तक वे दूसरों के पास नहीं मांगते। मांगने पर गुण और गौरव दोनों नष्ट हो जाते हैं।

६. स्वार्थं धनानि धनिकात्प्रतिगृह्णतो य-
दास्यं भजेद् मलिनतां किमिदं विचित्रम्।
गृह्णन् परार्थमपि वारिनिधेः पयोऽपि,
मेघोऽयमेति सकलोऽपि च कालिमानम् ॥

—**सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७७**

धनिकों से अपने लिए धन लेते समय लेनेवाले के मुख पर कालिमा छा जाती है, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। दूसरों के लिए समुद्र का जल लेने पर भी देखो! यह मेघ काला हो जाता है।

७. एहि गच्छ! पतोत्तिष्ठ! वद! मौनं समाचर!
एवमाशाग्रहग्रस्तैः, क्रीडन्ति धनिनोऽर्थिभिः ॥

—**हितोपदेश २।२४**

इधर आजा, चला जा, बैठ जा, खड़ा हो जा, बोल, चुप हो जा! आशारूप ग्रह से ग्रसित याचकों के साथ धनिक लोग—ऐसे खेलते रहते हैं।

८. **याचक की प्रभु से प्रार्थना—**

हे करतार करूँ अरजी अब, भूल लिखो मत काहू के टोटो।
ऐसो ललाट लिखे मत काहु के, मांगन जाय महीपति मोटो ॥
तू अपनो बुध जानत है प्रभु! मांगन से कछु और न खोटो।
तू बलि के जब द्वार गयो तब, बावन आंगल हो गयो छोटो ॥

—**भाषाश्लोकसागर**

९. मंगने सूं कोई गली छानी कोनी।

● हूँ लायो मांग-तांग, तू लै गधै री टांग।

—**राजस्थानी कहावतें**

१०. **अद्भुत भिखारी**—वि. सं. २००४ की बात है, विलेपारला (बम्बई) में हम एक दिन बाहर आ रहे थे। रेंड़ी में बैठा हुआ एक अपाहिज मिला। जिसके हाथ-पैर नाक-कान कटे हुए थे। लँगोटी पहनी हुई थी एवं मुंह में सिगरेट थी। रेंड़ी खींचनेवाला व्यक्ति कह रहा था, अपाहिज को कुछ दो, बड़ा पुण्य होगा। देखकर आश्चर्य हुआ और स्थानीय भाइयों से पूछा तो पता लगा कि गुंडों-बदमाशों की एक टोली है। उसका काम यही है कि बच्चों को उड़ाकर विकलांग बना लेना और उनके सहारे दुनिया को ठग खाना। सुबह से शाम तक पचासों रुपये इकट्ठे कर लेते हैं। अपाहिज को केवल रोटी-सिगरेट आदि मिलते हैं। शेष रुपये बदमाशों की टोली हजम कर जाती है।

—धनमुनि

३८ याचना

१. सेवेव मानमखिलं, ज्योत्स्नेव तमो जरेव लावण्यम् ।
हरि-हरकथेव दुरितं, गुणशतमप्यर्थिता हरति ॥

—हितोपदेश १।१३६

जैसे—सेवा स्वाभिमान को, चाँदनी अंधकार को, बुढ़ापा खूबसूरती को और हरि-हर की कथा सब पापों को हरती है, वैसे ही याचना सैंकड़ों गुणों को हर लेती है।

२. विशाखान्ता गता मेघाः, प्रसवान्तं हि यौवनम् ।
प्रणामान्तः सतां कोपो, याचनान्तं हि गौरवम् ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १६२

जैसे विशाखा नक्षत्र के बाद मेघ, प्रसव के बाद स्त्रियों का यौवन और प्रणाम के बाद सत्पुरुषों का क्रोध नष्ट हो जाता है, वैसे ही किसी से कुछ मांगने के बाद गौरव नष्ट हो जाता है।

३. लघुत्वमूलं हि किमर्थितैव, गुरुत्वमूलं यदयाचनं च ।

—शङ्कर-प्रश्नोत्तरी १८

लघुता का मूल क्या है? मांगना।
गुरुता का मूल क्या है? नहीं मांगना।

४. बुरो प्रीति को पंथ, बुरो जंगल को वासो।
बुरो नार को नेह, बुरो मूरख सों हांसो।
बुरी सूम की सेव, बुरो भगिनीघर भाई।
बुरो कुलच्छनि नार, सास घर बुरो जमाई।

बुरो पेट पंपाल है, बुरो युद्ध से भागनो।
गंग कहे अकबर सुनो! सबसे बुरो है मांगनो॥

५. देपथुर्मलिनं वक्त्रं, दीना वाग्, गद्गदस्वरः।
मरणे यानि चिह्नानि, तानि चिह्नानि याचने॥

—व्यास

कंपन, वदन का मलिन होना, दीनतायुक्त वाणी एवं गद्गदस्वर आदि, जो मरण के चिन्ह हैं, याचना करते समय याचक के शरीर में भी वे ही चिन्ह हो जाते हैं।

६. वदनाच्च बहिर्यान्ति, प्राणा याञ्चाक्षरैः सह।
ददामीत्यक्षरैर्दातुः, पुनः कर्णाद् विशन्ति हि॥

—कल्पतरु

याचना के अक्षरों के साथ याचक के प्राण मुंह से बाहर निकल जाते हैं। फिर देता हूं दाता के इन अक्षरों के साथ कानों द्वारा पुनः अन्दर प्रवेश करते हैं।

७. देहीति वचनं श्रुत्वा, हृदिस्थाः पञ्च देवताः।
मुखान्निर्गत्य गच्छन्ति, श्री-ह्री-धी-शान्ति-कीर्तयः॥

—शाकुंतल

मुझे कुछ दो—ऐसे बोलते ही हृदय में विराजमान श्री–लक्ष्मी, ह्री–लज्जा, धी–बुद्धि; शान्ति-कीर्ति—ये पांचों देवता याचक के मुख से निकल जाते हैं।

८. आब गया आदर गया, नैनन गया सनेहु।
ये तीनों तब ही गए, जबहिं कहा कछु देहु॥

—कबीर

९. धनमस्तीति वाणिज्यं, किंचिदस्तीति कर्षणम्।
सेवा न किंचिदस्तीति, भिक्षा नैव च नैव च॥

—व्यास

पर्याप्त धन हो तो वाणिज्य, थोड़ा धन हो तो खेती एवं धन बिल्कुल ही न हो तो सेवा-नौकरी करनी चाहिए, लेकिन भीख तो कभी नहीं मांगनी चाहिए।

१०. मांगन-मरन समान है, मत कोई मांगो भीख।
मांगन से मरना भला, यह सतगुरु की सीख ॥१॥

मर जाऊं मांगूं नहीं, अपने तन के काज।
पर कारज के कारणे, मांगत मोहि न लाज ॥२॥

बिन मांगे सो दूध बराबर, मांगे मिले सो पानी।
कहे कबीर सो रक्त बराबर, जामें खींचातानी ॥३॥

—कबीर

११. अणमांग्या मोती मिले, मांगी मिले न भीख।

—राजस्थानी कहावत

१२. हर एक के पास मत मांग—

(क) याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।

—मेघदूत

गुणिजनों के समीप निष्फल मांगना भी अच्छा है, एवं अधमजनों से सफल मांगना भी बुरा है।

(ख) आप तो अतीतदास बाप तो फकीरदास,
दादा है दिगम्बरदास भिखारीदास भाई है।
काको है कंगालदास मामो है मंगतदास,
नानो है निरंजनदास जोगीदास जमाई है।
पुत्र तो लफंदरदास, मित्र है कलंदरदास,
सालो है जलंदरदास ऐसी ही बड़ाई है।
ताके पास जाय कुछ मांगिबे की आस करो,
आस तो गई पै लाज गांठ की गमाई है।

—भाषाश्लोकसागर

(ग) रे रे चातक ! सावधानमनसा मित्र ! क्षणं श्रूयता—
मम्भोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः ।
केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति धरणीं गर्जन्ति केचिद् वृथा,
यं यं पश्यसि तस्य-तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः ।

—भर्तृहरि-नीतिशतक ५१

अरे मित्र चातक ! आकाश में अनेक मेघ निवास करते हैं, वे सभी बरसनेवाले नहीं हैं। कई तो वृष्टि से पृथ्वी को गीली करते हैं एवं कई व्यर्थ ही गर्जना करते हैं, अतः मेरी बात सुन और हर एक के सामने दीनवचन मत बोल !

१३. **किसने क्या मांगा ?**

सासू मांग्यो बोलणों, बहुवर मांगी चुप ।
करसणी मांग्यो बरसणों, धोबी मांगी धुप ।

—राजस्थानी दोहा

☼

तीसरा कोष्ठक

१ धन

१. यतः सर्वप्रयोजनसिद्धिः सोऽर्थः।

—नीतिवाक्यामृत २।१

जिससे सब प्रयोजनों की सिद्धि हो, वह अर्थ (धन) है।

२. अलब्धलाभो, लब्धपरिरक्षणं,
रक्षित परिवर्धनं चार्थानुबन्धः।

—नीतिवाक्यामृत २।३

अर्थ के तीन अनुबन्ध अर्थात् किये जानेवाले काम हैं—(१) अप्राप्त की कामना, (२) प्राप्त की रक्षा, (३) रक्षित को बढ़ाना।

३. अर्थस्य पुरुषो दासो, दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।

—महाभारत-भीष्मपर्व

मनुष्य धन का दास है. किन्तु धन किसी का दास नहीं।

४. अर्थैषणा व्यसनेषु न गण्यते।

—कौटिलीय-अर्थशास्त्र

धन की गवेषणा व्यसनों में नहीं गिनी जाती।

५. को न तृप्यति वित्तेन ?

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

धन से कौन तृप्त नहीं होता ?

६. दुन्दुभिस्तु सुतरामचेतन-स्तन्मुखादपि धनं-धनं-धनम्।
इत्थमेव निनदः प्रवर्तते, किं पुनर्यदि जनः सचेतनः॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६७

अचेतन दुन्दुभि के मुख से भी धन-धन-धन ऐसा शब्द निकलता है, तो फिर सचेतन मनुष्य धन-धन की रटना लगाये—इसमें क्या आश्चर्य है ?

२ धन की भूख

१. जातिर्यातु रसातलं गुणगणास्तस्याप्यधोगच्छता—
च्छीलं शैलतटात् पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना ।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं,
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक-३९

चाहे जाति पाताल को चली जाय, सारे गुण पाताल से नीचे चले जायें, शील पर्वत से गिर कर नष्ट हो जाय, स्वजन अग्नि में जलकर भस्म हो जायें और वैरी-शौर्य पर शीघ्र ही वज्रपात हो जाय—तो कोई हर्ज नहीं; लेकिन हमारा धन नष्ट न हो, हमें तो केवल धन चाहिए; क्योंकि धन के बिना मनुष्य के सारे ही गुण तिनके की तरह निकम्मे हैं।

२. बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते,
पिपासितैः काव्यरसो न पीयते ।
न छन्दसा केनचिदुद्धृतं कुलं,
हिरण्यमेवार्जय निष्फला गुणाः ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार पृष्ठ ६७

भूखे व्याकरण नहीं खाया करते, प्यासे काव्यरस नहीं पिया करते तथा वेद से किसी ने कुल का उद्धार नहीं किया, अतः धन का ही अर्जन करो। दूसरे सारे गुण निष्फल हैं।

३. न दुनिया के हों काम धन के बगैर,
न मुर्दा भी उठता कफन के बगैर।
मिले जर से कुव्वत औ जर से तमीज,
खजाने हैं जिसके वही है अजीज ॥

—उर्दू शेर

४. वसु बिना नो पशु, लक्ष्मी बिना नो लपोड़ अनें गरथ बिना नो गाँगलो ।

—गुजराती कहावत

५. धन जाय तिणरो ईमान जाय ।

—राजस्थानी कहावत

६. काका मामा गावाना, पासे होय ते खावाना ।

—गुजराती कहावत

३ धन का प्रभाव

१. यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः, स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः, सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥
—भर्तृहरिनीतिशतक ४१

जिसके पास धन है—वस्तुतः वही कुलवान है, वही पण्डित है, वही ज्ञानी है, वही गुणज्ञ है, वही वक्ता है और वही दर्शनीय है। सारे गुण धन के आश्रित रहा करते हैं।

२. पूज्यते यदपूज्योऽपि, यदगम्योऽपि गम्यते ।
वन्द्यते यदवन्द्योऽपि, स प्रभावो धनस्य च ॥
—पञ्चतंत्र १।७

जो अपूज्य पूजा जाता है, अगम्य में गमन किया जाता है और अवन्दनीय की वन्दना की जाती है—यह सारा धन का ही प्रभाव है।

३. धनैर्निष्कुलीनाः कुलीना भवन्ति, धनैरापदं मानवा निस्तरन्ति ।
धनेभ्यः परो बान्धवो नास्ति लोके, धनान्यर्जयध्वं-धनान्यर्जयध्वम् ॥
—नीतिसार

धन से अकुलीन, कुलीन बन जाते हैं। धन से मनुष्य आपत्ति को पार कर देते हैं। संसार में धन के समान दूसरा कोई भी स्वजन नहीं है, अतः धन का उपार्जन करो! धन का उपार्जन करो!!

४. धन से बड़े-बड़े पापों पर पर्दा पड़ जाता है।
—प्रेमचन्द

५. धन भाग्य की गाड़ी है।
—हिन्दी कहावत

६. हुवे पाताल-तपे लिलाड़ ।

● छेदगी काँई बोले है, जमीं मायँलो बोले है ।

—राजस्थानी कहावतें

७. जिहदी कोठी दाने; ओहदे कमले वि सियाने ।

—पंजाबी कहावत

८. खिस्सा तर तो चाहे सो कर ।

● गाँठे होय धन, सौ हाजर जन ।

● लक्ष्मी नाँ साला घणा, लीला वन नाँ सूडा घणा ।

—गुजराती कहावतें

९. माया थाँरा तीन नाम, फरसो, फरसू, फरसराम ।

—राजस्थानी कहावत

१०. **अचला भक्त**—यह एक दिन मैले कपड़ों से मन्दिर में दर्शनार्थ गया किन्तु उसे अन्दर नहीं जाने दिया । दूसरे दिन बन-ठन कर गया । लोगों ने कहा—आइये ! अन्दर आकर दर्शन कर लीजिए । भक्त ने अन्दर आकर अपने आभूषण आदि मूर्ति के सामने रख दिये और कहने लगा—करो भाई भगवान के दर्शन, तुम्हारी ही पूछ है ।

११. **ईश्वरचन्द्र विद्यासागर**—इनको लार्ड हेस्टिंग की तरफ से चार घोड़ों की बग्घी बख्शी हुई थी । ये राज्य-सभा के मेम्बर थे । एक बार "दीगापतिया नरेश" के निमंत्रण पर ये सादी पोशाक में पैदल ही चले गये । अन्दर नहीं घुसने दिये, फिर बग्घी चढ़कर ठाठ-बाट से गये, सब खड़े होकर उनके पैरों पड़ने लगे तब उन्होंने कहा—"मेरे नहीं घोड़ों के पैर पकड़ो ।"

१२. **चूल्हा फूंकनियाँ**—निर्धन भाई को माँ-जाई बहन ने 'चूल्हा फूंकनियाँ' कहा । फूटी हांडी में ठंडी रोटी और खट्टी छाछ खाने को दी । फिर धनी बनकर आया तो पाँचों पकवान परोसे । भाई ने रुपयों-मोहरों-हीरों-पन्नों के थाल भरकर रखते हुए कहा—लो भाई ! बहिन के पकवान खाओ । बहिन लज्जित हुई ।

४ धन का उत्पादन

१. न क्लेशेन विना द्रव्यम् ।

—दक्षस्मृति

कष्ट सहे बिना धन नहीं मिलता ।

२. विद्या उद्यम बुद्धि बल, रूप तथा संयोग ।
षट्कारण धन लाभ के, जानत है सब लोग ॥

—पं. श्रद्धारामशी

३ सप्त वित्तागमा धर्म्या, दायो लाभः क्रयो जयः ।
प्रयोगः कर्मयोगश्च, सत्प्रतिग्रह एव च ॥

—मनुस्मृति १०।११५

धन की प्राप्ति के सातमार्ग धर्मयुक्त हैं—(१) दाय—पिता आदि का धन, (२) लाभ, (३) क्रय—व्यापार से प्राप्त, (४) जय—युद्ध मेंप्राप्त, (५) प्रयोग—ब्याज से प्राप्त, (६) कर्मयोग—खेती आदि से प्राप्त, (७) सत्प्रतिग्रह—अच्छे दाता से दान में प्राप्त ।

४. यथा मधु समादत्ते, रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः ।
तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य, आदद्यादविहिंसया ॥

—विदुरनीति २।१७

जैसे-भौंरा पुष्पों को नष्ट किये बिना उनमें से मधुग्रहण कर लेता है, वैसे धन के मूलसाधन को नष्ट किए बिना उसमें से धन ग्रहण करना चाहिए ।

५

धन का उपयोग

१. धन उसका नहीं, जिसके पास है, बल्कि उसका है, जो उसका उपयोग करता है।

—फ्रैंकलिन

२. धन और विद्या का उपयोग नहीं करनेवालों ने व्यर्थ कष्ट उठाया।

३. जिसने धन से यश कमाया और भोगा वह भाग्यवान और जिसने धन कमाया और छोड़कर मर गया वह भाग्यहीन।

४. उत्तमं स्वार्जितं भुक्तं, मध्यमं पितुरर्जितम्।
कनिष्ठं भ्रातृवित्तं च, स्त्रीवित्तमधमाधमम्॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १६६

अपना कमाया धन खाना उत्तम है, पिता का कमाया हुआ खाना मध्यम है, भाई का धन खाना अधम है और स्त्री का धन खाना अधमाधम है।

५. दानं भोगो नाश-स्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते, तस्य तृतीया गतिर्भवति॥

—पञ्चतन्त्र २।१५७

धन की तीन गतियाँ होती हैं—दान, भोग और नाश। जो व्यक्ति न तो किसी को देता एवं न स्वयं खाता-पीता, उसके धन की तीसरी गति अर्थात् नाश होता है।

६. दातव्यं भोक्तव्यं, धनविषये संचयो न कर्तव्यः।
पश्येह मधुकरीणां, संचितमर्थं हरन्त्यन्ये॥

—पञ्चतन्त्र २।१४४

धन का दान एवं उपभोग करना चाहिए, किन्तु संग्रह नहीं। देखो! मधुमक्खियों का संचितधन (मधु) दूसरे लोग हर लेते हैं।

७. त्यागाय श्रेयसे वित्त मवित्तः संचिनोति यः।
स्वशरीरं स पङ्केन, स्नास्यामीति विलिम्पति ॥

—इष्टोपदेश-१६०

जो दान और पुण्य के लिए धन का संचय करता है, वह फिर नहा लूंगा—ऐसे सोचता हुआ अपने शरीर को कीचड़ से लिप्त करता है।

८. मनुष्य दो प्रकार के होते हैं—माया के मालिक और माया के गुलाम। मालिक माया में आसक्त नहीं होते एवं उसके लिए अन्याय नहीं करते। गुलाम माया में फँस जाते हैं एवं उसके लिए अन्याय करते नहीं डरते।

९. महाजन को धन रोड़ां में, ठाकर को धन घोड़ां में!

—राजस्थानी कहावत

६ धन का खजाना (अमेरिका में)

समुद्र की सतह से ४० फुट नीचे एवं न्यूयार्क व्यापारी बस्ती से ७० फुट नीचे स्वतन्त्र संसार का सबसे बड़ा स्वर्ण-भण्डार है, जिसमें १२.५३ अरब डालर मूल्य का सोना मकान बनाने की ईंटों के आकार में सुरक्षित है। प्रत्येक ईंट २७-२८ पौंड वजन एवं १४ हजार अमरीकी डालर मूल्य की है। इसके सिवा ६.५ अरब डालर सोना फोर्ट नोक्स (केन्टकी) में एवं ११.८ अरब डालर सोना टकसालों व धातुविश्लेषक कार्यालयों में है। यह सारा सोना विदेशी सरकारों, बैंकों व अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का है। इसे कोई खरीद नहीं सकता।

—हिन्दुस्तान, १८ मार्च १९६८

धन के विविधरूप

(क) रुपया—

१. **संतदास** संसार में, रुपियो बड़ी रसाण।
अणजाण्यां जाण्या नहीं, पड़दे पड़ै पिछाण॥
संतदास संसार में, कै रुपियो कै राम।
वो दाता है मुगतरो, वो सारै सब काम॥

२. कर मैं ह्वै कलदार, मन चाह्या लूंटो मजा।
दुनियां में दिलदार, चेहराशाही चकरिया!

—सोरठा-संग्रह

३. दाम करै काम, दुनियां करै सलाम।

- रुपिया हुवै जद टट्टू चालै—
- रूपली पल्लै, जद रोही में चल्लै।
- रूपली हुवै जद, शोभली आपे ही आय जावै।
- रूपचन्दजी गुरु और सब चेला।

—राजस्थानी कहावतें

४. जेब में हो नगदुल्ला, नाचे बेटा अब्दुल्ला।

—हिन्दी कहावत

५. नगद नाणो, बींद परणीजै काणो।

- हुआ सौ, भागा भौ। हुआ हजार, फिरो बजार।

—राजस्थानी कहावतें

६. पांचे मित्र, पच्चीसे पड़ोसी नें सोए सगो।

—गुजराती कहावत

७. भज कलदारं-भज कलदारं-भज कलदारं मूढमते !

—संस्कृत कहावत

८. रुपियै करै रुपियो आवै।

—राजस्थानी कहावत

जाट के पास एक रुपया था, इधर टकसाल में रुपयों के ढेर लग रहे थे। इसमें गुरु ज्ञान था कि रुपयों के पास रुपया आता है। जाट ने अपना रुपया उन्हें दिखाया। वह अकस्मात् हाथ से छूट कर टकसाल के रुपयों के पास चला गया। जाट देखता ही रह गया।

९. भरे ही को भरती है दुनियाँ मदाम।
समंदर को जाते हैं दरिया तमाम॥

—उर्दू शेर

१०. रुपियो हाथ रो मैल है।

—राजस्थानी कहावत

११. **खरी कमाई का रुपया**—मारवाड़ के एक राजपूत ने दिल्ली के बादशाह के यहाँ नौकरी की। बारह वर्ष बाद उसे एक रुपया मिला। उसने उससे चार अनारें खरीदीं और उन्हें बच्चों के लिए घर भेज दिया। वे चार लाख में बिकीं। एक वर्ष बाद स्वदेश जाते समय नौकरी माँगने पर उसे खजाने से एक रुपया मिला और वह रास्ते में ही खर्च हो गया। विस्मित राजपूत ने बादशाह से भेद पूछा। उत्तर मिला कि पहला रुपया पसीने की कमाई का था (मैंने बत्तीस दिन लोहा कूट कर कमाया था) और दूसरा रुपया प्रजा से छीनकर लिया हुआ था।

(ख) पैसा—

१. पैसा पाप का मूल है, फिर भी विनिमय का साधन है, आवश्यकता का पूरक है, बेइज्जती व अकस्मात् घात का नाशक है, मान-प्रतिष्ठा का दायक है, आश्रमादि—लोकोपकारी प्रवृत्तियों का संचालक है, महान् युद्धों का उपशामक है, भोग-विलास की इसके बिना अशक्यता है तथा हाथ का मैल होने पर भी करोड़ों हाथ इसके लिए दौड़ रहे हैं।

—पैसे के प्रशंसक

२. पैसा बना मनुज के कर से, आज वही भगवान हो गया।
क्रय करता मानव का पैसा, उस ही का सम्मान हो गया।
गई मनुजता दूर विश्व से, पशुता का साम्राज्य हो गया।
कहाँ गया वह रामराज्य, यह देखो रावणराज्य हो गया।

—हिन्दी कविता

३. "तुलसी" इस संसार में, मतलब का व्यवहार।
जब लग पैसा गांठ में, तब लग लाखों यार॥

४. पैसा जग में प्राण, पैसो ही जग में प्रभु।
पैसो रो सम्मान, चिहुं दिशि होवै 'चकरिया'।

—सोरठा-संग्रह

5. Money my God, woman my guide.
मनी माई गॉड वुमन माई गाइड —अंग्रेजी कहावत
पैसा मेरा परमेश्वर और स्त्री मेरी अगुआ।

६. कठेई जावो पइसाँ री खीर है।

● तांबे की मेख, तमाशा देख॥ —राजस्थानी कहावतें

७. पैसे बिन तात कहे, पूत है कपूत मेरो,
पैसे बिन मात कहे मोहि दुखदायी है।
पैसे बिन काका कहे, कौन को भतीज तीज,
पैसे बिन सासू कहे कौन को जमाई है॥

पैसे बिन नारी घरवारी घुरटि करे
पैसे बिन यार-दोस्त आँख ही छिपाई है।
कहे कवि "देवीदास", याही जग साची भाख,
कलियुग के वर्तमान पैसे की बड़ाई है ॥

८. जिसके पास नहीं है पैसा।
जग में उसका जीवन कैसा ?

—हिन्दी पद्य

९. पैसादार नी बकरी मरी ते बधा गामे जाणी।
गरीबनी छोकरी मरी ते कोई ए न जाणी।

—गुजराती कहावत

१०. पैसे की कीमत भिखारी बनकर मांगने से जानी जाती है।

११. पैसा मां कोई पूरो नहीं, अक्कलमां कोई अधूरो नहि।

—गुजराती कहावत

१२. किसी भी कार्य का ध्येय पैसा नहीं होता, लेकिन अज्ञानवश लोग मान बैठे हैं। ज्ञान से देखें तो सरकार का ध्येय प्रजा का रक्षण करना है, माता-पिता का ध्येय संतान-पालन है, न्यायाधीश का ध्येय न्याय करना है, वकील का ध्येय न्यायी को बचाना है, डाक्टर-वैद्य-हकीमों का ध्येय रोगियों को स्वस्थ बनाना है, शिक्षकों का ध्येय अशिक्षितों को शिक्षित बनाना है, लोकमान्यतिलक तथा महात्मागांधी जैसे महापुरुषों का ध्येय देश को सुखी और स्वतंत्र करना था, किन्तु पैसे से घर भरना नहीं।

—संकलित

१३. न्याय-अन्याय का पैसा—

अब्बु अब्बासा एक टोपी सींकर एक पैसा पैदा करता था। दूसरा मित्र अन्याय से धन कमाता था। एक दिन उसने अन्धे को एक मोहर दी, अन्धे ने शराब पीकर रंडीबाजी की। प्रथम ने मरा-पक्षी खानेवाले गरीब को एक पैसा दिया। उसने मांस खाना छोड़ा, चनों से निर्वाह किया, बुद्धि सुधरी। कारण न्याय का पैसा था।

(ग) चौदह रत्न—

१. एगमेगस्स णं रन्नो चाउरंत चक्कवट्टिस्स चउदस रयणा पन्नत्ता, तं जहा—

इत्थीरयणे, सेणावइरयणे, गाहावइरयणे, पुरोहियरयणे, वड्ढइरयणे, आसरयणे, हत्थिरयणे, असिरयणे, दण्डरयणे, चक्करयणे, छत्तरयणे, चम्मरयणे, मणिरयणे, कागिणिरयणे।

—समवायांग १४

जैन सिद्धान्तानुसार प्रत्येक चक्रवर्ती के पास चौदह रत्न होते हैं। इनके नाम—(१) स्त्रीरत्न (२) सेनापतिरत्न (३) गाथापतिरत्न (४ पुरोहित-रत्न (५) वर्द्धकिरत्न (६) अश्वरत्न (७) हस्तिरत्न (८) असिरत्न (९) दण्डरत्न (१०) चक्ररत्न (११) छत्ररत्न (१२) चर्मरत्न (१३) मणि-रत्न (१४) काकिणीरत्न।

उपरोक्त चौदह रत्न अपनी-अपनी जाति में सर्वोत्कृष्ट होते हैं। इसी-लिए ये रत्न कहलाते हैं। इन चौदह रत्नों में से पहले के सात रत्न पञ्चेन्द्रिय हैं। शेष सात रत्न एकेन्द्रिय पृथ्वीकायमय हैं।

२. लक्ष्मीः कौस्तुभ-पारिजातक-सुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमा,
गावः कामदुघा सुरेश्वरगजो रम्भादिदेवाङ्गनाः।
अश्वः सप्तमुखः सुधा हरिधनुः शङ्खो विषं चाम्बुधे,
रत्नानीति चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्युः सदा मङ्गलम्॥

(१) लक्ष्मी (२) कौस्तुभमणि (३) कल्पवृक्ष (४) मदिरा (५) धन्वन्तरि वैद्य (६) चन्द्रमा (७) कामधेनु गाय (८) ऐरावतहाथी (९) रम्भामादि अप्सराएँ (१०) सात मुँहवाला उच्चैश्रवा घोड़ा (११) अमृत (१२) विष्णु-धनुष (१३) शंख (१४) विष—ये चौदह रत्न सदा मंगल करें। (भागवतादि पुराणों के अनुसार जब देवों और दानवों ने मिलकर समुद्र-मंथन किया था तब उसमें से उपरोक्त १४ रत्न निकले थे।)

(घ) विभिन्न देशों की मुद्राएँ :—

देश	मुद्रा	देश	मुद्रा
१. अर्जेन्टाइना	पेसो	२६. ग्वातेमाला	क्वेतजल
२. आस्ट्रेलिया	पौंड	२७. ग्रीस	ड्राग्म
३. अल्जीरिया	फ्रांक	२८. घाना	पौंड
४. आस्ट्रिया	शिलिंग	२९. हैती	गुरडे
५. बेल्जियम	फ्रांक	३०. हांगकांग	हांगकांग
६. ब्रिटेन	पौंड (स्टर्लिंग)	३१. हौंडूरास	लेम्पीरा
७. बर्मा	कियाट	३२. भारत	रुपया
८. बल्गेरिया	लेवा	३३. आइसलैंड	क्रोना
९. सीलोन	रुपया	३४. ईरान	रियल
१०. कनाडा	डालर	३५. इराक	दीनार
११. कोलम्बिया	पेसो	३६. इन्डोनेशिया	रुपया
१२. कोस्टारिका	कोलोन	३७. इटली	लीरा
१३. क्यूबा	पेसो	३८. जापान	येन
१४. मलयेशिया	डालर	३९. आयरिश रिपब्लिक	पौंड
१५. चिली	पेसो	४०. कोरिया	ह्वान
१६. कम्युनिस्ट चीन	युआन	४१. जोर्डन	दीनार
१७. चेकोस्लोवाकिया	क्राउन	४२. सूडान	पौंड
१८. डेन्मार्क	क्रोनर	४३. सिएरालिओन	फ्रीटाउन
१९. डोमीनिकन		४४. लेबनान	पौंड
२०. एलसाल्वेडर	कोलोन	४५. लक्सेमबर्ग	फ्रांक
२१. रिपब्लिक	पेसो	४६. मेक्सिको	पेसो
२२. फिनलैण्ड	मारक्का	४७. लीबिया	पौंड
२३. इथोपिया	डालर	४८. नीदरलैण्ड	गिल्डर
२४. जर्मनी	मार्क	४९. मोरक्को	दरहम
२५. फ्रांस	न्यूफ्रांक	५०. नार्वे	क्रोन

देश	मुद्रा	देश	मुद्रा
५१. न्यूजीलैण्ड	पौंड	६४. स्वीडन	क्रोनर
५२. पाकिस्तान	रुपया	६५. सीरिया	पौंड
५३. नीकारगुआ	कोरडोबा	६६. तुर्की	लीरा
५४. पेरू	सोल	६७. स्विट्‌जरलैंड	फ्रांक
५५. पनामा	बालबोआ	६८. मिस्र	पौंड
५६. पोलैण्ड	ज्लोटी	६९. थाईलैण्ड	बहट
५७. फिलीपीन	पेसो	७०. यूरुग्वे	पेसो
५८. रूमानिया	लेव	७१. अमेरिका	डालर
५९. पुर्तगाल	एस्कूडो	७२. युगोस्लाविया	दीनार
६०. सऊदी अरब	रियाल	७३. सोवियत संघ	रूबल
६१. स्पेन	पेसेटा	७४. नेपाल	रुपया
६२. सूडान	पौंड	७५. वेनेजुएला	बोलिवर
६३. दक्षिणी अफ्रीका	रैंड		

१. अविश्वासनिधानाय, महापातकहेतवे,
पिता-पुत्र विरोधाय, हिरण्याय नमोऽस्तु ते।

हे धन ! तू अविश्वास का निधान है, महापाप का हेतु है और पिता-पुत्र को लड़ानेवाला है अतः तुझे दूर से ही नमस्कार है।

२. अर्थानामर्जने दुःख-मर्जितानां च रक्षणे।
आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः॥

—पञ्चतन्त्र १।७४

धन का संग्रह करने में दुःख है और संग्रहीतधन की रक्षा करने में भी दुःख है। धन की आय में दुःख है एवं उसके व्यय में भी दुःख है। अतः दुःख के संश्रयरूप धन को धिक्कार है।

३. अर्थस्य साधने सिद्धे, उत्कर्षे रक्षणे व्यये।
नाशोपभोग आयास-स्त्रासश्चिन्ता भयं नृणाम्॥

—भागवत ११।२३।१७

धन कमाने में, कमाकर उसे बढ़ाने में, रखने में, खर्च करने में, उसके नाश में या उपभोग में, जहाँ भी देखो, वहाँ परिश्रम है, त्रास है, चिन्ता है और भय है।

४. माया नैं भय है, काया नैं भय कोनी।

—राजस्थानी कहावत

५. दौलत की दो लात है, "तुलसी" निश्चय कीन्ह।
आवत अन्धा करत है, जावत करे अधीन॥

६. कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितः ?

—पञ्चतंत्र

धन पाकर कौन गर्वित नहीं हुआ ?

७. स्तेयं हिंसानृतं दम्भः, कामः क्रोधः स्मयो मदः,
भेदो वैरमविश्वासः, संस्पर्द्धा व्यसनानि च।
एते पञ्चदशानर्था, ह्यर्थमूला मता नृणाम्,
तस्मादनर्थमर्थाख्यं, श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्॥

—श्रीमद्भागवत ११।२३।१८-१९

१. चोरी, २. हिंसा, ३. झूठ, ४. दम्भ, ५. काम, ६. क्रोध, ७. चित्तोन्नति, ८. अहंकार, ९. भेदबुद्धि, १०. वैर, ११. अविश्वास, १२. संस्पर्द्धा, १३. व्यसन अर्थात् व्यभिचार, १४. जूआ, १५. शराब—ये पन्द्रह अनर्थ मनुष्यों में धन के कारण से ही माने गये हैं। अतः कल्याणकामी पुरुष को अर्थ-नामधारी इस अनर्थ का दूर से ही परित्याग कर देना चाहिए।

८. धन से नर्म बिछौना मिल सकता है, नींद नहीं; मन्दिर-मस्जिद बन सकते हैं, भगवान नहीं; भौतिकसुख मिल सकते हैं, आत्मिकसुख नहीं; प्रशंसक मिल सकते हैं, हितचिन्तक नहीं; दिखावे का मान मिल सकता है, हार्दिक सम्मान नहीं; पुस्तक खरीद सकते हैं, विद्या नहीं; नौकर रखा जा सकता है, सच्चा सेवक नहीं।

—महेन्द्रकुमार वशिष्ठ

९. धन के लिए लाखों-करोड़ों व्यक्ति मुर्दे-से होकर घूम रहे हैं, मशीनों की तरह दिन-रात खट रहे हैं, जेलों में (चोर-डाकू आदि) सड़ रहे हैं, सधवा, विधवा, कुमारी स्त्रियाँ वेश्यायें बन रही हैं, तीर्थों में पंडे-पुजारी लोग लोगों को ठग रहे हैं, भाई-भाई लड़-झगड़ रहे हैं तथा सरकार प्रजा को लूट रही है और प्रजा सरकार को धोखा दे रही है।

—संकलित

१०. दायादाः स्पृहयन्ति तस्करगणा मुष्णन्ति भूमीभुजो,
गृह्णन्ति च्छलमाकलय्य हुतभुग् भस्मीकरोति क्षणात्।
अम्भः प्लावयति क्षितौ विनिहितं यक्षा हरन्ते हठाद्,
दुर्वृत्तास्तनया नयन्ति निधनं धिग् बह्वधीनं धनम्॥

—सिन्दूरप्रकरण ७४

ज्ञातिजन स्पृहा करते हैं, चोर चुरा लेते हैं, छल द्वारा राजा ले लेते हैं, अग्नि भस्म कर डालती है, पानी बहा देता है, जमीन में छिपा कर रखे धन को यक्ष हर लेते हैं तथा दुराचारी पुत्र इसको नष्ट कर देते हैं। अतः धिक्कार है बहुतों के अधीन रहनेवाले इस धन को !

११. एक सौतेली माँ ने अपने सौतेले पुत्र को विष देकर इसलिए मार डाला कि यह बड़ा होने पर मेरे पुत्रों के हक में हिस्सा लेगा।

—उत्तरप्रदेश की घटना

१२. ईरान के एक जमींदार को खेत में दो सिक्के मिले। वह उन्हें लेकर बाजार में आया। पुलिस-अधिकारी के पूछने पर उसने स्थान बताया। रात को साथियों सहित पुलिस-अधिकारी ने वह स्थान खोदा। नीचे एक मकान निकला। अँधेरे में उतरे। सोने की रेत से घड़े भरे थे। ६५ करोड़ का धन था। बात फूटी ! सारे के सारे गिरफ्तार एवं धन जब्त !

—अध्ययन के आधार पर

८ अन्याय का धन

१. पिपीलिकार्जितं धान्यं, मक्षिकासंचितं मधु।
अन्यायोपार्जितं द्रव्यं, चिरकालं न तिष्ठति॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १६१

चींटियों का इकट्ठा किया हुआ धान्य, मक्खियों का संचित मधु और अन्याय से उपार्जित धन—ये तीनों चीजें अधिक समय तक नहीं ठहरतीं।

२. अन्यायोपार्जितं द्रव्यं, दशवर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते चैकादशे वर्षे, समूलं च विनश्यति॥

—चाणक्यनीति १५।६

अन्याय से पैदा किया हुआ धन दस वर्ष रहता है। ग्यारहवें वर्ष समूल नष्ट हो जाता है।

३. दुर्जनस्यार्जितं वित्तं, भुज्यते राजतस्करैः।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

दुर्जनों का संचित धन प्रायः राज्य-कर्मचारी ही खाया करते हैं।

४. कीड़ी संचे, तीतर खाय (आंधी पीसे, कुत्ता खाय)।
पापी रो धन पर लै जाय।

—राजस्थानी कहावत

५. दूध ना दूध मां जाय नें पाणी ना पाणी मां जाय।
● चोर नें पोटले धूल नीं धूल।

—गुजराती कहावतें

६. चोरी रो धन मोरी में।

—राजस्थानी कहावत

१. विभिन्न देशों में प्रति व्यक्ति वार्षिक राष्ट्रीय आय—

नाम	आय रुपयों में
बर्मा	४३०
भारत	५५२
पाकिस्तान (बंगालसंयुक्त)	५६०
श्रीलंका	६४५
जापान	४२६०
फ्रांस	१०,०००
इंगलैण्ड	१०,०८०
आस्ट्रेलिया	११,६४०
अमरीका	२२,०००

—भारतीय अर्थशास्त्र, खण्ड २, पृष्ठ ३५

२. भारी आय—

मुगलेआजम—(फिल्म) ३६ सप्ताहों में सब खर्च निकाल कर १ करोड़ ७५ लाख का नफा कर चुका।

—रंगभूमि से

३. आयकर (इन्कमटैक्स)—चक्रवर्ती लाभ का २०वां भाग, वासुदेव १०वाँ भाग एवं मांडलिक राजा छठवाँ भाग लिया करते थे। वर्तमान भारत सरकार के आय-कर का हिसाब, हिन्दुस्तान, २ मार्च १९६८ के अनुसार इस प्रकार है—

चार हज़ार रुपये तक की आमदनी पर कर नहीं।

५००० रु० पर	२५० रु०,
१०००० रु० पर	७५० रु०,
१५००० रु० पर	१५०० रु०,
२०००० रु० पर	२५०० रु०,
२५००० रु० पर	४००० रु०,
३०००० रु० पर	६००० रु०,
५० हज़ार रु० पर	१६००० रु०,
६० हज़ार रु० पर	२८००० रु०,
१ लाख रु० पर	४७५०० रु०,
२॥ लाख रु० पर	१५०००० रु०,

ढाई लाख से ऊपर की आमदनी पर ७५ प्रतिशत।

सम्पत्ति कर—५० लाख पर १ लाख ६२ हज़ार।

मृत्यु कर—३० लाख पर १५ लाख २२ हज़ार।

—सन् १९६६ की सरकारी रिपोर्ट के आधार पर

२७ व्यय

१. इदमेव हि पाण्डित्यं, चातुर्यमिदमेव हि ।
इदमेव सुबुद्धित्व-मायादल्पतरो व्ययः ॥
यही पण्डितता, चतुरता और सुबुद्धिमत्ता है कि आमदनी से कम खर्च किया जाये ।

2. Cut your coat according to your cloth.

कट योर कोट एकोर्डिंग टू योर क्लोथ ।

—अंग्रेजी कहावत

अपनी आमदनी के अनुसार खर्च करो ।

३. खर्च ब अंदाजे दखल कुन ।

—फारसी कहावत

आमदनी को देख कर खर्च ।

४. बीस पौंड की आमदनी में यदि खर्च उन्नीस पौंड उन्नीस सिलिंग छः पेन्स है तो सुख होगा और यदि बीस पौंड उन्नीस सिलिंग छः पेन्स है तो दुःख होगा ।

—मिकाबर

५. आयमनालोच्य व्ययमानो वैश्रवणोऽपि श्रमणायत एव ।

—नीतिवाक्यामृत १८।१०

आमदनी को न देखकर खर्च करनेवाला वैश्रवण (कुबेर) भी फकीर हो जाता है ।

६. नित्यं हिरण्यव्ययेन मेरुरपि क्षीयते।

—नीतिवाक्यामृत ८।५

हमेशा व्यय करने से धन का मेरु भी क्षीण हो जाता है।

७. अस्सी री आवद चौरासी रो खर्च।

- साहजी सूरा-लेखा पूरा।
- घर तंग-बहू जबरजंग।
- आभो टोपसी-सो दीखै है।

—राजस्थानी कहावतें

८. सन् १९६८-६९ के बजट के अनुसार भारत-सरकार की कुल आमदनी ४२९९ करोड़, ५९ लाख थी तथा खर्च ४५९९ करोड़, ५१ लाख हुआ।

—हिन्दुस्तान, २ मार्च १९६८

९. संसार का वार्षिक रक्षाव्यय १५ हजार अरब रु०—

संयुक्त राष्ट्र-महासभा ने शस्त्रास्त्र की होड़ तथा सुरक्षा बजट में निरन्तर वृद्धि के सामाजिक और आर्थिक परिणामों के अध्ययन के लिए एक विशेषज्ञ समिति गठित की थी। उसने गत वर्ष अक्तूबर में महासचिव को एक रिपोर्ट दी। उसके अनुसार १९६१ से १९७१ के बीच के दस वर्षों में संसार का रक्षा-व्यय ५०० अरब डालर (३७५० अरब रुपये) से बढ़ कर २००० अरब डालर (१५००० अरब रुपये) वार्षिक हो गया है।

—हिन्दुस्तान १ अगस्त १९७२

२८ अपव्यय-निषेध

१. व ला तुबज़्ज़िर तब्ज़ीरन् ।

—कुरान १७।२६

फ़िज़ूल-खर्ची न करो।

२. न तो अपना हाथ गर्दन से बाँध रख और न (फ़िज़ूलखर्ची से) उसे बिलकुल खुला फैला दे।

—कुरान १७।२९

३. धन कमाने की अपेक्षा खर्च करने में अधिक बुद्धिमत्ता चाहिए। अयोग्य स्थान में खर्च करने से धन का दुरुपयोग होता है।

४. किसी भी चीज में पैसा लगाने से पहले अपने आप से दो प्रश्न पूछो—क्या मुझे इस चीज की जरूरत है? क्या इसके बिना मेरा काम चल सकता है?

—सिडनी स्मिथ

५. जान मुरेनी दो बत्तियाँ जला कर कुछ लिख रहे थे। दो कार्यकर्ता उनसे कुछ चन्दा लेने आये। आते ही एक बत्ती बुझा दी एवं उन्हें आशातीत चन्दा दिया। बत्ती बुझाने का कारण पूछने पर बोले—दो बत्तियाँ लिखने के लिए थीं, आपसे बातचीत एक बत्ती के प्रकाश में भी हो सकती है, व्यर्थ व्यय करना मेरे सिद्धान्त से विपरीत है।

२६ ऋण (कर्ज)

१. ऋण लेने का अर्थ है, दुःख मोल लेना।

—हसर

२. आदमी के लिए कर्ज ऐसा है, जैसा चिड़िया के लिए साँप।

३. न विषंविषमित्याहु—र्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते।
विषमेकाकिनं हन्ति, ब्रह्मस्वं पुत्र-पौत्रकम्॥

—सुभाषितरत्नभाण्डार, पृष्ठ १०२

विष विष नहीं है, वास्तविक विष ऋण है। क्योंकि विष तो केवल खाने वाले को मारता है, किन्तु ऋण उसके पुत्र-पौत्रों को भी।

४. ऋणी होना ही सबसे बड़ी निर्धनता है।

—एम. जी. लीवर

५. ऋण लेनेवाला ऋण देनेवाले का दास है।

६. अधमर्णोग्राहकस्याद्युत्तमर्णस्तुदायकः।

—हेमकोष-३।५४६

ऋण लेनेवाला अधमर्ण और देनेवाला उत्तमर्ण कहलाता है।

७. स्त्रियों को सोचना चाहिए कि हमारी वेषभूषा एवं शृङ्गार के लिए पतिदेव कर्जदार तो नहीं बन रहे हैं?

८. सरकार चाहे तीन वर्ष बाद छुटकारा करदे तथा बेशर्म होकर यहाँ चाहे कोई दिवालिया कहलाकर ऋणमुक्त हो जाय, लेकिन धर्मशास्त्रानुसार अनन्तजन्मों तक भी कर्ज को चुकाये बिना प्राणी ऋण-मुक्त नहीं हो सकता।

९. एक व्यापारी को बड़ा घाटा लगा। वह राजा भोज के यहाँ से एक बड़ी रकम ऋण के रूप में लेकर घर की ओर चला। रास्ते में वह एक रात तेली के घर रुका। व्यापारी पशु-भाषा समझता था। उसने तेली के दो बैलों की बातें सुनी। एक ने कहा—मैं इस तेली का कर्ज सुबह तक चुका कर इस योनि से छूट जाऊँगा। दूसरे ने कहा—यदि १००० रु० की शर्त पर राजा भोज के बैल की मेरे साथ दौड़ हो जाय तो जीत जाऊँ और मैं भी ऋण-मुक्त हो जाऊँ। पहला बैल अगले दिन सुबह व्यापारी के सामने ही मर गया। उसके मरते ही व्यापारी ने रात का सारा हाल तेली को कह सुनाया। यह सुनते ही तेली ने राजा के बैल के साथ दौड़ की होड़ लगाई। दौड़ में तेली का बैल जीत गया। १००० रु० तेली को मिल गये। रुपये मिलते ही बैल मर गया। यह देखकर व्यापारी ने राजा को रुपये लौटाते हुए बैलों का सारा हाल सुनाया और कहा—राजन्! इस जन्म में तो मैं यह कर्ज हरगिज चुका नहीं सकता और अगले जन्म के लिए कर्ज का बोझ उठाना मुझे उचित नहीं लगता।

—कल्याण-सत्कथा अंक से

१०. अधिक ऋणवाले—

(क) बहु दुखिया ने दुख नहीं, ने बहु ऋणीया ने ऋण नहि।

—गुजराती कहावत

(ख) चढ़िया सौ तें नट्ठा भउ। —पंजाबी कहावत

११. भारत पर विदेशों का ऋण—

१९४७ में जब भारत स्वतन्त्र हुआ, उस समय भारत का विदेशों में १,७०० करोड़ रुपये जमा थे, अर्थात् प्रत्येक भारतवासी ५० रुपये का पावनेदार था। 'स्टेट्समैन' १२ जुलाई १९७१ के अनुसार अप्रैल १९७१ के अन्त तक भारत ९,९०२ करोड़ रुपये का विदेशी कर्जदार बन चुका है अर्थात प्रत्येक भारतीय १८० रुपये का देनदार हो चुका है।

—नवभारत टाइम्स १६ नवम्बर १९७१

(श्री रामेश्वर टाँटिया के लेख से)

३० उधार

१. उधार न दो और न लो। देने से पैसा और मित्र दोनों खो जाते हैं तथा लेने से किफायत सारी कुण्ठित हो जाती है।

—शेक्सपियर

२. उधार देने के विषय में—

(क) नटे विटे च वेश्यायां, द्यूतकारे विशेषतः।
उद्धारके न दातव्यं, मूलनाशो भविष्यति॥
नट, विट, वेश्या और जुआरी—इनको उधार (ऋण) धन नहीं देना चाहिए, देने से मूलधन का ही नाश हो जाएगा।

(ख) रिश्तेदारों को दिए, रुपये अगर उधार।
तो समझो! दुश्मन बने, अब वे रिश्तेदार॥

—दोहासंदोह

(ग) उधारी चें बोर्ते सव्वा हाथ रीते।

—मराठी कहावत

उधार देना अपना नुकसान करना है।

(घ) उधार दीजे र, दुश्मण कीजे।
● उधार दियो र, गिरायक गमायो।
● उधार देवणो, लड़ाई मोल लेवणो है।

—राजस्थानी कहावतें

३. उधार लेने के विषय में—

(क) उधार मांगना भीख मांगने से ज्यादा अच्छा नहीं है।

—लेसिंग

(ख) उधार लिया हुआ पैसा गम का सामान बन जाता है।

(ग) जिसे उधार लेना प्रिय लगता है, उसे अदा करना अप्रिय लगता है।

(घ) फूस का तपना और उधार का खाना।

—हिन्दी कहावतें

(ङ) उधारनी मां ने कूतरा परणे।

—गुजराती कहावत

(च) उधार घर की हार।

—राजस्थानी कहावत

४. नगद और उधार—

(क) ए बर्ड इन हैंड इज वर्थ टू इन दि बुश।

—अंग्रेजी कहावत

नौ नकद न तेरह उधार।

(ख) सपनै रा सान, परतख रा पाँच।

—राजस्थानी कहावत

(ग) रोकड़ा आज नें काले उधार।

● उधार तो कहे ओ! खूणं बंसीने रो,
नगद कहे जी! जी! खा खीचड़ी नें घी।

—गुजराती कहावतें

(घ) मांग खाओ, कमा खाओ, चाहे उधार खाओ।

—राजस्थानी कहावत

५. उधार के प्रशंसक—

(क) उधारे हाथी बंधाय, रोकड़े बकरी पण न बंधाय।

—गुजराती कहावत

(ख) लाख लखांरा नीपजे, बड़-पीपल री साख।
नटियां मूंहतो नेणसी, तांबो देण तलाक॥
(उधार लेकर न देनेवालों के लिए)

३१ संग्रह

१. मेनी ए लिटल मेक्स ए मिक्ल।

—अंग्रेजी कहावत

बूंद-बूंद से तालाब भर जाता है।

२. अन्दक अन्दक खैले शवद व कतरा-कतरा सेलें गरदद।

—फारसी कहावत

बूंद-बूंद से नाला और कण-कण से मन।

३. जलबिन्दुनिपातेन, क्रमशः पूर्यते घटः।

—सुभाषितरत्न-खण्डमंजूषा

जल की एक-एक बूंद गिरने से घड़ा भर जाता है।

४. कालेन संचीयमानः परमाणुरपि संजायते मेरुः।

—नीतिवाक्यामृत १।३०

संचय करते-करते कालान्तर में परमाणु भी मेरु बन जाता है।

५. कोड़ी-कोड़ी संचतां रुपियो थाय, कांकरे-कांकरे पाल बंधाय,
टीपे-टीपे सरोवर भराय।

—गुजराती कहावत

६. कोड़ी-कोड़ी करतां लंक लागै।

—राजस्थानी कहावत

७. कर कसर ते बीजो भाई ने सेवड़ (संग्रह) तीजो भाई।

—गुजराती कहावत

८. धन का सहजसंग्रह करने के लिए गृहणियां घर-खर्च में से कुछ बचाती हैं, गृहस्थलोग जीवन-बीमा करवाते हैं, मां-बाप बच्चों के 'गोलख' बनाते हैं तथा सरकार और बड़े-बड़े व्यापारी लोग अपने नौकरों के वेतन का कुछ भाग काटते हैं। अल्पबचतयोजना का भी मूल ध्येय यही है।

३२ ब्याज

१. ब्याज ने घोड़ो न पहोंचे ।

ब्याज ने विसामो नहिं ।

—गुजराती कहावतें

२. मिनख कमावें चार पोर, ब्याज कमावें आठ पोर ।

—राजस्थानी कहावत

३. ब्याज भला-भलानी लाज मूकावें ।

—गुजराती कहावत

४. ६५ वर्ष पूर्व सुक्खूराम ने मकान गिरवे रखकर १६५६ में उसे छुड़ाने गया । चक्र ब्याज के हिसाब से २२ करोड़ ३४ लाख ६७ हजार ७८३ रुपये हुए ।

५. एक रामे लंका लीधी तो भाभा राम (आनो) ।
चढ़े त्यां शुं बाकी रहे ।

—गुजराती कहावतें

६. मूलसूं ब्याज प्यारो ।

—राजस्थानी कहावत

७. हबीब अजमी एक दिन कर्जदारों के यहां से आटा, चावल एवं लकड़ी उठाकर ले आये । रांधते समय हांडी में खून देखकर रुकी नौकी । हबीब ब्याज का धन्धा छोड़कर फकीर हो गये ।

—"इस्लाम धर्म क्या कहता है ?" के आधार पर

चौथा कोष्ठक

१ आत्मा

१. जे आया से विन्नाया, जे विन्नाया से आया।
जेण वियाणइ से आया। तं पडुच्च पडिसंखाए॥

—आचारांग-५।५

जो आत्मा है, वह विज्ञाता है। जो विज्ञाता है, वह आत्मा है। जिससे जाना जाता है, वह आत्मा है। जानने की इस शक्ति से ही आत्मा की प्रतीति होती है।

२. जो अहंकारो, भणितं अप्पलक्खणं।

—आचारांग चूर्णि-१।१।१

यह जो अन्दर में 'अहं' की चेतना है, यह आत्मा का लक्षण है।

३. यत्राहमित्यनुपचरितप्रत्यय, स आत्मा।

—नीतिवाक्यामृत ६।४

जहां "मैं हूं" ऐसा सुदृढ़ निश्चय हो, वह आत्मा है।

४. जिस हस्ती को वेदान्ती ब्रह्म कहते हैं, भक्त भगवान कहते हैं, उसे योगी आत्मा कहते हैं।

——रामकृष्ण

५. जिसे अपने जीवन के लिए मन, प्राण, और शरीर की गर्ज नहीं, अपने ज्ञान के लिए मन और इन्द्रियों की गर्ज नहीं और अपने आनन्द के लिए पदार्थमात्र के बाह्यस्पर्श की गर्ज नहीं, उसी तत्त्व का "आत्मा" नाम दिया गया है।

—अरविंद घोष

६. अत्ता हि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परे सिया ?

—धम्मपद-१२।४

आत्मा ही आत्मा का नाथ (स्वामी) है, दूसरा कौन उसका नाथ हो सकता है ?

७. जारिसिया सिद्धप्पा, भवमल्लियजीव तारिसा होंति ।

—नियमसार-४७

जैसी शुद्ध आत्मा सिद्धों (मुक्त आत्माओं) की है। मूलस्वरूप में वैसी ही संसारस्थ प्राणियों की है।

८. हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे।

—भगवती ७।८

आत्मा की दृष्टि से हाथी और कुंथुआ—दोनों की आत्मा एक समान है।

२ आत्मा का स्वरूप

१. अरूवी सत्ता, अपयस्स पयं नत्थि।

—आचारांग-५।६

आत्मा का मूलस्वरूप अरूपी है। उसको कहने के लिए कोई शब्द नहीं है। वास्तव में वह अवाच्य है।

२. सव्वे सरा नियट्टंति,
तक्का जत्थ न विज्जइ।
मई तत्थ न गाहिया॥

—आचारांग ५।६

आत्मा के वर्णन में सबके सब शब्द निवृत्त हो जाते हैं—समाप्त हो जाते हैं। वहाँ तर्क की गति भी नहीं है और न बुद्धि ही उसे ठीक तरह ग्रहण कर पाती है।

३. नैषा तर्केण मतिरापनेया।

—कठोपनिषद्-२।६

यह आत्म-ज्ञान कोरे तर्क-वितर्कों से भुठलाने जैसा नहीं है।

४. अमूर्तश्चेतनो भोगी, नित्यः सर्वगतोऽक्रियः।
अकर्ता निर्गुणः सूक्ष्म, आत्मा कपिलदर्शने।

—स्याद्वादमंजरी १५ टीका

सांख्यदर्शन में आत्मा अरूपी है, चेतनायुक्त है, कर्मफल भोगनेवाली है, नित्य है, सर्वव्यापी है, क्रियाशून्य है, अकर्ता है, निर्गुण है और सूक्ष्म है।

५. से न सद्दे, न रूवे, न गंधे, न रसे, न फासे।

—आचारांग-५।६

आत्मा न शब्द है, न रूप है, न गन्ध है, न रस है और न स्पर्श है।

६. आत्माऽगृह्यो, न हि गृह्यते; अशीर्यो न हि शीर्यते।
असंगो, न हि सज्यते; असितो न हि व्यथते, न रिष्यते॥

—बृहदारण्यक उपनिषद्-३।९।२६

आत्मा अग्राह्य है, अतः वह पकड़ में नहीं आता; आत्मा अशीर्य है, अतः वह क्षीण नहीं होता, आत्मा असंग है, अतः वह किसी से लिप्त नहीं होता, आत्मा असित है—बंधनरहित है, अतः वह व्यथित नहीं होता, नष्ट नहीं होता।

७. नो इन्दियग्गेज्झ अमुत्तभावा,
अमुत्तभावा वि य होइ निच्चं।

—उत्तराध्ययन-१४।१९

आत्मा आदि अमूर्त तत्त्व इन्द्रियग्राह्य नहीं होते और जो अमूर्त होते हैं, वे अविनाशी-नित्य भी होते हैं।

८. अणिंदियगुणं जीवं, दुन्नेयं मंसचक्खुणा।

—दशवैकालिक-निर्युक्ति भाष्य ३४

आत्मा के गुण अनिन्द्रिय-अमूर्त्त हैं, अतः उन्हें चर्म-चक्षुओं से देख पाना कठिन है।

३ आत्मा की शाश्वतता आदि

१. नत्थि जीवस्स नासो त्ति ।

—उत्तराध्ययन २।२७

आत्मा का कभी नाश नहीं होता ।

२. णिच्चो अविणासि सासओ जीवो ।

—दशवैकालिक निर्युक्ति-भाष्य ४२

आत्मा नित्य है, अविनाशी है एवं शाश्वत है ।

३. न जायते म्रियते वा कदाचिद्, नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो, न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२०॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ॥२३॥

—गीता अ० २

यह आत्मा न कभी जन्म लेती है, न कभी मरती है अथवा न यह आत्मा होकर के दुबारा होने वाली है । क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है ॥२०॥

इस आत्मा को न तो शस्त्र काट सकते हैं, न इसको आग जला सकती है न इसको जल गीला कर सकता है और न इसको वायु सुखा सकती है ॥२३॥

४. **आत्मा की परिमितता—**

(क) बालाग्रशतभागस्य, शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः स विज्ञेयः, स चानन्त्याय कल्पते ॥

—श्वेताश्वतर उपनिषद् ५।६

बालाग्र के सौवें भाग के सौवें भाग जितना जीव होता है, वह अनन्त परिणामवाला है।

(ख) अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ऽन्तरात्मा।
सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः॥

—श्वेताश्वतर उपनिषद्-३।१३

अङ्गुष्ठ मात्र परिमाणवाला अन्तर्यामी परमात्मा मनुष्यों के हृदय में सम्यक् प्रकार से स्थित है।

५. आत्मा की अलिङ्गता—

(क) न इत्थी, न पुरिसे न, अन्नहा।

—आचारांग-५।६

आत्मा न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक है।

(ख) नैव स्त्री न पुमानेष, न चैवायं नपुंसकः।
यद् यच्छरीरमादत्ते, तेन-तेन स युज्यते॥

—श्वेताश्वतर उपनिषद् ५।१०

यह आत्मा न स्त्री है, न पुरुष है और न यह नपुंसक है। जो-जो शरीर धारण करता है, उस-उस नाम से युक्त हो जाता है।

(ग) वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

—गीता २।२२

जैसे—मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नए वस्त्रों को धारण कर लेता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को छोड़कर नए शरीरों को धारण कर लेता है।

४ आत्मा का कर्तृत्व

१. अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली।
अप्पा कामदुहाधेणू, अप्पा मे नन्दणं वणं ॥३६॥
अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ ॥३७॥

—उत्तराध्ययन २०

मेरी (पाप में प्रवृत्त) आत्मा ही वैतरणी नदी और कूटशाल्मली वृक्ष के समान (कष्टदायी) है। और (सत्कर्म में प्रवृत्त) कामधेनु मेरी आत्मा ही एवं नन्दनवन के समान (सुखदायी) भी है।३६।

आत्मा ही सुख-दुःख की कर्ता और भोक्ता है। सदाचार में प्रवृत्त आत्मा मित्र के तुल्य है और दुराचार में प्रवृत्त होने पर वही शत्रु है।३७।

२. आत्मानमेव मन्येत, कर्त्तारं सुख-दुःखयोः।

—चरकसंहिता

मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी आत्मा को ही सुख-दुःख की कर्त्ता माने।

३. स्वयं कर्म करोत्यात्मा, स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे, स्वयं तस्माद् विमुच्यते॥

—चाणक्यनीति ६।६

आत्मा स्वयं कर्म करती है और स्वयं उसका फल भोगती है। स्वयं संसार में भ्रमण करती है और स्वयं उससे मुक्त होती है।

४. से सुयं च मे अज्झत्थियं च मे,
बंध-पमोक्खो तुज्झ अज्झत्थेव ।

—आचारांग-५।२

मैंने सुना है और अनुभव भी किया है कि बन्धन की मुक्ति आत्मा के अन्दर ही है ।

५. उद्धरेदात्मनात्मानं, नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु-रात्मैव रिपुरात्मनः ॥५॥

बंधुरात्मात्मनस्तस्य, येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे, वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥६॥

—गीता-अ० ६

आत्मसंयम द्वारा आत्मा का उद्धार करो । कुत्सित प्रवृत्तियों द्वारा आत्मा को विषाद—दुःख मत पहुँचाओ । आत्मा ही आत्मा की बन्धु है और आत्मा ही आत्मा की शत्रु है ॥५॥

जिसने आत्मा को अर्थात् मन-इन्द्रियों को आत्म-संयम द्वारा जीत लिया है, उसके लिए उसकी आत्मा बन्धु है और जिसके मन-इन्द्रियाँ अपने वश में नहीं हैं, उसके लिए उसकी आत्मा शत्रु है ॥६॥

६. एगप्पा अजिए सत्तू ।

—उत्तराध्ययन-२३।३८

स्वयं की अविजित—असंयत आत्मा ही स्वयं का एक शत्रु है ।

७. न तं अरी कंठछित्ता करेई,
जं से करे अप्पणिया दुरप्पा ।

—उत्तराध्ययन-२०।४८

गर्दन काटनेवाला शत्रु भी उतनी हानि नहीं करता, जितनी हानि दुराचार में प्रवृत्त अपनी आत्मा कर सकती है ।

✲

५ आत्मा का दर्शन

१. आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः, श्रोतव्यो, मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।
आत्मनो वा अरे दर्शनेन, श्रवणेन, मत्या, विज्ञानेन इदं सर्वं-
विदितम् ॥

—बृहदारण्यक उपनिषद्-२।४।५

आत्मा का ही दर्शन करना चाहिए, आत्मा के सम्बन्ध में ही सुनना चाहिए, मनन-चिन्तन करना चाहिए और आत्मा का ही निदिध्यासन-ध्यान करना चाहिए। एकमात्र आत्मा के ही दर्शन से, श्रवण से, मनन-चिन्तन से और विज्ञान से—सम्यक् जानने से सब कुछ जान लिया जाता है।

२. आत्मावलोकने यत्नः, कर्त्तव्यो भूतिमिच्छता।

—योगवाशिष्ठ ५।७५।४६

कल्याण की इच्छा रखनेवाले को आत्मदर्शन करने का प्रयत्न करना चाहिए।

३. पुष्पे गन्धं तिले तैलं, काष्ठेऽग्निं पयसि घृतम्।
इक्षौ गुडं तथा देहे, पश्यात्मानं विवेकतः॥

—चाणक्यनीति ७।२१

जैसे—पुष्प में गन्ध, तिल में तेल, काष्ठ में अग्नि और ईख में गुड़ विद्यमान है, वैसे ही देह में आत्मा विद्यमान है। उसे विवेकपूर्वक देखो।

४. अणोरणीयान् महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः ।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको, धातुप्रसादान्महिमानमीशम् ॥
—कठोपनिषद् २।२०

आत्मा अणु से भी अणु (छोटी) है और महान् से भी महान् (बड़ी) है। प्रत्येक प्राणी के भीतर छिपी है। जो निरीह है, उसे अपने मन और इन्द्रियों की शक्ति से इसके दर्शन होते हैं।

५. रागद्वेषादि कल्लोलै-रलोलं यन्मनोजलम् ।
स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं, तत्तत्त्वं नेतरो जनः ॥
—समाधिशतक ३५

राग-द्वेषादि की कल्लोलों से जिसका मनरूप जल चंचल नहीं होता; वही व्यक्ति आत्मा के तत्त्व को देख सकता है, दूसरा नहीं।

६. नष्टे पूर्वविकल्पे तु, यावदन्यस्य नोदयः ।
निर्विकल्पकचैतन्यं, स्पष्टं तावद्विभासते ॥
—लघुवाक्यवृत्ति

पूर्व विकल्प नष्ट होने के बाद, जब तक दूसरा विकल्प उत्पन्न नहीं होता, उस समय तक निर्विकल्पआत्मा स्पष्टरूप में दृष्टिगोचर होती है।

७. शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः,
समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्यति ।
—बृहदारण्यक उपनिषद् ४।४।२३

शम, दम, उपरति, तितिक्षा (श्रद्धा) तथा समाधानरूप षट्सम्पत्तियुक्त जिज्ञासु ही आत्मा का आत्मा में दर्शन करता है।

६ आत्मा का ज्ञान

१. एतदात्मविज्ञानं पाण्डित्यम् ।

—बृहदारण्यक उपनिषद् ३।५।१

वस्तुतः आत्म-ज्ञान ही पाण्डित्य है ।

२. अज्ञातस्वरूपेण, परमात्मा न बुध्यते ।
आत्मैव प्राग् विनिश्चेयो: विज्ञातुं पुरुषं परम् ॥

—ज्ञानार्णव, पृष्ठ ३१६

अपने स्वरूप को नहीं जाननेवाला परमात्मा को नहीं जान सकता। अतः परमात्मा को जानने के लिए पहले अपनी आत्मा को ही निश्चयपूर्वक जानना चाहिए।

३. वाग्वैखरी शब्दझरी, शास्त्र-व्याख्यानकौशलम् ।
वैदुष्यं विदुषां तद्वत्, भुक्तये न तु मुक्तये ॥
अविज्ञाते परे तत्त्वे, शास्त्राधीतिस्तु निष्फला ।
विज्ञातेऽपि परे तत्त्वे, शास्त्राधीतिस्तु निष्फला ॥

—विवेकचूड़ामणि-६०-६१

आत्मज्ञान के बिना विद्वानों की वाक्कुशलता, शब्दों की धारावाहिकता, शास्त्र-व्याख्यान की कुशलता और विद्वत्ता—ये सब चीजें भोग का ही कारण हो सकती हैं, मोक्ष का नहीं ॥६०॥

आत्मतत्त्व न जानने पर शास्त्राध्ययन व्यर्थ है तथा उसे जान लेने पर भी शास्त्राध्ययन व्यर्थ है ॥६१॥

४. ज्यां लगे आतम तत्त्व चीन्ह्यो नहीं, त्यां लगे साधना सर्व झूठी ।

—नरसी भगत

५. वद-णियमाणि धरंता, सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता ।
परमट्ठबाहिरा जे, णिव्वाणं ते ण विंदंति ॥

—समयसार-१५३

भले ही व्रत-नियम को धारण करें, तप और शील का आचरण करें, किन्तु जो परमार्थरूप आत्म-बोध से शून्य हैं, वे कभी निर्वाण को प्राप्त नहीं कर सकते ।

६. आत्मज्ञानात् परं कार्यं, न बुद्धौ धारयेच्चिरम् ।
कुर्यादर्थवशात् किञ्चिद् वाक्कायाभ्यामतत्परः ॥

—समाधिशतक ५०

आत्मज्ञान के अतिरिक्त कोई भी कार्य का चिन्तन नहीं करना चाहिए, प्रयोजनवश कोई कार्य करना ही पड़े तो अनासक्त रहकर केवल वचन-काया द्वारा करना चाहिए ।

७. अगर मुझे अपनी फिलॉसफी कोई एक शब्द में कहने को कहे, तो मैं कहूँगा—'आत्मनिर्भरता'—'आत्मज्ञान' ।

—रामतीर्थ

८. दुक्खे णज्जइ अप्पा ।

—मोक्षपाहुड-६५

आत्मा बड़ी कठिनाई से जानी जाती है ।

९. तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा ।

—केनोपनिषद्-४।८

आत्मज्ञान की प्रतिष्ठा अर्थात् बुनियाद तीन बातों पर होती है—तप, दम (इन्द्रियनिग्रह) तथा कर्म-सत्कर्म ।

१०. आत्मज्ञान के लिए इन्द्र को १०१ वर्षों तक ब्रह्मचर्य पालना पड़ा।

—छान्दोग्योपनिषद् ८

११. कहं सो घिप्पइ अप्पा ? पण्णाए सो उ घिप्पए अप्पा।

—समयसार २९६

यह आत्मा किस प्रकार जानी जा सकती है ? आत्म-प्रज्ञा अर्थात् भेद-विज्ञानरूप बुद्धि से ही जानी जा सकती है।

१२. आत्मविद्या ब्राह्मणों में क्षत्रियों से आई हो—ऐसा संभव है। छान्दोग्योपनिषद् (५।३।७) में अपने पुत्र 'श्वेतकेतु' से प्रेरित होकर 'आरुणि' 'पंचाल के राजा प्रवाहण' के पास गया। आत्मविद्या देते हुए राजा ने कहा—मैं तुम्हें जो आत्मविद्या और परलोकविद्या दे रहा हूं, उस पर आज तक क्षत्रियों का अधिकार रहा है, आज पहली बार यह ब्राह्मणों के पास जा रही है।

भागवत—११।२।१६ में ऋषभप्रभु को सर्वक्षत्रियों का पूर्वज कहा है। (ऋषभं पार्थिव श्रेष्ठं, सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम्) यही ऋषभप्रभु भरतक्षेत्र में जैनधर्म के आदिकर्ता हैं। इन्हीं से आत्मविद्या का प्रारम्भ हुआ है।

१३. षड्दर्शन नां जुआ-जुआ मता, माहों मांहीं खाधा खता,
एक नों थाप्यो बीजो हणें, अन्यथी आपनें अधिको गणें।
अक्खा ! एज अंधारो कुओ, झगड़ो भांगी नें कोई न मुओ ॥१॥
देहाभिमान हतो पा सेर, विद्या भणतां वाध्यो सेर,
चर्चा वधतां अधमण थयो, गुरु थयां थी मण मां गयो।
अक्खा ! एम हलका थी भारी होय, आत्मज्ञान मूल गो खोय॥२॥

—अक्खा भगत के गुजराती पद्य

७ आत्मज्ञ

१. यः आत्मवित् स सर्वविद्।

जिसने आत्मा को जान लिया, उसने सब कुछ जान लिया।

२. तरति शोकमात्मविद्।

—छान्दोग्योपनिषद्-७।१।३

जो आत्मा को—अपने आपको जान लेता है, वह दुःख-सागर को तैर जाता है।

३. तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः
आत्मानं धीरमजरं युवानम्।

—अथर्ववेद-१०।८।४४

जो धीर, अजर, अमर, सदा तरुण रहनेवाली आत्मा को जानता है, वह कभी मृत्यु से नहीं डरता।

४. नीतिज्ञा नियतिज्ञा, वेदज्ञा, अपि भवन्ति शास्त्रज्ञाः।
ब्रह्मज्ञा अपि लभ्याः, स्वज्ञानज्ञानिनो विरलाः॥

जगत में नीति के जानकार हैं, नियति-होनहार के जानकार हैं, वेदों व अन्य शास्त्रों के जानकार हैं, ब्रह्मज्ञानी भी मिल जाते हैं, लेकिन आत्मा को जाननेवाले विरले हैं।

५. पठन्ति चतुरो वेदान्, धर्मशास्त्राण्यनेकशः।
आत्मानं नैव जानन्ति, दर्वी पाकरसं यथा॥

—चाणक्यनीति १५।१२

जैसे—भोजन में रहता हुआ भी चाटू उसके रस को नहीं जानता, उसी प्रकार बहुत से व्यक्ति चारों वेद और अनेक धर्मशास्त्र पढ़ते हैं, फिर भी आत्मा का ज्ञान नहीं कर पाते।

६. श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः, शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा-ऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः।

—कठोपनिषद् २।७

यह आत्मज्ञान अत्यन्त गूढ़ है। बहुतों को तो यह पहले सुनने को भी नहीं मिलता, बहुत से लोग सुन तो लेते हैं, किन्तु कुछ जान नहीं पाते। ऐसे गूढ़तत्त्व का प्रवक्ता कोई आश्चर्यमय बिरला ही होता है, उसको पानेवाला तो कोई कुशल ही होता है और कुशल गुरु के उपदेश से कोई बिरला ही उसे जान पाता है।

७. जे अज्झत्थं जाणइ, से बहिया जाणइ,
जे बहिया जाणइ, से अज्झत्थं जाणइ।

—आचारांग-१।७

जो अध्यात्म को (आत्मा के मूलस्वरूप को) जानता है वह बाह्य को (पुद्गलादि द्रव्यों को) जानता है और जो बाह्य-पदार्थों को जानता है, वह आत्मा के मूलस्वरूप को—अध्यात्म को जानता है।

८. ण याणंति अप्पणो वि, किन्नु अण्णेसिं।

—आचारांगचूर्णि-१।१।३

जो आत्मा को नहीं जानता, वह दूसरों को क्या जानेगा?

आत्मरक्षा

१. आत्मरक्षण कुदरत का सबसे पहला कानून है और आत्मबलिदान सौम्यता का सर्वोच्च नियम।

२. अप्पा हु खलु सययं रक्खियव्वो, सव्विंदिएहिं सुसमाहिएहिं।
अरक्खिओ जाइपहं उवेइ, सुरक्खिओ सव्वदुहाण मुच्चइ॥

—दशवैकालिक, चूलिका २ गाथा १६

सब इन्द्रियों को वश में करके आत्मा की पापों से सदा रक्षा करनी चाहिए।

३. आपदर्थे धनं रक्षेद्, दारान् रक्षेद् धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद्, दारैरपि धनैरपि॥

—चाणक्यनीति १।६

आपत्काल के लिए धन की रक्षा करो। धन से स्त्री की रक्षा करो तथा स्त्री एवं धन से भी सदा आत्मा की रक्षा करो।

४. अत्तहियं खु दुहेण लब्भई।

—सूत्रकृतांग २।२।३०

आत्महित का अवसर मुश्किल से मिलता है।

५. अत्तत्ताए परिव्वए।

—सूत्रकृतांग ११।३२

आत्मरक्षा के लिए संयमशील होकर विचरे।

६. आत्मरक्षायां कदाचिदपि न प्रमाद्येत।

—नीतिवाक्यामृत २५।७२

मनुष्य को आत्मरक्षा करने में कभी आलस्य नहीं करना चाहिए।

७. त्यजेदेकं कुलस्यार्थे, ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे, आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥

—चाणक्यनीति ३।१०

कुलरक्षा के लिए एक व्यक्ति का, ग्रामरक्षा के लिए एक कुल का और देशरक्षा के लिए एक ग्राम का त्याग कर देना चाहिए। किन्तु आत्मरक्षा के लिए यदि समूची पृथ्वी का भी त्याग करना पड़े, वह भी कर देना चाहिए।

८. यज्जीवस्योपकाराय, तद्देहस्यापकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय, तज्जीवस्यापकारकम्॥

—इष्टोपदेश १९

जो कार्य आत्मोपकारी है, वह शरीर का अपकार करनेवाला है एवं जो कार्य शरीरोपकारी है, वह आत्मा का अपकार करनेवाला है।

९ आत्मरक्षक

१०. (क) अप्पाणरक्खी चरेऽप्पमत्तो ।

—उत्तराध्ययन ४।१०

अपनी आत्मरक्षा करनेवाला अप्रमादी होकर विचरे ।

(ख) तओ आयरक्खा पण्णत्ता, तं जहा—

धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएत्ता भवइ, तुसिणीए वा सिया, उट्ठित्ता वा आया एगंतमवक्कमेज्जा ।

—स्थानांग ३।३।१७०

तीन प्रकार के आत्मरक्षक कहे हैं—(१) अनुकूल-प्रतिकूल उपसर्ग करनेवाले अनार्य पुरुष को धर्मोपदेश देनेवाला, (२) उपदेश देने पर न माने तो चुप रहकर ध्यान करनेवाला, (३) ध्यान न कर सके तो विधियुक्त अन्य एकान्त स्थान में चला जानेवाला ।

५. मुक्तबुद्धीन्द्रियोमुक्तो, बद्ध-कर्मेन्द्रियोऽपि हि।
बद्धबुद्धीन्द्रियो बद्धो, मुक्तकर्मेन्द्रियोऽपि हि॥

—योगवाशिष्ठ

बुद्धीन्द्रियों के विषयों में अनासक्त मनुष्य मुक्त ही है, फिर वह चाहे कर्मेन्द्रियों से युक्त क्यों न हो? तथा जो कर्मेन्द्रियों से मुक्त होकर भी यदि बुद्धीन्द्रियों के विषयों में आसक्त है तो वह वास्तव में बँधा हुआ है।

☼

२० इन्द्रियों की शक्ति

१. इन्द्रियाणि प्रमाथीनि, हरन्त्यपि यतेर्मनः ।

—श्रीमद्‌भागवत ७।१२।७

अत्यन्त तंग करनेवाली इन्द्रियाँ यति—संन्यासी के मन को भी हर लेती हैं अर्थात् विषयों की ओर ले जाती है।

२. जिह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हितर्षा—
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कामशक्ति—
र्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ।

जैसे—विभिन्न सौतें (सपत्नियाँ) गृहस्वामी को भिन्न-भिन्न दिशाओं में खींच ले जाती हैं, वैसे—जीभ अपने स्वामी शरीर को एक ओर खींचती है तो प्यास अपनी ओर ले जाती है। जननेन्द्रिय उसको एक ओर प्रेरित करती है, उसी प्रकार—स्पर्श, पेट और कान उसे दूसरी ओर प्रेरित करते हैं। घ्राणेन्द्रिय उसको भिन्न दिशाओं में खींचती है तो चपल आँखें और कामशक्ति उसको अन्यत्र ही ले जाती हैं।

३. शब्दादिभिः पञ्चभिरेव पञ्च,
पञ्चत्वमापुः स्वगुणेन बद्धा ।
कुरङ्ग—मातङ्ग—पतङ्ग—मीन—
भृङ्गा नरः पञ्चभिरञ्चितः किम् ॥

—विवेकचूडामणि ७८

शब्दादि एक-एक इन्द्रियों के विषयों से बंधे हुए मृग, हाथी, पतंग, मछली और भ्रमर मृत्यु को प्राप्त होते हैं। तो फिर इन पाँचों से जकड़ा हुआ मनुष्य कैसे बच सकता है ?

४. एक सदन में पाँच का, पृथक-पृथक आदेश।
सम्भव चन्दन ! क्यों नहीं, होना क्लेश विशेष ॥

—दोहा-हिताली

५. इन्द्रियवशवर्ती चतुरङ्गोऽपि नश्यति।

—कौटलीय-अर्थशास्त्र

इन्द्रियों के विषयों में आसक्त व्यक्ति चतुरंगवान् होता हुआ भी नष्ट हो जाता है।

२१ इन्द्रिय-दमन

१. दुद्दंता इंदिया पंच, संसाराए सरीरिणं।
ते चेव णियमिया संता, णेज्जाणाए भवन्ति हि॥

—ऋषिभाषित १६।१

दुर्दान्त इन्द्रियाँ प्राणियों को संसार में भटकाती हैं, पर वे ही संयमित होने पर मोक्ष की हेतु बन जाती हैं।

२. सारथीव नेत्तानि गहेत्वा, इन्द्रियानि रक्खन्ति पण्डिता।

—दीघनिकाय २।७।१

जिस प्रकार सारथि लगाम पकड़कर रथ के घोड़ों को अपने वश में किये रहता है, उसी प्रकार ज्ञानी-साधक ज्ञान के द्वारा अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हैं।

३. कद अफ्लह मन् जक्का हा।

—कुरान ९१।९

निश्चय ही उस आदमी का जन्म सफल हुआ, जिसने अपनी इन्द्रियों को पवित्र किया।

४. इन्द्रियों को वश करना सत्पुरुषों का काम है और उनके वश हो जाना मूर्खों का काम है।

—एपिक्टेट्स

५. वशे हि यस्येन्द्रियाणि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।

— गीता २।६०

जिस पुरुष के इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

६. जहाँ बुद्धि और भावना का मेल नहीं खाता, वहाँ इन्द्रियनिग्रह का अभाव है।

—विनोबा

७. विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना—
स्तेऽपि स्त्रीमुखपंकजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवा—
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद् विन्ध्यस्तरेत् सागरे॥

—भर्तृहरि–शृंगारशतक ६५

केवल वायु, जल और पत्तों को खाकर जीनेवाले विश्वामित्र-पराशर आदि बड़े-बड़े ऋषि भी स्त्रियों के मनोहर मुख-कमल को देखकर मोहित हो गए, तो फिर घी-दूध- -दधिमिश्रित चावलों का भोजन करनेवाले मनुष्य अपनी इन्द्रियों का दमन कर ही कैसे सकते हैं? उनसे यदि इन्द्रिय निग्रह हो जाय, तो विन्ध्याचल पर्वत भी समुद्र में तैरने लग जाय।

२२ जितेन्द्रिय

१. जेयन्तां दुर्जया देहे, रिपवश्चक्षुरादयः ।
जितेषु ननु लोकोऽयं, तेषु कृत्स्नस्त्वया जितः ॥

—किरातार्जुनीय ११।३२

अपने शरीर में रहे हुए चक्षु आदि इन्द्रियाँ दुर्जय शत्रु हैं। इन्हें सर्वप्रथम जीतना चाहिए। इन्हें जीत लेने पर समझो कि तुमने सारा संसार जीत लिया।

२. सुच्चिय सूरो सो चेव पंडिओ, तं पसंसिमो निच्चं ।
इन्दियचोरेहिं सया, न लुंटियो जस्स चरणधनं ॥

—प्रकरणरत्नाकर

वही शूर है, वही पण्डित है, हम सदा उसी की प्रशंसा करते हैं, जिसका चरण-धन इन्द्रियरूप चोरों द्वारा नहीं लूटा गया।

३. श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च, भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ।
न हृष्यति ग्लायति वा, स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥

—मनुस्मृति २।९८

निन्दा-स्तुति सुनकर, सुखद-दुःखद वस्त्रादि को छूकर, सुरूप-कुरूप को देखकर, सरस-नीरस वस्तु को खाकर एवं सुगन्ध-दुर्गंध वस्तु को सूंघकर जिसे हर्ष-विषाद नहीं होता, उसे जितेन्द्रिय समझना चाहिए।

२२ कान और बधिरता

१. कान गुणीजनों के गुण एवं गुरुओं का ज्ञान सुनने के लिए हैं, स्वप्रशंसा और परनिन्दा सुनने के लिए नहीं।

—धनमुनि

२. बोल्या भी बोल्या, सुणता भी बोल्या, जो न सुण्यां गुरुज्ञान !

— मारवाड़ी भजनमाला

३. कानां में ठेठी घाल राखी है।

—राजस्थानी कहावत

४. दो भले कान सौ जबानों को सुनकर खुश्क कर देते हैं।

—फ्रैंकलिन

५. भारत में १ करोड़ ४५ लाख ८० हजार स्कूली बच्चे बहरे हैं।
(डा. वाई. पी. कपूर) —नवभारत टाइम्स, २ फरवरी १९६२

६. बोलो पूछे बोली ने काई रांधी होली नें।

—राजस्थानी कहावत

७. पंडितजी ! पाए लागुं—तो कहे बापासिया है।
पंडितजी मजे में हो, तो कहे भड़ीता करने खासूं।

(बैंगन हाथ में थे)

८. **बहरे के प्रश्नोत्तर—**

बहरा आदमी सुनता तो है नहीं अतः अपने प्रश्नों का उत्तर घड़कर ही किसी से बात करता है।

एक बहरा अपने बीमार मित्र से मिलने गया किन्तु वह मर चुका था। बहरे ने उपस्थित लोगों से पूछा कि भाईजी किस तरह हैं? लोगों ने कहा—वे तो मर चुके। बहरे ने सोचा, कुछ ठीक बतला रहे हैं, अतः तपाक से कह दिया, बहुत खुशी की बात है, भगवान ने अच्छा किया। लोग हँसने लगे, लेकिन बहरा नहीं समझा और पूछने लगा—किसका इलाज चल रहा है? उपस्थित मजाकिये ने कहा—यमराजजी का। बहरा अमुक डाक्टर का नाम समझकर बोल पड़ा—वे डाक्टर बहुत अच्छे हैं, इनके हाथ में यश भी है। तबीयत नरम-गरम हो तो आप भी इन्हीं की दवा लिया करें। (हँसी बढ़ती जा रही थी)

सहजभाव से बहरे ने पुनः प्रश्न किया—भाईजी को पथ्य क्या दिया जाता है? उत्तर मिला—कंकर-पत्थर। इसने दलिया-खिचड़ी आदि समझकर कहा—पथ्य बिल्कुल ठीक है। आप लोग भी मौके-मौके इसी का प्रयोग किया करें। अस्तु! भाईजी सोते कहाँ हैं? उत्तर दिया गया—श्मशान में। बहरे ने कमरा आदि समझकर कह डाला—स्थान सुरक्षित है। बाल-बच्चों को भी यहीं सुला दिया करें। उपस्थित लोगों के हँसी के मारे पेट दुखने लगे। आखिर ज्यों-त्यों समझाकर बहरे को घर भेजा।

२६ जिह्वा

१. जिह्वायत्तौ वृद्धि-विनाशौ ।

—चाणक्यसूत्र ४४०

मनुष्य की उन्नति-अवनति जिह्वा के अधीन है ।

२. जीभ के वश में जीवन भी है और मृत्यु भी ।

—पुरानी बाइबिल, नविश्ते, नीतिवचन १८।२१

३. जबान सीरी, मुल्क गिरी । जबान टेढ़ी, मुल्क बांका ।

—हिन्दी कहावत

४. उपजावै अनुराग, कोयल मन हरखित करै ।
कडुवो लागै काग, रसना रा गुण 'राजिया' !

—सोरठासंग्रह

५. यदि रसना रसहीन है, वृथा सकल बकवाद ।
दाँत नहीं फिर मुंह में, क्या खाने का स्वाद ॥

—दोहा-संदोह

६. कागा किसका धन हरे, कोयल किसको देत ।
एक जीभ के कारणे, जग अपनो कर लेत ॥

७ रे जिह्वे ! कुरु मर्यादां, वचने भोजने तथा ।
वचने प्राणसंदेहो, भोजने स्यादजीर्णता ॥

हे जीभ ! बोलने एवं खाने की मर्यादा कर । अमर्यादित बोलने से प्राणों में संदेह होने लगता है और अमर्यादित खाने से अजीर्ण हो जाता है ।

जबान को इतना तेज मत चलने दो कि वह मन से आगे निकल जाय।

९. गींगली होंठे, चढ़ी गोंठे :

—गुजराती कहावत

१०. यह जबाँ नहीं, लोहे की शमसीर है,
जो कह दिया, पत्थर की लकीर है।

● छुरी कातुरी का, तलवार का घाव लगा सो भरा।
लगा है जख्म जबाँ का, वो रहता है हमेशा हरा॥

—उर्दू शेर

११. तीन इंच लम्बी जबान छः फिट ऊंचे आदमी को मार सकती है।

—जापानी कहावत

१२. लम्बी जबान छोटी जिन्दगी।

—अरबी कहावत

१३. जीभ नें बरजजे, नीकर दांत पड़ावशे।

● जीभ करे छे आल-पंपाल, ने खासड़ा खाय सिर-कपाल।

● जीभ सो मण घी खाय पण चीकणी न थाय।
चमक हजारों वर्ष पाणी मां रहे पण आग जाय ज नहीं।

—गुजराती कहावतें

१४. **रसना में तीन इन्द्रियाँ**—अन्य इन्द्रियों के गोलकों में एक-एक इन्द्रिय ही होती है, पर जिह्वा में तीन इन्द्रियाँ (इन्द्रियों की शक्तियाँ) हैं। इसलिए अन्य सब इन्द्रियों की अपेक्षा-जिह्वेन्द्रिय अतिप्रबल है। यह रसनेन्द्रिय है, स्पर्शनेन्द्रिय है और वागेन्द्रिय भी है। जिह्वेन्द्रिय से रसास्वादन कर सकते हैं, शीत-उष्ण-मृदु-कठिन स्पर्श को जान सकते हैं और बोल भी सकते हैं। अतः एक रसनेन्द्रिय को जीतने से अन्य सब विषय और इन्द्रियाँ जीती जाती हैं। श्रीमद्भागवत ११।८।२१ में कहा भी है—

परिशिष्ट

- वक्तृत्वकला के बीज

  भाग ६ और ७ में

  उद्धृत ग्रन्थों व व्यक्तियों की नामावली

ग्रन्थ-सूची :

१. अंगुत्तरनिकाय
२. अत्रिसंहिता
३. अथर्ववेद
४. अध्यात्मकल्पद्रुम
५. अन्ययोगव्यवच्छेद—
द्वात्रिंशिका
६. अपरोक्षानुभूति
७. अभिज्ञानशाकुन्तल
(शाकुन्तल)
८. अभिधानचिन्तामणि
(हैमकोष)
९. अभिधानराजेन्द्रकोष
१०. अमितगति-श्रावकाचार
११. अमूल्यशिक्षा
१२. अष्टकप्रकरण-(वादाष्टक)
१३. अष्टाङ्गहृदय
१४. आइने-अकबरी
१५. आकर्षणशक्ति
१६. आचारांग-चूर्णि
१७. आचारांगसूत्र
१८. आचार्यशिवनारायण की
रिपोर्ट
१९. आत्मविकास
२०. आत्मानुशासन
२१. आपस्तम्बस्मृति
२२. आवश्यकनिर्युक्ति
२३. आवश्यकसूत्र
२४. इतिहासतिमिरनाशक
२५. इष्टोपदेश
२६. इस्लामधर्म क्या कहता है ?
२७. उज्ज्वलवाणी
२८. उत्तररामचरित
२९. उत्तराध्ययनसूत्र
३०. उद्भटसागर
३१. उर्दू शेर
३२. उपदेशतरंगिणी
३३. उपदेशप्रासाद
३४. उपदेशकुसुममाला
३५. ऋग्वेद
३६. ऋषिभाषित
३७. ऐतरेयब्राह्मण
३८. ओघनिर्युक्ति
३९. औपपातिकसूत्र
४०. कठोपनिषद्

४१. कथासरित्सागर
४२. कल्पतरु
४३. कल्याण—संत अंक
४४. कल्याण—मानवताअंक
४५. कहावतें—
(क) अंग्रेजी कहावत
(ख) इटालियन ,,
(ग) ईरानी ,,
(घ) उर्दू ,,
(ङ) गुजराती ,,
(च) चीनी ,,
(छ) जापानी ,,
(ज) पंजाबी ,,
(झ) फारसी ,,
(ञ) बंगला ,,
(ट) मराठी ,,
(ठ) राजस्थानी ,,
(ड) संस्कृत ,,
(ढ) हिन्दी ,,
४६. कात्यायनस्मृति
४७. किरातार्जुनीय
४८. किसनबावनी
४९. कुमारसंभव
५०. कुरानशरीफ
५१. केनोपनिषद्
५२. कौटलीय-अर्थशास्त्र
५३. खुले आकाश में
५४. गणधरवाद
५५. गरुडपुराण
५६. गीता (श्रीमद्भगवद्गीता)
५७. गुरुग्रन्थसाहिब
५८. घटखर्पर का नीतिसार
५९. चन्द्रचरित्र (संस्कृत)
६०. चरकसंहिता
६१. चरकसूत्र
६२. चाणक्यनीति
६३. चाणक्यसूत्र
६४. छान्दोग्य-उपनिषद्
६५. जातक
६६. जीवनलक्ष्य
६७. जैन पाण्डव-चरित्र
६८. जैन-भारती
६९. जैनसिद्धान्त-दीपिका
७०. ज्ञानप्रकाश
७१. ज्ञानार्णव
७२. तत्त्वामृत
७३. तत्त्वार्थसूत्र
७४. तन्दुलवैचारिक-प्रकीर्णक
७५. ताओ-उपनिषद्
(ताओतेह किंग)
७६. तात्त्विक त्रिशती
७७. तीन बात
७८. तैत्तिरीय-उपनिषद्
७९. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र

८०. थेरगाथा
८१. दक्षस्मृति
८२. दशकुमारचरित्र
८३. दशवैकालिकचूलिका
८४. दशवैकालिक-निर्युक्ति
८५. दशवैकालिकसूत्र
८६. दशाश्रुतस्कन्ध
८७. दीघनिकाय
८८. दृष्टान्तशतक
८९. देवीभागवत
९०. देश-विदेश की अनोखी प्रथाएं
९१. दोहा-द्विशती
९२. दोहा-संदोह
९३. धम्मपद
९४. धर्मकल्पद्रुम
९५. धर्म के नाम पर
९६. धर्मयुग (साप्ताहिक)
९७. नन्दीटीका
९८. नलविलास
९९. नवभारत टाइम्स (दैनिक)
१००. नालन्दा-विशालशब्दसागर
१०१. नियमसार
१०२. निशीथ-भाष्य
१०३. निश्चयपञ्चाशत्
१०४. नीतिवाक्यामृत
१०५. नीतिसार
१०६. नैषधीयचरित्र (नैषध)
१०७. न्युयार्क ट्रिब्यून हेराल्ड
१०८. पंचतंत्र
१०९. परमात्म-द्वात्रिंशिका
११०. पराशरस्मृति
१११. पहेलवी टैक्स्ट्स
११२. पातंजलयोगदर्शन
११३. प्रकरणरत्नाकर
११४. प्रज्ञापना
११५. प्रशमरति
११६. प्रसंगरत्नावली
११७. प्रास्ताविकश्लोकशतक
११८. बृहत्कल्पभाष्य
११९. बृहत्कल्प-सूत्र
१२०. बृहदारण्यकोपनिषद्
१२१. बृहन्नारदीय-पुराण
१२२. बृहस्पतिस्मृति
१२३. बाइबिल
१२४. ब्रह्मवैवर्त पुराण
१२५. ब्रह्मानन्दगीता
१२६. भक्तिसूत्र
१२७. भक्तामर-विवृति
१२८. भगवतीसूत्र
१२९. भर्तृहरि-नीतिशतक
१३०. भर्तृहरि-वैराग्यशतक
१३१. भर्तृहरि-शृंगारशतक
१३२. भवभूति के गुणरत्न

३३. भारतज्ञान-कोष
३४. भारतीय अर्थशास्त्र
३५. भाषाश्लोकसागर
३६. भोज-प्रबन्ध
३७. मज्झिमनिकाय
३८. मनुस्मृति
३९. मनोनुशासन
४०. मरुभारती
४१. महाभारत
४२. मारवाड़ी-भजनमाला
४३. मिदराश निर्गमन रब्बा (यहूदी धर्मग्रन्थ)
४४. मुक्तिकोपनिषद्
४५. मुण्डकोपनिषद्
४६. मुद्राराक्षसनाटक
४७. मुनिश्री जंवरीमलजी का संग्रह
४८. मृच्छकटिक
४९. मेघदूत
५०. मोक्षपाहुड
५१. यजुर्वेद
५२. याज्ञवल्क्यस्मृति
५३. यालकूत शिमेओ P R O (यहूदी धर्मग्रन्थ)
५४. यू. एन. डेमोग्राफिक इयर बुक-१९५६ तथा १९७०-७१
५५. यू० री० पी० डी० ज
५६. योगदर्शनभाष्य
१५७. योगवाशिष्ठ
१५८. योगशास्त्र
१५९. योगशिखोपनिषद्
१६०. योगसार
१६१. रघुवंश
१६२. रश्मिमाला
१६३. राजप्रश्नीयसूत्र
१६४. रामचरितमानस
१६५. लघुयोगवाशिष्ठसार
१६६. लघुवाक्यवृत्ति
१६७. लूका (बाइबिल)
१६८. लोकप्रकाश
१६९. लोकोक्तियाँ—
(क) अरबी लोकोक्ति
(ख) चेक ,,
(ग) लैटिन ,,
(घ) स्पेनिश ,,
१७०. वायु पुराण
१७१. वाल्मीकिरामायण
१७२. विक्रमोर्वशीय-नाटिका
१७३. विचित्रा (त्रैमासिक)
१७४. विज्ञान के नये आविष्कार
१७५. विदुरनीति
१७६. विवेकचूड़ामणि
१७७. विवेकविलास
१७८. विशेषावश्यक
१७९. विश्वज्ञानकोष

१८०. विश्वदर्पण
१८१. वीरअर्जुन
१८२. वेद
१८३. वेदान्तदर्शन
१८४. व्यवहारशास्त्र
१८५. व्याख्यान का मसाला
१८६. व्यासस्मृति
१८७. व्रतावृत की चौपाई
१८८. शंकरप्रश्नोत्तरी
१८९. शतपथ ब्राह्मण
१९०. शान्तसुधारस
१९१. शार्ङ्गधर
१९२. शिशुपालवध
१९३. शुक्रनीति
१९४. सुश्रुत
१९५. श्राद्धविधि
१९६. श्रीमद्भागवत (भागवत)
१९७. श्री विलक्षणअवधूत–स्वरोदयअंग
१९८. श्वेताश्वतरोपनिषद्
१९९. संयुक्तनिकाय
२००. संवेगद्रुमकन्दली
२०१. सभातरंग
२०२. समयसार
२०३. समवायांगसूत्र
२०४. समाधिशतक
२०५. सरलमनोविज्ञान
२०६. सरिता
२०७. सवैयाशतक
२०८. सहूलतस्तरी
२०९. सैद्धान्तिका
२१०. सामायिकसूत्र
२११. सिन्दूर प्रकरण
२१२. सुभाषितरत्नखण्ड-मंजूषा
२१३. सुभाषितरत्न-भाण्डागार
२१४. सुभाषित संचय
२१५. सूक्तरत्नावलि
२१६. सूत्रकृतांगसूत्र
२१७. सोरठा-संग्रह
२१८. सोवियत भूमि
२१९. स्कन्धपुराण
२२०. स्थानांगसूत्र
२२१. स्याद्वादमंजरी
२२२. स्वरशास्त्र
२२३. हजरत बुखारी और मुस्लि
२२४. हठयोगप्रदीपिका
२२५. हरितस्मृति
२२६. हर्षचरित
२२७. हितोपदेश
२२८. हिन्दी मिलाप (दैनिक)
२२९. हिन्दुस्तान (दैनिक)
२३०. हिन्दुस्तान (साप्ताहिक)

व्यक्ति नामावली :

१. अकबर
२. अश्वाभक्त
३. अमरमुनि
४. अरविन्दघोष
५. अरस्तू
६. अशोन-द-चासैल
७. अष्टावक्र
८. आचार्यतुलसी
९. इकबाल
१०. इब्नेसिना
११. ई. एच. चेपिन
१२. ईसरदास
१३. ईसा
१४. एक युवक सन्यासी
१५. एच. जी. बोन
१६. एच. डब्ल्यू. बीचर
१७. एडविन मार्कहम
१८. एडीसन
१९. एमी एल
२०. एम. जी. लीस्वर
२१. एमर्सन
२२. एपिक्टेटस
२३. एरियन यूनानी
२४. एलकाट (अलकाट)
२५. कन्फ्यूसियस (कांगफ्यूत्सी)
२६. कबीर
२७. कवि कृपाराम
२८. कवि गंग
२९. कवि घासीराम
३०. कवि देवीदास
३१. कवि दीन
३२. कवि नाथूलाल
३३. कवि बांकीदास
३४. कविराज हरनामदास
३५. कार्डिनल
३६. कार्लमार्क्स
३७. कार्लाइल
३८. कालीदास
३९. कालूगणि
४०. किडलीयर
४१. किसनिया
४२. कुसुमदेव
४३. कोल्टन
४४. कोलम्बस

४५. गांधी
४६. गुरुनानक
४७. गुरुवशिष्ठ
४८. गेटे
४९. गोवर्धनाचार्य
५०. चकवस्त
५१. चाणक्य
५२. चेम्फर्ट
५३. चेस्टर फील्ड
५४. जगन्नाथ
५५. जर्मीटेलर
५६. जवाहरलाल नेहरू
५७. जानलोक
५८. जानसन
५९. जी. गफ
६०. जेम्जगार फील्ड
६१. टसर
६२. टाल्पेज
६३. टी कोगन
६४. टेनीशन
६५. टैगोर
६६. डा. हेराल्ड व्हीलर
६७. डार्विन
६८. डिकेन्स
६९. डिजरायली
७०. डेलकारनेगी
७१. डेविस ग्रेसन
७२. डेनियल
७३. ड्राइडेन
७४. तिरुवल्लुवर
७५. तुलसीदास
७६. थामसपेन
७७. थियोगिनस
७८. थ्यू फाम्टस
७९. दांते
८०. दादा धर्माधिकारी
८१. दिनकर
८२. देवेश्वर
८३. धनमुनि
८४. धूमकेतु
८५. धर्मसीह
८६. नरसी भगत
८७. नलिम
८८. नेपोलियन
८९. पंडित श्रद्धारामजी
९०. पीथागोरस
९१. पेट्रार्च
९२. प्रेमचन्द
९३. पुरुषोत्तमदास टंडन
९४. प्लूटार्च
९५. प्लेटो
९६. पेट्रार्क
९७. पोप
९८. फीनेलन

९९. फ्रैंकलिन
१००. बटलर
१०१. बर्नार्डशा
१०२. बाइबल
१०३. बुल्बर लिटन
१०४. बृहस्पति
१०५. बेकन
१०६. भूदरदास
१०७. मयाराम
१०८. म. नेकर
१०९. महात्मा बुद्ध
११०. महेन्द्रकुमार वशिष्ठ
१११. मान्टेस्क्यू
११२. मिकावर
११३. मिल्टन
११४. रयूफस कोयेट
११५. रस्किन
११६. रहीम
११७. राजिया
११८. रामकृष्ण परमहंस
११९. रामतीर्थ
१२०. रामानन्द दोषी
१२१. रोमसिन
१२२. रोबर्ट क्लाईज
१२३. रोशफूको
१२४. लांग थेले
१२५. ला. फांते
१२६. लाब्रुयेर
१२७. लायड जार्ज
१२८. लाबेल
१२९. लीटन
१३०. लुई ब्लेक
१३१. लुकमान हकीम
१३२. लूथर
१३३. लौसिंग
१३४. वरले
१३५. बर्क
१३६. वर्ड्सवर्थ
१३७. व्यास
१३८. वाल्टेयर
१३९. विक्टरह्यूगो
१४०. विज्म
१४१. विनोबा भावे
१४२. विलियम पैन
१४३. विवेकानन्द
१४४. विशपकम्बर लैंड
१४५. वीरजी
१४६. वृन्दकवि
१४७. वेदव्यास
१४८. शंकराचार्य
१४९. शार्ङ्गधर
१५०. शुक्राचार्य
१५१. शुभचन्द्राचार्य
१५२. शेक्सपियर

१५३. शेखसादी
१५४. शोपेन हॉवर
१५५. श्रीमद् राजचन्द्र
१५६. संत अगस्त
१५७. संत मैथ्यू
१५८. संत रैदास
१५९. सर अर्नेस्ट बोर्न
१६०. सर जान हरशल
१६१. सर पी सिन्डनी
१६२. सर्वेन्टिस
१६३. सिडनी स्मिथ
१६४. सिसरो
१६५. सी. सिमन्स
१६६. सुकरात
१६७. सुबन्धु
१६८. सुभाषचन्द्र बोस
१६९. सूरदास
१७०. सेनेका
१७१. सेन्टपाल
१७२. सेमुएल जानसन
१७३. स्टर्नर
१७४. स्वेट मार्टेन
१७५. हक्सले
१७६. हजरत मसीह
१७७. हरिभद्रसूरि
१७८. हरिभाऊ उपाध्याय
१७९. हली बर्टन
१८०. हार्वर्ड
१८१. हिटलर
१८२. हुट्टन
१८३. हेनरी वार्ड बीचर
१८४. होमर
१८५. व्हिट मैन
१८६. व्हेटले

लेखक की अप्रकाशित रचनाएँ :

□ संस्कृत

१. देवगुरुधर्म-द्वात्रिंशिका
२. प्रास्ताविक-श्लोकशतकम्
३. एकाह्निक-श्रीकालुशतकम्
४. श्री कालुगुणाष्टकम्
५. श्री कालुकल्याणमन्दिरम्
६. भाविनी
७. ऐक्यम्
८. श्री भिक्षुशब्दानुशासन-लघुवृत्तितद्धितप्रकरणम्

□ गुजराती

९. गुर्जरभजनपुष्पावली
१० गुर्जरव्याख्यानरत्नावली

□ हिन्दी

११. वैदिकविचारविमर्शन
१२. संक्षिप्त-वैदिक विचारविमर्शन
१३. अवधान-विधि
१४. संस्कृत बोलने का सरल तरीका
१५. दोहा-संदोह
१६. व्याख्यानमणिमाला
१७. व्याख्यानरत्नमंजूषा
१८. जैन महाभारत–जैन रामायण आदि बीस व्याख्यान
१९. उपदेशसुमनमाला
२०. उपदेशद्विपञ्चाशिका
२१. पच्चीस बोल का सरल विवेचन

● राजस्थानी

२२. धनबावनी
२३. सवैयाशतक
२४. औपदेशिक ढालें
२५. प्रास्ताविक ढालें
२६. कथाप्रबन्ध
२७. छः बड़े व्याख्यान
२८. ग्यारह छोटे व्याख्यान
२९. सावधानी रो समुद्र

● पञ्जाबी

३० पञ्जाब-पच्चीसी

लेखक की प्रकाशित रचनाएँ :

□ हिन्दी

१. सच्चा धन
२. प्रश्न-प्रकाश
३. लोक-प्रकाश
४. ज्ञान-प्रकाश
५. श्रावक धर्म-प्रकाश
६. मोक्ष-प्रकाश
७. दर्शन-प्रकाश
८. चारित्र-प्रकाश
९. मनोनिग्रह के दो मार्ग
१०. चौदह नियम
११. भजनों की भेंट
१२. ज्ञान के गीत
१३. एक आदर्श आत्मा
१४. चमकते चांद
१५. जैन-जीवन
१६. सोलह सतियां
१७ से २३ वक्तृत्वकला के बीज (१ से ७ भाग तक)

□ गुजराती

२४. तेरापंथ एटले शुं ?
२५. धर्म एटले शुं
२६. परीक्षक बनो !

□ संस्कृत

२७. गणिगुणगीतिनवकम्

□ उर्दू

२८. जीवन-प्रकाश
२९. सच्चा धन

१३ धूर्त-दगाबाज

१. मुखं पद्मदलाकारं, वाचा चन्दनशीतला।
हृदयं क्रोधसंयुक्तं, त्रिविधं धूर्तलक्षणम् ॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५७

धूर्त व्यक्ति के तीन लक्षण हैं। उसका मुँह कमलपत्रवत् खिला होता है, वाणी चन्दनवत् शीतल होती है और हृदय क्रोध से भरा हुआ होता है।

२. असती भवति सलज्जा, क्षारं नीरं च शीतलं भवति।
दम्भी भवति विवेकी, प्रियवक्ता भवति धूर्तजनः ॥
—पञ्चतन्त्र १।४५१

कुलटा स्त्री अधिक लज्जा करती है, खारा जल ज्यादा ठंडा होता है, कपटी व्यक्ति विवेक अधिक दिखलाता है और धूर्त मनुष्य मीठा बोलता है।

३. धूर्त-सम्बन्धी कहावतें—

- टु मच कारटिसी टु मच क्रैफ्ट।
—अंग्रेजी कहावत

- अतिभक्तिश्चौरस्य लक्षणम्।
—संस्कृत कहावत

- अतिभक्ति चोरेर लक्षन।
—बंगला कहावत

- शकल मोमना, करतुत काफरां।
—पंजाबी कहावत

- देखतां-देखतां आंख्यां में धूड़ नाख दे।
- बेच र जगात को भरै नी।
- रोटी खाणी शक्कर स्यूं, दुनियां ठगणी मक्कर स्यूं।

—राजस्थानी कहावतें

- लाठ तिलक और मधुरी बाणी, दगाबाज की यही निशानी।
- ओछी गर्दन दगाबाज।
- आंख का अन्धा गांठ का पूरा। उंगली पकड़ते पहुंचा पकड़ा।

—हिन्दी कहावतें

४. नराणां नापितो धूर्तः, पक्षिणां चैव वायसः॥
चतुष्पदां शृगालस्तु, स्त्रीणां धूर्ता च मालिनी॥

—चाणक्यनीति ५।२१

पुरुषों में नाई, पक्षियों में काग, पशुओं में गीदड़ और स्त्रियों में मालिन—ये धूर्त माने जाते हैं।

५. बिल्ली गुरु बगलो कियो, बरण ऊजलो देख।
पार किसी विध उतरे, दोनां री गति एक।

१० न्यायार्जित धन

१. शुद्धैर्धनैर्विवर्धन्ते, सतामपि न सम्पदः ।
न हि स्वच्छाम्बुभिः पूर्णाः, कदाचिदपि सिन्धवः ॥

—आत्मानुशासन ४५

सज्जनों की भी शुद्ध धन से सम्पदाएँ नहीं बढ़तीं। जैसे—स्वच्छ जलों से नदियाँ कभी पूर्ण नहीं होतीं।

२. रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः, पापीस्ता अनीनशम् ।

—अथर्ववेद ७।११५।४

पुण्यकारिणी लक्ष्मी मेरे घर की शोभा बढ़ाए तथा पापकारिणी लक्ष्मी नष्ट हो जाए।

३. न्यायागतस्य द्रव्यस्य, बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ ।
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च, पात्रे चाप्रतिपादनम् ॥

—विदुरनीति १।६४

न्याय से अर्जित धन के व्ययसम्बन्धी दो अतिक्रम हैं अर्थात् दुरुपयोग हैं—अपात्र को देना और पात्र को न देना।

११ वास्तविक धन

१. यत्कर्मकरणेनान्तः संतोषं लभते नरः।
तदनुतमतद्धनं मन्ये, न धनं धनमुच्यते ॥

—रश्मिमाला २६।१

जिस काम के करने से मनुष्य की अन्तरात्मा को सन्तोष होता है, मैं वास्तव में उसीको धन मानता हूं, लौकिक वस्तु को धन नहीं कहा जाता।

२. पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि, जलमन्नं सुभाषितम्।
मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते ॥

—चाणक्यनीति १४।१

पृथ्वी में तीन रत्न हैं—जल, अन्न और सुभाषित। मूर्ख लोग पत्थर के टुकड़ों—हीरा-पन्ना-माणिक आदि को रत्न के नाम से व्यर्थ ही पुकार रहे हैं।